ISSN 2349-137X
UGC CARE-listed, Peer Reviewed Journal

प्रतिध्वनि कला
संस्कृति की

अंतरा लोक

वर्ष– 8, विशेषांक– 2, 2022
शोधार्थी अंक

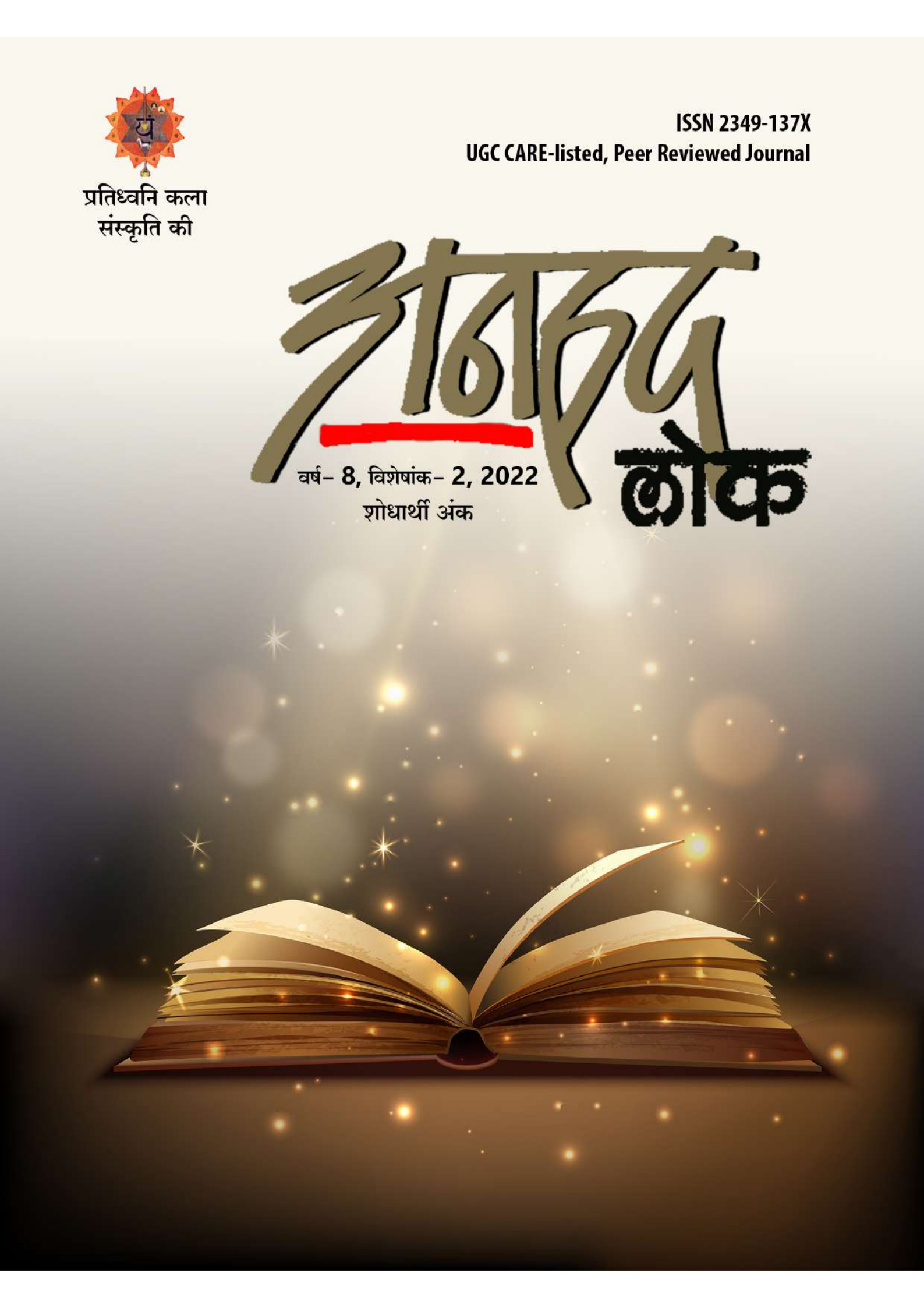

ISSN 2349-137X
UGC CARE-Listed Peer Reviewed

अनहद लोक

(प्रतिध्वनि कला एवं संस्कृति की)

वर्ष-8, 2022, विशेषांक-2
(अर्धवार्षिक शोध पत्रिका)

सम्पादक
डॉ. मधु रानी शुक्ला

सम्पादक मण्डल
डॉ. राजश्री रामकृष्ण, डॉ. मनीष कुमार मिश्रा,
डॉ. धनंजय चोपड़ा, डॉ. ज्योति सिन्हा

सहायक सम्पादक
सुश्री शाम्भवी शुक्ला

व्यंजना

आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी
109 डी/4, अबुबकरपुर, प्रीतमनगर, सुलेमसराय
प्रयागराज - 211011

अनहद लोक

(प्रतिध्वनि कला एवं संस्कृति की)

सम्पादक : डॉ. मधु रानी शुक्ला

सम्पादक मण्डल : डॉ. राजश्री रामकृष्ण, डॉ. मनीष कुमार मिश्रा, डॉ. धनंजय चोपड़ा, डॉ. ज्योति सिन्हा

सहायक सम्पादक : सुश्री शाम्भवी शुक्ला

मल्टीमीडिया सम्पादक : श्रेयस शुक्ला, अभिषेक भारद्वाज

प्रकाशक

व्यंजना

(आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी)

109 डी/4, अबुबकरपुर, प्रीतमनगर

सुलेमसराय, प्रयागराज-211 011

मो. : 9838963188, 8419085095

Email: anhadlok.vyanjana@gmail.com

वेबसाइट : vyanjanasociety.com/anhad_lok

वितरक : पाठक पब्लिकेशन, महाजनी टोला, इलाहाबाद-211 011

फोन नं. 0532-2402073

मूल्य : 200/- प्रति अंक, पोस्टल चार्जेज अलग से

सदस्यता शुल्क

वार्षिक : 500/-

तीन वर्ष : 1500/-

आजीवन : 10,000/-

संगीत नाटक अकादेमी के सहयोग से प्रकाशित

© सर्वाधिकार सुरक्षित

- रचनाकारो के विचार मौलिक हैं
- समस्त न्यायिक विवाद का क्षेत्र इलाहाबाद न्यायालय होगा

मुद्रक :

मार्गदर्शन बोर्ड :

डॉ. सोनल मानसिंह, पं. विश्वमोहन भट्ट, प्रो. कमलेश दत्त त्रिपाठी, प्रो. चित्तरंजन ज्योतिषी, प्रो. ऋत्विक् सान्याल, पं. रामकृष्ण दास 'नादरंग', प्रो. दीप्ति ओमचारी भल्ला, प्रो. के. शशि कुमार, पं. विजय शंकर मिश्र, पं. रोनू मजुमदार,

प्रो. (डॉ.) गुरप्रीत कौर, डॉ. राजेश मिश्रा, डॉ. आशा आस्थाना

सहयोगी मंडल :

प्रो. संगीता पंडित, प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काब्या', प्रो. निशा झा, प्रो. प्रभा भारद्वाज, प्रो. नीलम पॉल, प्रो. अर्चना अंभोरे, डॉ. राम शंकर, डॉ. इंदु शर्मा, डॉ. सुरेंद्र कुमार, प्रो. भावना ग्रोवर, डॉ. अंबिका कश्यप, डॉ. स्नेहाशीष दास, डॉ. सुजाता व्यास, डॉ. कस्तूरी पाइगुड़े राणे, डॉ. शान्ति महेश, डॉ. कल्पना दुबे, डॉ. बिंदु के.,

सम्पादकीय

'कला क्षेत्र में नारी' प्राची से प्रतीची'

कलाओं में मंच कला अर्थात् संगीत और संगीत क्षेत्र में नारी का जुड़ाव वैदिक काल से ही प्राप्त होता है स्त्रियाँ कलाओं में अभिव्यक्ति का साधन भी रहीं है और साधक भी अगर उनके कला क्षेत्र में जुड़ाव का ऐतिहासिक विश्लेषण करें तो वैदिक काल से ही स्त्रियाँ वैदिक कृत्यों में संलग्न थी समाज में उनका स्थान था 'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता' की भावना से ओत प्रोत समाज में स्त्री गरिमामय उपस्थिति रखती थी।

प्राचीन काल में भी कला क्षेत्र नारियों की सम्मानजनक सहभागिता रही है चौथी पाँचवी शताब्दी में वर्णित ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में नारी को कला क्षेत्र में अधिकारों की विशेष सीमा नहीं खींचते हुए सहजरूप से कला की अभिव्यक्ति में स्वतंत्र दिखाई देती है।

वैदिक काल में महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार थे उन्हें उच्च ज्ञान के साथ ही धार्मिक, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आवश्यक अंग माना गया वे वेदों के अध्ययन के साथ ही शास्त्रार्थ में भी भाग लेती थी यामी, अपाला, घोषा, गार्गी आदि कई नाम हमें विदुषियों के प्राप्त होते हैं रक्षा हेतु उन्हें सैनिक शिक्षा भी दी गई थी साथ ही कला संस्कृति के संरक्षण संवर्धन हेतु उन्हे नृत्य संगीत की शिक्षा भी प्रदान की गई वे तत्कालीन राजनीति का भी अनिवार्य अंग थी।

उत्तर वैदिक काल से महिलाओं की स्थिति में थोड़ा परिवर्तन आया। काल परिवर्तन के साथ ही अनेक दुर्गुण सामने आये बहु विवाह, बाल विवाह, सती प्रथा, देवदासी प्रथा, वैश्यावृति, परदा प्रथा, जौहर जैसी कुरीतियों ने स्त्री को कमजोर किया वह भोग्या समझी जाने लगी। मौर्य काल में महिलाओं की स्थिति उत्तर वैदिक काल से थोड़ी सही रही उन्हे पुर्नविवाह तथा नियोग की भी अनुमति दी जाने लगी हाँलाकि इसी समय दहेज प्रथा जैसी भीषण कुरीतियों का आविर्भाव हुआ किन्तु कला संस्कृति के साथ ही रक्षा के क्षेत्र में भी महिलाएँ अपना योगदान देती रहीं।

मध्यकाल में मुगलों के आगमन के पश्चात् नारियों की स्थिती में परिवर्तन आया एक तो मुस्लिम धर्म में ही संगीत को हराम माना गया स्त्रियों के सन्दर्भ में तो और भी अधिक रूढ़ीवादिता रही जो स्त्रियाँ संगीत में जुड़ी भी रही उन्हे समाज में हेय दृष्टि से ही देखा जाता था कारण अमोद-प्रमोद के साधन के रूप में स्त्रियों द्वारा कला प्रदर्शन की छूट रही जिसके कारण संगीत का आध्यात्म से हटकर मनोरञ्जन के रूप में प्रयुक्त होना रहा है। ऐसे समय में ही अनेक स्त्रियों की चर्चा प्राप्त होती है जिन्होनें न केवल कला संस्कृति में वरन् समाज को गति देने में कुशल नेतृत्व संभाला उनकी स्वयं की सोच ने समाज का मार्गदर्शन किया है। मुगल काल में चाँद बीबी जैसी वीरांगनाओं के साथ ही जहाँआरा, जेबुनिसा जैसी कवियित्रियों की

चर्चा प्राप्त होती है शिवाजी की माँ जीजाबाई भी एक योद्धा तथा उत्कृष्ट प्रशासक थी दक्षिण भारत में भी अनेक स्त्रियों ने धार्मिक, सामाजिक संस्थानों की शुरूआत की। भक्ति आंदोलन में नारी शक्ति प्रधान रही जिसने स्वयं की दृष्टि एवं दृण निश्चय से जगत को अनुगामी बना लिया संत मीराबाई, अक्का महादेवी, रानी जानाबाई और लालदेद जिन्हें लल्लेश्वरी भी कहा गया उन्होंने संस्कृति का नया अध्याय स्थापित किया। कालान्तर में अनेक महिलाओं ने क्रान्तीकारी भूमिका का स्वतंत्रता संग्राम में अपनी भूमिका निभाई, भारत की आजादी में भीकाजी कामा, डॉ0 एनीबेसेन्ट, श्री प्रीतिलता वाडेकर, विजय लक्ष्मी पंडित, राज कुमारी अमृत कौर, अरूना आसिफ अली, सुचेता कृपलानी, कस्तूरबा गांधी, दुर्गा देवी, मुथुलक्ष्मी रेड्डी, लक्ष्मी सहगल जैसी नेतृत्व करने वाली महिलाओं के साथ कवियित्रि सरोजिनि नायडू भी थी।

आधुनिक काल के पूर्वाध तो संगीत में स्त्रियों की स्थिती संतोषजनक नहीं रही किन्तु उत्तरार्ध से स्त्रियों की स्थिति में बदलाव प्रारम्भ हुआ जो आज भी जारी है वर्तमान परिप्रेक्ष में यदि हम मंच कलाओं में नारी की स्थिती का आंकलन करें तो नारी की अवस्था पुरूष से भिन्न रूप में नहीं है कोई स्त्री-पुरूष की सीमा रेखा निर्धारित नहीं है वैसे तो जीवन में सभी ने संघर्ष से ही सफलता हासिल की होगी मगर कुछ नाम मैं विशेष रूप से लेना चाहूँगी जिस प्रकार पुरूष कलाकार, शिक्षक, लेखक, चिन्तक विचारक, पत्रकार के रूप में अपने कलाओं की अभिव्यक्ति विभिन्न माध्यमों से कर रहे है उसी प्रकार स्त्री भी समान रूप से कलाओं की अभिव्यक्ति कर रही है बल्कि मुझे तो लगता है नारियों की संख्या पुरूषों से अधिक ही है। सिद्धेश्वरी देवी, जानकी बाई, जद्दन बाई, एम एस सुबुलक्ष्मी, बाला सरस्वती, किशोरी अमोनकर, डॉ0 सोनल मानसिंह, तीजनबाई, डॉ0 मालनी अवस्थी जैसी कलाकारों ने अत्यन्त संघर्ष व धैर्य से पुरूष प्रधान समाज में अपनी जगह बनाई।

वात्सल्य, श्रृंगार, दृणता, न्याय, प्रियता व साहस जैसे विविध भावों से परिपूर्ण नारी परिवार, देश, समाज के निर्माण में महती भूमिका का निर्वहन करती है। स्त्री को घर से संसद तक की दुनिया में आने में, अपने को स्थापित करने में वर्षों लगे जब नारी ने कला क्षेत्र में पर्दापण किया तो वहाँ भी उसने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। प्रेम, सुख, दुख, विछोह, कुंठा, मन में पलता विद्रोह, प्रेम सर्मपण ने जब कला जगत में चरण रखे तो अपने होने का अहसास कराया ये अलग बात है कि समाज ने उसे स्वीकार करने में समय लगाया। प्रायः समाज ने कला जगत में भी उसे दोयम दर्जे पर ही रखा परिश्रमिक से लेकर मंच प्रदान करने में, किन्तु सभी परिस्थितियों में संयमित रूप से नारी कार्य करती रही।

आगे बढ़ती स्त्री सदैव समाज के तीखे नजरों के निशाने पर रही। वो सदैव आलोचना, कटाक्ष एवं उपहास का पात्र रही कितनी भी गुणवत्ता, परिश्रम, सर्मपण से कार्य कर रही हो पर आलोचना की ही शिकार रही। उच्च स्तर तक पहुँचने में उसे समय लगा कुछ गिने चुने लोग ही उस स्तर तक पहुँचे और जो उपर पहुँचे वो भी सतत् आलोचनाओं, कटाक्षों को सहते हुए समाज ने ये मानने में कठिनाई महसूस की कि उसने मुकाम अपनी निष्ठा व कर्मठता के रूप में हासिल किया है लोग तो खंगालते पाये गये उनके व्यक्तित्व उनके सार्वजनिक व नीजी जीवन को। कोई तो सूत्र मिले जिससे वो आगे बढ़ती नारी के कमजोर पक्ष को दिखा सके बता सके कि उसने वह मुकाम किन किन गलत मार्ग से पाया और ये अन्तहीन रस आह! हर वर्ग, हर जाति को मोहा पर नारी के परिश्रय व धैर्य व कर्त्तव्य निष्ठा ने प्रमाणित कर ही दिया है कि वह भी कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर सकती है सरकारी, गैर सरकारी, व्यक्तिगत जो भी संस्थाएँ मंच कला को विकसित कर रही हैं उनमें स्त्रियों की सहभागिता सामान्य रूप से प्रत्येक स्थान पर है अनेक प्रकार की स्कॉलरशिप, फलोशिप, एवार्ड, सभी में स्त्रियाँ समान प्रतिभागी रही हैं पद्म पुरस्कारों से लेकर भारत रत्न पुरस्कारों (संगीत क्षेत्रों में) स्त्रियाँ भी शामिल रही हैं।

जो स्त्रियाँ समाज के द्वारा कला जगत में शोषित होने का दर्द महसूस करती हैं उन्हें सजग होकर कला साधना करते हुए आगे बढ़ते जाना है आवश्यकता है कि विश्लेषण कर उसी दिशा में कदम उठायें जो उचित हो और निम्न स्तर पर सहयोग या क्षणिक लाभ की अपेक्षा न करते हुए सही संस्थाओं से जुड़कर अपनी कला साधना को विस्तार दे और प्रगति पथ पर बढ़ें। महिला विकास मंत्रालय द्वारा संचालित कार्य नीति से सम्बन्धित विवरणों के माध्यम से महिलायें स्वयं को आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक रूप से सशक्त बना सकती हैं। संस्थाएँ महिलाओं को सबल बनाने में सहायता देती हैं उन्हें ढूँढ़े, उनसे जुड़े व सजगता से अपना भविष्य सुरक्षित करने के साथ ही संस्कृति संरक्षण में अपना योगदान दें।

अनहद लोक का यह विशेषांक शोधार्थियों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है जिसमें कला, साहित्य, संस्कृति से जुड़े विभिन्न विषयों के शोधार्थियों के लेख संग्रहित हैं। जिन्होंने अथक परिश्रम से इसे तैयार किया है। विद्यार्थियों ने मेहनत की है पर त्रुटियाँ भी हैं मैंने यथासम्भव उन्हें संशोधित कराने का प्रयास किया है किन्तु कुछ न कुछ शेष रह गया होगा। आप सभी का आशीर्वाद अपेक्षित है मैं शोधार्थियों के उज्जवल भविष्य की कामना करती हूँ।

- डॉ0 मधु रानी शुक्ला

अनुक्रम

1. स्वातंत्र्योत्तर बिहार के ऐतिहासिक नाटककार : डॉ. चतुर्भुज - अक्षय कुमार 13
प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'

2. प्राचीन काल में शिक्षा का अर्थ एवं प्राचीन संगीत शिक्षण प्रणाली - श्रद्धा जायसवाल 18
डॉ0 ज्योति मिश्रा

3. Significant Positive Aspects of new Education Policy 2020 25
Regarding Music Education in India -Sangita Chowdhury
Prof. Sharada Velanker

4. संगीत के प्रचार-प्रसार में 'संगीत' मासिक पत्रिका की भूमिका -विनोद कुमार 30
डॉ. संगीता घोष

5. Time Theory in Hindustani Classical Music: 34
Importance and Application in Modern Times - Amritpreet Kaur
Dr. Tejinder Gulati

6. झुमटा - एक शास्त्रीय अध्ययन (हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के आधार पर) -मोऊ सन्तारा 39
डॉ. सुनील कुमार तिवारी

7. वृत्तचित्र : भारतीय शास्त्रीय संगीत के संरक्षण के संदर्भ में एक प्रयास -शिवानी चौरसिया 44
प्रो. संगीता पंडित

8. A Brief Study in Aspects of Gurmat Music with Respect to Hindustani 49
Classical Music : A Comparative Analysis -Karanjeet Singh
Dr. Rajpal Singh

9. Psychoanalytic Study of Select Short Stories of Munshi Premchand 53
-Neha Singh
Prof. Gunjan Sushil

10. भारतीय शास्त्रीय संगीत में 'तोड़ी' : राग, रागांग तथा थाट के संदर्भ में -सुगन्धा वर्मा 57
प्रो. शारदा वेलंकर

11. चित्रगुप्त द्वारा निर्देशित उत्तर प्रदेश के लोकधुनों पर आधारित फ़िल्मी गीत 62
-देवेन्द्र कुमार गुप्ता
प्रो. विद्याधर मिश्र

12. हिमाचल प्रदेश के लोकगीतों में प्रणय गीत -मनोज कुमार 66
अंकित भट्ट

13. Corona Period: Various Dimensions of Music Teaching 70
and Stage Presentations in the Context of Globalization
and Communication Revolution -Jatin Mohan
Dr. Rajpal Singh

14. Impact of Music Therapy on Stress Reduction 76
-Anubhuti Gupta
15. उत्तराखण्ड के पर्वतीय जौनसार बावर क्षेत्र की संस्कृति में हारूल लोकगीत 81
-शारदा सहगल
प्रो. शर्मिला टेलर
16. A Study on the Significance of Borgeet Ragas of 86
Assam in 15th – 16th Century A.D. -Arkaja Bharadwaj
Prof. Anupam Mahajan
17. दरभंगा (अमता) घराने के यशस्वी गायक पंडित राम चतुर मल्लिक की गायन-शैली 95
-प्रेरणा कुमारी
प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह ''काव्या''
17. उपशास्त्रीय गेय विधाओं में काव्य की उपादेयता -शिल्पी झा 100
18. बुन्देलखण्ड क्षेत्र के सोलह संस्कारों में लोकगीत -अपर्णा पाण्डेय 104
डॉ. सुनीता द्विवेदी
19. An Analytical Study on the Composition –
"Sangeetha Jnanamu Bhakti Vina" -Praseeda Bal 110
Dr. V Janaka Maya Devi
20. मैथिली लोक संस्कृति में लोकगीतों की जीवटता -नेहा झा 114
डॉ. प्रीति सिंह
21. ऋतुकालीन रागों में ख्याल की बंदिशों का विश्लेषणात्मक अध्ययन 119
(बसंत एवं वर्षा ऋतु के विशेष संदर्भ में) -दिव्या श्रीवास्तव
प्रो. विद्याधर प्रसाद मिश्रा
22. गाँधी जी के शैक्षिक विचारों का दर्पण : नई शिक्षा नीति 2020 -बीना नेगी चौधरी 125
23. Understanding Rakthi Ragas: Importance of Sruti Analysis 128
-Deepashree S M
Dr. Hamsini Nagendra
24. तिलका माँझी विश्वविद्यालय 'संगीत' विभाग (भागलपुर) 133
संगीत की उत्पत्ति एवं मानव जीवन पर इसका प्रभाव -सोनिका कुमारी
डॉ. सुनील कुमार तिवारी
डॉ. श्वेता पाठक
25. Improvisatory Elements and Ornamentations -Bhavik Mankad 138
Prof. Ojesh Pratap Singh
26. आचार्य बृहस्पति द्वारा रचित बंदिशों में 144
साहित्यिक व सांगीतिक पक्ष : एक अध्ययन -रवि पाल
27. आध्यात्म और संगीत -कौस्तुभ पारे 148
डॉ. संतोष कुमार पाठक
28. भारतीय संस्कृति का दर्पण भारतीय संगीत -अमृतपाल सिंह 152
डॉ. सिम्मी. आर. सिंह

29. संगीत-चित्रकला-मूर्तिकला-शिल्पकला-स्थापत्य कलाओं का क्रमिक विकास, अंतःसम्बन्ध तथा परस्परावलंबन विष्णुधर्मोत्तर पुराण के परिपेक्ष्य में -वेदांगी दांडेकर, डॉ अपर्णा भट्ट 156
30. Chittaiswaras – the Quintessence of Ragas and Ragaanga Ragas -Sujaya Vijayakumar, Dr Muthulakshmi, Dr Poorna Vaidhyanathan 160
31. संगीतात्मक कथक-बैले समूह नृत्य-शैली - एक अध्ययन -इशिता भट्नागर, प्रो. सुधा सहगल 165
32. भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र में निरूपित ताल का स्वरूप -स्नेह लता, डॉ0 विशाल जैन 170
33. संगीत के परिप्रेक्ष्य में शिक्षण व संस्थागत प्रणाली : एक अध्ययन -रमनदीप, डॉ. लता 174
34. Effectiveness of Gurbani Sangeet on Mental Health: A Survey Study -Aman Kaur 178
35. नई दिल्ली में स्मारक डाक टिकटों की प्रदर्शनी -विनय पटेल 186
36. Chyabrung: A Traditional Percussion Instrument -Eric Dural 196
37. Preferences for Christian Music and its Trends: A Study in Sikkim -Eric Dural, Dr. Samidha Vedabala 201
38. The Relation Between Bandishes and Seasons in North Indian Classical Music -Arshdeep Singh, Dr. Neelam Paul 206
39. आधुनिक भारतीय संगीत में वृन्दवादन और फ्यूजन का प्रभाव -गुरप्रीत कौर, प्रो. अरविन्द शर्मा 211
40. भक्ति संगीत के प्रचार प्रसार में अनुराधा पौडवाल का योगदानः शैव मत के संदर्भ में -गीतू बाला 215
41. दुष्यंत शकुंतला प्रणय : आधुनिक चित्रकारों की दृष्टि में -मिठाई लाल 219
42. सुरजापुरी लोकगीत : सीमांचल क्षेत्र की एक अमूल्य धरोहर -मौसमी सिन्हा, डा. सुनील कुमार तिवारी 224
42. लोक संगीत मे भाव पक्ष का विस्तृत अध्ययन -प्रियंका ठाकुर 228
43. मराठी नाट्य संगीत मे पं. जितेन्द्र अभिषेकी जी का योगदान -दीपक सिंह 231
44. Cross Cultural Adjustment of School Students: A Study - Nidhi Sharma 235

45. हिमाचल प्रदेश की लोक गायन शैलियों के संरक्षण में सुरेन्द्र नेगी का योगदान -यशवन्त 246
46. आठवाँ दशक और सफल संगीत निर्देशक : एक अध्ययन -अनुज कुमार 251
प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'
47. नागार्जुन के साहित्य में सामाजिक चेतना -प्रगति शुक्ला 256
48. हिंदुस्तानी एवं कर्नाटक संगीत में स्वरलिपि पद्धति का अध्ययन -वंशिका रस्तौगी 262
प्रो.सुनीरा कासलीवाल व्यास
प्रो.दीप्ति ओमचेरी भल्ला
49. बागेश्री अंग के किंचित अप्रचलित रागों का शास्त्रीय स्वरूप -पूनम रानी 267
प्रो. शर्मिला टेलर
50. 20वीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में कृषक परिदृश्य -सत्यवान 271
डॉ. विनोद कुमार
51. संगीत सम्मेलनों एवं समारोह के प्रभाव का मूल्यांकन एवं सुझाव -इंद्रेश मिश्र 275
प्रो. हुकम चंद्र
52. आदिवासी कला और आदिवासी साहित्य का महत्व -निलेश शिवाजी देशमुख 279
प्रो. श्रीप्रकाश शुक्ल

स्वातंत्र्योत्तर बिहार के ऐतिहासिक नाटककार : डॉ. चतुर्भुज

प्रो. (डॉ.)लावण्य कीर्ति सिंह 'काब्या'
शोध निर्देशिका,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

अक्षय कुमार
शोध छात्र
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सार संक्षेप

अपनी कला और नाट्य-साहित्य में जीवन को समेटने वाले महान नाटककार डॉ. चतुर्भुज हिन्दी जगत के अनमोल रत्न थे जिन्होंने भारतीय रंगमच को एक अलग मुकाम तक पहुँचाया। इनकीं नाटय-शैली और पारसी रंग-शैली में रूपान्तरण प्रस्तुत कर लोक-जीवन का रंग भरते हुए, रंगमंच के सभी अभावों को दूर किया। इनके ऐतिहासिक नाटक एक-से-बढ़-कर एक हैं जिनमें नाट्य-शिल्प और संवाद से पात्र सजीव हो उठते हैं।

डॉ. चतुर्भुज का संपूर्ण जीवन, किसी रोचक नाटक की भाँति, संघर्षों, परिवर्तनों, कठिन परिश्रम और उपलब्धियों से भरा रहा। डॉ. चतुर्भुज की कथा शून्य से शिखर तक की संघर्षमय यात्रा का वृतांत है। उन्होंने आरंभ में रेल में अपनी सेवा दी, उसके बाद आकाशवाणी में जिन्दगी के छोटे-बड़े स्टेशन पर अपनी सहभागिता निभाते रहे। कभी जिन्दगी की गाड़ी सीधी पटरी पर चली तो कभी-कभी पटरी से उतर भी गयी लेकिन नाटक रंगमंच से इनका अटूट रिश्ता कभी नहीं टूटा। जीवन के आखिरी वसंत तक इन्होंने नाट्य-लेखन से खुद को जोड़े रखा। डॉ. चतुर्भुज ने हिन्दी को रंगमंचीय दृष्टि से समृद्ध करने के लिए हर संभव प्रयास किया।

बीज शब्द

हिन्दी रंगमंच, बिहार क्लब, मगध कलाकार, त्रिपिटक, ऐतिहासिक, नाटक

नाटक सिर्फ एक लोकरंजन की विद्या ही नहीं, साहित्य, कला, विज्ञान सभी कुछ है, ऐसा मानने वाले डॉ. चतुर्भुत का जन्म नालंदा जिले के मुख्यालय नगर बिहारशरीफ के महलपुर मुहल्ले में 15 जनवरी, 1928 को हुआ।1 रंगमंच और साहित्य में गहरी रूचि रखनेवाले पिता मुंशी प्रयाग नारायण, मार्टिन रेल में स्टेशन मास्टर थे। वे इतने स्वभिमानी थे कि रेलवे के आला ऑफ़सर से कोई अनबन हो गई, तब इनके स्वाभिमान को ठेस पहुँची और इन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। इस घटना के उपरान्त आय का एक मात्रा स्रोत खत्म हो गया। जीवन जो पटरी पर सीधी दौड़ रही थी वह पटरी से नीचे उतर गई। रंग-परिवेश में जन्मे बालक चतुर्भुज का रंगमंच से गहरा नाता जुड़ चुका था और इस आर्थिक अभाव में उन्होंने अपनी प्रवेशिका तक की शिक्षा किसी प्रकार खुसरूपुर के टौपलिंस हाई स्कूल से 1943 में (पटना विश्वविद्यालय) पूरी की। तब इस स्तर की परीक्षा पटना विश्वविद्यालय द्वारा ही संचालित की जाती थी। उच्च शिक्षा के लिए पटना के एक प्रतिष्ठित महाविद्यालय में नामांकन तो करा लिया, लेकिन शुल्क की व्यवस्था न हो पाने

के कारण नाम काट दिया गया और इस प्रकार तब उच्च शिक्षा पूरी न हो सकी परंतु आगे चलकर उन्होंने उच्च शिक्षा पूरी की और उन्होंने प्राइवेट से स्नातक, स्नातकोत्तर की उपाधि और फिर डॉक्टर ऑफ फिलोसॉफी की भी उपाधि प्राप्त की।[2]

इसी दौरान चतुर्भुज जी के ही बड़े भाई की असमय मृत्यु हो गई, पिताजी भी अस्वस्थ रहने लगे, आर्थिक स्थिति भी बद से बदतर होती जा रही थी। अब किशोर चतुर्भुज जी को गृह का दायित्व उठाने की चिन्ता सताने लगी। यत्र-तत्र भटकते रहे। कुछ विद्यालयों में शिक्षक की नौकरी की, पर इससे भी काम नहीं बना, तब विद्यालयों में इतनी राशि नहीं मिलती थी जिससे गुजर-बसर हो सके। फिर बिजली गाड़ने वाली एक विदेशी कंपनी में किशोर चतुर्भुज जी को पर्यवेक्षक की नौकरी मिल गई। बाद में, छोटी लाईन वाली मार्टिन रेल कम्पनी में उन्होंने बख्तियारपुर-राजगीर के बीच चलने वाली रेलगाड़ी में टिकट कलेक्टर की सेवा प्राप्त हुई।[3] इतनी परेशानियों के बावजूद, नाटक से संबंध हमेशा बना रहा।

बख्तियारपुर में जहाँ चतुर्भुज जी रहा करते थे वहाँ रेलवे के अधिकांश कर्मचारी बंगाली थे या भोजपुर के थे। चतुर्भुज जी के पिताजी पहले छोटी लाईन में काम कर चुके थे। इसलिए जब भी कोई उत्सव होता था तो उन्हें बड़े इज्जत से बुलाते थे और इसी बहाने आना-जाना लगा रहा। वहीं बख्तियारपुर के लोगों ने एक नाटक क्लब भी बनाया था, जिसमें रेल कर्मचारी और प्रबुद्ध नागरिक जुड़े थे। क्लब का नाम 'बिहारी क्लब' था। यहीं से चतुर्भुज जी के नाटक-प्रेम की विस्तार-यात्रा शुरू हुई। फिर आगे तो कलाकार और निर्देशक के रूप में समृद्ध होते गए और 1952 में 'मगध कलाकार' (Magadh Artist) नाम से एक नाट्य संस्था की स्थापना की और उसके माध्यम से नाट्य साहित्य और रंगमंच की जो सेवाएं उन्होंने की और जो सांस्कृतिक आन्दोलन चलाया, वह इतिहास के स्वर्ण पृष्ठों में अंकित है।[4] चतुर्भुज जी को नाट्य लेखन में रूचि बचपन से थी। मंच की समस्याओं से वे अच्छी तरह अवगत थे और इस वजह उनको लेखन के लिए उत्प्रेरित किया। 1949 में प्रकाशित 'मेघनाथ' उनका प्रथम नाटक था। प्रभावशाली संवाद और शिल्प के कारण उनकी प्रथम कृति ने ही नाट्य जगत में हलचल उत्पन्न कर दी। इसी बीच उन्हें मौका मिला हिन्दी के आदरणीय कथाकार और 'शैली सम्राट' राजा राधिका रमन प्रसाद सिंह से मिलने का। राजा जी ने एक बात चतुर्भुज जी से कही -''आपको जानते-जानते लोग जानेंगे, और जब जान लेंगे तो जाने नहीं देंगे।[5] राजा जी से चतुर्भुज जी बहुत प्रभावित हुए एवं उनके आशीष के साथ जीवन में आगे बढ़े।

कलान्तर मे उनके भीतर के नाटककार ने एक अलग ऊर्जा के साथ नाटकों की झड़ी लगा दी। 'सिराजुद्दौला','मीरकासिम', 'कलिंग-विजय', 'अरावली का शेर' आदि 4. से अधिक नाटक लिख डाले और सबका मंचन भी किया।[6] नाटय-साहित्य से अपनी साहित्यिक यात्रा आरंभ करने वाले चतुर्भुज जी ने गद्य की अन्य विधाओं, यथा - कथा - साहित्य, संस्मरण - साहित्य, उपन्यास-लेखन, जीवन लेखन, यहाँ तक कि इतिहास लेखन में भी अपनी लेखनी उठाई। उदाहरण के लिए 'समुद्र का पक्षी', 'राज दर्शन', 'कमरे की छाया', 'तथागत' आदि उल्लेखनीय है।

चतुर्भुज जी जिन दिनों मार्टिन रेलवे की सेवा में थे, उन्हीं दिनों उनकी मुलाकात बौद्ध-साहित्य के मनीषी विद्वान और नालंदा के विश्व-विश्रुत आध्यात्मिक और सांस्कृतिक महत्व को पुनर्जीवित कर नालंदा का उद्धार करनेवाले भिक्षु जगदीश कश्यप से हुई।[7] उनसे प्रायः रेल-यात्रा के बीच भेंट हुआ करती थी। श्री कश्यप ने उन्हें पाली भाषा के अध्ययन तथा प्राइवेट से स्नातकोत्तर की शिक्षा पूरी करने हेतु प्रेरित किया। उनकी प्रेरणा एवं सहयोग से चतुर्भुज जी ने पालि इस्टिट्यूट (पटना विश्वविद्यालय) से 1955 में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। वे जब स्नातकोत्तर की परीक्षा देने राँची गये थे तो वहीं शोधार्थियों को पता चला कि महान नाटकार लेखक चतुर्भुज जी आए हैं जिनका नाटक-मेघनाथ,

मीरकासिम आदि ऐतिहासिक नाटक वे किया करते थे और वे उनसे मिलने आए और उनका एक प्रश्न था - 'सर, बिना Female Character' के नाटक नहीं हो सकता है?' इस पर चतुर्भुज जी का सरल जबाव था - ''क्यों नहीं लिखा जा सकता, लिखने की कला होनी चाहिए।'' परीक्षा के उपरान्त घर आए लेकिन उनके दिमाग में यह प्रश्न घूमता रहा। सोचा कि Female Character का एतिहासिक नाटक लिखना चाहिए, तो उन्होंने लिख डाला 'अरावली का शेर'। यही एकमात्र ऐतिहासकि नाटक है जिसमें एक भी Female Character' नहीं है।[8]

श्री कश्यप ने डॉ. चतुर्भुज को ढूँढ कर उनसे विश्रुत बौद्ध साहित्य का 'त्रिपिटक' के देवनागरी अनुवाद का कार्य सम्पन्न कराया।[9] स्नातकोत्तर अध्ययन के दौरान रेलवे से अवकाश में थे और तभी इधर मार्टिन रेल की स्थिति नाजुक होती जा रही थी, कभी भी कम्पनी बंद हो सकती थी। तभी, 1959 में, उन्होंने आकाशवाणी के 'कार्यक्रम अधिशासी' के पद से आाकशवाणी की सेवा प्रारंभ की तथा 27 वर्षों तक की मूल्यवान सेवा की अवधि में अनेक मील के पत्थर स्थापित किए। आकाशवाणी के पटना, राँची, भागलपुर केन्द्रों को अपनी सेवाए देते हुए, 1986 में दरभंगा केन्द्र से निदेशक पद से सेवा-निवृति हुए। डॉ. चतुर्भुज ने आकाशवाणी दरभंगा के केन्द्र निदेशकीय कार्यकाल के दौरान ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा में स्नातकोत्तर स्तर पर 'नाटयशास्त्र' को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में स्थापित कराने का कार्य किया। सरकारी सेवा से अवकाश ग्रहण करने के बाद उन्होंने वहाँ प्रथम नाट्य शिक्षक के रूप में ढ़ाई साल तक सेवा भी दी।[10] भले ही उन्होंने सरकार की सेवा से निवृत्ति प्राप्त कर ली, किन्तु रंगमंच और साहित्य की सेवा जीवन-पर्यन्त की। अपनी संस्था 'मगध-कलाकार' को 1952 से सदैव सक्रिय और गतिमान रखा।

डॉ. चतुर्भुज ने सरकारी सेवा से निवृत्त होने के दस वर्षों के बाद मगध विश्वविद्यालय से पीएच.डी. उपाधि प्राप्त की थी। इनके शोध का विषय था - 'प्रमुख भारतीय भाषाओं के नाटक और प्राचीन यूनानी नाटक- एक अध्ययन'।[11] डॉ. चतुर्भुज एक ऐसे रंगकर्मी थे जिन्होंने पारसी युग के नाटकों में अभिनय, निर्देशन करते हुए हिन्दी युग के नाटकों को एक नई दिशा देने का सफल प्रयास किया। उन्होंने हिन्दी नाट्य-लेखन की एक शैली दी। पारसी युग से बढ़ते हुए नुक्कड़ नाटकों और टेरिस थिएटर तक का लम्बा सफर तय किया। लगभग 300 से अधिक हिन्दी नाट्य प्रदर्शन में लेखक, निर्देशक, अभिनेता के रूप में भाग लिया। इन प्रदर्शनों से हिन्दी का बड़ा प्रचार-प्रसार हुआ। उन्होंने अपनी संस्था 'मगध कलाकार' के माध्यम से हिन्दी रंगमंच को गौरवान्वित किया। हिन्दी रंगमंच को समृद्ध करने के लिए उन्होंने दो प्राचीन श्रेष्ठ संस्कृत नाटकों 'शकुन्तला' और 'मुद्राराक्षस' का हिन्दी रंगमंचीय रूपान्तरण कर सफलतापूर्वक उन्हे मंचित किया।[12] डॉ. चतुर्भुज जी के नाटक 'रावण' का बंगला अनुवाद अनिल कुमार मुखर्जी ने, मैथिली अनुवाद लक्ष्मी कान्त काजल ने, अंग्रेजी अनुवाद कुमार शांत रक्षित (डॉ. चतुर्भुज जी के सुपुत्र) एवं तामिल भाषा में डॉ. एम. गोविन्द राजन ने किया। 29 अगस्त, 1956 ई. को विश्वप्रसिद्ध अभिनेता पृथ्वीराज कपूर बखितयारपुर अपनी हिरोइन उज़रा मुमताज तथा पृथ्वी थिएटर के कलाकारों के साथ इनका नाटक 'कलिंग विजय' देखने आए थे।

डॉ. चतुर्भुज जी अबतक अपने जीवन के इक्यासी बसंत देख चुके थे। स्वास्थ बिगड़ने लगा था। 11 अगस्त 2009 को, जब जूरा बिहार अगस्त क्रांति के 7 अमर बलिदानियों को श्रद्धांजलि दे रहा था, उसी समय हृदयाघात से उनकी लौकिक लीला समाप्त हो गई। सारा जीवन उन्होंने हिन्दी-माध्यम से नाट्य-लेखन, प्रस्तुतिकरण, निर्देशन, मंचन, अभिनय कला के प्रचार प्रसार में लगा दिया।

नाटक और थिएटर के प्रति डॉ. चतुर्भुज के योगदान पर अनेक शोधार्थियों ने एम.फिल और पीएच.डी की उपाधि प्राप्त की है।

डॉ. चतुर्भुज की प्रकाशित पुस्तके हैं - डॉ. चतुर्भुज रचनावली (3 भागो में), TWO HISTORICAL DRAMAS, RANI OF

JHANSI, RAVAN (TAMIL), मेरी रंगयात्रा (यह पुस्तक उनके देहावसान के बाद 2012 में प्रकाशित हुई), भारतीय एवं विदेशी भाषाओं के नाटकों का इतिहास, भारत का बौद्ध बिहार, MEMOIRS OF WILLIAM TAYLER, HISTORY OF THE GREAT MUGHALS.

इसके अतरिक्त चार उपन्यास भी हैं जिनका लेखन डॉ. चतुर्भुज ने किया है- तथागत, समुद्र का पक्षी, राजदर्शन, और औरंगजेब।

डॉ. चतुर्भुज की नाट्य रचनाएँ :-

ऐतिहासिक नाटक :

1. पाटलिपुत्र का राजकुमार - 1968
2. कलिंग विजय - 1956
3. सिकन्दर-पोरस - 1981
4. कालसर्पिणी - 1988
5. टीपू सुल्तान - 2001
6. भगवान बुद्ध - 1960
7. मुद्राराक्षस - 1980
8. अरावली को शेर (राणा प्रताप) - 1957
9. नूरजहाँ - 1974
10. शिवाजी - 1973
11. सिराजुद्दौला - 1949
12. मीरकासिम - 1951
13. कृष्णकुमारी - 1962
14. पीर अली - 1983
15. झाँसी की रानी - 1970
16. कुँवर सिंह - 1953
17. बहादुरशाह - 1964
18. मोर्चे पर - 1963
19. कारागार - 2002
20. शाही अमानत - 2003

रेडियो नाटक :

1. विजय के क्षण
2. बादल के बेटा
3. महिषासुर-वध
4. टूटा-दर्पण
5. रेत की दीवार
6. उर्वशी
7. पाटलिपुत्र
8. बाजीराव-मस्तानी
9. तारावाई
10. मछली पुराण
11. जहांनारा
12. शेरशाह
13. पहला आदमी
14. जय पराजय
15. महादान
16. श्री रामवृक्ष बेनीपुर

पौराणिक नाटक :

रावण	-	1979
शकुन्तला	-	1978
मेघनाद	-	1949
कंस-वध	-	1957
श्री कृष्ण	-	1956
कर्ण	-	1901
भीष्म-प्रतिज्ञा	-	1970

सामाजिक नाटक :

बन्द कमरे की आत्मा	-	1972
नदी का पानी	-	1989
बाबू विरंगीलाल	-	1997

कहानियाँ :

1. शूर्पणखा के आँसू
2. मिहिरकुल
3. काँटो का ताज
4. मैत्रायणी - पुत्र
5. कुसुम राजस्थान
6. अवंती की राजकुमारी
7. कालनिशा का अंतिम प्रहरी
8. तंबू का गोरा साहब
9. खैनी बाबू गार्ड साहब
10. मरूस्थल की हरियाली
11. कुंडल केशा

12. कापालिका
13. सुजाता की खीर
14. एक वह क्या है?
15. हार और कटार
16. आजादी की मशाल
17. लाल कुंअरि
18. रक्त की भैंट
19. आग जो बुझ न सकी
20. पत्थर की कीमत
21. पाकेटमार
22. लाल फूल और चावल के दाने
23. जीवन-ज्योति
24. अंतिम भेट

19. आधीरात के बाद का नाटक
20. नाटक का मर्डर
21. और टीपु जिंदा रह गया
22. टेलर का भूत
23. स्टेज पर आग और सांप
24. मेरी आरती
25. कर्नाटक का वृंदावन-उद्यान
26. वृदांवन-उद्यान
27. धर्म और इतिहास का मिलन स्थल- श्री रंगपट्टनम्
28. भित्तिचित्र अजंता के
29. धार्मिक सहिष्णुता के महान् स्थल, एलोरा
30. चौबीस पहियों वाला मंदिर

स्मरण :

1. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद : वे दिन वे यादें
2. पूज्य भिक्षु जगदीश कश्यप : मेरे गुरू
3. जय प्रकाश नारायण
4. पं. नेहरू और उनका मानवीय दृष्टिकोण
5. फणीश्वर नाथ 'रेणु'
6. रामेश्वर सिंह काश्यप उर्फ 'लोहा सिंह'
7. नाटककार राजा साहब
8. कृष्णनंदन सहाय : एक अद्भुत व्यक्तित्व
9. नाटककार हिमांशु श्रीवास्तव
10. वह अद्भुत गाड़ी
11. सन् बयासीस के वे तूफानी दिन
12. प्रसारण का रोमांच
13. पटना की विनाशकारी बाढ़
14. समर्पित रंगकर्मी : भागवत प्रसाद श्रीवास्तव
15. स्वर के राजा भगवान बाबू
16. अनेक पापड़ बेलने पड़े पुरूष-भूमिका के लिए
17. छोटा उस्ताद
18. नाटक के नाटक

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. कुमार, डॉ. ध्रुव, बिहार शताब्दी के 100 नायक, (2017) प्रभात प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ-48।
2. वही., पृष्ठ-49।
3. डॉ. चतुर्भुज, मेरी रंगयात्रा, 2012 समय प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ-94।
4. वही, पृष्ठ-95।
5. वही, पृष्ठ-72।
6. समारिका, नाटककार डॉ. चतुर्भुज की स्मृति में, 2021 सं.- प्रणय कुमार सिन्हा, आलेख- डॉ. अनिल सुलभ, पृष्ठ-13।
7. डॉ. चतुर्भुज, मेरी रंगयात्रा, 2012, समय प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-131।
8. वही, पृष्ठ-137।
9. वही, पृष्ठ-147।
10. कुमार, डॉ. ध्रुव, बिहार शताब्दी के 100 नायक, (2017) प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-49।
11. डॉ. चतुर्भुज, भारतीय और विदेशी भाषाओं के नाटकों का इतिहास, 2008, समय, प्रकाशन, पृष्ठ-17।
12. समारिका नाटककार, डॉ. चतुर्भुज की स्मृति में, 2021 सं.- प्रणय कुमार सिन्हा, पृष्ठ-06।

प्राचीन काल में शिक्षा का अर्थ एवं प्राचीन संगीत शिक्षण प्रणाली

डॉ0 ज्योति मिश्रा

असिस्टेंट प्रोफेसर
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

श्रद्धा जायसवाल

शोधार्थिनी
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

संगीत शिक्षण के विषय पर चर्चा करने से पूर्व हमें शिक्षण की अवधारणा को स्पष्ट रूप से समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। अपने चातुर्य, बुद्धि तथा विवेक से अपनी श्रेष्ठता को संसार के समक्ष सिद्ध करने वाला मानव एक असाधारण प्राणी है। यदि हम मानव सभ्यता तथा संस्कृति पर गहराई से विचार करें तो ज्ञात होता है कि यह सब मानव में परिणित सद्गुणों द्वारा ही संभव है तथा अपने इन्ही सद्गुणों एवं अद्भुत गुणों के कारण मानव आज प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति कर रहा है। जिससे अन्य भी सीख ले रहे है इससे स्पष्ट होता है कि सीखने तथा सीखाने की इसी प्रक्रिया को मानव के सर्वांगीण विकास की अवधारणा कह सकते हैं यदि मानव के इतिहास में झांक कर देखे तो मानव के विकास का मूलमंत्र सदा से ही शिक्षण प्रणाली ही रही है।

मुख्य शब्द

विशारद, आध्यात्मिक, प्रयोगजीवी, प्रस्फुटित, अर्न्तज्ञान

इसमें कोई संदेह नहीं है कि उत्कृष्ठ शिक्षा ही मानव सभ्यता एवं उसके संस्कृति के उत्थान का कारण रही है। शिशु के जन्म अथवा गर्भावस्था से ही शिक्षण प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है जो मृत्युपर्यन्त आजीवन चलती रहती है। मानव को पूर्णता की ओर अग्रसर करने वाली शिक्षा ही एक मात्र ईकाई है। प्राचीन काल में प्रचलित शिक्षण व्यवस्था को गहराई से दृष्टव्य करने के लिए भारत के प्राचीनतम् इतिहास पर दृष्टि डालना स्वाभाविक रूप से आवश्यक हो जाता है। जिस प्रकार आधुनिक शिक्षा विचारको ने शिक्षा को दो अर्थो में स्वीकार किया है व्यापक एवं संकुचित इसी प्रकार ही प्राचीन काल के भी शिक्षा मनीषियों ने शिक्षा शब्द को दो अर्थों में विभाजित किया है। अब यदि हम शिक्षा के व्यापक अर्थों पर ध्यान दे तो जो शिक्षा जीवनपरोन्त चलती रहती है जो व्यक्ति को ज्ञान व संस्कार सद्भावना प्रदान करके सुसंस्कृत बनाती है तथा जो हमारे मस्तिष्क को प्रखर बनाने में सहायता करती है जिससे मनुष्य ज्ञान की आभा से प्रज्वलित होकर आध्यात्म एवं अर्न्तज्ञान की स्थिति को महसूस करके मोक्ष का मार्ग प्रशस्त्र करता है। इसी के ठीक विपरीत शिक्षा के संकुचित अर्थ से अभिप्राय उस शिक्षा से है जो व्यक्ति को रोजगार में सफलता प्राप्त कराने में सक्षम होती है अथवा जो व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाने में योगदान देती है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति के कार्य कुशलता एवं कार्य

क्षमता में सुधार लाकर उसकी प्रतिभा को और अधिक निखारती है। इस अर्थ में तीर्थस्थानों, भिन्न-भिन्न राज्यों के राजधनियों व विभिन्न देवालयों में स्थापित पाठशालाएं विद्यापीठ एवं गुरूकुल प्राचीन काल में शिक्षा प्रदान करने के प्रमुख केन्द्र होते थे जहां पर निःशुल्क शिक्षा व्यक्तिगत अध्यापकों, विद्वानों, आचार्यों द्वारा प्रदान की जाती थी। तत्कालिन राजाओं के द्वारा इन सभी शिक्षा संस्थाओं को मुक्त हस्त से विपूल सहायता प्रदान की जाती रही थी जिससे की यह शिक्षण कार्य बिना किसी अवरोध के सुचारू ढंग से चलता रहे। इसी प्रकार बौद्ध काल में बौद्ध बिहारों द्वारा तथा मध्यकाल में मकतब, मदरसों द्वारा शिक्षण कार्य किया जाता था। उस समय नालन्दा, तक्षशिला, काशी, मिथिला, पाटिलीपुत्र, तंन्जौर, विक्रमशिला आदि नगर शिक्षा के प्रमुख केन्द्र बन गये थे। इसी प्रकार समय-समय पर धार्मिक और सांस्कृतिक परिवर्तन आते गये जिसके फलस्वरूप युग परिवर्तन के साथ-साथ शिक्षण व्यवस्था में भी परिवर्तन आते गये। आज जो मानव उन्नति की ऊँचाइयों पर पहुँच रहा है वह सदैव से ही ज्ञान प्राप्ति व समाज की शिक्षण व्यवस्था की ही देन है। यदि स्पष्ट शब्दों में कहे तो-मानव जाति का विकास ज्ञान प्राप्ति व शिक्षण व्यवस्था पर अधारित है। इस संसार में प्रत्येक मनुष्य के भीतर कुछ जन्मजात शक्तियां होती है यदि मनुष्य की यह शक्ति प्रस्फुटित हो जाती है तो व्यक्ति का विकास निश्चित है परन्तु किसी कारणवश यदि व्यक्ति अपनी अर्न्तनिहित शक्तियों को समझने व उसे प्रस्फुटित करने में असफल होता है तो वह अपने इस शक्ति अथवा गुण का लाभ उठाने से वंचित रह जाता है किन्तु ऐसा न हो उसके लिये प्रत्येक समाज अपने नागरिको की अर्न्तनिहित शक्तियों के विकास को लेकर सचेष्ट रहता है और निरन्तर प्रयत्न करता रहता है जो की शिक्षा के माध्यम से संभव हो पाता है इसमें कोई सन्देह नहीं है कि शिक्षा प्रणाली अथवा शिक्षण व्यवस्था ही मानव की योग्यता के विकास का एक प्रभावशाली विषय है। शिक्षा ही एक मात्र साधन है जो व्यक्ति के व्यवहार को परिमार्जित करने में सक्षम है। एक शिक्षित व्यक्ति से ही एक शिक्षित व सुसंस्कृति समाज का जन्म होता है। यह एक आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। यह जन्म से मृत्युपर्यन्त किसी न किसी रूप में सतत रूप से चलती रहती है। वैसे तो शिक्षा का औपचारिक रूप एक निश्चित समय के बाद समाप्त हो जाता है किन्तु इसके पश्चात् भी किसी न किसी रूप में मनुष्य सीखने-सिखाने की प्रक्रिया करता रहता है और यही प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है।

'ऋग्वेद' जो चारो वेदों में प्रथम स्थान पर है तथा जो विश्व में सबसे प्राचीन ग्रन्थ है उसमें 'शिक्षा' शब्द का व्यापक रूप से प्रयोग हुआ है तथा उसमें जो शिक्षा गुरू के द्वारा शिष्यों को दी जाती है इसी प्रक्रिया को शिक्षा माना गया है। सिर्फ ऋग्वेद ही नहीं अपितु चारो वेदो 108 उपनिषदां, 18 पुराण अर्थात् वैदिक वांगमय में भी शिक्षा को अनेक स्थान पर विभिन्न ढंग से स्पष्ट किया गया है। शिक्षा सदैव से ही भारतीय समाज का मेरूदण्ड बनकर मानव के इस जीवन को सुसंस्कृत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती आयी है।

शिक्षा की अवधारणा को समझने से पूर्व शिक्षा क्या है यह समझना अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षा शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'शिक्ष' धातु में 'अ' प्रत्यय लगाने से बना है। जिसका अर्थ है सीखना और सीखाना। अंग्रेजी में शिक्षा शब्द के लिए 'ऐजुकेशन' शब्द का प्रयोग किया जाता है अब यह भी स्पष्ट है कि ऐजुकेशन शब्द लैटिन भाषा के 'एजुकेटम' शब्द से निकला है। इस प्रकार ऐजुकेशन शब्द का अर्थ है-अन्दर से आगे बढ़ाना है। शिक्षा की चर्चा प्राचीन काल से ही चली आ रही है इसी कारण प्राचीन ग्रन्थों में विद्या को ज्ञान प्राप्ति के तीसरे नेत्र, जीवन को आलोकित करने वाला स्रोत तथा सुख-वैभव की प्राप्ति के सर्वश्रेष्ठ साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। शिक्षा की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिये बहुत से विद्वानों ने अपने-अपने मत दिये है जिससे शिक्षा की अवधारणा और भी स्पष्ट हो जाती है।

जिनमें से कुछ परिभाषाएं इस प्रकार है-

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार-"मनुष्य की आत्मनिहित पूर्णता की अभिव्यक्ति ही विवेकानन्द जी के विचार से शिक्षा कहलाती है।

महात्मा गांधी के अनुसार-शिक्षा व्यक्ति के संस्कारो को पूर्णतः परिष्कृत करने का माध्यम है।

रविन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार-शिक्षा मस्तिष्क की योग्यता में वृद्धि करके मनुष्य को सत्य की खोज के लिये प्रेरित कर सके।

इस प्रकार शिक्षा की बहुत सी धारणाएं प्रचलित है जिनके आधार पर शिक्षा को समाज में उच्चतम स्थान प्राप्त कराने पर सहयोग मिला।

प्राचीन संगीत शिक्षण प्रणाली-

हमारा भारतीय साहित्य अत्यन्त ही विशाल एवं तुल्यवान है जो हमारी संस्कृति को परिलक्षित करता है। कलाएं 64 मानी जाती है जिनमें बहुत से आत्मसुख कलाएं मौजूद है किन्तु इन सभी कलाओं में ललित कला को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है तथा ललित कला में संगीत को प्रथम स्थान प्राप्त है। संगीत के उद्‌गम के विषय में बहुत धारणायें प्रचलित है धार्मिक आधार पर यदि हम दृष्टि डाले तो ऐसा माना जाता है कि शिव, ब्रह्मा, सरस्वती, किन्नर, गन्धर्व आदि से संगीत की उत्पत्ति हुई तथा कुछ विद्वानों का मानना है कि पशु-पक्षियों से सात स्वरो की उत्पत्ति हुई इसी प्रकार संगीत की अत्यन्त प्राचीन धारणायें प्रचलित है। भारतीय संगीत अत्यन्त प्राचीन है इसी कारण इसके उद्‌गम के विषय में विद्वानों में मतभेद बना रहता है।

अब शिक्षा को संगीत से जोड़ा जाये तो इसके अनेको प्रणाली उभरकर सामने आती है इसीप्रकार संगीत शिक्षण को भी विभिन्न कालो में विभाजित किया गया जिनमें से सर्वप्रथम प्राचीन काल की शिक्षा आती है। इस काल में गुरू-शिष्य परम्परा पर अधिक बल दिया गया है जिसमें गुरू एवं शिष्य आमने-सामने रह कर शिक्षण कार्य पूर्व करते थे। इस काल में संगीत की विभिन्न शालाओं के द्वारा भी संगीत शिक्षण का आदान-प्रदान होता था इस काल में शालेय शिक्षण व्यवस्था का प्रचलन अत्यधिक देखने को मिलता है। शुद्ध शब्दों में वर्णन करे तो संगीत एक प्रयोगजीवी व प्रयोगशील कला है और प्रत्येक कला का कोई न कोई माध्यम अवश्य होता है इस कला इस कारण का माध्यम ध्वनिनाद कहा जाता है-जिसकी प्रकृति 'श्रवण-बोधी' रहती है, जो सुनकर समझा जाता है इस कारण इस कला को 'श्रवणविद्या' कहा जाता है। संगीत शिक्षण ग्रहण करना स्वयं एक गर्व की बात है-यह श्रवण व अनुकरण-या स्पष्ट शब्दों में कहे तो यह शिक्षा प्रयोग द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है इसी कारण इस शिक्षा को ग्रहण करने हेतु गुरू-शिष्य दोनों की ही उपस्थिति अनिवार्य है।

संगीत के प्राचीन काल में वैदिक काल भी आता है-

वैदिक काल-

इस काल में नियमों पर आधारित संगीत शिक्षण प्रदान किया जाता था। इस काल में प्रबुद्ध ऋषियों और संगीतविदो द्वारा धार्मिक कृत्यों में प्रयुक्त संगीत पूर्णतः नियमबद्ध था।[4] संरक्षण प्रदान करने तथा आने वाली पीढ़ी (अग्रिम पीढ़ी) तक पहुचाने के उद्‌देश्य से शिक्षण की आवश्यकता होना पूर्णतः स्वाभाविक था। इसी कारण ही सामगान के ऋचाओं, को सामगान का विशेष प्रशिक्षण लिये हुये मूल सामग ऋषियों द्वारा गाया जाना ही अनिवार्य माना जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी समय से संगीत शिक्षा का प्रारम्भ हुआ माना जाता है।

अब साम क्या है इस पर चर्चा करें तो ज्ञात होता है कि वास्तविक रूप में स्वर पर आधारित ही साम का अस्तित्व है। इसी कारण से इसके प्रारंभिक अवस्था में वैदिक ऋचाओं के स्वर सहित पाठ का स्वरूप सामगान के रूप में निर्धारित हुआ। कालान्तर में सामगान के सुस्वर पाठ की लगभग 1080 शाखाऐं व उपशाखाएं विकसित हुई। किन्तु यह सभी प्रयोग में कम आते थे अतः साम गायकों की केवल तीन शाखाएं प्रमुख थी, कौथुमीय (गुजरात और बंगदेश

में), राणायनीय (महाराष्ट्र में) और जैमिनीय (कर्नाटक में)।5

अब बात आती है स्वर की तो ब्राह्मण काल में ही स्वर का संगीत मूलक अर्थ विकसित हो चुका था। गुरूकुल व आश्रम का सम्बन्ध भी इसी से सम्बन्धित है अतः जब सामगान विधिविधान से व्यापक रूप ले चुका था। तब शनैः शनैः विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए गुरूकुल और गुरू-आश्रम स्थान-स्थान पर स्थापित होने लगे। उस समय अश्रमों में सामगान की शिक्षा मौखिक रूप से ही दी जाती थी।

यदि वैदिक काल के और गहराई में जाये तो ज्ञात होता है कि साधारणतः वैदिक साहित्य में साम के प्रशिक्षण में तीन रूप प्रचलन में दिखाई दिये-

1. पिता-पुत्र के रूप में।
2. गुरू शिष्य परम्परा के रूप में,
3. गुरूकुल में जाकर शिक्षा ग्रहण करना।

अतः इससे यह ज्ञात होता है कि पिता भी गुरू के रूप में शिक्षा प्रदान करते थे तथा सामग पिता अपने-अपने पुत्रों को साम का प्रशिक्षण देकर यज्ञो में चले जाया करते थे वहां वह अपने पिता को देखकर उनके द्वारा किये गये कर्मों को सिखते थे।

इससे एक और लाभ होता था कि सामों का संरक्षण भी स्वतः ही हो जाया करता था। संभवतः वेदों की 'श्रुति' सुनकर सीखने की परम्परा के कारण ही कहा गया। उस काल में जो व्यक्ति सामगान में निपुण होते थे उन्हें ही यज्ञों में आमंत्रित किया जाता था तथा उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल जाती थी। उद्गाता वर्ग मे सम्मिलित होने के लिये विद्यार्थी स्वतः ही आचार्यो के पास पहुंचते थे। यही गुरू-शिष्य-परंपरा का उदय कहा जा सकता है अथवा हो सकता है।

अत्यन्त व्यवस्थित रूप से और विधि-विधान के प्रचार-प्रसार हो जाने से सामगान धीरे-धीरे विशिष्ट प्रशिक्षण की दृष्टि से प्रशिक्षण केन्द्रो के रूप में गुरूकुल अथवा आश्रम का निर्माण होने लगा। इन आश्रमों में साम का प्रशिक्षण मौखिक रूप से ही दिया जाता था। इसीलिए वेद को 'अनुश्रव' भी कहा गया।[6]

'गुरूमुखदनुश्रूयतेइत्यनुश्रवो वेदः'।[7]

इससे यह ज्ञात होता है कि भारतीय परम्परा के विधाओं का आदान-प्रदान मौखिक परंपरा से ही हुआ है जिसमें शिष्य सुनकर शिक्षा ग्रहण करते थे और गुरू मौखिक रूप से शिक्षा प्रदान करते थे।

प्राचीन काल के पाठ्यक्रम की चर्चा करे तो ज्ञात होता है कि पाठ्यक्रम जीवन दर्शन वर्णव्यवस्था तथा इसके साथ विशिष्ट लक्ष्य संधान से परिपूर्ण हुआ करता था। पाठ्यक्रम का स्वरूप समान रहता था चाहे विभिन्न वर्णो के लिये विभिन्न पाठ्यक्रम क्यो न हो वह समान ही रहता था। उस समय विधामंदिरो में भी संगीत शिक्षण की व्यवस्था थी जो गान्धर्व के सामान्य शिक्षण से सम्बन्धित थी। उस समय व्यावसायिक अध्ययन का भी प्रचलन था जिसमें संगीतशाला जैसे विशिष्ट कला केंद्रों में जाकर विद्यार्थी गुरूजनों से शिक्षा ग्रहण करते थे। इसीकारण प्रत्येक प्रशिक्षण का सामावेश हो जाने के कारण ही सामवेद जो एक संगीत से परिपूर्ण वेद है उनके प्रतिपादित विशिष्ट सिद्धान्तों का अध्ययन करने के लिये ही अनेको साम-परिसदों की स्थापना हुई थी।

पौराणिक काल

वैदिक काल में एक-एक विद्यार्थी को अलग से शिक्षा दी जाती थी किन्तु इस काल में सार्वजनिक संगीत शिक्षण की व्यवस्था भी थी। इसकाल में यद्यपि बहुत बड़ी संख्या में संगीत शिक्षण केन्द्र निर्मित नहीं हुये थे किन्तु जितने भी थे वह संगीत शिक्षण कार्यक्रम बहुत ही सुन्दर ढंग से कर रहे थे। उन्हीं संगीत शिक्षण केन्द्रों से ही अनेकों व्यक्तियों को संगीत ज्ञान प्राप्त होता था। वैदिक युग में संगीत को उच्चकोटि का माना जाता था वही स्थान इस काल में भी प्राप्त है।

'हरिवंश पुराण' में श्रीकृष्ण को एक कुशल बांसुरी वादक तथा रास नृत्य का प्रवर्तक माना गया है।[8]

'वायु पुराण' में कहा गया है कि गन्धर्व, गायन

विद्या तथा किन्नर नृत्य में निपुण थे। शिव को नृत्य का आचार्य माना गया है। तुंब, वीणा, घंटा तथा मुखादि उनके प्रिय वाद्य है।[9]

'मार्कण्डेय पुराण' में हाहा, हूहू, नारद तथा 'तुम्बरू' का संगीत के आचार्य के रूप में उल्लेख मिलता है।[10]

इस प्रकार पौराणिक काल में पुराणों के अध्ययन की शिक्षा का भी आरम्भ हुआ पुराण 18 होते हैं जिनमें से कुछ पुराणों में संगीत सम्बन्धित शिक्षा का भी वर्णन प्राप्त होता है। आचार्य ही पुराणों की शिक्षा विद्यार्थियों को प्रदान करते थे। जिसमें संगीत सम्बन्धित शिक्षा भी सम्मिलित थी। उस काल में संगीत की जितनी भी शालाएं थी वह अपने आप में एक महत्वता लिये हुई थी इसमें चरित्रनिर्माण एवं पवित्रता की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी जिससे की विद्यार्थी तेजस्वी हो।

रामायण काल

रामायण महाकाव्य के रचनाकार ऋषि वाल्मीकि जी है। यह महाकाव्य 'संस्कृत भाषा में रचित प्रथम महाकाव्य है। इसी काल में ऋषि वाल्मीकि जी के द्वारा आश्रम में लव-कुश को शिक्षा दी जाती थी जो वेद पुराणों से परिपूर्ण शिक्षा थी। वाल्मीकि जी द्वारा लव कुश को स्वर, पद, ताल आदि की 'शिक्षा दीक्षा दी जाती थी। लवकुश दोनों ही भाई तीर चलाने में तो दक्ष थे ही वही वह कण्ठ संगीत में भी दक्ष थे। इस प्रकार इससे यह सिद्ध हो जाता है कि रामायण काल में गुरू आश्रम में रहकर गुरू-शिष्य-परम्परा से ही संगीत शिक्षा प्राप्त की जाती थी।

रामायण के आधार से यह ज्ञात होता है कि लव तथा कुश संगीत के विद्वान और मूर्छना के जानकार अत्यन्त ही मधुर स्वर वाले' तथा उन गन्धर्वों के समान रूप वाले थे। जिनका रूप अत्यन्त ही मनमोहक होता था। जिनको देखते ही हृदय में आनन्द की अनुभूति होती है। इन्होंने संगीत का बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था जिसमें उन्होंने मंद्र, मध्य, तार इन स्थानो का ज्ञान भी अर्जित किया था जो संगीत विद्या ग्रहण करने के लिये अनिवार्य एवं आवश्यक है।

महाभारत काल

संगीत की दृष्टि से अर्जुन को महाभारत महाकाव्य में गांधर्व विशारद की उपाधि प्राप्त है। अपने अज्ञातवास में वृहन्नला रूप धारण किये हुये अर्जुन ने विराटराज की आज्ञा पाकर विराटसुता अर्थात् उत्तरा को गीत, वादन तथा नृत्य की सशास्त्र शिक्षा दी थी। इस काल में बड़े-बड़े नगर बस चुके थे और इन्हीं बड़े-बड़े नगरो में संगीत शिक्षा के लिए शासन की ओर से संगीत शालाओं का प्रबन्ध किया जाता था तथा इसके संचालन का सम्पूर्ण प्रबन्ध रहता था जिससे की संगीत शिक्षा में कोई भी अवरोध उत्पन्न न हो सके तथा संगीत शिक्षा का कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। मत्स्यराज की राजधानी में युवतियों की नृत्य शिक्षा के लिए ऐसे ही विशाल नृत्य भवन का निर्माण किया गया था''[11] जिसमें संगीत की शिक्षा दी जाती थी तथा जिसमें नृत्य मुख्य रूप से सिखाया जाता था।

बौद्ध काल

बौद्ध काल में संगीत शिक्षण का बहुत विकास हो चुका था। इस काल में बौद्ध-विहारों द्वारा संगीत-संस्थाओं की शुरूआत हो चुकी थी। इन विहारों में और कोई नहीं बल्कि भिक्षु-भिक्षुणियाँ रहती थी धीरे-धीरे यही संस्थान उच्च कोटि के संगीत शिक्षण संस्थाओं में परिवर्तित हो गये तथा धीरे-धीरे विधा के केन्द्र के रूप में उभरने लगे। उस समय संगीत शिक्षा की लगन इतनी ज्यादा थी की वैष्णव मंदिरों में भी संगीत शिक्षण का कार्य होने लगा। इस काल में भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों ने मठो की स्थापना की जो आगे चलकर शिक्षा के विशिष्ट केन्द्र ही बन गये थे।

इस काल में कई ग्रन्थ लिखे गये थे जिसमें संगीत के वैदिक तथा लौकिक दोनों पक्षों का प्रचलन थां इस काल में संगीत शालाओं का निर्माण अत्यन्त

ही तीव्र गति से हुआ था तथा संगीत शिक्षा बहुत ही लगन से ग्रहण की जाती थी। राजा-महाराजा भी संगीत प्रेमी हुआ करते थे तथा अपनी पुत्रियों को संगीत शालाएं भेजा करते थे ताकि वह एक गुणवान कन्या अथवा राजकुमारी बन सके इसीकारण से अपने महल के निकट ही संगीत शालाओं का निर्माण कराया जाता था। इस काल में शिल्पों की शिक्षा के लिये कन्दराओं के गूढ़ कूटागारों में विद्यालयों का निर्माण कराया जाता था। अब जो भी व्यवस्था रही हो किन्तु इससे यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन विश्वविद्यालयों में गांधर्व आदि शिल्पों के लिए पृथक विभाग थे।

इस काल में तक्षशिला विश्वविद्यालय, नालन्दा विश्वविद्यालय जैसे विश्वविद्यालयों की स्थापना हो चुकी थी जिसमें शिष्य आश्रयों में रहकर ही संगीत शिक्षण ग्रहण करता था।

हर्ष काल

इस काल में हर्ष चरित से ज्ञात होता है कि (ज्ञानेश्वर) जैसे बड़े नगर विद्या के केन्द्र के लिये विख्यात थे। इस काल में भी शिक्षा-संस्थान, संगीत शालाएं, मठ एवं मंदिर आदि विद्या के केन्द्रों के रूप में सुशोभित थे। इस काल में राजभवन के भीतर भी संगीत गृह के व्यवस्था का वर्णन है।

गुप्त कालीन संगीत शिक्षा

इस काल में राजकुमारों को 7 वर्ष होने पर कालाचार्य के पास 64 कला सिखाने भेज दिया जाता था। इस काल में राजाओं के जीवन में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान था। संगीत के कार्यक्रम एवं शिक्षा के लिये विशेष कक्ष बने होते थे जिसमें संगीत शिक्षा सुचारू रूप से दी जा सके। उस समय संगीत शिक्षा में शामिल हो जाने से जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया था।

गुरू-शिष्य-परम्परा

भारतीय संगीत एक अथाह सागर है और इस सागर की गहराई तक जाने के लिये गुरू की आवश्यकता होती है इसी कारण भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली मूलतः गुरूकुल पद्धति पर ही आधारित है अथवा रही है। अब यदि गुरूकुल का अर्थ स्पष्ट करे तो ज्ञात होता है कि गुरू के गृह या आश्रम में रहकर ही विद्या ग्रहण करना। इस गुरू शिष्य प्रणाली में जिन विद्यार्थियों को संगीत शिक्षा ग्रहण करने की प्रबल इच्छा रहती थी वह गुरू के आश्रम में उनके समीप रहकर रात-दिन गुरू की सेवा करके ग्रहण करते थे। कई वर्षो तक लगातार संगीत की शिक्षा गुरू की सेवा करके ग्रहण करते रहते थे। इसमें शिक्षा प्रदान करने का दायित्व ऋषि मुनियों का होता था। अतः संगीत शिक्षा के संदर्भ में यही प्रणाली गुरू-शिष्य परम्परा के रूप में जानी जाती है। जिसके अन्तर्गत गुरू का शिष्य को शिक्षा देना ही महत्वपूर्ण कार्य है जो वर्षो की सेवा करते-करते शिष्यों को प्राप्त होती है। गुरू तथा शिष्य का एक घनिष्ट सम्बन्ध है। शिष्य के हृदय में यदि गुरू के प्रति आदर-सम्मान अथवा विश्वास नहीं होता है तो वह शिष्य गुरू द्वारा दी गई शिक्षा से वंचित रह जाता है। इससे एक और बात भी सिद्ध हो जाती है कि संगीत शिक्षा पूर्णतः आध्यात्मिक है इस शिक्षा को ग्रहण करने के लिये मन का साफ और निर्मल होना अतिआवश्यक है जिससे की शिष्य व्यवस्थित रूप से संगीत शिक्षा ग्रहण कर सके। जो शिष्य गुरू से शिक्षा ग्रहण करता था उसी के विकास क्रम में शिष्य ही गुरू बन जाता था और वह अन्य नवीन शिष्यों को संगीत शिक्षण प्रदान करता थां यह भी कहा जा सकता है कि गुरू-शिष्य की अनुसंधान प्रतिभा, धैर्य, तथा गुरू सेवा से संतुष्ट होकर ही उपयुक्त विद्या देते थे। श्रीमद्भागवदगीता में भी उल्लेख है कि गुरू के पास जाकर सत्य को जानने का प्रयास करना चाहिए उनकी सेवा करनी चाहिए।

बड़ी ही श्रद्धा और विनम्रता से गुरू से व्यवहार करना चाहिए शिक्षार्थी राजपुत्र हो अथवा एक सामान्य नागरिक उसे गुरू की सेवा तो करनी ही होती है और समान रूप से गुरू भी सभी विद्यार्थियों को संगीत शिक्षा देते है इसमें कोई भी भेद-भाव नहीं

किया जाता था। शिक्षा ग्रहण करने के लिये कठोर परिश्रम करना पड़ता था।

प्राचीन काल में संगीत के साथ-साथ शास्त्रात्मक ज्ञान को भी पर्याप्त महत्व दिया गया। अतः उस समय शिक्षण प्रणाली में संगीत का शास्त्र पक्ष की भी शिक्षा दी जाती थी। गुरू ऋण से उऋण होने के लिए भी शिक्षण कार्य निःशुल्क किया गया था। शिक्षा प्राप्ति पर गुरू दक्षिणा के रूप में शिष्य अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ भी देता था। शिक्षा समाप्ति के पश्चात् दीक्षांत समारोह का भी प्रावधान होता था। जिसे गुरूओं द्वारा शिष्यों को दीक्षा दी जाती थी तथा उसी दिन शिक्षार्थी को नवीन वस्त्र, आभूषण छाता आदि प्रदान किया जाता था तथा एक प्रकार के विशेष होम आयोजन की व्यवस्था की जाती थी जिसमें कुल देवता तथा गुरू की पूजा के उपरांत स्नातक विद्या दान का व्रत लेता था। इस समय गुरू-शिष्य को जो अंतिम उपदेश देता था उसे 'समावर्तन उपदेश' कहा जाता था।

भारतीय संस्कृति में गुरू का स्थान बह्मा, विष्णु, महेश से भी उच्च माना जाता है। संगीत जगत में भी गुरू को इसी मान-सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। पुस्तकीय ज्ञान और कला समय के आघात-प्रतिघातों को सहन करते हुए भी कला किसी न किसी रूप में आज भी उपलब्ध है इसका समस्त श्रेय 'गुरू-शिष्य परम्परा की मौखिक पद्धति को ही जाता है। इसी पद्धति के कारण ही हम अपने पुरातत्व साहित्य को सुरक्षित रख पाये हैं। अब यह तो स्पष्ट है कि गुरू-शिष्य परम्परा का संगीत शिक्षण में एक महत्वपूर्ण स्थान है। 'बिन गुरू ज्ञान कहा से पाये' यह काव्य की एक छोटी से पंक्ति है किन्तु इसमें अथाह रहस्य छिपा हुआ है जो समय रहते शिष्य को संगीत सागर की गहराईयों तक पहुंचा देता है। गुरू-शिष्य का सम्बन्ध अत्यन्त ही पावन एवं पवित्र है। गुरू अपने शिष्य को ज्ञान रूपी प्रकाश प्रदान करता है। जिससे शिष्य जीवन जीने में उनका उपयोग करता है। इसीलिए आवश्यक है कि गुरू अच्छे चरित्र का हो तथा अपने 'विषय का गूढ़ ज्ञानी हो अन्यथा शिष्य का भविष्य अन्धकारमय हो जाता है।

इस प्रकार से गुरू-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत प्राचीन काल में संगीत की शिक्षा दी जाती थी। प्राचीन काल में संगीत उच्च कोटि का था। ब्राह्मण संगीत शिक्षा को पूजा-अर्चना तथा साधना मानते थे। प्राचीन काल में चाहे जितनी भी पद्धति से संगीत शिक्षा दी जाती हो-किन्तु गुरू-शिष्य परम्परा को उन सभी से श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। संगीत मानव जीवन का आधार है। संगीत की उत्पत्ति कब से हुई इसके बारे में पूरे विश्वास से कहना असम्भव है परन्तु इतना कहा जा सकता है कि संगीत आदि काल से चला आ रहा है। इस परम्परा में कई वर्षो तक निरंतर साथ रहने के कारण गुरू एवं शिष्य में पारस्परिक श्रद्धा, निर्भरता एवं प्रेम का विकास हो जाता था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आधुनिक भारतीय समाज में शिक्षा, डॉ0 एस.के मंगल, पृ0 4-5
2. कबीर एवं महात्मा गांधी के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन डॉ0 रामजी लाल सहायक, पृ0-302
3. उद्धत शिक्षा सिद्धान्त, एन0आर0 स्वरूप सक्सेना, पृ0-13
4. भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर, डॉ0 मधुबाला सक्सेना पृ0-43
5. भारतीय संगीत का इतिहास, शरत चंद्र परांजपे, पृ0-64
6. भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उनका वर्तमान स्तर, मधुबाला सक्सेना, पृ0-47
7. भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर, मधुबाला सक्सेना, पृ0-48
8. संगीत बच्चों के लिए, विनय चन्द्र मौदगल्य, पृ0-3
9. संगीत बच्चों के लिए, विनय चन्द्र मौदगल्य, पृ0-3
10. संगीत बच्चों के लिए, विनय चन्द्र मौदगल्य, पृ0-3
11. भारतीय संगीत का इतिहास, श0च0 परांजपे, पृ0-164

Significant Positive Aspects of new Education Policy 2020 Regarding Music Education in India

Prof. Sharada Velanker
Research Guide
B.H.U., Varanasi

Sangita Chowdhury
Research Scholar
B.H.U., Varanasi

Abstract

The Union Cabinet, in July 2020, approved the New Education Policy 2020, a milestone in the history of education in India. There are many proposals mentioned in this policy which aim to introduce vital changes in the Indian education system. As India moves towards becoming a developed country as well as among the three largest economies in the world, it is needful to revamping the education structure to transform today's children as the global citizen of tomorrow. There are some fundamental features in this policy such as fostering the unique capabilities of each student, acquiring life skill like communication, team work etc. multidisciplinary and holistic education, knowledge of modern science and technology, emphasis on learning about India's glorious culture, art, philosophy, ethical and constitutional values and many others. From the foundational level to higher study of proposed curricular structure, there are many major initiatives taken by the committee. In this article, I have tried to explore the prominent bright prospects of this policy in the field of studying core music and subjects interrelated with music.

KEY WORDS

Education, Music, Research, Language, Multidisciplinary

INTRODUCTION:

The word 'education' is derived from the Latin word 'educare' which means to bring up. The meaning of education according to Greek theory is also the same i.e. 'to bring out one's best'. Swami Vivekananda said, 'education is the manifestation of the perfection, which is already in man'.

'NA VIDYA SANGEETAT PARA'- According to Indian philosophy it is said that music is the greatest of all educations. Indian music is one of the oldest forms of music in the world. According to research it has been acknowledged that the origin of Indian Music is the 'Vedas'

(1500 BC-600 BC), the oldest Hindu scriptures. It is believed that Vedic texts were received by scholars direct from God and for thousands of years these were passed on to the next generation orally. The Vedic music, Samgana was the earliest scientific method of singing in India. Vedic hymns of the Hindu temples are the fundamental source of Indian music, where sound is believed as God-Nadabrahma. Thus music since ancient times is considered as spiritual practice to attain aesthetic experience, self-realization and salvation.

In modern science many researches show that music has a powerful effect on human physiology especially on the brain. Therefore music leads to better learning, boost memory, treat mental illness, reduce anxiety or stress and thus improve physical, mental as well as emotional health of a person. Music, apart from its intellectual characteristics, has tremendous power to dissociate the mind from worries and negativities. It helps both the artists and audiences to concentrate their minds immediately and therefore leads them acquiring higher knowledge spontaneously. Music has significant role in character building of students and thus it elevates the moral power of the whole nation. Anthropologists and ethnomusicologists suggest that music has been one of the basic characteristics of human for millennia. It is the most universal way of expression and communication for humankind. So by engagement in music many dimensions of human life physical, mental, intellectual, moral, spiritual, psychological (cognitive and emotional), social-can be affected positively.

In Vedic period knowledge was imparted from the 'Guru' (teacher) to the 'Shishya' (disciple). In ancient educational system practiced in India, students had to stay in Guru's place to acquire knowledge. In ancient India, there were world famous centers of learning like Nalanda, Takshashila where teachers and students both from different parts of country as well as from abroad used to come. Modern schools and universities were established during British rule in India in the 19th century. To acquire knowledge in music, students must go to guru and with the proper guidance of guru and vigorous training for years one can achieve musical proficiency. There is no substitute of Guru-Shisya tradition in music education. But in British period with great effort of legendary music scholars Pandit Vishnu Digambar Paluskar and Pandit Vishnu Narayan Bhatkhande, music education has been popularized among mass and considered as a subject in academic discipline.

In this article some most important features of the New Education Policy 2020 and the most possible positive outcomes of these proposals in the context of music education have been discussed.

BRIEF ANALYSIS OF SOME PROMINENT FEATURES OF NEW EDUCATION POLICY IN THE CONTEXT OF MUSIC EDUCATION:

According to new pedagogical and curricular structure proposed for school education there are four stages:

NAME OF THE STAGE	AGE OF STUDENTS (YEAES)	CLASS
FOUNDATIONAL	3-6	ANGANWARI/ PRE-SCHOOL/ BALVATIKA
	6-8	CLASS 1 &2
PREPERATORY	8-11	CLASS 3 TO 5
MIDDLE	11-14	CLASS 6 TO 8
SECONDARY	14-18	CLASS 9 TO 12

- The 'Early Childhood Care and Education' (ECCE) in the foundational level will be of great importance. In this level the learning process will be flexible, multi-faceted, play-based, activity-based and music will be one of the prominent subjects for children.

Many researches show that music training and practice have many direct positive effects on development of child. In 2016 researchers of Brain and Creativity Institute, University of Southern California found that, musical experiences in childhood accelerate brain development particularly the areas of language acquisition and reading skill. In a study of National Association of Music Merchants Foundation, it has been proven that learning to play a musical instrument can improve the mathematical learning. Allowing children to dance with music help them to build motor skills and develop their self-expression. Practicing music also strengthen children's memory power.

Therefore inclusion of music as a subject at the foundational level will be beneficial not only for the cultural or artistic development but also for comprehensive development of the child.

- One of the distinguished features mentioned in this policy is the flexibility to choose subjects according to their talents and interests.

This is going to be a major step to promote the multidimensional perspective of music. Students from different background in various subjects like physics, mathematics, biology, literature, history, mass communication etc. having penchant for music can further study the correlation between music and respective subjects. It will create more research scope in subjects like musical acoustics, bio musicology, neuroscience of music, music therapy, mathematical explanation of musical sound wave, literary prospect of musical composition, music archaeology, ethnomusicology, music reporting etc. Even students having technological background and fondness for music can study the electronic or digital music technology. So apart from learning and practicing different genres of music like classical, semi-classical, modern song, devotional song, folk song etc. students can study various multidisciplinary subjects correlated with music and it will definitely open the door of global academic platform more and more for the posterity.

- In the revised three languages formula mentioned in this policy, the medium of instruction until at least grade 5, but preferably till grade 8 and beyond will be the mother tongue/home language/regional language applicable for both in private and public school. But at the same time, apart from mother tongue children will be exposed to different

languages also. There will be at least two native languages of India among three languages learned by children. Sanskrit, the oldest language in the world, now will be offered at all levels of school and higher education as an important option for students.

Now analysis of this step from the musical viewpoint shows that throughout the country practice of different regional languages among children will be increased. Definitely the genre of children's songs will be revived and children will be more engaged in those songs which will definitely increase their power of imaginations.

Another advantage of the incorporation of multilingualism in school education is that music students having interests to study ancient Indian treatises mostly written in classical languages like Sanskrit, Pali, Tamil etc. can read the original versions of the authentic scriptures. Similarly students interested in western music can acquire in depth knowledge studying the classic books of western music written in English language. Language will be no barrier to study original and authentic books anymore.

Music students with a strong base in different regional languages will get chance to study folk songs and cultural heritage of that region easily.

- According to this policy internships will be conducted at the local level. So skilled students will get actual practical field exposure.
- PhD students will have a minimum number of hours of actual teaching experience gathered through teaching assistantships and other means. By implementation of this step will increase the number of efficient and experienced teachers.
- In this policy various initiatives have been mentioned implementation of which will help to have larger number of international students to study in India. Therefore today's younger generations from different parts of the world will get more chance to be introduced to our thousand years old Indian music. According to the proposal, research/ teaching collaborations and faculty/ student exchanges with high-quality foreign institutions will be facilitated and relevant mutually beneficial MOUs with foreign countries will be signed. High performing Indian universities will be encouraged to set up campuses in other countries, and similarly, selected universities e.g. those from among the top 100 universities in the world will be facilitated to operate in India. It will certainly open greater scopes of high quality researches especially on ethnomusicology, bio musicology, electronic music, scientific study of music etc. So from intercultural perspective this education policy will definitely promote the exchange of knowledge between East and West more.

CONCLUSION:

The prime purpose of the New Education Policy 2020 is the holistic development of students. The emphasis on Indian culture and flexibility on choosing the subjects according to students' own

interests will definitely improve the scenario of music education in India and there will be greater scopes in quality research in music related multidisciplinary subjects.

REFERENCES:

1. New Education Policy 2020, Ministry of Human Resource Development, Government Of India
2. Prajnanananda, Swami: "HISTORICAL DEVELOPMENT OF INDIAN MUSIC", Firma K.L.MUKHOPADHYAY, Calcutta, 1960, Pg. No.11-16,403-405.
3. http://www.brighthorizons.com/family-resources/music-and-children-rhythm-meets-child-development

संगीत के प्रचार-प्रसार में 'संगीत' मासिक पत्रिका की भूमिका

डॉ. संगीता घोष

शोध निर्देशिका
मंचकला विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

विनोद कुमार

शोधार्थी
मंचकला विभाग (संगीत गायन)
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सार-संक्षेप

संगीत को जन-जन तक पहुंचाने में रेडियो, दूरदर्शन, टेप रिकार्डर, कम्प्यूटर व इन्टरनेट इत्यादि के साथ-साथ प्रिंट पत्रकारिता का भी अमूल्य योगदान रहा है। मुद्रित सामग्री पत्र-पत्रिकाएँ व पुस्तकें आदि प्रचार-प्रसार का एक सशक्त व प्रभावशाली माध्यम हैं। संगीत को समर्पित 'संगीत' मासिक पषिका ने 87 वर्षों में अब तक एक लाख से अधिक संगीत सामग्रियों से परिपूर्ण पृष्ठ संगीत जगत को प्रदान किया है।

ध्रुपद, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना, दादरा, चैती, कजरी, गज़ल, कव्वाली, भजन और फिल्मी गीत आदि स्वरलिपि सहित, सितार, सरोद, वायलिन, तबला, व मृदंग आदि वाद्य सम्बन्धी सामग्री, महत्वपूर्ण संगीत ग्रन्थों के सार अथवा मूल ग्रंथ, कलाकारों के साक्षात्कार व सचिष परिचय एव संगीत जगत के समाचार इत्यादि संगीत की विपुल सामग्री के साथ 'संगीत कार्यालय' हाथरस, उत्तर-प्रदेश से प्रकाशित होने वाली भारत की एक प्रतिष्ठित मासिक पषिका है। यह हिन्दी भाषा में प्रकाशित होती है। 'संगीत' मासिक पत्रिका के संस्थापक प्रभूलाल गर्ग 'काका हाथरसी' की अन्तिम इच्छा थी कि 'संगीत' मासिक पत्रिका कभी बन्द न हो। अतः 'संगीत' मासिक सन् 1935, आद्यांक से अनवरत संगीत के प्रचार-प्रसार में अपनी अतुलनीय भूमिका निभा रही है।

बीज शब्द

संगीत पत्रिका, प्रचार-प्रसार, संगीत कार्यालय, संपादक, निष्कर्ष

'संगीत कार्यालय' की स्थापना

संगीत कार्यालय, हाथरस, उत्तर प्रदेश का नाम कौन ऐसा संगीत प्रेमी होगा जो न जानता हो। संगीत कार्यालय से 'संगीत' मासिक पत्रिका के अतिरिक्त दो अन्य पत्रिकाएँ 'म्यूजिक मिरर' व 'फिल्म संगीत' का प्रकाशन भी कुछ वर्षों तक हुआ। 'संगीत कार्यालय' से संगीत के लगभग सैकड़ों पुस्तकों व संगीत ग्रंथों का प्रकाशन भी हुआ है। संगीत कार्यालय ने संगीत की पत्रिकाओं, पुस्तकों एवं ग्रंथों को प्रकाशित कर संगीत के प्रचार-प्रसार एवं संरक्षण में अतुलनीय योगदान दिया है। 'संगीत कार्यालय' ने इन पत्रिकाओं, पुस्तकों व ग्रंथों को प्रकाशित कर भारतीय संगीत को आम जनमानस तक पहुँचाने का काम किया।

'संगीत कार्यालय' का शुभारम्भ 'म्यूजिक मास्टर' पुस्तक के प्रकाशन से हुआ। जिसको प्रभूलाल गर्ग ने अपने मित्र पं. नंदलाल शर्मा के साथ मिलकर लिखी थी। नंदलाल शर्मा उन दिनों बेरोजगार थे

और हारमोनियम तथा तबला बजा लेते थे। प्रभूलाल गर्ग की भी नौकरी छूट गई थी और गर्ग जी बांसुरी-वादन जानते थे। प्रभू लाल गर्ग 'काका हाथरसी' ने अपने आत्म-कथ्य में लिखा है, "एक दिन यकायक अपने एक पुराने मित्र पं. नंदलाल शर्मा से भेंट हो गई। वे भी उन दिनों बेकार थे, अतः एक और एक मिलकर ग्यारह हो गए। शर्माजी हारमोनिमम-तबला बजाने में माहिर थे, हम बाँसुरी-वादन में माहिर थे। दोनों ने मिलकर तय किया कि एक ऐसी पुस्तक लिखी जाए, जिससे हारमोनियम, तबला और बाँसुरी बजाने की शिक्षा नवसिखियों को सरलता से प्राप्त हो सके।"1 प्रभूलाल गर्ग 'काका हाथरसी' ने पुस्तक छपवाने के लिए अपनी कुल जमा पूँजी जो कि 80 रूपये थी लगा दी। 'म्यूजिक मास्टर' पुस्तक अग्रवाल प्रेस, मथुरा से मुद्रित हुई। अग्रवाल प्रेस के मालिक थे प्रभूदयाल मित्तल। यह पुस्तक सफल रही, कुछ दिनों बाद पं. नंदलाल शर्मा पुस्तक का स्वामित्व प्रभूलाल गर्ग 'काका हाथरसी' को देकर अलग हो गए। यही 'म्यूजिक मास्टर' पुस्तक ही 'संगीत कार्यालय' हाथरस की आधारशिला बनी।

'संगीत' मासिक पत्रिका का प्रारम्भ

पत्रिका प्रचार-प्रसार का ही माध्यम है। 'संगीत' के प्रचार-प्रसार में संगीत विषय सम्बन्धी पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। क्रियात्मक संगीत शास्त्र व संगीत शास्त्र आदि का जन साधारण में प्रचार-प्रसार पत्रिकाओं के द्वारा भी किया जा रहा है। 'म्यूजिक मास्टर' पुस्तक की सफलता से प्रोत्साहित होकर प्रभूलाल गर्ग 'काका हाथरसी' ने संगीत मासिक पत्रिका को निकालना प्रारंभ किया। "यही पुस्तक 'संगीत कार्यालय' हाथरस की आधार-शिला साबित हुई। अब तक इसके 22 संस्करण हो चुके हैं। इसके साथ ही संगीत में हमारी रुचि बढ़ती गई, आमदनी भी ऊपर को चढ़ती गई, अतः सन् 1935 में 'संगीत' मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ कर दिया। इस पत्रिका के संपादन से लेकर कुली तक के सभी कार्य हम स्वयं करते थे।"[2] सीमित संसाधनों से प्रभूलाल गर्ग 'काका हाथरसी' ने बड़े ही साहस पूर्वक 'संगीत' मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। जो आज अपने प्रकाश से संगीत जगत को आलोकित कर रहा है।

प्रारंभिक दौर में 'संगीत' मासिक पत्रिका 32-44 पृष्ठों में छपती थी। एक समय ऐसा भी था जब यह मात्र 14 पृष्ठों में छपती थी। पत्र पत्रिकाओं द्वारा अंग्रेजी शासन का विरोध किए जाने के कारण सरकार ने अख़बारी कागज पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। उस समय प्रभूलाल गर्ग 'काका हाथरसी' ने 'संगीत' में निम्नलिखित छंद लिखा था-

"पढ़ने से लड़ना भला, राज करें अँग्रेज,
इसीलिए 'संगीत' में, रह गए चौदह पेज।
रह गए चौदह पेज, यही बाबा की मर्जी,
खबरदार कुछ कहा, फाड़ डालेंगे अर्जी।
कह काका कविराय, हृदय के भीतर-भीतर
बाबा तुमको दुआ, दे रहे कम्पोजीटर।"[3]

सम्पादक और सहयोगी

'संगीत' मासिक पत्रिका के आद्य सम्पादक प्रभूलाल गर्ग 'काका हाथरसी' संगीत कार्यालय में एक छोटी सी मेज पर 'संगीत' मासिक के प्रारम्भिक दिनों में 'संगीत' के टाइटिल बनाना, चिट्ठियों के जवाब देना, प्रूफ रीडिंग करना और मुद्रित होने के बाद पाठकों तक पहुँचाने के लिए डाकखाने में डालने तक का काम स्वयं करते थे। बाद में अनेकों कलाकार, संगीतज्ञ व विद्वान् सहयोगी संगीत कार्यालय व 'संगीत' मासिक पत्रिका से जुड़ते गये। "श्री विश्वनाथ गुप्त, कुंवर महेश प्रताप बहादुर सिंह बी.ए., विश्वम्भर नाथ भट्ट, जयदेव पत्की, शशि मोहन भट्ट, महेश नारायण सक्सेना, बालकृष्ण गर्ग, मुकेश गर्ग और लक्ष्मीनारायण गर्ग ने अपनी निष्ठा तथा परिश्रम से अक्षुण रखा। साथ ही 'संगीत' के कुछ विशिष्ठ अंकों के संपादन हेतु उस क्षेत्र से संबंधित विशिष्ट विद्वानों को आमंत्रित करने में भी संगीत ने कभी संकोच नहीं किया।"4 प्रभूलाल गर्ग 'काका हाथरसी' के उत्तराधिकारी लक्ष्मी नारायण गर्ग ने लगभग 50 वर्षों तक 'संगीत' मासिक के सम्पादन व प्रकाशन से जुड़े रहे। श्री बालकृष्ण गर्ग लगभग 30 वर्षों तक

और मुकेश गर्ग ने लगभग 36 वर्षों तक 'संगीत' मासिक पत्रिका का कुशल सम्पादन किया।

श्री कृष्ण नारायण रातांजनकर, आचार्य वृहस्पति, उदय शंकर, पंद्म रविशंकर, नारायण राव व्यास, विनायक राव पटवर्धन, जी.एन. गोस्वामी, स्वामी प्रज्ञानन्द, पीद्म साम्बामूर्ति व शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे आदि अनेकों कलाकार, संगीतज्ञ 'संगीत' मासिक पत्रिका के सम्पादकीय सलाहकार रहे।

'संगीत' पत्रिका में महान संगीत कलाकारों, शास्त्रज्ञों व विद्वानों के लेख छपते रहे हैं। जैसे- घनश्याम दास संगीताचार्य, जयबहादुर सिंह नेपाली, श्रीमती शन्नो देवी चतुर्वेदी, ठाकुर जयदेव सिंह, शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, आचार्य कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति, प्रेमलता शर्मा और सुभद्रा चौधरी आदि।

संगीत के प्रचार-प्रसार में भूमिका

1935 से संगीत के प्रचार-प्रसार में संलग्न संगीत जगत की अत्यन्त लोकप्रिय पत्रिका 'संगीत' मासिक 87 वर्षों से अनवरत प्रकाशित हो रही है। यह केवल संगीत ही नहीं बल्कि पत्रकारिता जगत में भी एक कीर्तिमान है। इस लम्बे अवधि में 'संगीत' मासिक के लगभग 1000 से अधिक अंक प्रकाशित हुए हैं। गीत वाद्य और नृत्य कला संदर्भित लेख व संगीत की स्वरलिपि सहित छपने वाली 'संगीत' मासिक भारत की हिदी भाषा में प्रकाशित होने वाली एक प्रतिष्ठित पत्रिका है।

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत, कर्नाटक संगीत, रवीन्द्र संगीत, पाश्चात्य संगीत, लोक संगीत, सुगम संगीत, फिल्म संगीत आदि संगीत के सभी क्षेत्रों पर विद्वानों के सारगर्भित लेख, प्रचलित तथा अप्रचलित रागों में ध्रुपद, धमार, ख्याल, तराना, टप्पा, ठुमरी, दादरा, मल्हार, होली, कजरी, चैती इत्यादि स्वरलिपि सहित, कर्नाटक संगीत की प्रभावशाली रचनाएँ, लोकप्रिय फिल्मों के शास्त्रीय संगीत में निबद्ध गीत, सुगम संगीत की श्रेष्ठतम रचनाएँ- पद, गीत, गज़ल, कव्वाली इत्यादि स्वरलिपि सहित। सितार, वायलिन, सरोद, इसराज, गिटार, हारमोनियम आदि पर बजने वाली विभिन्न रागों में कलात्मक बंदिशे, संगीत साधकों के साक्षात्कार का सचित्र विवरण, प्राचीन से अर्वाचीन तक के सफल कलाकारों के सचित्र जीवन-वृत्त, उदीयमान कलाकार के सचित्र परिचय, संगीत पुस्तकों व संगीत रिकार्ड की समीक्षायें, संगीत के समाचार व गतिविधियाँ, पाठकों के विचार प्रश्नोत्तर, संगीत के महत्वपूर्ण ग्रंथों का सार, संगीत परीक्षाओं के प्रश्नोत्तर, आकाशवाणी से प्रसारित राष्ट्रीय संगीत कार्यक्रमों की समालोचनाएँ आदि संगीत के सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित भरपूर सामग्री 'संगीत' मासिक में प्रकाशित हुए हैं।

प्रत्येक वर्ष के जनवरी माह में 'संगीत' पत्रिका का विशेषांक प्रकाशित होता है। विशेषांक की यह परम्परा भी अनवरत चल रही हैं। अबतक लगभग 100 विशेषांक प्रकशित हो चुके हैं। कुछ विशेषांक जनवरी माह के अतिरिक्त भी प्रकाशित हुए हैं- जैसे हरिदास अंक-फरवरी 1959, भातखण्डे स्मृति अंक-अगस्त 1960, अलाउद्दीन खां स्मृति अंक-दिसम्बर 1972, आचार्य बृहस्पति एवं पं. लालमणि मिश्र स्मृति अंक-जुलाई 1980, पंद्म लालमणि मिश्र पर विशेष- अगस्त 1987, हीरक जयन्ती समारोह अंक - मई 1995, पं. ओंकारनाथ ठाकुर अंक-जून 1997। कुछ विशेषांक जनवरी-फरवरी संयुक्तांक के रूप में भी प्रकाशित हुए हैं। जैसे- ख्याल अंक जनवरी-फरवरी 1976, आलाप-तान अंक- जनवरी-फरवरी 1977, मीरा संगीत अंक जनवरी-फरवरी 1978, बाल संगीत अंक जनवरी-फरवरी 1981, संगीत अभ्यास अंक-जनवरी-फरवरी 1984, संगीत परीक्षा अंक-जनवरी-फरवरी 1987, संगीत शिक्षा अंक-जनवरी-फरवरी 1988, संगीत संस्था अंक-जनवरी-फरवरी 1989, संगीत शोध अंक-जनवरी-फरवरी 1990,, प्रभूलाल गर्ग 'काका हाथरसी' स्मृति अंक- जनवरी-फरवरी 1996, लबला अंक-जनवरी-फरवरी 1993, संगीत कथा अंक-जनवरी-फरवरी 1992, व जलतरंग अंक - जनवरी-फरवरी 1994 आदि।

'संगीत' मासिक पत्रिका के विशेषांक अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं। दसों थाटों पर आधारित विशेषांक भी प्रकाशित हुए हैं। ''संगीत पत्रिका के मासिक

अंकों और विशेषतः विशेषांकों में प्रकाशित अधिकांश सम्पादकीय लेख गहन मौलिक चिन्तन के परिणाम हैं।''[5] संगीत के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से 'संगीत' मासिक पत्रिका अत्यंत प्रगतिशील उत्कृष्ट और समृद्धतम रही है। संगीत जगत पर इसने अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

निष्कर्ष

भारतीय संगीत के प्रचार-प्रसार में 'संगीत' मासिक पत्रिका ने अतुलनीय भूमिका निभाई है। संगीत पत्रिका से संगीत का कोई पक्ष अछूता नहीं है। गायन, वादन, नृत्य, सभी से संदर्भित सामग्री 'संगीत' पत्रिका में प्रकाशित हुई हैं। 'संगीत' मासिक पत्रिका संगीत प्रेमियों, विद्यार्थियों, शोधार्थियों व अध्यापकों सभी के लिए उपयोगी है।

संदर्भ सूची

1. सं. गर्ग, डॉ. मुकेश, 'संगीत' प्रभूलाल गर्ग 'काका हाथरसी' स्मृति अंक, जनवरी-फरवरी 1996, पृ. 66-67
2. सं. गर्ग, डॉ. मुकेश 'संगीत' प्रभूलाल गर्ग 'काका हाथरसी' स्मृति अंक, जनवरी-फरवरी 1996, पृ. 67
3. सं. गर्ग, डॉ. मुकेश, प्रभूलाल गर्ग 'काका हाथरसी' स्मृति अंक, जनवरी-फरवरी 1996, पृ. 68
4. सं. पटवर्धन, डॉ. सुधा, 80 वर्षीय संगीत अंक, जनवरी 2015 पृ. 16
5. सं. पटवर्धन, डॉ. सुधा, 80 वर्षीय संगीत अंक, जनवरी 2015, पृ. 17

संदर्भ

'संगीत' मासिक पषिका, अंक- मार्च 1935, सितम्बर 1959, दिसम्बर 1955, नवम्बर 1958, अक्टूबर 1962, मई 1985, मार्च 1989, अप्रैल 1965, मार्च 1998, मार्च 1990, फरवरी 2006, दिसम्बर 2005, जून 2012, फरवरी 2013, मार्च 2014, फरवरी 2015, प्रभूलाल गर्ग 'काका हाथरसी स्मृति अंक- जनवरी फरवरी 1996, हीरक जयन्ती समारोह अंक- मई 1995, 80 वर्षीय संगीत अंक- जनवरी 2015

Time Theory in Hindustani Classical Music: Importance and Application in Modern Times

Dr. Tejinder Gulati
Research Guide
Guru Nanak Dev University,
Amritsar (Punjab)

Amritpreet Kaur
Research Scholar
Guru Nanak Dev University
Amritsar (Punjab)

Abstract

In Hindustani classical music, many rules were made regarding the singing of ragas, one of which is the law of time theory. To sing each raga according to the scriptures a special time has been fixed for. Singing ragas at fixed times is more deemed appropriate. According to the scholars, keeping in view the time theory, the raga presentation can be made effective. Time theory is an old tradition of Indian music. The relation of the ragas is fixed according to the time between day and night and seasons of the year. The scribes have fixed different times of different ragas based on their experience and psychology. The melodies sound melodious only when sung according to their fixed time. A lot of Ragas are related to summer, rainy, cold, autumn, winter and spring seasons and they are sung only in special seasons. Since ancient times, Hindustani classical music is being considered, one of the main aspects of which is time theory.

Key Words

Hindustani Classical Music, Time Theory, Ragas, Modern Times, Madhyam Swara.

Even in the ancient scriptures, the ragas are praised for being sung in time. In the Sangeet Makrand composed by Narad, the principle of the fifth raga samana is mentioned. According to some scholars, the date of its creation in the 13th-14th century. Many musicologists call it Music Ratnakar in the favour of pre-acceptance. The third volume of the music chapter of this Granth Narad has given special advice to sing the ragas according to the time:

"रागवेलाप्रागनेनरागाणाहिम्सकोभवेतक्ष ।
यःश्रृणोतिसदारिद्रीआयुनष्टियतिसर्वदा॥
देवताविषयेगीतंपुष्यनामप्रवर्धनमक्ष ।
आध्यात्मिकैवयोगेनसर्वपापप्रणाशनमक्ष ।
अबलरागकर्ण्य अबेलरागनदोषभैरवीबिना॥"[1]

Accordingly, the person who does not sing the ragas according to the principle

of time, destroys raga's beauty. According to Narad, these are some rags sung in different times:

"Morning Ragas - Gandhar, Devgandhar, Soudhvi, Naraini, Gujri, Bengal, Patmanjri, Lalit, Shri Saurashtra, Basant, Malhar, Shudh Bhairav, Bilawal and Bhopal.

Medieval Ragas - Shankarabharanam, Balahans, Desi, Saveri, Dobli, Kamboji, Kaushik, Mukhai, Mangalkoshiki.

Night Ragas – Shudh -Nut, Salag, Shuddh Varati, Malvgaur, Ramkri, Knatar Gond. Raga Bhairav can be sung at any time.''[2]

The time and seasons of the ancient village ragas in Ratnakar, is clear mentioned. Singing while giving the characteristics of 'ytha shudh sadharit' gram raga the description of the time is as follows-

''षड्जमध्यमयाजातस्तारषड्जग्रहांशकः।
निगाल्पोमध्यन्यासःपूर्णषड्जदिमूर्च्छनः॥
अवरोहप्रसन्नान्तालंकृतौरविदैवतः।
वीरेरौदेरसेः गेयः प्रहरेवासरादिमे॥
विनियुकोगर्भसंधोशुदसाधारितोंबुधै॥''[3]

By the way, the time theory is also considered as a traditional rule. According to him, it is important to sing the ragas at the appropriate time. Damodar set the time of the ragas in the 'Sangeet Darpan' by allowing any raga to be sung at any time.

The views are as follows:

''यथोवतकालएवैतेगेयापूर्वविधानतः।
राजाज्ञासदागेयानतुकालंविचारयेत॥[4]

Damodar acknowledges that time theory is a physical classification but when the singer wants to sing the same raga, then there is no fault in singing at the same time.

''यथेच्छयावागातव्यागातव्या : सर्वतुषुसुखप्रदा''[5]

Classification of Ragas in modern Hindustani classical music system time theory is divided into 24 hours within two parts. It has been the practice to sing ragas at fixed times in Indian classical music. Within the changes of time, the change came the form of the ragas, the way of rendering and the music. There was also a difference in the education system where music education 'Guru Shish tradition' and 'Music education' was based on the form of schools, educational institutions etc. But the practice of singing ragas according to specific times remained prevalent. The hypothesis and reality of the theory include the following aspects. For example: the watch of day and night, the form of swaras, the importance of the madhyam swaras, importance of vadi samyadi etc, Significance characteristics of time theory has been exist since ancient times, today's music scholars do the same, including 24 hours of eight divided into pahars and composed and sung ragas based on them,their presentation should be done with time priority. To determine the time of ragas, the Purvang Raga and Utrang Raga rules play an important role. Scholars have divided the 24 hours of day and night into two part of the day 'poorav ang' from 12 am to 12 pm and 12 pm to 12 am is considered the 'uttar ang'.

An octave with 8 swaras was made by connecting the strings in the sa re ga ma pa dha ni. It was divided into two

parts. The first part is 'sa re ga ma' and the second part is' pa dha ni sa'. The first part was 'poorvang' and the second part 'uttrang'. The vadi swara is an important swara of an Indian classical music, It plays an important role in determining the timing of ragas. The ragas whose vadi swar comes in Swar Saptak's 'Purvang', they are called Purvangvadi Ragas. Their time assumed at 12 noon until noon. For example, the vadi of shudh Sarang is'Re' swara, due to its inclusion in the poorvangvadi part, the raga is called shudh sarang poorvangvadi raga'. So, the ragas whose swar falls in the utraang part of the saptak, such raags are called Utrangvadi ragas, just as the raga kamod's vadi swar is 'pa' for the same reason, the raga kamod will be called 'Uttaranwadi raga'.

In Hindustani classical music, the above rule has become but few ragas could not be covered by this particular rule and their timing could not be determined. For example - the vadi swara of Bhairavi is 'Ma', which falls in the purwang part but the singing time of Raga Bhairavi is considered to be the first watch of the day. There are many ragas like Bhairavi in Indian classical music which have caused differences. Scholars have used Purvang and Utrang to eliminate such exceptions

By combining Pa in Purvang part, and Ma in Uttarang part they divided into 'Sa Re Ga Ma Pa' in purvang and' Ma Pa Dha Ni Sa'in uttrang.

According to the above rule,which raga's vadi swara is 'Ma' can be both poorvangvadi and utrangvadi, but it is important to note here that which part of the raga is more dominant. If the poorav part of the raga is strong then the 'poorvangwadi' and if the uttar part is more predominant then the raga will be called'Uttaranwadi'. It is clear that the time of the Raga can be fixed only by 'vadi swara'.The raga that is sung and played during the day and night meeting is called 'sandhiPrakash'ragas. Ragas with Komal 'Re' and komal 'Dha' swara are also called 'Sandhi Prakash' Ragas. Their singing time is from 4 am to 7 am and from 4 pm to 7 pm. The morning ragas are called 'Pratkalin' and the evening ragas are called 'sayeinkalin' ragas. After the singing of Sandhi Prakash Raags, shudh 'Re' swara ragas are sung. Singing hours are 7 am to 10 pm and 7 pm to 10 pm is assumed. Some musicians sing ragas in this category from 7 to 12 p.m. 'Ma' swara plays an important role in ragas of shudh 'Re' and 'Dha'. Shudh madhyam is predominant in morning and the teevar madhyam is in the evening ragas. In these ragas, along with shudh 'Re' and 'Dha', the 'Ga' must also be shudh . Gondsarang, Bilawal etc come under the morning ragas and evening ragas come under the ragas of shudh Kalyan, Kalyan etc. In the ragas of this category, the ragas of Bilawal, Khamaj and Kalyan thaat come.

'Ga' and 'Ni' komal class ragas time is considered from 10 a.m. to 4 p.m. and from 10 pm to 4 am. These include the ragas are placed in Kafi, Asavari, Bhairavi and Todi places. There are exceptions to this category, such as Ga Komal and Ni Shudh are used in raga 'patdeep. Therefore, according to scholars, it is important komal Ga swara to be gentle.

In determining the time of ragas in Hindustani classical music system, the

'madhyam swara' is considered the most important swara. The madhyam swara plays an important role in determining the time of ragas that's why it is called a 'Adhawdarsak Swara'. From the adhawdarsak swara means from the guide. In Indian style ragas, the time of the ragas is fixed keeping in view the madhyam swara. Shudh madhyam in the morning ragas and Teewar madhyam in the evening ragas the predominance remains. For instance - Bhairav, Kalingara ragas of classical music, in which the predominance of the shudh madhyam remains. Eternal melodies such as both the madhyams are used in Ramkali, Lalit etc. But the teewar madhyam only shudh madhyam prevails over. Similarly, 'Re'and 'Dha' have shudh swaras.

Even in the ragas the shudh madhyam prevails. After the 'Re' and 'Dha' swara ragas, time comes for ragas with komal swaras such as 'Ga' Ni'. 'Ga and Ni' swara ragas are dominated by both shudh and teewar madhyam such as shudh madhyam prevails in bhairavi, desi and asavari and teewar madhyam prevails in raga 'Todi'.In the evening Sandhi Prakash Ragas, teewar madhyam prevails like raga marwa, Shri,Puriya Dhanasari etc. Shamkalin Raga also remains prevails in 'Re and Dha' shudh swara. Even the teewar madhyam prevails like raga kalyan, kedar, hamir etc. In the evening, the shudh madhyam is again predominant in the melodies of 'Ga and Ni' komal swara such as Raga Kafi, Malkons and Bageshwari etc.

Both the madhyam ragas mean the ragas in which the madhyam swara is found in its shudh and teewar state. In Indian music, there are many ragas in which two madhyams are used together for example - Lalit, Basant, Kedar, Bhatiar, Kamod, Bihag, Shuddh Sarang, Maru Bihag etc. There are many ragas in which both madhyam are used. Such as ascending and descending are less common in which the use of syllables is done together. They are shown together in a special place like Lalit –'Ni Re Ga Ma Ma_ Ma Ga', It is clear from this that as long as the two madhyams are not combined in it, the Raga will not be clear. The ragas in which the shudh madhyam are preponderance, they are sung mostly in the morning and there is excitement in them. Teewar madhyam ragas are sung in the evening time.

This practice of setting the time of ragas is unique in Hindustani classical music only. In South India, any raga can be sung at any time. When the artist performs 'sadhana' or music students get a special raga practice according to the schedule of their curriculum, Are ragas practiced according to the time? A family students learn one raga in a month, then Do they practice the raga according to the specific time? In the same way, the rule of singing ragas according to the time is completely can not be followed. Music is transformative art. According to the change of time in modern times, the form of the ragas has also changed. It is necessary to change the time of the ragas as well as the form of the ragas. It was also natural to change the time of the ragas which changed the tone, but it did not happen. The time of ragas has remained the same from ancient times till today.

Artists perform ragas on radio, TV and other devices. The ragas are not

performed by them on time. The inexhaustible melody played and played was broadcast on time because it was considered impossible to broadcast the ragas according to specific times. There is no scientific basis for a time as there are many ragas in which the singing time was changed after some time. A study reveals that even in medieval texts written at different times, the timing of the ragas does not match. There are many such ragas whose presentations are made at the beginning or end of a music convention. For example - Raga 'Bhairavi'.

According to the above rules, it is clear that music is an aesthetic art, that depends on the impulse, interest and the individual's psychological state. The law of time is an idea that has been accepted only for subject of the ancient world. Today's musicians also follow this rule and perform ragas. The raga sung over time seems more beautiful. Melody time theory is a personal feature of Indian classical music. This is the part of our ancient melody hypothesis. Scholars and musicians has accepted time theory based on their experience. The movement of the swara is always kept in mind in the time theory of raga. The law of time theory guides us - in which 'Pahar' raga should be performed? The time principle of ragas whether it is a habit or psychology, but the ragas are indeed timed is more effective, beautiful symbol when sung accordingly. Time theory has a profound effect on the brain which cannot be easily changed by logic Judging by these arguments, all the antiquities of the first time, the analysis of beliefs seems logical.

BIBLIOGRAPHY

1 र्गग सं. लक्ष्मी नारायण, जनवरी 1178, नारद संगीत मकरन्द, प्रक्ााक संगीत कार्यलय, हाथरस
2 गांगुली ओ. सो., संस्करण 1 जनवरी 2017, राग रागिनी, पं-731, प्रकाशक शुभी
3 चौधरी सुभद्रा, प्रथम संस्करण 2000, शारंगदेव संगीत रत्नाकर, अध्याय-2, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली
4 दमोदर, प्रथम संस्करण 1984, संगीत दरपण, पृ-76, संगीत कार्यलय, हाथरस
5 वही, प .77

झुमटा - एक शास्त्रीय अध्ययन
(हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के आधार पर)

डॉ. सुनील कुमार तिवारी
विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग
ति. मा. भा. वि. वि., भागलपुर, बिहार

मोऊ सन्तारा
शोधार्थी,
ति. मा. भा. वि. भागलपुर, बिहार

सारांश

झारखण्ड एक नवोदित राज्य है जिसकी स्थापना 15 नवंबर 2000 साल में हुई। इसे रत्नगर्भा भी कहा जाता है, क्योंकि यहाँ के प्रकृति की अनुपम छटा पहाड़, जंगल, नदी झरनों से लेकर प्राकृतिक खनिज सम्पदा जैसे- कोयला, अभ्रक, बॉक्साइट, लौह अयस्क, युरेनियम, ग्रेफाइट से यह समृद्ध है। इतना ही नहीं यहाँ के वनों एवं जीव-जन्तुओं की बहुलता तथा सबसे प्रमुख यहाँ की कला एवं संस्कृति के कारण इस राज्य ने न सिर्फ भारतवर्ष में बल्कि पूरे विश्व के समक्ष एक अलग पहचान बनाई है।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है कि 'झार' या 'झाड़' जो स्थानीय भाषा में वन या जंगल का पर्याय है और 'खंड' यानि टुकड़ा इन दोनों शब्दों के मेल से 'झारखण्ड' राज्य का नाम पड़ा। कहावत है यहाँ का चलना ही नृत्य और बोलना ही संगीत है। यहाँ अनेक जाति-धर्म के लोग रहते हैं, लेकिन आदिवासी, मेरा अभिप्राय उन लोगों से है जो प्राचीन काल में वंशानुक्रम में यहाँ रहते-बसते आ रहे है। उन्हें नौ भाषाओं के आधार पर तीन जातियों में या वंशों में बाँटा गया है।

1. *नागपुरी*
2. *पंचपरगनियाँ* } *नागजाति/आर्य वंश*
3. *खोरठा*
4. *कुरमाली*
5. *मुंडारी*
6. *संथाली* } *आग्नेय जाति या वंश*
7. *हो*
8. *खड़िया*
9. *कुड़ुख -* *द्राविड़ जाति या वंश*

नागजाति या आर्यवंश के अन्तर्गत 'नागपुरी' संस्कृति एवं भाषा के लोकगीत के एक खास प्रकार या यहाँ के प्रचलित भाषा में कह सकते हैं, नागपुरी लोकसंगीत के एक खास राग 'झुमटा' के शास्त्रीय एवं क्रियात्मक पक्ष पर में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के आधार पर प्रकाश डालना चाहती हूँ।

बीज शब्द

अंगनई, दोहरी, फगुआ, अगुआ, कलगी

भूमिका

झारखण्ड की कला संस्कृति अति समृद्ध है, यहाँ के लोकसंगीत के साथ-साथ लोककथाएँ, साहित्य, मुहावरें, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ एवं मंत्र भी बहुत प्रसिद्ध और रोचक है। लोकसंगीत की यदि बात करें तो यह दो प्रकार की होती है।

1. लोकगीत 2. शिष्टगीत

लोकगीत वे हैं जिनकी उत्पत्ति कब और किस प्रकार हुई इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता है क्योंकि यह अत्यंत प्राचीन काल से चलते आ रहे हैं। लोकगीत के शब्द या भाषा अत्यन्त साधारण परन्तु शहद जैसी मिठी होती है। हमारे झारखंड में अलग-अलग भाषाओं के जन्म से लेकर मृत्यु तक के लोकगीत है। त्यौहारों पर गाए जाने वाले गीत, पहर, महीनों पर आधारित गीत। यहाँ के क्षेत्रीय कलाकार इन विभिन्न प्रकार के गीतों को 'राग' शब्द से संबोधित करते हैं।

मानव चाहे सभ्य हो या असभ्य, शिक्षित हो या अशिक्षित अपनी इच्छा तथा अनुभूतियों को व्यक्त करने की क्षमता निश्चित रूप से उसमें होती है। लोकगीत का संबंध जीवन के साथ है। जीवन के खेत में उगते हैं ये गीत, जीवन के सुख और दुःख को लोकगीत का 'बीज' कह सकते हैं और कल्पना, रसवृत्ति तथा भावना ये सब है 'खाद'। इसकी रचना स्वतः होती है। जैसे-जैसे मानव में ज्ञान का विकास हुआ उसने लयबद्ध वाणी में अपने सुख-दुःख की कहानी को कहना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि किसी न किसी व्यक्ति द्वारा ही कभी न कभी इन गीतों की रचना हुई होगी समय के साथ-साथ उन गीतकारों कलाकरों के नाम धूमिल हो गए तथा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के कंठ से हस्तांतरित होते-होते इन गीतों में काफी परिवर्त्तन एवं परिवर्धन होते रहे है। लोकगीत कभी भी पुराना नहीं होता है, यह ठीक जंगल के उस पेड़ के समान होता है जिनकी जड़े भूतकाल से जमीन में मिट्टी के नीचे गहराई तक फैली हुई होती है, परन्तु इसमें लगातार नई-नई डालियाँ, पत्ते, फूल, फल लगते रहते हैं।

दूसरा प्रकार है 'शिष्टगीत' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, 'शिष्ट' यानि सुरूचिपूर्ण तथा उच्च कोटि के अलंकारिक तथा छंद वाले गीत। लोकगीतों को आधार मानकर ही शिष्टगीतों की रचना हुई है। चुँकि इनकी रचना हाल फिलहाल में हुई है तो इनके रचयिताओं से भी लोग अवगत हैं।

कुछ प्रमुख कवियों में महाकवि घासीराम, हनुमान सिंह, भिखारी जी हैं। नागपुरी लोकगीत तथा शिष्टगीतों का संकलन, संपादन प्रकाशन तथा वितरण का कार्य 1910 ई. से ही प्रारंभ हो गया। 'नागपुरी फाग शतक', 'नागवंशावली झूमर' घासीराम द्वारा रचित है, जिनमें असंख्य गीतों का संकलन है। इस प्रकार अनेक गीत या राग कविता रूप में इन पुस्तकों में प्रकाशित हो चुके है परन्तु किसी भी कलाकार या कवि ने इन गीतों के धुन या छंद के विषय में नहीं लिखा है। इन गीतों को सुनकर एवं स्थानीय कलाकारों के समक्ष बैठकर ही सीखना होता है। झारखण्ड के लोकसंगीत कलाकर स्वरलिपि एवं ताललिपि से अवगत नहीं है, जिस वजह से आजतक किसी ने भी इन मधुर एवं झुमा देने वाले लयबद्ध गीतों को स्वरलिपि या ताललिपि बद्ध कर किताबी रूप में प्रकाशित नहीं किया। यहाँ तक कि गीतों के धुनों के विषय में अपनी पुस्तकों में चर्चा तक नहीं करते है, जो पुस्तकें प्रकाशित हुई है उनमें केवल ही गीतों के साहित्य की चर्चा तथा यहाँ के संस्कृति एवं रागों का वर्णन है। यहाँ के स्थानीय कलाकारों से भेंटवार्ता के पश्चात मैंने यह अनुभव किया कि ये लोग यहाँ के प्रचलित 'रागों' को इनके धुनों से नहीं बल्कि इनके शब्दों से ज्यादा पहचानते हैं। यही कारण है कि कवियों एवं साहित्यकारों ने अपने किसी भी ग्रंथ या पुस्तकों में 'राग' शब्द की सही व्याख्या नहीं की है। इसलिए मैंने नागपुरी लोकगीतों एवं शिष्टगीतों को अपने शोधकार्य द्वारा स्वरलिपि तथा ताललिपि बद्ध करने का बेड़ा उठाया है। यहाँ झारखण्ड की अलग से कोई स्वरलिपि या ताललिपि चिन्ह न होने के कारण मैं 'भातखण्डे' जी के स्वर तथा ताल चिन्हों के आधार पर ही अपने कार्य को अंजाम देने वाली हूँ। शोधकार्य के लगभग एक वर्ष की कड़ी मेहनत

के उपरांत मैंने यहाँ के प्रचलित दो रागों के विषय में ज्ञान अर्जित किया तथा इनके गीतों को सीखा।

पहला 'झूमर' तथा दूसरा 'झुमटा'। झूमर के विषय में मैंने पहले ही एक लेख लिख लिया जो अब प्रकाशित भी होने वाली है। आज चर्चा करूँगी 'झुमटा' राग के गीतों के विषय में।

शोध प्रविधि

चुँकि मैं नागपुरी गीतों के साहित्य पक्ष के साथ-साथ क्रियात्मक पक्ष पर भी प्रकाश डालना चाहती हूँ, इसलिए मुझे तथ्य संग्रह के प्राथमिक तथा द्वितीयक दोनों ही पद्धति की सहायता लेनी पड़ी। मैंने यहाँ के अनेक लोकसंगीत कलाकारों का साक्षात्कार लिया उनसे प्रश्न किए, यहाँ के प्रसिद्ध आखराओं में गई स्थानीय महिलाओं द्वारा पर्व-त्यौहारों तथा शादी-ब्याह में गाए जाने वाले गीतों को सुना और सीखा।

इसके अलावा संदर्भ ग्रंथों, पुस्तकों का अध्ययन किया, शोध-निदेशक तथा विषय के विशेषज्ञों से विचार विमर्श से ज्ञान अर्जित किए तथा अनुभव प्राप्त किया।

अध्ययन क्षेत्र

झारखण्ड में कुल नौ भाषाएँ प्रचलित हैं, जिन्हें तीन वंशों या जातियों में बाँटा गया है। 'झुमटा' राग के जो गीत है यह भी लगभग सभी नौ भाषाओं में गाए जाते हैं।

'झुमटा' और 'डमकच' राग के गीत विवाह के अवसर पर गाए जाते हैं। तो जाहिर सी बात है सभी भाषा-भाषी के झारखण्डी लोग इन गीतों को शादी-ब्याह के अवसर पर गाते हैं। मैं आर्य जाति के नागपुरी भाषा पर आधारित 'झुमटा' राग के लोकगीत के विषय में व्याख्या करने वाली हुँ।

तथ्य विवरण एवं परिणाम

झारखण्ड में सोलह संस्कार हैं जिनमें से विवाह एवं संस्कार है। विवाह के रीति-रिवाजों के साथ-साथ हर एक नेग-दस्तूर के गीत अधिकतर महिलाओं द्वारा घरेलू तरीके से गाने की परिपाटी यहाँ चलती आ रही है। विवाह के विभिन्न नेगों के अलग-अलग गीत होते हैं। जैसे लावा भूँजते समय का गीत, परछन के गीत, पानी काटते समय का गीत, सिंदुरदान, लगनदान, बेटी विदा करने के समय का गीत एवं इन सभी गीतों के धुन, लय तथा भाव अलग-अलग होते हैं। ऐसे गीतों को 'झुमटा' एवं डमकच नाम से जाना जाता है। झुमटा अर्थात एक जगह जमा होकर ताली बजाकर गाया जाने वाला गीत।

'झुमटा' राग के गीत शादी-ब्याह के मौसम में ही गाए जाते हैं। वसंत पंचमी से लेकर लगभग आषाढ़ महीना के द्वितीया तिथि यानी जब तक शादी का लगन रहता है गाया जाता है। विवाह तिथि तय होने के बाद से ही लड़के तथा लड़की के घर की महिलाएँ घर के आंगन में एक साथ झुंड बनाकर बैठकर या झूमते हुए इन गीतों को गाती है। विवाह तिथि तय होने के गीत, छेका के गीत, उबटन लगाने के गीत, मड़वा के गीत, विदाई के गीत ऐसे अनेक प्रकार हैं झुमटा के।

झुमटा राग के गीतों के शब्द श्रृंगार तथा विरह रस प्रधान होते है। यह एक जनानी राग है, जिसे सिर्फ महिलाएँ गाती है, हालांकि पुरूष भी कभी-कभी गायन, वादन तथा नर्त्तन में भाग लेते है। इसकी गति मंद होती है, यह बहुत ही प्रिय, मधुर, कोमल लेकिन उत्तेजक एवं प्राचीन नृत्य-गीत है। झुमटा में नर्त्तकों या गायक-गायिकाओं की संख्या की कोई सीमा नहीं है। यह आँगन के आकार पर निर्भर करता है, फिर भी 12-15 से अधिक लोगों की संख्या होती है। झुमटा राग के गीतों का लय अधिकतर मध्य लय या गति का होता है गीत बिल्कुल झुमा देने वाले होते हैं और इनकी धुने दिल को छु लेने वाली होती है। गीतों के मधुर धुन और मांदर के थाप दोनों के सम्मिश्रण से जो राग बनते हैं, बिल्कुल अन्तरआत्मा को छू लेती है, विभोर कर देती है।

चुँकि झुमटा जनानी राग का गीत है और शादी-ब्याह के अवसर पर गाए जाते हैं इसलिए अधिकतर घर के आँगन में या विवाह स्थल या मंडप के आसपास ही गाए-बजाए जाते हैं। महिलाएँ तथा पुरूष पारंपरिक तथा सुन्दर वस्त्र आभूषणों से सजते

हैं। महिलाएँ माथे में माँगटीका, नाक में नथिया तथा बेसइर, कानों में उपरकाना, कानपासा तथा कर्णफूल, गले में सिकरी, हसली, चिकदाना, हाथों में बाजू, टाड़, कंगना, अँगुली में अँगुठी, कमर में करधनी पैरों में कड़ा, पायल, पैर के अँगुली में झटिया, कतरी, अँगुठा पहनती हैं, जो सोने, चाँदी या गीलट के बने होते है, इसके अलावा यहाँ 'गुदवाना' बहुत प्रचलित है। यहाँ के क्षेत्रीय महिलाओं का मानना है कि आभूषण स्त्रीयों की शोभा है। सोना, चाँदी, गीलट के गहने पहनने से चोर लूट सकते हैं एवं मृत्यु के पश्चात ये गहने उनके साथ जा भी नहीं सकते लेकिन 'गुदना' के गहने न तो चोर चुरा सकते हैं और न ही मृत्यु के उपरान्त इसे उनके शरीर से उतारा जा सकता है इसलिए यहाँ के स्त्री, पुरूषों में गुदवाने का काफी महत्व है। जो गुदना गोदती है उसे 'गोदनी' या 'साखा' कहते है। आजकल हम गुदवाने को 'टैटू' कहते हैं जो न सिर्फ आदिवासियों में बल्कि देश-विदेश के सभी वर्ग के युवक-युवतियों में इन दिनों काफी प्रचलित है।

वस्त्र की यदि बात करें तो महिलाएँ लाल पाड़, पीले या सफेद रंग की साड़ी कुछ ऊँचा लेकिन घुटने से नीचे तक पहनती हैं और हाथों में रूमाल तथा जूड़े में फूल या मोरपंख इत्यादि खोस के नाचती है। पुरूष वर्ग सफेद या पीली धोती-गंजी, सर पे कलगी लगी पगड़ी पहनते हैं। ऐसी वेश-भूषा में पुरूष तथा महिलाएँ बिल्कुल रास-लीला करते हुए राधा-कृष्ण प्रतीत होते हैं।

महिलाएँ एक दूसरे का हाथ या कमर पकड़ कर सामने झुक-झुक कर झूमते हुए नृत्य करती हैं और गाती हैं। नृत्य की गति धीमी या मध्यलय में होती है। वाद्ययंत्र बजानेवाले अधिकतर पुरूष होते हैं और वे बीच में अपने यंत्र को गले में टाँगकर या हाथों से पकड़कर झूमते हुए बजाते हैं। नाचने वाली महिलाओं में प्रथम महिला या 'अगुआ' के हाथ में रूमाल या खंजरी होता है। यही महिला संगीत का नेतृत्व भी करती है। ताल तथा राग के बदलने पर इन महिलाओं के नृत्य के पैरों की चाल भी बदल जाती है। इनका नृत्य जितना सुन्दर और झुमाने वाला होता है, उतना ही कठिन भी। इनके पैरों के चाल से चाल मिलाकर नाचना आम महिलाओं के लिए कठिन है। झुमटा राग के गीतों के साथ अधिकतर ढोलक या ढोल, माँदर, नगाड़ा, शहनाई, बाँसुरी था ठेचका जैसे वाद्ययंत्र बजते हैं। ढोलक या ढोल, माँदर तथा नगाड़ा इन तीनों वाद्ययंत्रों को अवनघ वाद्य के अंतर्गत रखना सही होगा। नगाड़ा वाद्य यंत्र को झारखण्ड का प्रथम वाद्य माना जाता है। शुभकार्यों में तथा अखरा और शिकार मे इसे बजाया जाता है। झारखण्ड का प्रिय वाद्य है मांदर लगभग सभी झारखण्ड वासियों के घर मे मांदर जरूर टँगा रहता है। कहावत है—-

''माँदर किनलों रे दादा जनी किनल नियर लागेला।
माँदर फूटलो दादा जनी मोरल तरी लागेला।।''

यहाँ माँदर की तुलना स्त्री या पत्नी से की गई है। मांदर खरीदना यानि पत्नी घर लाना तथा मांदर का किसी कारणवश फूट जाना यानी स्त्री वियोग या पत्नी की मृत्यु समान दुःख।

झुमटा के अनेक प्रकार है जिनमे से बसंती झुमटा, दोहरी झुमटा, अंगनई झुमटा, अखरई झुमटा प्रमुख है। बसंत ऋतु में होने वाली शादी-ब्याह पर गाए जाने वाले 'बसंती झुमटा' राग के एक अति प्राचीन और मधुर लोकगीत की चर्चा करते हैं।

बसंती झुमटा लोकगीत
अम्बा मंजरे मधु मातलई रे
तइसने पिया मातल जाय रे
गंगा-जमुना नदी बहलई रे
तइसने पिया बहल जाय रे
अपने न आवयँ चिठी लिख भेजयँ हो
समुझी नैना ढरकत लोर
''तुलसी पतयँ चिठी लिख भेजयँ हो।
पिया मोर के लनबँय बुलाय दईया।।''

इस लोकगीत से विरह तथा श्रृंगार दोनों रसों का अस्वादन किया जा सकता है। नायिका या स्त्री अपने सखियों के साथ पति के विषय में बातें करती हैं और कहती हैं जिस तरह आम के पेड़ पर मंजर आने से मधु यानि मधुमक्खियाँ तथा भँवरे उन

मंजरों का रसास्वादन कर उन्माद उड़ते हैं ठीक उसी प्रकार मेरे पति भी प्रेमरस का अस्वादन कर खुशी के नशे में झूमते है।

गंगा-यमुना नदी जिस प्रकार अविरत बहती जा रही है ठीक उसी प्रकार मेरे पति भी इस प्रेमरूपी नदी में निरन्तर बहते जा रहे हैं और यह भी कहती है कि पिया से दूर मैं नहीं रह सकती उन्हें बुलवाने के लिए तुलसी के पत्ते पर चिट्ठी लिखकर भेजुँगी। इस गीत के साथ मांदर पर जो बोल बजेंगे वे इस प्रकार है-

1	2	3	4	5	6	7	8	1
धिकधि	कताड़ी	-	धिकताड़ी	-	तातांटिं	किड़तांग	किड़तांग	धिकधि
x				o				x

विभागों की दृष्टि से यह हमारे आठ मात्रा के 'कहरवा ताल' के समान है। इस गीत के स्वर राग 'मियाँ की सारंग' से बहुत मिलती है। इस लोकगीत में सारंग के साथ शुद्ध 'धैवत' का प्रयोग हुआ है, जो कि 'मियाँ की सारंग' में भी सुनने को मिलता है। मियाँ मल्हार के समान दोनों निषाद का भी प्रयोग किया गया है। न जाने किस गुणीजन या रसिक ने इस गीत की धुन बनाई होगी।

आश्चर्य की बात है जिन नागपुरी आदिवासियों को शास्त्रीय संगीत का सा रे ग म ..... तक मालुम नहीं है कैसे उन लोगों ने इतने मधुर रागों के गीतों की रचना की। इसलिए यह कहावत बिल्कुल सही है कि लोकसंगीत ही शास्त्रीय संगीत की जननी है।

निष्कर्ष :-

झारखण्डी लोकसंगीत पर शोध करते हुए मैंने यह पाया कि यहाँ के अधिकतर लोकगीत तथा शिष्टगीत की धुनें 'औडव' जाति के हिन्दुस्तानी शास्त्रीय रागों से मिलते हैं और यदि तालों की बात की जाए तो 6 मात्रा तथा 8 मात्राओं वाले तालों पर ही अधिकतर गीत बद्ध होते हैं। इस लेख में मैंने मांदर के जिस ताल के ठेके को लिखा है उसे अपने अनुभव के आधार पर ताली, खाली, विभाग, मात्राएँ देकर तालिलिपि बद्ध किया है। सही ताल एवं स्वर का ज्ञान होने पर ही इस मधुर लोकसंगीत को भारत ही नहीं बल्कि पूर विश्व के लिए सहेजा जा सकता है। इसलिए यह अत्यंत आवश्यक है कि इन गीतों के क्रियात्मक पक्ष पर पुस्तकें, लेख इत्यादि लिखें जाए और विश्व के समक्ष इसकी समृद्धता और उत्कृष्टता पर प्रकाश डाला जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. झारखण्ड के लोकनृत्य - डॉ गिरिधारी राम गौंझू
2. झारखण्ड के लोकवाद्य - डॉ गिरिधारी राम गौंझू
3. नगपुरी सदानी साहित्य - पीटर शांति नवरंगी

वृत्तचित्र : भारतीय शास्त्रीय संगीत के संरक्षण के संदर्भ में एक प्रयास

प्रो. संगीता पंडित
गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शिवानी चौरसिया
शोधार्थी, गायन विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सार-संक्षेप

मीडिया और जन संचार प्रौद्योगिकियों के विकास के साथ-साथ विशेष रूप से विभिन्न मीडिया प्लेटफॉर्म या माध्यमों द्वारा प्रस्तुत की जा रही सामग्री के चयन में लोगों की सोच भी विकसित हुई हैं। कठिन जीवन शैली, समय का अभाव और आजीविका की भागदौड़ ने उन्हें अपनी प्राथमिकताओं और अपनी इच्छाओं के बीच चयन करने के लिए विवश कर दिया है। वे दिन गए जब लोग एक कप चाय के साथ किताबें, समाचार पत्र या पत्रिका लेकर सुबह का आनंद ले सकते थे और जब तक चाहें तब तक जारी रख सकते थे, भले ही वे इसकी इच्छा रखते हों। स्मार्टफोन, गैजेट्स और इंटरनेट के आगमन ने हमारे रहन सहन को प्रभावित किया है और धीरे-धीरे यह हमारे जीवन शैली का अभिन्न अंग बनता जा रहा है, भले ही इसकी कीमत कुछ भी हो। फलस्वरूप हम लगातार लिखित या प्रकाशित सामग्री में अपनी रुचि खो रहे हैं। निश्चित रूप से, दृश्य-श्रव्य सामग्री एवं चलचित्रों का हमारे मस्तिष्क पर लिखित सामग्री के पठन की अपेक्षा अधिक प्रभाव पड़ता है।

पाठ्यपुस्तकों से लेकर समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, लेखों, इतिहास की पुस्तकों, साहित्य, आत्मकथाओं, कहानियों आदि तक हर जगह यही सिद्धांत लागू होता है, लेकिन, गहराई में देखने पर, हम पाते हैं कि हमारे पास अभी भी इसका एक क्रांतिकारी विकल्प है और वह है वृत्तचित्र। इस लेख में हम वृत्तचित्रों के सभी पहलुओं में होने वाले लाभों का पता लगाने का प्रयास करेंगे। इसके अलावा, हम इसकी भूमिका, इसके अनुप्रयोगों, भविष्य और संगीत प्रथाओं में इसकी प्रासंगिकता पर चर्चा करेंगे।

बीज शब्द

वृत्तचित्र, संगीत, कला, संस्कृति, वैश्वीकरण।

वण्तााचित्रा : भारतीय शास्त्रीय संगीत के संरक्षण के संदर्भ में एक प्रयास

भूमिका

सूचनाओं का संकलन करना आरंभ से ही मानव की प्रवृत्ति रही है और अपने अनुभवों को संरक्षित कर आने वाली पीढ़ी के लिए हस्तांतरित करते रहना मानव का सदा से ही स्वभाव रहा है। यदि हम विश्व सभ्यता की बात करें तो यह ज्ञात होगा कि मानव मे चिंतन का विकास होने के बाद से ही संकलन और संरक्षण का भाव भी अंतर्निहित हुआ। फलस्वरूप उसमे तत्कालीन जीवन शैली को सँजोए रखने के

लिए विभिन्न माध्यमों का आविष्कार कर उसका प्रयोग किया। अपने इसी ग्रहनशीलता एवं समन्वय की प्रवृत्ति के कारण इसमें परिवर्धन तथा परिवर्तन होता रहा और समय के साथ ही साथ विकास भी होता चला गया।

जब हम भारतीय संस्कृति के प्रारम्भिक काल की बात करते है तो यह ज्ञात होता है कि 'भारतीय इतिहास में पहली सुव्यवस्थित संस्कृति का प्रारंभ हड़प्पा संस्कृति में ही दिखता है।'[1] कहा जा सकता है कि मानव सभ्यता के विकास के साथ ही प्रलेखीकरण का विकास आरम्भ हो गया था। इसी संदर्भ में हमें यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन संस्कृतियों में हड़प्पा संस्कृति का विस्तार काफी वृहद था। इसमें मूर्तियाँ, मोहरें, मृदभांड और अन्य लघुकलाएं प्राप्त होती हैं, जिससे हमें यह ज्ञात होता है कि इस संस्कृति में प्रलेखीकरण का पर्याप्त विकास हो चुका था। इसी प्रकार विभिन्न काल खंडों में हमें प्रलेखीकरण के अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं, जिनसे हमें यह ज्ञात होता है कि यह मनुष्य के जीवन शैली का अभिन्न अंग है।

वृत्तचित्र : सामान्य परिचय

वास्तव में मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं एवं उपलब्ध संसाधनों के आधार पर लगभग हर समय काल में सूचनाओं के संकलन के लिए भिन्न-भिन्न माध्यमों का प्रयोग किया है। इसी प्रकार एक अन्य उद्धरण से सम्राट अशोक के समय में शिलालेखों तथा स्तंभों पर सूचनाओं के अंकन द्वारा वृहद् जनसमूह तक इनके प्रसारण की व्यवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त होता है। सांकेतिक चिन्हों और चित्रों से लिपि, अक्षर और भाषा के विकास तक के क्रम मे मनुष्य ने आधुनिकीकरण के साथ ही विभिन्न नए माध्यमों के प्रयोग किये एवं संस्कृति तथा सांस्कृतिक विस्तार के नए तरीकों की खोज की। तकनीकी के विकास के साथ तथा इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के प्रचलन में आने के बाद संगीत के विस्तार की संभावनाओं को गति प्राप्त हुई। बौद्धिक विकास के क्रम में सूचना संकलन के इन तौर तरीकों में भले ही बदलाव देखने को मिले हों, किन्तु सबका उद्देश्य सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत को सँजो कर रखना ही रहा है। यह कहना गलत नहीं होगा कि, मानव विकास के क्रम में जिस प्रकार तकनीकी ने मानव जीवन को प्रभावित और परिष्कृत किया है, उसी प्रकार मानव जीवन से सम्बंधित सभी क्षेत्रों को भी अपने व्यापक प्रभाव में समेट लिया है। परिणाम स्वरूप भारतीय संस्कृति ने सीमाओं की बाधा को तोड़कर समूचे विश्व में अपनी जगह बनायी है और इसमें संचार एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का महत्व सर्वाधिक रहा है। 'संचार के आधुनिक रूप की जन्मदात्री इलेक्ट्रॉनिकी है जो विश्व की नियामिका बन चुकी है।'[2] अतः हम कह सकते हैं कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से हम विश्व के किसी भी कोने में बैठ कर देश-विदेश में घट रही घटनाओं और गतिविधियों की झलक घर बैठे आसानी से देख सकते हैं। मात्र इतना ही नहीं तकनीकी में विकास होने के कारण उन्हें विभिन्न यंत्रों में संगृहीत करके आने वाले भविष्य के लिए भी उसे संरक्षित कर सकते हैं। तकनीकी और एलेक्ट्रॉनिक मीडिया के इसी प्रभाव ने वैश्वीकरण मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और इसका साक्षात प्रमाण है वृत्तचित्र।

मूल रूप से वृत्तचित्र वास्तविक घटनाओं, किसी विशेष विषय के प्रलेखीकरण अथवा किसी व्यक्ति विशेष के जीवनवृत्त का वर्णन, किसी यात्रा अथवा किसी ऐतिहासिक घटना, जगह अथवा कथा का दस्तावेजीकरण करने के लिए बनाई जाने वाली फिल्म (गति-चित्र) है। जिसका उद्देश्य इन घटनाओं को जन-साधारण तक पहुंचाने के साथ-साथ उसका संकलन करना तथा उसे भविष्य के लिए संरक्षित करना है। 'The Documentary or non-fictional film is an elaborate method of recording the lives and activities of real person, but constructed and recreated nevertheless to tell an interesting story.'[3] अर्थात वृत्तचित्र या गैर-काल्पनिक फिल्म किसी व्यक्ति विशेष के जीवन और गतिविधियों को संकलित और संरक्षित (रिकॉर्ड) करने का एक अत्यंत प्रभावी माध्यम है, जिसका

निर्माण कहानी को रोचक ढंग से बताने के उद्देश्य से किया जाता है। वृत्तचित्र अथवा 'डॉक्यूमेंटरी किसी भी विषय पर सूचना, शिक्षा और ज्ञान के लिए किसी भी बिंदू को आधार बना कर लिखी जा सकती है।'[4] वृत्तचित्र को अँग्रेज़ी भाषा मे डाक्यूमेंट्री कहा जाता है, जो डॉक्यूमेंट शब्द से लिया गया है तथा इसका शाब्दिक अर्थ लेख अथवा प्रमाणपत्र है। इसके साथ ही हिन्दी भाषा में 'वृत्तचित्र, के संबंध मे कोश मे उल्लिखित है- शिलालेख, विशिष्ट घटना या कार्य की जानकारी के लिए दिखाया जाने वाला सिनेमा चित्र (न्यूज़रील)।'[5]

इन दोनों ही भाषाओं मे से जो अर्थ सामने आता है वह है प्रमाण और सत्यता। कहने का तात्पर्य यह है कि वृत्तचित्र अथवा डाक्यूमेंट्री का प्रामाणिक और सत्यपरक होना आवश्यक है। अतः यह कहना अनुचित नहीं होगा कि वृत्तचित्र एक ऐसी विधा है जो किसी घटना, व्यक्ति विशेष, यात्रा, ऐतिहासिक घटना अथवा जगह, सत्य परक तथ्य, सूचनाओं और परिस्थिति पर आधारित फिल्म होती है, जो दृश्य और ध्वनि दोनों ही माध्यमों से प्रस्तुत की जाती है और जिसका उद्देश्य मात्र मनोरंजन करना ही नहीं अपितु सत्यता का ज्ञान, शिक्षा और सही सूचना को जनसाधारण तक सुलभ कराना है।

'The documentary had its beginnings in 1922 when Robert Flaherty, took his camera to the Arctic regions to film the life of an Eskimo family.'[6] वृत्तचित्र के उद्भव के विषय में यह जानकारी प्राप्त होती है कि विश्व मे सर्वप्रथम वृत्तचित्र "नानुक ऑफ़ द नॉर्थ" के नाम से बनाई गयी थी, जिसका निर्माण अमेरिकी फिल्म निर्माता, रॉबर्ट लेहर्टी ने सन् 1922 ईद्व के द्वारा किया गया था। इतिहास की दृष्टि से इसे ही प्रथम मूल वृत्तचित्र माना जाता है, यह फिल्म एक एस्किमो परिवार के वास्तविक जीवन को दर्शाती है। इसके पूर्व मे भी इस प्रकार की फिल्मों का कुछ प्रमाण मिलता परंतु औपचारिक रूप से "नानुक आफ़ द नॉर्थ" को ही प्रथम वृत्तचित्र माना जाता है। यूरोपीय प्रशिक्षित फिल्म निर्माताओं, पी. वी. पाथी, डी. जी. तेंडुलकर तथा केद्व एसद्व हिरलेकर द्वारा भारतीय वृत्तचित्र का बीड़ा उठाया गया था। अतः इन्हे भारत में वृत्तचित्र के निर्माता के रूप मे जाना जा सकता है। 'They introduced editing, a vivid commentary style, effective music and sound effects. Between 1920 and 1940, more than 1500 short films were produced.'[7] इनके द्वारा 1920-1940 तक के समय में 1500 से भी अधिक लघु फिल्मों का निर्माण किया गया। भारत मे जून 1949 तीन वृत्तचित्र "Kashmir carries On", "India Independent" और "Immersion of Gandhi Ji'sAshes" का प्रसारण किया गया।

वृत्तचित्र : सांगीतिक परिप्रेक्ष्य

वृत्तचित्र के इस विकास क्रम में, क्रमशः प्रत्येक क्षेत्र ने इसकी महत्ता को समझा तथा नए प्रयोगों एवं सामग्रियों को इसमे सम्मिलित कर इस विधा को समृद्ध किया है। शोधकर्ताओं, पत्रकारों, फ़िल्मकारों तथा विभिन्न क्षेत्र के विद्वतजनों ने समय समय पर वृत्तचित्र के माध्यम से विलुप्त होने के कगार पर खड़ी हमारी धरोहरों को संरक्षित किया है। इसके साथ ही काल खंड के अनुसार तत्कालीन सरकारों ने जनुपयोगी योजनाओं तथा जनजागरण के अनेक उदाहरण प्रसारित एवं सफलतापूर्वक कार्यान्वित किए हैं।

जब हम सांस्कृतिक संरक्षण की बात करते हैं, तो यह बात सबसे पहले सामने आती है कि किसी भी देश कि संस्कृति में उस देश की कला भी सम्मिलित है और कलाओं के अभिव्यक्तीकरण में संगीत सबसे सशक्त माध्यम है तथा होने वाले वाले विभिन्न नवीन परिवर्तनों का प्रभाव कला पर भी पड़ता है, तो संगीत भी इससे भिन्न नहीं हो सकता। संगीत के क्षेत्र में भी विभिन्न ऐसी विधाएं हैं जो या तो लुप्त हो चुकी हैं या लुप्त होने की कगार पर हैं। अन्यत्र संगीत की जानकारी बहुत सीमीत लोगों तक ही है, जैसे संगीत के विद्यार्थी, संगीतज्ञ अथवा कलाकार, रसिकजन तथा कुछ अन्य परंतु सीमित। इस परिप्रेक्ष्य में सांगीतिक वृत्तचित्र, संगीत का संरक्षण

करने, इसे जनसाधारण तक सुलभ कराने, लुप्त हो रही विधाओं, वाद्यों, शैलियों आदि को संरक्षित करने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य कर सकता है। अतः इस कला के परिवर्धन तथा संवर्धन के लिए विभिन्न सरकारी, गैर सरकारी संस्थाओं, शोधकर्ताओं और फिल्म निर्माताओं के द्वारा विभिन्न सांगीतिक वृत्तचित्र बनाए गए हैं। जिनमें से कुछ की रूप रेखा और विषयवस्तु के विषय मे हम यहाँ अतिसंक्षिप्त रूप मे चर्चा करेंगें।

"Raga Revelry :A Journey Through North Indian Classical Music"[8]

नामक यह वृत्तचित्र 2012 मे संगीत नाटक अकादमी द्वारा अधिकारित है, जिसका निर्देशन महेश नायर, निर्माता श्रीदेवी ठक्कर तथा सूत्रधार एवं लेखक पंद्म विजय किचलू जी हैं। इस वृत्तचित्र के अंतर्गत सांगीतिक विरासत को चलायमान बनाने के लिए विजय किचलू जी के माध्यम से दर्शकों को भारतीय संस्कृति से अवगत कराया जाता है। जिसमें विभिन्न कलाकारों के साक्षात्कार और सांगीतिक कार्यक्रमों और सजीव प्रस्तुतियों को प्रदर्शित किया गया है।

"Documentary Classical IndiaWorld music"[9] नाम के इस वृत्तचित्र का निर्देशन 2008 में Barbas Christos के द्वारा किया गया है जिसका निर्माण ऑनोस प्रोडक्शन के अंतर्गत किया गया है। यह वृत्तचित्र यात्रा वृत्तान्त के रूप मे प्रस्तुत किया गया है, जिसमें भारत के कुछ सुविख्यात संगीतकारों जैसे तबलावादक उस्ताद जाकिर हुसैन जी, सितार वादिका विदुषी अनुष्का शंकर जी, वायलिन वादक पं. एल. सुब्रमण्यम जी, सरोदवादक उस्ताद अमजद अली जी, चित्रा वीणा वादक पंद्म रविकिरण जी और कई अन्य संगीतकार और कलाकार से वार्तालाप के आधार पर शास्त्रीय संगीत के विभिन्न तत्वों पर चर्चा की गयी है।

"Ocean of Melody"[10] नामक वृत्तचित्र 2014 मे लायली दत्ता के द्वारा निर्देशित की गयी है जिसके निर्माता श्री रवि मेहरोत्रा हैं। पब्लिक सर्विस ब्रॉडकास्टिंग ट्रस्ट के द्वारा निर्मित किया गया है। ओशन ऑफ मेलोडी दो-भाग मे विभाजित वृत्तचित्र है जो उन प्रमुख पक्षों पर चर्चा करती है जो भारतीय शास्त्रीय संगीत के दोनों रूपों अर्थात हिंदुस्तानी संगीत और कर्नाटक संगीत के विषय मे चर्चा कि गयी है। इस वृत्तचित्र के अनतर्गत शास्त्रीय संगीत कि गहनता के विषय में विस्तृत रूप मे चर्चा की गयी है।

"Classical Music of North India Series"[11] नामक वृत्तचित्रों की शृंगार बनाई गयी जिसके निर्माता और निर्देशक जेम्स बेवेरिज हैं तथा इसका स्वायत्त अधिकार जामिया मिलिया इस्लामिया द्वारा अधिकृत है। जिसमे भारत के विभिन्न शास्त्रीय संगीतज्ञों, कलाकारों, घरानों, वाद्यों एवं वादकों के प्रस्तुतीकरण, गुरु-शिष्य परंपरा, शैक्षिक तकनीक आदि विभिन्न तत्वों को अत्यंत अद्भुत रूप से समेटा गया है।

इसके साथ ही शास्त्रीय संगीत के अनेकों कलाकारों के जीवन पर, वाद्यों, घरानों, नृत्य शैलियों, नाट्य, लोक संगीत आदि विभिन्न विधाओं पर वृत्तचित्रों का निर्माण किया जा चुका है। जिनमें से कुछ मुख्य वृत्तचित्रों के नाम इस प्रकार हैं। "पं. ओंकार नाथ ठाकुर", "उस्ताद अलाउद्दीन खां", "ध्रुपद", "सिद्धेश्वरी", "The Immortal Songs", "पं. भीमसेन जोशी", "पं. जसराज" आदि कई सुविख्यात विद्वानों पर वृत्तचित्र बनाए जा चुके है और निरंतर बनते भी जाएंगे।

उपर्युक्त उल्लिखित सभी अथवा अन्य जिनका शब्द सीमा के कारण वर्णन कर पाना संभव नहीं है, उन सभी के अध्ययन का सार इस प्रकार से वर्णित किया जा सकता है कि, प्रलेखीकरण एक ऐसा माध्यम है जो ज्ञान को समय की बाध्यता से मुक्त करता है। निश्चय ही मौखिक माध्यम से व्यक्त अथवा लेखक की लेखनी से प्राप्त सूचनाओं में वास्तविकता तथा व्यक्ति विशेष की अपनी सोच या दर्शन का सम्मिश्रण ही प्राप्त होता है अथवा त्रुटि की संभावनाएं विद्यमान रहती हैं। किन्तु, चलचित्रों के प्रभाव से किसी घटनाक्रम, व्यक्ति या परिस्थिति का यथार्थपरक तथा सजीव विवरण ही प्राप्त होता

है, जिसमें अन्य बाह्य कारकों के प्रभाव से दोष उत्पन्न होने की संभावना न के बराबर होती है।

उपसंहार

कहा जा सकता है कि वृत्तचित्र माध्यम एक ऐसा दर्पण है जिसमें समय की सीमाओं से परे हम अतीत की झलक प्राप्त कर सकते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर इसे स्रोत अथवा साक्ष्य के रूप में भी प्रयोग कर सकते हैं। इसके साथ ही विद्यालयों और विश्वविद्यालयों व शैक्षिक संस्थाओं मे ज्ञान संवर्धन के रूप मे भी इनका प्रयोग किया जा सकता है। वृत्तचित्रों के माध्यम से ही हम आज ऐसे अनेक लोगों के हाव भाव, उनके व्यवहार, उनकी जीवन शैली, कार्यशैली सामाजिक योगदान तथा राष्ट्र निर्माण में उनकी भूमिका की झलक प्राप्त कर सकते हैं जो शरीर की नश्वरता के कारण हमारे मध्य नहीं हैं। इसके साथ ही संगीत के विद्यार्थियों तथा शोध छात्रों के लिए यह क्षेत्र नवीन तथा असीम संभावनाएं समेटे हुए है, जिसके द्वारा संगीत विषय से जुड़ा व्यक्ति ज्ञानसंवर्धन के साथ ही इसे जीविकोपार्जन के संदर्भ मे भी प्रयोग कर सकता है।

यह एक शक्तिशाली माध्यम है, जो हमें महत्वपूर्ण विषयों से संबंधित सूचनाओं के संकलन तथा संरक्षण से सम्बद्ध एक आदर्श मंच तथा घटनाक्रम की भावनात्मक अनुभूति प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करता है। संगीत, कला, संस्कृति तथा मौलिकता के संरक्षण की दिशा में वृत्तचित्रों के अधिकाधिक उपयोग से हम निश्चय ही भावी पीढ़ियों के लिए एक दृढ़ सांस्कृतिक विरासत निर्मित करने का प्रयत्न कर सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. चतुर्वेदी, संतोष कुमार, भारतीय संस्कृति, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1 प्रथम संस्करण-2011, पृ. सं. 39
2. तिवारी, डॉ. अर्जुन, सम्पूर्ण पत्रकारिता, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पंचम संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण-2018, पृ. सं. 436
3. Kumar, Keval J. Mass Communication in India, Jaiko Publishing House, Mumbai, Fifth Jaiko Impression-2016, Pg. 215
4. तिवारी, डॉ. अर्जुन, आधुनिक पत्रकारिता, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संशोधित एवं परिवर्धित षृष्ठ संस्करण-2010, पृ. सं. 230
5. तिवारी, डॉ. अर्जुन, आधुनिक पत्रकारिता, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संशोधित एवं परिवर्धित षृष्ठ संस्करण-2010, पृ. सं. 230
6. Kumar, Keval J. Mass Communication in India, Jaiko Publishing House, Mumbai, Fifth Jaiko Impression-2016, Pg. 216
7. Kumar, Keval J. Mass Communication in India, Jaiko Publishing House, Mumbai, Fifth Jaiko Impression-2016, Pg. 218
8. https://www.artfilms-digital.com/item/raga-revelry
9. https://www.medici.tv/en/documentaries/classical-india/
10. https://www.youtube.com/watch?v=Os-zI9wsJ5s
11. https://www.youtube.com/watch?v=vF96Yf0mnTo

A Brief Study in Aspects of Gurmat Music with Respect to Hindustani Classical Music : A Comparative Analysis

Dr. Rajpal Singh
Supervisor
Faculty of Music & Fine Art
University of Delhi, Delhi

Karanjeet Singh
Research Scholar
Faculty of Music & Fine Art
University of Delhi, Delhi

Abstract

Music is an Universal art. Indian music has evolved over time into various branches such as classical and folklore. Indian classical music is an ancient tradition. Gurmat Sangeet (Music) is considered as one of its branches. Around the 12th Century, Nayanars and Alvars who were the followers of Shaiv Mat and Vaishnav Mat originated an exhaustive independent form of music known as the Kirtan tradition.The First spiritual leader of Sikhism Shri Guru Nanak Dev while propagating Sikhism used a new form of Kirtan known as "Shabad Kirtan" and established Gurmat Sangeet as form of music. It is evident from the fact that many different forms of Gurmat Sangeet such as Baramah, Ghodiyan, Alahuniyan, Mundabani, Ashtpadi, Do Padey, etc are inspired by Hindustani classical music. Despite the similarities with Hindustani classical music. They are not identical and have prominent differences, Gurmat Sangeet has its uniqueness as a musical form. The central purpose of this research paper is to analyze above mentioned similarities and differences between Hindustani classical music and Gurmat Sangeet and discussing the nuances of Gurmat Sangeet as an independent form of music.

Key Words

Hindustani Music, Kirtan, Shri Guru Nanak Dev, Shaiv and Vaishnav Mat, 22 Vaars

Introduction

The appropriate meaning of the word "Sangeet" (Music) is the Geet which is sung properly. Sangeet is made of two words Sam and Geet. Indian music has a rich history, it has been under modifications since the Vedic period. Today's Hindustani Classical Music is a result of all those modifications that happened over time. In ancient times,

Geeti Gayan was prevalent, it was followed by Prabandh gayan, then the practice of Dhrupad became prominent and in the current period, the form Khyal is extremely prevalent and has occupied bulk of the practice of Hindustani Classical music. But few aspects of Dhrupad and other forms of classical music such as Holi, Dhamar, etc. are in practice.

Since ancient times, two forms of music are prevalent. The first is Deshi sangeet and the second is Margi sangeet. The main objective of Deshi sangeet is to sooth the heart and soul of listeners. Any form of music and dance which can serve this purpose comes under this category. Margi sangeet is a form that motivates one to follow the sacred path of religion and Moksha. According to a well-known scholar, Pt. Vishnu Narayan Bhatkhande Margi, sangeet is a form of music that was created by Gods like Brahma, practiced by sages like Bharata Muni in front of the God Shiva. Another scholar Padbandhopadhyaya argues that Margi sangeet was nothing but Sam gaan and Bhakti gaan of the Vedic period. On the contrary, the Deshi sangeet which is the music from different places of India later become prominent as Hindustani and South-Indian music. In this context, It is correct to argue that Margi sangeet is related to Gods and diety of Hinduism, while Deshi sangeet is limited to Indian classical music only.

Deshi sangeet was brought into existence by common people with a motive to satisfy their musical needs. Probably that is why its always dynamic. Deshi sangeet is in relation to lok gaan. Margi sangeet existed in Vedic times in the form of Sam gaan and Bhakti sangeet, that is why it is considered as a category of Gandharva gaan. It can be rightfully proposed that over time Margi sangeet modified in the form of Kirtan tradition which is a collaboration of music and religion. In the 12th century, two groups of devotees from southern India known as Nayanars and Aalwaras who were the followers of Shaiv Mat and Vaishnav Mat strongly contributed to the promotion of Kirtan tradition as an independent form. The founder of the Vaishnav lineage was Nimbarak Acharya. He emphasized over worshiping of Radha, and influenced bit other groups such as Varkari, Vallabh, Haveli came into existence. Gurmat sangeet's existence can be understood as the continuation of these traditions.

Hindustani classical music and Gurmat has a plethora of similarities as well as dissimilarities. Sikh religion has adopted and magnificently applied the pre-existing tradition of Naad sangeet and Kirtan as its component. In their adoption, they made some modifications in it. Great Gurus of Sikh religion combined the sacred words of Sikh religion with Kirtan and made a separate form of Kirtan known as "Shabad Kirtan." In Gurmat sangeet, Shabad expresses the teachings and messages of great Gurus of Sikh religion with the help of raag sangeet presented through Kirtan. Therefore, it can be said that Gurmat sangeet follows the philosophy of Margi Sangeet.

The wording used in the Gurmat sangeet is an exact expression of spirituality. In Gurbani, the Shabad (lyrics) are considered more important than the technical nuances of classical music such as swar, taal, Gamak, Meend,

etc. On the contrary Hindustani classical music poetry is never considered as the central part of the practice instead these nuances and technicalities are given more importance. Hindustani classical has a general practice where raga is seen as of the supreme importance and all the aspects of the practice such as Alap, Taan, Khatka, Murki, etc are done accordingly. To serve this purpose, Hindustani music does not use specific words for Alap and often Alaps are done in form of "Nome tome" or Akar, which does not have any literal meaning. But it is also argued by scholars that these methods of Alap are modified or deteriorated version of "*tu hari anant*".

The tradition Gurbani is more specific about the selection of words for alap. It generally uses phrases such as

"Dhann Surag surgande alapat sab tikh jaye"

(S.G.G.S.958)

or

"*Omkar ake dhun alapey*"

(**S.G.G.S.885)**

whose evidences are found in the sacred text of Sikhism known as Shri Guru Granth Sahib. Gurabani sangeet has tradition of reciting the poetry in alaps which depicts positivity.

In Indian classical music, every concert is generally begun by Saraswati Vandana. It is either sung by a group of singers or solo. The rationality behind this practice that Saraswati is considered as a Goddess of knowledge and music. Gurmat sangeet has a similar practice that has gone through some modifications over time. Till the period of the first four Gurus of Sikhism, the enchantment of "Ek Omkar" was prevalent but during era of the 5th guru, Guru Arjun Dev few changes were made. During that time the tradition of dandaut was introduced.

In place of Vandana, following couplet were introduced.

Dandaut bandan anik bar sarb kala samrath
Dolan te rakho prabhu nanak dey kar hath ***(S.G.G.S.226)***

Gurbani music has a tradition of "Shabad Kirtan" which is sung through "Shabad chounkiyan." There are four different chounkiyans in Gurbani music. Chaunki of Asavari, Chanuki of Bilawal, Saudar and the Chaunki of Kirtan Sohela. Gurbani music has a special significance for raga Asa. This raga is usually sung in the morning as well as evening. This unique kind of singing is not found anywhere related to Indian religious music. In Hindustani music, all ragas are considered equally important but in light classical music ragas such as Bhairvai, Pilu, Khamaj, etc are used more frequently.

The core philosophy of the sacred text of Sikhism is Guru Granth Sahib. It contains texts which are only linked to religion and worshiping the God. Each and every word has its meaning and is significant. Gurmat sangeet follows this philosophy. On the contrary, Hindustani classical music has forms such as "Tarana" which uses words without any literal meaning.

In musical forms such as these artistic capabilities takes the central position and technical nuances such as Bol Baat, Taan, are applied more to make it explicit.

In Guru Granth Sahib, 22 Vaars are

found and nine of them have Dhuni Sirlekh (composition) noted over them. For instance, the first Vaar of Asa has Dhuni of "Tunde Aas Raje" mentioned upon it. On the other, if we analyse Indian classical music in its primordial stage, it used to follow the principle of Ragas and Raginis. We can comprehensively conclude that Bhairav was considered as their most important Raga. In Gurbani sangeet Raga "Shri" is considered as the first and the most important raga of their system. With that being said, Gurbani sangeet follows the same course of ragas as followed by Hindustani music beginning from Raga Kafi to modern Raga Bilawal.

Hindustani music is a raga-centric music. Some of its ragas are adopted from south- indian music. For instance, Raga Shivranjani, Raga Kirvani, Raga Madhuvanti, etc.

In Gurbani music, when a South-Indian raga is used, the word "Dakshin" (Southern) is adopted before it to specify that. In Gurbani music following ragas are used. They are Gaudi Dakshini, Vadhans, Bilawal Dakshaini, Ramkali Dakshini, Maru Dakshini, and Prabhati Dakshini. Guru Nanak Dev made an effective and successful attempt of making Hindustani classical music closest to South-Indian Classical music.

Gurmat sangeet with its adoption and amalgamation with Hindustani music has created many different forms of music, most of them are in practice. A prime example of it is Padtaal. In Padtaal gayaki, different paragraphs of the composition are sung or played in different talas except for the first paragraph which is always performed in the same tala. Hindustani music does not have any form such as Padtaal. Padtaal gayaki was invented by Shri Guru Ram Das Singh which is prominent in current form of Gurmat sangeet. Guru Ram Das Singh created total 19 padtaals.

Conclusion

In the end, we can conclude that the Gurbani sangeet has made a significant contribution to Indian music. They first followed the Margi sangeet of Hindustani music and then developed as an independent form of music. Gurbani music has contributed quite effectively in lessening the gap between Hindustani classical music and south-Indian classical music by adopting a few of the ragas of South-Indian music in their practice. Even after all of these vibrant practices, rich culture, and the valuable contributions made by Gurbani sangeet, it still has not been able to gain recognition from the international stage as an independent form of music.

Bibliography

1. Bhatkhande, Narayan Vishnu.(1981). *Shri Mallakshaya Sangeetam*, Translated by Gunwant Madhavlal Das. 1st ed. Bhopal: Hindi Granth Academy.
2. Yaman, Ashok Kumar. (2008). *Sangeet Ratnawali*. Chandigarh: Abhishek Publications.
3. Padam, Varindra Kaur.(2005). *Gurmat Sangeet Da Sangeet Vigyan*, Amritsar: Amarjeet Sahitya Prakashan.
4. Bandhopadhaya Shripad.(1949). *Evolution of Songs and lives of Great Musicians*. Delhi: Vaani Mandir,
5. Singh,Gurnam.(2012). *Gurmat Sangeet Prbandh Te Pasaar.* Punjabi University, Patiala.

A Psychoanalytic Study of Select Short Stories of Munshi Premchand

PROF. GUNJAN SUSHIL
Department of English & M.E.L.
University of Allahbad

NEHA SINGH
D.Phil. Student
University of Allahbad

Abstract

The human brain, often known as psychology, possesses cosmic abilities. It also has its own method of operation. When someone suppresses their wants, it has an impact on human psychology and persists in the person's unconscious mind. So it is obvious that our sical hegemony, personal ideology, upbringing, and company, directly or indirectly, make up our personality. In this research paper, we tend to discuss some short stories by Munshi Premchand and analyse the contemporary social, political, and personal reasons that made his characters more compassionate and, comparatively, more sentimental. His stories, "The Salt Inspector"(1925), "Violence is the Absolute Religion"(1926), "A Wintry Night"(1930), "Eidgah"(1933), and "Shroud"(1936), are all greatly connected with the human emotional development and also bring the harsh realities of India under British rule. His characters are suffering from poverty, harassment, mental torture, and personal dissatisfaction. Though the poor and suppressed are sensitive in nature, there is a lack of emotions in upper class Indian folks. And among all these ups and down, we also witness the picture of nationalism, morality, dedication, love, and affection in his stories. This paper also puts Munshi Premchand's stories under the analytical classification of Sigmund Freud's human psyche: id, ego, and superego.

Keywords

Psychoanalysis, Suppression, Emotions, Idealism, Reality

When we talk about sensitivity or emotions, we're not just talking about the emotional parts of our lives; we're also talking about the mental ones. As we all know, the human brain controls all aspects of his or her life, so to comprehend human emotional development, we must first comprehend his or her psychological development. Through psychoanalytic analysis, readers may learn about the writer's personality as well as the characters he portrays in his works of art. As M.H.Abrams recites about psychological criticism; "Psychological

criticism deals with a work of literature primarily as an expression, in an indirect and fictional form, of the state of mind and the structure of personality of the individual author."

Munshi Premchand is an accomplished Indian author. His idealistic realism is well-known. He is a realist, as we all know, and his writings depict the true problems of British India. When we read his short stories from a psychoanalytic perspective, we get a clear sense of British oppression and exploitation. His characters face challenges that are not merely societal and economic, but also psychological and personal. Their lives are filled with difficulties, and these folks find no refuge in their families. All these suppressions cause suffering in the life of character as Nayar says;

"Repression is the hiding away of something in our minds; what is hidden away exists in our unconscious. Guilt-inducing desire and traumatic events such as the death of a loved one or abuse are quickly shunted out of the conscious and relegated into the unconscious, to emerge only in particular moments (usually of dreams or stress). The unconscious is the greatest threat to our identity as rational humans."

Sigmund Freud is the most well-known thinker on the subject of psychoanalysis because he was the first to discuss the lairs of the human brain, which established psychology as a whole. In this study, we'll look at how Sigmund Freud's idea of the human psyche's lairs (id, ego, and superego) applies to Premchand's characters.

Premchand describes two key characters in his narrative, "The Salt Inspector." Munshi Vanshidhar is the first who is honest and brave, and Pandit Alopideen is the second, who is devious and corrupted. It now piques our interest to learn more about Premchand's philosophy for producing such personalities. Vanshidhar is not wealthy and is burdened by his father's many responsibilities and expectations, yet he refuses to follow his father's advice and follow the path of corruption. On the other hand, we learn that the personality of Alopideen, the landlord, is that of a wealthy man, but he has a need for more money, so he engages in salt smuggling. Conflicts between the high and middle classes, honesty and corruption, and human greed and self-satisfaction are all depicted in the novel. And when we look through the prism of psychoanalysis, we can see the true mentality of India's modern society. Through his two masculine characters, Premchand unlocks the lair of a government officer's mind as well as a businessman's head. Pandit Alopideen is frightened of being imprisoned, and his ego is attempting to persuade Vanshidhar to balance his honest judgement, but Vanshidhar's superego opposes taking a bribe and opts for honesty. Vanshidhar is a man of hard work, while Pandit Alopideen is solely a man of luxury. And Munshi Vanshidhar's father also uses his ego to balance his inner will or outer needs and suggests his son take bribes to fulfil his family's needs. As he said,"... you know the sad plight of our house. We are under heavy debt. There are young girls in the house who will soon reach marriageable age... now it is time for you to take up the

responsibilities on your own shoulders, as you are the owner of the house. "

"Shroud" is another story of different types that suggests levels through which we can assimilate that suppression compels men to be immoral in their unfulfilled desires. In the story, Premchand draws the characters of Gheesu, Madhav, and Budhiya. In this story, Premchand reveals the psychology of the suppressed class and how this suppression gives rise to insensitivity. Budhiya is suffering from labour pains, but she does not earn any sympathy, not even from her husband, and she dies. After her death, Gheesu and Madhav fulfil their suppressed desire to eat the money they got in sympathy from the landlord. Their id makes them selfish, though after fulfilling their hunger, they pray to God to bless Budhiya with Heaven. At the very least, they thanked Budhiya for feeding them even after she died.

"Eidgah," one of Premchand's most beautiful stories, expresses the innocent ideology of a child named Hamid. He is a more emotionally developed child than his other friends. On the day of Eid, he does not buy toys for himself but a pair of tongs for his grandmother, because without them, her fingers get burnt while making food. Through Hamid's character, we can understand how our real-life experiences and circumstances prepare us for identity. This suppression will confirm a further psychological imbalance among adults. On the other hand, we encounter the psychology of an old woman, Ameena, Hamid's grandmother. She has a deep agony that she is not preparing good food for her grandson. It is so pathetic to feel contemporary society's problems; everyone is suppressed physically as well as mentally.

Premchand's other very realistic story is "A Wintry Night," in which we confront the character of a farmer, Halku, and his wife, Munni. They are also suffering from deprivation, and Halku does not have a single quilt to protect himself from a wintry night of poos (the tenth month of the Hindu calendar), and his poverty and debt do not allow him to buy woollen clothing to rescue himself from winters. Premchand is trying to portray Halku's ego, which is trying to make a balance between his id and superego. His id is a suppressed desire to spend the night at home, but his land and crops are the main reasons behind his staying on the land at night. His superego does not give him permission to sell his land and become a labourer. So he selects a mid-path and does not stop neelgais from destroying his land. In this way, he had to sell his land to pay debts, and finally, he seems happy to become a labourer because now he is free from his duty toward his land.

The last selected story is "Violence is the Absolute Religion," in which the central character is Jaamid, who is a nobleman and has high moral values. Here, in the character of Jaamid, one can detect that his superego does not permit him to stay away from doing good with others. From the very beginning to the very end, we find him moral as well as ethical. Further into the story, we meet the character of Kaazi Sahib, whose id reveals his ill-desired for women. He threatens a Hindu woman to change her religion, and in his way of threatening, he holds her hands and tells her to marry Jaamid. Furthermore, he says to her that

if she denies changing her religion, he will forcefully carry out his motto. It is so obvious to understand that not only do personal hidden desires affect one's psychological structure, but also social norms affect it severely. M.A.R. Habib also marks the thought of Freud on the religion as:

"Around 1907 Freud's interests in the implications of psychoanalysis began to extend over the entire domain of culture. He sought to apply psychoanalytic principles to the study of art, religion, and primitive cultures. In his studies of religion, Freud viewed obsessional neurosis as a distorted private religion and religion itself as a universal obsessional neurosis."

Thus, to conclude, it can be said that Munshi Premchand had a holistic approach to mentioning all the contemporary social issues and how these issues affected people's day-to-day lives. On the one hand, his treatment is realistic, and on the other hand, it is idealistic. He paints a realistic picture of human suffering, but his solution never loosens morality. While reading his stories, we get to know that the poor are suppressed by British rule and the local indignities of landlords. Women's characters are suffering more than men because they are also suppressed by their men. So, all the evils of current society are discussed by Munshi Premchand in his works, and he is so open to portraying the human psychology of that time. He is so open to discussing the irony of women's lives and the psychological dilemmas of the poor class.

REFERENCE

Abrams, M.H. (2009). *A Handbook of Literary Terms*. Page no.247, Cengage Learning, India.

Gopal, Madan (2019). *Kalam ka Majdoor: Premchand*. Rajkamal Paperback, Delhi, India.

Habib, M.A.R. (2012). *A History of Literary Criticism and Theory*. Page no. 578, Blackwell Publishing, New Delhi, India.

Nayar, Pramod k. (2020). *Contemporary Literary and Cultural Studies*. Page no.65, Pearson, India.

Premchand, Munshi (2021). *Selected Short Stories of Premchand*. Page no. 52, Maple Classics, Noida, India.

Rahbar, Hansraj (2015). *Premchand: Jeevan, Kala, Aur Krititva*. Sakshi Paperback, Delhi, India.

भारतीय शास्त्रीय संगीत में 'तोड़ी' : राग, रागांग तथा थाट के संदर्भ में

प्रो. शारदा वेलंकर

शोध निर्देशिका
गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सुगन्धा वर्मा

शोध छात्रा
गायन विभाग,
संगीत एवं मंच कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सार-सक्षेप

भारतीय सांगीतिक इतिहास के प्रारम्भिक काल से ही विद्यमान 'राग' में लगने वाले तत्व समयानुसार विकसित हो 'राग प्रणाली' के रूप में स्थापित है, जो अत्यन्त समृद्ध एवं विस्तृत हैं तथा इसका यही विस्तार रागों को विभिन्न पद्धतियों के द्वारा वर्गीकृत करने का कारण भी है। कई राग ऐसे हैं जो सर्वप्रथम लोकधुन के रूप में अस्तित्व में थे, तत्पश्चात् उनको राग लक्षणों व शास्त्रीय नियमों से बांध कर राग-रूप दिया गया। भारतीय शास्त्रीय संगीत में कई ऐसे राग प्राचीनकाल से ही प्रचार में रहे हैं तथा लोकप्रिय भी हैं भले ही उनका स्वरूप समय के साथ परिवर्तित हुआ हो, इसी क्रम में 'तोड़ी' का नाम आता है। अपने आप में विस्तृत प्रचलित एवं लोकप्रिय 'तोड़ी' कभी लोकधुन के रूप में, कभी राग-रागिनी के रूप में, कभी रागांग के रूप में तो कभी थाट के रूप में दृष्टिगत होती है। वर्तमान समय में यह प्रचलित राग वर्गीकरण पद्धति-'थाट पद्धति' के दस थाटों में से एक तथा रागांग पद्धति के प्रमुख रागांगों में से एक है।

बीज शब्द

तोड़ी, राग, थाट, रागांग, ग्रन्थ

विषय प्रवेश

भारतीय शास्त्रीय संगीत के वैशिष्ट्य के रूप में स्थित राग रूपी व्यवस्था कालक्रमिक विभिन्न परिवर्तनों एवं परिवर्धनों से विभूषित होते हुए अत्यंत विशाल एवं समृद्ध है। समय के साथ रागों के स्वरूप में परिवर्तन होना तो स्वाभाविक है, परन्तु साथ ही विशेष रूप से मध्ययुग में भारतीय संस्कृति के विदेशी संपर्क में आने से कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जिन्हें स्वरों रागों, तालों, राग गायकी, गायन शैलियों तथा वाद्ययंत्रों आदि में लक्षित किया जा सकता है। भारतीय तथा अभारतीय रागों के मिश्रण से कई नवीन रागों की निर्मिति हुई, रागों के मिश्रण से रागों के स्वरूप में परिवर्तन हुए। रागों के इन्हीं विस्तार के सरलीकरण हेतु रागों के विकास के प्रारम्भ के साथ ही रागों को वर्गीकृत करने की परम्परा भी चली आ

रही है जिनमें आधुनिक काल में प्रचलित 'थाट राग वर्गीकरण' तथा 'रागांग वर्गीकरण' पद्धतियाँ हैं।

आधुनिक काल की राग वर्गीकरण पद्धति में प्रचलित 'थाट पद्धति' के प्रवर्तन का श्रेय पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे को है जिन्होंने 10 थाटों के द्वारा रागों को वर्गीकृत करने की पद्धति प्रतिस्थापित की तथा उत्तर भारतीय संगीत में प्रसिद्ध 10 रागों के नाम पर इन 10 थाटों का नामकरण किया यथा बिलावल, कल्याण, खमाज, भैरव, मारवा, काफी, आसावरी, पूर्वी, तोड़ी तथा भैरवी।

इन्हीं दस थाटों में से एक 'तोड़ी' भारत की अधुना राग परम्परा में एक 'राग' के रूप में, एक 'थाट' के रूप में तथा एक प्रमुख 'रागांग' के रूप में प्रतिष्ठित है जिसके अस्तित्व का उल्लेख प्राचीन संस्कृत ग्रंथों से ही प्राप्त होता है।

प्राचीन व मध्यकालीन शास्त्रीय ग्रन्थों में 'तोड़ी' राग के तोड्डी, तुड़ी, तुण्डी, तोड़ी, तोडिका, टोड़ी इत्यादि विभिन्न नाम मिलते हैं।

भारतीय रागों के इतिहास में 'तोड़ी' का सर्वप्रथम उल्लेख एक शुद्ध राग के रूप में तत्पश्चात रागांग के रूप में प्राप्त होता है। प्रोफेसर शरच्चंद श्रीधर परांजपे के अनुसार, "इसवीं 9 के 'नाट्यलोचन' ग्रंथ में तोड़ी का शुद्ध राग के रूप में प्रथम उल्लेख पाया जाता है। इसवीं 11 के 'संगीत रत्नमाला' में 'तुडिका' को नाट राग का रागांग माना गया है। इसवीं 12वीं के 'मान्सोल्लास' में 'तोडिका' का निर्देश 'बसंत' के रागांग के रूप में किया गया है। 'संगीत मकरंद' में 'तोड्डी' तथा 'त्रोडि' दो रागों का उल्लेख है और इनको क्रमशः पटमंजरी तथा पंचम राग से सम्बद्ध माना गया है।[1]

इससे पूर्व राग का पारिभाषिक रूप में उल्लेख करने वाले सर्वप्रथम ग्रंथ श्री मतंगमुनि कृत 'बृहद्देशी' में तोड़ी का नामोल्लेख तो नहीं मिलता परंतु इसमें देशोत्पन्न भाषाओं (प्रादेशिक भाषाओं) के उल्लेख में सौराष्ट्री, सैंधवी के साथ गुर्जरी का उल्लेख मिलता है- "देशभाषात्र विख्याता गुर्जरी परमोज्ज्वला"।[2] इसके पश्चात 13वीं शताब्दी में पंडित शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' ग्रंथ में स्वतंत्र तोड़ी का सर्वप्रथम उल्लेख अधुना प्रसिद्ध रागांग राग के रूप में प्राप्त होता है जिसमें पंडित शारंगदेव ने तोड़ी राग को षाडव ग्राम राग से उत्पन्न माना है-

'तोडिका स्यात्तदुभ्दवा।।
मध्यमांशग्रहन्यासा सतारा कम्प्रपंचमा।
समेतरस्वरा मंद्रगांधारा हर्षकारिणी।।'3

इसके अतिरिक्त ग्रंथ में छाया तोड़ी, तुरुष्क तोड़ी, महाराष्ट्र गुर्जरी, दक्षिण गुर्जरी, द्राविणी गुर्जरी, सौराष्ट्र गुर्जरी इत्यादि का उल्लेख अधुना प्रसिद्ध उपरागांग के रूप में मिलता है।

लगभग इसी काल में आचार्य पार्श्वदेव द्वारा रचित 'संगीत समयसार' में बारह सम्पूर्ण रागांगों के अंतर्गत 'तोड्डी' के स्वरूप का निरूपण किया गया है जिसमें तोडी राग को षाडव राग का अंग बताते हुए इसकी जाति सम्पूर्ण कही गयी है तथा इसका न्यास, अंश और ग्रह स्वर मध्यम माना गया है।

पंडित लोचन द्वारा रचित 'राग तरंगिणी' ग्रंथ में स्वतंत्र रूप से 'तोड़ी' मेल का उल्लेख मिलता है। इसमें पंडित लोचन ने 12 प्रमुख संस्थानों के अंतर्गत तोड़ी को एक स्वतंत्र मेल के रूप में उल्लिखित किया है जिसका स्वरूप आधुनिक भैरवी के समान था। इसके अतिरिक्त तत्कालीन प्रचलित रागों में तुरुष्क तोड़ी का उल्लेख भी मिलता है तथा तोड़ी के तीन प्रकारों तोड़ी, देसी तोड़ी तथा तुरुष्क तोड़ी का उल्लेख करते हुए तोड़ी को 'तोड़ी' मेल के अंतर्गत, देसी तोड़ी को 'गौरी' मेल के अंतर्गत तथा तुरुष्क तोड़ी को 'कर्णाट' मेल के अंतर्गत बताया गया है।

1660 ईस्वी में हृदय नारायण देव द्वारा रचित 'हृदय प्रकाश' ग्रंथ में 'तोड़ी' मेल आधुनिक 'भैरवी' के समान ही उल्लिखित है।

दक्षिण भारत के पंडित पुण्डरीक (ईस्वी 16 से 17) ने अपने ग्रन्थ 'सद्रागचन्द्रोदय' में 19 मेलों के अंतर्गत तोड़ी का उल्लेख भी किया है जिसमें तुरुष्क तोड़ी को कर्णाट गौल मेल का जन्य राग बताया है तथा रागाध्याय में तोड़ी तथा तुरुष्क तोड़ी को ऋहडोल की राग भार्या के रूप में उल्लिखित किया है।अपने अन्य ग्रंथ 'राग मंजरी' में पुंडरीक विट्ठल ने

तोड़ी के जन्य रागों में तोड़ी तथा शुद्ध भैरव का उल्लेख, गौड़ी जन्य रागों में आसावरी तथा गुर्जरी का उल्लेख तथा कर्णाट जन्य रागों में तुरुष्क तोड़ी का उल्लेख किया है।

पंडित दामोदर कृत 'संगीत दर्पण' में तोड़ी को बसंत की भार्या के रूप में वर्णित किया गया है।

पंडित भावभट्ट ने अपने ग्रंथ 'अनूप संगीतविलास' में तुरुष्क तोड़ी तथा तोड़ी का एक स्वतंत्र राग के रूप में उल्लेख किया है।

पंडित अहोबल के 'संगीत पारिजात' ग्रंथ में तोड़ी, छाया तोड़ी तथा मार्ग तोड़ी इत्यादि नाम से रागोल्लेख प्राप्त होते हैं।

इसके पश्चात बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पंडित सुदर्शनाचार्य द्वारा रचित 'संगीत सुदर्शन' ग्रंथ में तोड़ी वर्ग के रागों यथा- खट, लाचारी, देसी व बिलासखानी के दो प्रकारों तथा जौनपुरी के तीन प्रकारों का वर्णन मिलता है।

पंडित भातखण्डे, ग्रंथों में उल्लिखित 'तोड़िका' मेल को आधुनिक 'भैरवी' के समान होने के मत का उल्लेख करते हुए तोड़ी वर्ग के रागों में बहादुरी तोड़ी, लक्ष्मी तोड़ी, बिलासखनी तोड़ी, हुसैनी तोड़ी इत्यादि का वर्णन करते हैं।

मध्यकालीन ग्रंथकारों में-पुंडरीक विट्ठल, रामामात्य, व्यंकटमखी, तुलजेन्द्र आदि ग्रंथकार शुद्ध वराटी का उल्लेख दक्षिण के मुख्य मेलों के अंतर्गत करते हैं जिसका स्वरूप उत्तर भारतीय प्रणाली के अनुसार सा रे रे म प ध नी है। इसमें साधारण ग के प्रयोग को स्वीकारते हुए पंडित सोमनाथ द्वारा इसका जो स्वरूप बताया गया है यथा-सा रे ग म प ध नि यह उत्तर भारतीय तोड़ी के समान होता है जिसमें ऋषभ, गंधार तथा धैवत स्वर कोमल है व मध्यम स्वर तीव्र है। इसके अतिरिक्त पंडित भावभट्ट तथा पंडित अहोबल द्वारा भी वराटी के भेदों में तोड़ी वराटी का उल्लेख मिलता है जिसका स्वरूप शुद्ध वराटी के समान है।

प्रोफेसर शरच्चंद श्रीधर परांजपे के अनुसार 'तोड़ी-वराटी का यही रूप ऋकचित परिवर्तित होकर उत्तर में तोड़ी के नाम से तथा दक्षिण में वराटी के नाम से प्रसिद्ध हुआ ऐसी यथार्थ कल्पना की जा सकती है।'[4]

तोड़ी राग के आविष्कार के संदर्भ में मतभेद मिलते हैं। अनेक विद्वानों के मतानुसार तोड़ी राग के आविष्कारक के रूप में तानसेन का नाम लिया जाता है तथा अन्य मतानुसार चौदहवीं शताब्दी में दक्षिण के विजयनगर राज्य में प्रसिद्ध गायक गोपाल नायक द्वारा तोड़ी राग का आविष्कार माना गया है परंतु इस संदर्भ में कोई ठोस प्रमाण प्राप्त नहीं होते।

तोड़ी राग के संदर्भ में एक और प्रश्न यह भी सामने आता है कि 'शुद्ध तोड़ी' तथा 'तोड़ी' ये दोनों राग पृथक हैं अथवा एक ही राग के नाम हैं, इस संदर्भ में पंडित भातखण्डे जी ने संगीत शास्त्र के चतुर्थ भाग में तोड़ी के विवरण में उल्लेख किया है कि सन 1918 में दिल्ली में अखिल भारतीय संगीत परिषद में तोड़ी के विभिन्न प्रकारों पर चर्चा होते समय एक प्रश्न यह भी उठा था कि शुद्ध तोड़ी, दरबारी और मियां की तोड़ी यह तीनों विभिन्न प्रकार हैं अथवा एक ही राग के विभिन्न नाम हैं। इस विषय पर वृहद चर्चा के उपरांत शुद्ध तोड़ी, दरबारी तोड़ी तथा मियां की तोड़ी इन तीनों रागों के स्वरूपों को विद्वत्जनों द्वारा पृथक न दिखा सकने के कारण इन्हें प्रसिद्ध राग तोड़ी के ही तीन अन्य नाम माने गए।

तोड़ी के आविर्भाव के सम्बन्ध में विभिन्न मत-मतांतर मिलते हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार तोड़ी एक विदेश से आई हुई धुन है। डॉक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त अपनी पुस्तक 'भारतीय कला से संस्कृति का सम्बन्ध' (Indian art in relation to culture) में लिखते हैं- "In the time of the Khilji Emperors (1201-1315A.D.) the celebrated poet Ameer Khusrau introduced PersianTunes (Mokaam) in the Indian system-Perhaps long before it's a melody called 'Tarkish Tody' had been introduced in the Indo-Aryan musical system".[5]

कुछ विद्वानों के अनुसार तोड़ी उन रागों में से है जो भारत से विदेशी जातियों के संपर्क से प्राप्त

हुई, यह विदेश से आयात की हुई रागिनी है। परंतु उपरोक्त इन सभी मतों के विपरीत कई विद्वान तोड़ी का आविर्भाव एवं विकास भारत के संगीतिक परम्परा से ही मानते हैं। विद्वान् स्वर्गीय श्री चैतन्य देसाई के अनुसार ''जातियों द्वारा थाट सिद्ध होते हैं, परन्तु उनसे भैरव, तोड़ी, मारवा आदि कुछ थाटों की प्राप्ति सरलता से नहीं होती है। अतः कई विद्वान् मानते हैं कि भैरव आदि थाट ईरान से हिन्दुस्तानी संगीत में प्रविष्ट हुए, परन्तु भैरव, तोड़ी थाटों के स्वरों में लोक संगीत मिलते हैं। अतः यह थाट लोक संगीत से शास्त्रीय संगीत में लिए गए होंगे।''[6]

प्राचीन रागों के आविर्भाव के संदर्भ में मत-मतान्तरों का मिलना स्वाभाविक है। तोड़ी के विषय में उपरोक्त तथ्यों एवं मत-मतांतरों क बाद भी अधिकांश विद्वानों द्वारा यह तो मान्य है कि तोड़ी एक धुन के रूप में अवश्य ही अस्तित्व में थी जिसका आविर्भाव आगे चलकर राग तथा मेल के संदर्भ में अवश्य हुआ।

पंडित रामाश्रय झा के अनुसार, "रागांग रागों में तोड़ी का प्रथम स्थान है। प्रचार में विद्वानजन प्रस्तुत राग को तोड़ी, शुद्ध तोड़ी तथा मियां की तोड़ी के नाम से संबोधित करते हैं। तोड़ी के समस्त प्रकार का यह आधार (बेसिक) राग है।"[7]

राग तोड़ी अपने थाट का आश्रय राग है।आरोह-अवरोह में सातों स्वर के प्रयोग होने से राग की जाति संपूर्ण है। इस राग का वादी स्वर धैवत तथा संवादी स्वर गंधार है। इस राग में ऋषभ, गंधार तथा धैवत स्वर कोमल व मध्यम तीव्र प्रयुक्त होता है तथा शेष सभी स्वर शुद्ध लगते हैं।यह शांत प्रकृति का राग है तथा इस राग का गायन-वादन समय दिन का द्वितीय प्रहर माना गया है। यह राग उत्तराङ्ग प्रधान है।

प्रस्तुत राग का वर्तमान स्वरूप इस प्रकार है-

आरोह - सा रे ग, म प, ध, नि सां।

अवरोह - सां नि ध प, म ग, रे सा।

पकड़ - ध, प म ग, रे ग, रे सा।

उत्तरांग प्रधान होने पर भी राग के पूर्वांग का रागांग वाचक स्वर समूह- 'सा रे ग, रे रे ग रे सा' भी अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि तोड़ी के अधिकांश प्रकार पूर्वांग के ही रागांग वाचक स्वर समूहों में अन्य रागों के मिश्रण से बनते हैं, जैसे तोड़ी के पूर्वाङ्ग वाचक स्वर-समूहों में देसी तथा आसावरी मिलाने से बहादुरी तोड़ी का सृजन होता है, इसी प्रकार बैरागी भैरव के मिश्रण से बैरागी तोड़ी, काफी तथा आसावरी के मिश्रण से लक्ष्मी तोड़ी, हुसैनी कान्हड़ा(काफी, कान्हड़ा तथा आसावरी के मिश्रण से निर्मित) के मिश्रण से हुसैनी तोड़ी इत्यादि।

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में इस समय तोड़ी थाट के अंतर्गत मुल्तानी, मधुवन्ती, गुर्जरी तोड़ी, भूपाल तोड़ी, बहादुरी तोड़ी, लक्ष्मी तोड़ी, अंजनी तोड़ी, छाया तोड़ी, आसा तोड़ी, गौरी तोड़ी, आसावरी तोड़ी, हेमवंती, जयवंती, श्रीवंती राग, भैरवी थाट के अंतर्गत-बिलासखानी तोड़ी तथा आसावरी थाट के अंतर्गत-लाचारी तोड़ी, आभेरी तोड़ी, खट तोड़ी इत्यादि तोड़ी अंग के राग आते हैं।

निष्कर्ष :-

सांगीतिक इतिहास में प्राचीन, मध्यकालीन व आधुनिककालीन विभिन्न ग्रन्थों में 'तोड़ी' का उल्लेख तथा वर्णन व समयानुसार ग्रन्थों में उल्लिखित इसके विभिन्न नाम इसकी ऐतिहासिकता को प्रमाणित करते हैं। सर्वप्रथम एक लोकधुन अथवा एक शुद्ध राग के रूप में प्रारम्भ होते हुए 'तोड़ी' समयानुसार कभी एक रागांग, उपरागांग, तो कभी राग-रागिनी पद्धति में एक भार्या के रूप में स्थापित होते हुए आज वर्तमान समय में एक प्रचलित राग एवं 'थाट' सिद्धान्त के 10 थाटों में से एक तथा प्रमुख रागांगों में से एक रागांग के रूप में प्रतिष्ठित है। इस राग अंग के विभिन्न प्रकार तोड़ी, आसावरी तथा भैरवी थाटों के अन्तर्गत आते हैं जिनमें से कई रागों का गायन-वादन प्रचलन में है जो इसकी लोकप्रियता को प्रमाणित करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. संगीत मासिक पत्रिका (तोड़ी थाट अंक), जनवरी 1960, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.), पृ.25

2. सागर, डॉ. डी.बी. क्षीर, श्रीमतंगमुनिकृत बृहद्देशी, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर संस्करण 1998, पृ.184
3. चौधरी सुभद्रा, शारंगदेवकृत संगीत रत्नाकर, द्वितीय खण्ड, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 57
4. संगीत मासिक पत्रिका (तोड़ी थाट अंक), जनवरी 1960, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.), पृ.27
5. प्रज्ञानन्द, स्वामी अनुवादक मदनलाल व्यास, राग और रूप, श्रीरामकृष्ण वेदान्त मठ, कलकत्ता, जुलाई 1998, पृ.299
6. देवांगन, तुलसीराम, भारतीय संगीत शास्त्र, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, द्वितीय संस्करण 2010, पृ. 284
7. झा, पं. रामाश्रय, अभिनव गीतांजलि, भाग-4, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण 2010, पृ.113

चित्रगुप्त द्वारा निर्देशित उत्तर प्रदेश के लोकधुनों पर आधारित फ़िल्मी गीत

प्रो. विद्याधर मिश्र
शोध निर्देशक
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग,
इ.वि.वि., प्रयागराज

देवेन्द्र कुमार गुप्ता
शोधार्थी
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग,
इ.वि.वि., प्रयागराज

सार-संक्षेप

हिन्दी सिनेमा में चित्रगुप्त ने संगीत निर्देशक के रूप में उत्तर प्रदेश के लोकधुनों पर आधारित फिल्मी गीत बनाए। चित्रगुप्त का उत्तर प्रदेश के लोकधुनों पर आधारित संगीत उत्तर प्रदेश के लोकसंगीत को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है। चित्रगुप्त को भोजपुरी संगीत और हिन्दी दोनों संगीत के लिए जाना जाता है। हिन्दी सिनेमा के कुछ फिल्मों में अपने संगीत से उस फिल्म को हमेशा के लिए अमर कर दिया। चित्रगुप्त के संगीत में लोकसंगीत की मधुरता, विशुद्धता और लोकसंगीत का ठेठपन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

चित्रगुप्त संगीतकार के रूप में लोकसंगीत के बहुत मार्मिक जानकार थे यही कारण था कि उन्होंने अपने गीतों में लोकगायन के साथ लोकवादन और लोकवाद्यों का सही व सटीक प्रयोग किया।

चित्रांगुप्त हिन्दी सिनेमा में बहुत ही प्रसिद्ध संगीत निर्देशक थे उनकी संगीत रचना लोक संगीत को स्पष्ट दर्शाती है, साथ-ही-साथ उत्तर प्रदेश के लोकधुनों पर आधारित होने के एक अलग प्रकार की शैली को प्रदर्शित करती है।

बीज-शब्द

मल्लहवा-मल्लाह, बिछुआ, बरीस, संगीतकार, फिल्मी गीत

चित्रगुप्त का जन्म 16 नवम्बर 1917 ई. को 'सरन' जिले में 'बिहार' में हुआ था। उन्होंने सिनेमा में संगीत हिन्दी और भोजपुरी दोनों भाषाओं में निर्देशित किया। चित्रगुप्त के संगीत में उत्तर प्रदेश के पूरबी लोकशैली की मिठास देखने को मिलती है। भोजपुरी की पहली फिल्म 'गंगा मइया तोहे पियरी चढ़इबो' 1962 ई. और 'लागी नाही छूटे रामा' 1963 ई. फिल्म में संगीत दिया। चित्रगुप्त में लोक संस्कृति की ध्वनियाँ, भंगिमाओं और चेष्टाओं की झलक की अधिकता दिखती है। गोपाल सिंह नेपाली और चित्रगुप्त की गीतकार एवं संगीतकार की जोड़ी मशहूर थी। चित्रगुप्त ने मूलतः उत्तर प्रदेश के लोकधुनों पर आधारित गीतों का निर्देशन किया। 'आँखों ने कहा दिल ने सुना' चित्रगुप्त ने इस गीत को नौटंकी शैली पर आधारित गीत बनाया। 'बदरा चले झूम के' इस गीत को चित्रगुप्त के सह निर्देशक गोपाल सिंह ने निर्देशित किया।[2] यह दोनों गीत उत्तर प्रदेश के लोकधुन पर आधारित गीत हैं।

'मैं तो गिरधर के घर जाऊँ' चित्रगुप्त ने इस गीत को भी लोकधुनों के आधार पर बनाया। चित्रगुप्त

ने उत्तर प्रदेश के भजनों से प्रभावित गीतों का भी निर्देशन किया ऐसा ही एक गीत सन् 1957 ई. में 'नीलमणि' फिल्म में प्रयोग किया गया, जिसके बोल हैं 'नाचे गोकुल की छोरियाँ'।

उत्तर प्रदेश की 'लोरी' का भी प्रयोग चित्रगुप्त ने किया 'तोरे पैया पड़े तोरी मइया, सो जा रे कुँवर कन्हइया' यह 'लोरी' 'साक्षी गोपाल' 1957 ई. फिल्म में प्रयोग किया गया। इसे गाया था 'लता मंगेशकर जी' ने।

ऐसे ही एक और भजननुमा गीत 'मेरे मन में बसे नंदलाल' का संगीत निर्देशन किया। 'हम गोरी-गोरी मतवाली ग्वालिनिया' यह गीत 'बालयोगी अभिमन्यु' 1958 ई. फिल्म में प्रयोग किया गया। चित्रगुप्त ने कई गीतों की रचना भजन और कीर्तन की लोकशैली पर आधारित गीत बनाये हैं जिसका वर्णन पूर्व में मैंने किया।

'ऐसी जुल्मी नजरिया से देखो नहीं राजा' उत्तर प्रदेश के ठेठ लोकधुन पर आधारित इस गीत का प्रयोग सन् 1958 ई. में आयी फिल्म 'राजसिंहासन' में किया गया।

चित्रगुप्त ने हिन्दी सिनेमा में उत्तर प्रदेश के लोकधुनों पर आधारित कई ऐसे गीतों का निर्देशन किया जो हिन्दी सिनेमा में अमर हो गए और जो आज भी उतने ही लोकप्रिय हैं। फिल्म 'काली टोपी लाल रुमाल' 1959 ई. का ऐसा ही एक गीत 'लागी छूटे ना अब तो सनम' जिसके बोल लिखे 'मजरुह सुल्तानपुरी' और गाया 'लता मंगेशकर एवं मोहम्मद रफी' ने। यह गीत बहुत लोकप्रिय हुआ। इसी फिल्म का एक और गीत 'गोरी ओढ़ के मलमल' का भी निर्देशन चित्रगुप्त ने किया। ठुमरी शैली पर आधारित एक गीत 'उठेगी तुम्हारी नजर धीरे-धीरे' यह गीत भी बहुत प्रसिद्ध हुआ। 'माँ-बाप' फिल्म में 'लागे उनकी मुरतिया' गीत का प्रयोग किया। 'बैरी बिछुआ बड़ा दुख दे हो राम' यह गीत सन् 1964 में आई फिल्म 'गंगा की लहरें' में प्रयोग किया गया। इस गीत में 'हो राम' का प्रयोग चित्रगुप्त ने किया है जो उत्तर प्रदेश के कुछ लोक गायन शैलियों में प्रयोग किया जाता है। उत्तर प्रदेश के भाभी और ननद के नोंकझोंक पर आधारित एक गीत का निर्देशन चित्रगुप्त ने फिल्म 'तूफान में प्यार कहाँ' 1966 ई. में किया, जिसके बोल हैं 'हो ननदिया मोरी रे'।

ऐसे ही एक और उत्तर प्रदेश के लोकधुन पर आधारित गीत 'सजना काहे भूल गए' गीत का निर्देशन किया। सन् 1959 ई. में फिल्म 'कल हमारा है' में 'जाओ रसिया हटो' गीत का निर्देशन किया। इसे लता मंगेशकर एवं उषा मंगेशकर ने गाया। 'देखो पनिया भरन के बहाने' गीत का निर्देशन किया और इस गीत का फिल्मांकन 'कंगन' नामक फिल्म में किया गया। चित्रगुप्त उत्तर प्रदेश के अनेक लोक गायन शैलियों से परिचित थे तभी तो इतनी गहराई से किसी भी शैली पर आधारित गीत बनाते थे। 'बलमा ना माने' इस गीत में लोकसंगीत के साथ ही चित्रगुप्त ने शास्त्रीय संगीत का भी प्रयोग किया है। यह गीत 'ऑपेरा हाउस' फिल्म में प्रयोग किया गया।

चित्रगुप्त ने कुछ ऐसी फिल्मों में संगीत निर्देशित किया जिनके गीत हमेशा के लिए अमर हो गए या यूँ कहें कि उन गीतों की वजह से वह फिल्म जानी जाती है तो अतिश्योक्ति नहीं होगी ऐसे ही एक फिल्म सन् 1962 ई. 'गंगा मइया तोहे पियरी चढइबो' के लगभग सभी गीतों का निर्देशन चित्रगुप्त ने किया जिसके सभी गीत सुपरहिट रहे। यह सभी गीत उत्तर प्रदेश के लोक धुनों पर आधारित गीत रहे। सभी गीतों के बोल 'शैलेन्द्र' ने लिखा।

'हे गंगा मइया तोहे पियरी चढइबो', यह गीत राग पीलू पर आधारित था। इसे लता मंगेशकर एवं उषा मंगेशकर जी ने गाया। 'काहे बंसुरिया बजउले' यह गीत भी उत्तर प्रदेश के लोकधुन पर आधारित गीत है। इसे लता मंगेशकर जी ने गाया। 'सोनवा के पिंजरा में बंद भइल हाय राम' इस गीत को मो. रफी ने गाया। 'लुक-छिप बदरा में चमके' लता मंगेशकर जी ने इस गीत में अपना स्वर दिया। 'मोर करेजवा में पीर','अब तो लागत मोरा सोलवां साल', इन सभी गीतों में उत्तर प्रदेश के लोकधुनों का प्रयोग किया गया है। कुछ लोकधुन उत्तर प्रदेश और बिहार में समान रूप से प्रयोग किये जाते हैं, इन गीतों में

उनका प्रयोग है।

सन् 1963 ई. में 'लागी नाही छूटे रामा' फिल्म में भी चित्रगुप्त का संगीत निर्देशन रहा। इस फिल्म के भी सभी गीत हिट रहे। इस फिल्म के गीतों के बोल लिखा 'मजरुह सुल्तानपुरी' ने। 'लाल-लाल होंठवा से बरसे ला ललइया हो' इसे गाया लता मंगेशकर एवं तलत महमूद ने। यह उत्तर प्रदेश के मूल लोकगीत पर आधारित गीत है। इसी फिल्म के अन्य गीत 'रखिया बंधा ला भइया', 'मुँहवा से बोले', 'मोरी कलइया सुकुवार हो', 'मनवा मसोसे रामा', 'जा-जा रे सुगवा', 'माथे की टिकुलिया' इन सभी गीतों का संगीत निर्देशन 'चित्रगुप्त' ने किया। 'भौजी' 1965 ई. फिल्म में एक लोरी का प्रयोग किया 'चंदा मामा आरे आवा, बारे आवा' इस गीत को लता मंगेशकर जी ने गाया। 'बनवा फूले बसंत रे' इस गीत को 'गंगा' 1965 ई. फिल्म में प्रयोग किया गया। 'इंतज़ार' 1973 ई. फिल्म में 'दो गीतों' का निर्देशन किया 'काहे मोरा बिछुआ' और 'मोरा लागे नाही चित्त'। 'नाजुक-नाजुक बदन' इस गीत का प्रयोग 'औलाद' फिल्म में किया गया। धुनों की यात्रा, राग पंकज, पृ.सं. 265., सन् 1951 ई. में 'हमारी शान' फिल्म में भी कुछ गीतों का निर्देशन चित्रगुप्त जी ने किया, उनमें से अधिकतर गीत उत्तर प्रदेश के लोकधुन पर आधारित थे।

'मुझे अपनी शरण में ले लो राम', 'नैया जल्दी से ले चलो मुझे संइया के अंगना', 'राधा जी के कुँवर कन्हइया', 'कहाँ छुपे हो राजा राम', 'हे महादेव मेरी लाज रहे', इन गीतों में अधिकतम गीत लोकसंगीत के भक्ति गीत पर आधारित हैं। 'बलम परदेसिया' फिल्म में दे लोकगीत का निर्देशन चित्रगुप्त जी ने किया दोनों ही गीत बहुत प्रसिद्ध हुए 'हंस के जो देख तू एक बेरिया' और दूसरा गीत 'गोरकी पतरकी रे' यह दोनों गीत उत्तर प्रदेश के लोकधुन पर आधारित गीत हैं। 'घर गृहस्थी' फिल्म का गीत 'जेठ महिनवा के दिन दुपहरिया' लोकधुन पर आधारित गीत है।

चित्रगुप्त ने अपने समस्त लोकधुनों पर आधारित गीतों में लोकगीतों की विशुद्धता पर विशेष ध्यान दिया यही कारण है कि उनके गीतों को सुनते ही मन में आंचलिक पृष्ठभूमि की स्वतः ही एक चित्र बनने लगती है।

चित्रगुप्त के गीतों के बोल आंचलिक बोली से हूबहू मिलते थे उनमें अन्य किसी भाषा/बोली की छाया नहीं दिखती थी। कुछ गीतों में तो गाँव की ठेठ बोली का बहुत ही सटीक प्रयोग किया गया है, जैसे - 'एक बेरी', 'महिनवा', 'पतरकी', 'टिकुलिया', 'बिछुआ' (पांव में पहना जाने वाला गहना) मल्लहवा इत्यादि शब्द।

'धरती मइया' 1983 ई. फिल्म में संगीत निर्देशन किया 'संतोषी मइया सुनके अरजिया हमार', 'जल्दी-जल्दी चल रे कहारा' ये गीत भी लोक धुन पर आधारित थे।

सन् 1985 ई. में 'घर द्वार' फिल्म में 'माई रे मोसे पिया बिन' गीत का निर्देशन चित्रगुप्त ने किया यह गीत उनका अंतिम गीत था।

चित्रगुप्त की लोकसंगीत की समझ बहुत अधिक थी उन्होंने लोकगीत को फिल्मों में हूबहू प्रस्तुत करने की कोशिश की और उसमें वह सफल भी रहे। उन्होंने लोक धुन पर आधारित गीतों में गायन के साथ-साथ लोक वाद्यों का सही संयोजन और वादन शैली पर भी बहुत कार्य किया।

चित्रगुप्त ने सिनेमा में उत्तर प्रदेश के लोकधुनों पर आधारित जो गीत बनाये वह विविधतापूर्ण एवं लोकसंगीत को बिल्कुल सही रूप में प्रस्तुत करता है। 14 जनवरी सन् 1991 ई. को चित्रगुप्त का देहान्त हो गया।

निष्कर्ष

चित्रगुप्त ने उत्तर प्रदेश के लगभग सभी प्रकार के लोकधुनों पर आधारित गीतों का निर्देशन किया चाहे वह होरी, चौती, दादरा, नकटा, सोहर, लोरी या बारह मासा लोकगीत हो। सामान्य व्यक्ति गीतों के पीछे धुन को नहीं जान पाता कि वह किसी लोकधुन पर आधारित है या उसकी अपनी शैली है। मेरा मनतव्य यह है कि सामान्य जनमानस को भी जानकारी हो कि कोई गीत किस लोकधुन पर आधारित है, जिससे लोगों में लोकगीत के प्रति जागरूकता बढ़े

और हमारे लोकधुनों को और विस्तृत स्तर तक पहुंचाया जय सके।

चित्रगुप्त के निर्देशन में बने लगभग सभी गीतों को यूट्यूब, विकिपीडिया और कुछ किताबों से जानकारी लेकर उन्हें लोकधुनों पर आधारित गीत के रूप में वर्गीकृत किया गया। Youtube के कुछ channel पर गीतों को एकल रूप से सुनकर और लोकधुन के नियम और शैली के आधारित उन्हें लोकधुन पर आधारित गीतों की श्रेणी में रखा गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Youtube – musicaltreat4all.
2. Youtube – codlight.
3. Youtube – SEPL Vintage.
4. Youtube – Rare.
5. धुनों की यात्रा - राग पंकज, संस्करण पहला : 2006, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

हिमाचल प्रदेश के लोकगीतों में प्रणय गीत

अंकित भट्ट
(अनुसंधान पर्यवेक्षक), सहायक आचार्य,
संगीत विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली, राजस्थान

मनोज कुमार
शोधार्थी
संगीत विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली राजस्थान

सार-संक्षेप

हिमाचल प्रदेश वह प्रदेश है जो हिम के आँचल में बसा हुआ है। *प्रकृति की अनुपम शोभा के कारण यह प्रदेश विश्व.भर में प्रसिद्ध है। इसका इतिहास बहुत पुराना है जिसकी झलक यहाँ के गीतों में मिलती है। यहाँ के गीत ऐतिहासिक प्रसंग एवं सत्य घटनाओं से प्रेरित हुए हैं। लोक संस्कृति व लोक परंपराएं ही मानव की सामूहिक उर्जा का प्रारंभ होती है। हिमाचल प्रदेश के लोक जीवन में लोक गीतों का बढा प्रभाव है और लोकगीतों में रत्ती भाव की प्रमुखता देखते ही बनती हैं। जिससे श्रृंगाररस उत्पन्न होता है जिसके दोनों पहलू वियोग श्रृंगार एवं संयोग श्रृंगार रस से ओत प्रोत यहाँ के लोक गीतों में मिलन के आनंद और विछोह वेदना की धारा प्रवाहित हुई है। समाज में पनपे भावों की संवेदनाओं को इन लोक गीतों द्वारा व्यक्त किया गया है। लामण, झूरी, लोका, गिद्दा, गंगी, नाटी, आदि बहोत से प्रणय गीत हिमाचल प्रदेश में अत्यंत प्रसिद्ध एवं प्रचलित हैं। यहाँ के श्रृंगार गीतों में कुछ प्रणय गाथाएं भी शब्दायमान हुई है। जिन्हें हिमाचल प्रदेश के प्रत्येक भाग में गाया जाता है अतः इन प्रणय, श्रृंगार तथा नित्य गीतों के कुछ प्रकारों का शोध परक विवरण दिया गया है।*

बीज शब्द

लोकगीत, श्रृंगार रस, प्रणय, गिद्दा, नाटी

हिमाचल प्रदेश की लोक संस्कृति की विरासत लोक साहित्य के माध्यम से विविध रूपों में मुखरित हुई है। संस्कृति शब्द की उत्पत्ति, संस्कार से मानी गई है, जिसका अर्थ संशोधन, परिष्करण, परिमार्जन, एवं संस्कार है। अर्थात् ऐसी प्रक्रिया जो मानव में निर्मलता का प्रवाह करे या उसे उदात्त बनाए, वह संस्कृति है। टाइलर ने संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार दी है।

'संस्कृति वह जटिल तत्व है जिसमें ज्ञान कानून रीति रिवाजों तथा दूसरी योग्यताओं और आदतों का समावेश है। जिन्हें मनुष्य प्राणी होने के नाते ही प्राप्त करना चाहता है।' कहने का अभिप्राय यह है कि संस्कृति परंपरा से प्राप्त अमूल्य निधि है जो की मानवता को ज्ञान एवं व्यवहार का पाठ पढ़ाती है। हिमाचल प्रदेश की लोक संस्कृति के प्रणय गीतों में लोक जीवन का सहज एवम जीवन्त माध्यम है। अतः यहाँ की संस्कृति, सभ्यता, धर्म रिवाज, कथाओं, सत्य घटनाओं, कला, साहित्य और जन आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन इसके माध्यम से हो सकता है। यहाँ के प्रणय गीतों का सहारा लेकर हिमाचल की रूपरेखा का निर्धारण किया जा सकता है। यदि हिमाचल प्रदेश में प्रणय गीतों का संरक्षण एवं

अनुशीलन किया जाए तो हिमचली संस्कृति को संजोने में वृद्धि ही होगी। हिमाचल प्रदेश के 12 जिलों में विभिन्न भाषाएँ बोली जाती है। भाषाएँ अलग अलग होने पर भी आपस में कुछ कुछ मेल खाती है परंतु स्थान परिवर्तन के साथ भाषा परिवर्तन का आना स्वाभाविक है। मौखिक रूप में मंदयाली, क्युंठली, सिरमौरी, बिलासपुरी, चंबयाली, कुल्लवी, किन्नौरी, लहोली, गद्दी, भाषाएँ बोली जाती है। सांगितिक परिवेश भी इन्ही भाषाओं के अंतर्गत गठित होता है। लोक संस्कृति में प्रणय गीतों को जनमानस के हृदय की आवाज भी कहा जा सकता है।

शोध पत्र के उद्देश्य

1. हिमाचल प्रदेश के विभिन्न स्थानों के लोकगीतों गीतों एवं उनकी भाषाओं का अध्ययन करना।
2. शोध की दृष्टि से हिमाचल प्रदेश के प्रणय गीतों में शास्त्रीयता का अवलोकन करना।
3. लोकगीत जिन घटनाओं से प्रेरित होकर विकसित हुए उनकी जानकारियां एवं कहानियों का अध्ययन करना।

हिमाचली प्रणय गीत

हिमाचली प्रणय गीतों में जीवन से जुड़े पक्षों जैसे प्रेम प्रसंग, विवाह, संयोग, वियोग, एवं ऋतुओं के आवागमन से जुड़े प्रणय गीत सुनने को मिलते हैं। प्रणय गीत ही एक माध्यम है जो साधारण जनमानस के मनोभाव को एवं उनके दुख सुख को शब्दों तथा स्वरों की माला में पिरोकर जनता के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत विषय का शोध कार्य के लिए चयन एक सामाजिक एवं सामायिक आवश्यकता है। शोधकर्ता की जन्मभूमि हिमाचल प्रदेश है। हिमाचल प्रदेश से संबंध होने के कारण यहाँ की लोक संस्कृति में रुचि होना स्वाभाविक है। हिमाचल प्रदेश के प्रणय गीतों को उजागर करने के लिए शोधकर्ता को यह विषय चुनने की प्रेरणा मिली।

सम्बंधित साहित्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है की इस विषय पर अभी तक किसी भी प्रकार का कोई शोध कार्य नहीं हुआ है। अतः हिमाचल प्रदेश की पुरातन सभ्यता एवं संस्कृति को उजागर करने की दिशा में यहाँ के प्रणय गीतों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है इन पुराने गीतों को लिपिबद्ध न किया गया तो इनके काल के प्रवाह में लुप्त हो जाने का भय है। इस समस्या का चयन इसलिए भी किया गया है कि इससे प्रणय गीतों का संग्रह हो सकेगा और गायन शैली का सही सही पता चल सकेगा।

लामण

इन गीतों में से कम शब्दों में सार गर्भित बात को कहा जाता है। लामण गीत बहुत छोटे छोटे गीत होते हैं जिन्हें शुद्ध हिन्दी भाषा में दोहा भी कहा जा सकता है। लामण गीतों में प्रेम भाव प्रबल रूप होता है। हिमाचली लोकगीतों में नृत्य और संगीत का समावेश पाया जाता है। ढोल, नगाड़े, करताल, करनाल, वाद्यों का संगीत हर गीत के साथ सुना जाता है लेकिन लामण में न तो नृत्य होता है और न ही किसी वाद्य की भी आवश्यकता। मूलतः इस प्रकार के गीत एकान्त एवं खुले वातावरण में गाए जाते हैं। ऊँची पर्वत श्रृंखलाओं पर भेड़ बकरियां चराते हुए बनों मैं घास और लकड़ी काटते हुए लंबा सफर तय करते हुए गाए जाने वाले गीत लामण कहलाते है।

लामण गीत–
गेहूँ पाकै घूमका नाखध्डी जौआ री सेरी
मैज केरिवो ध्याडो जूणो नी एजना फेरी

भावार्थ इस लामण गीत का भावार्थ यह है कि अगर गेहूँ के खेतों में पैदावार भरपूर है तो जौ का खेत वीरान पड़ा हुआ है। जीवन क्षणभंगुर है इसलिए इस जीवन में वही व्यक्ति सफल है जो समय पूर्वक जीवन में हर समय आनंदित रहता है।

लामण गीतों में जीवन का साक्षात दर्शन रहता है और इसी कारण इन्हें लोकगीतों में अन्य गीतों से ऊँचा दर्जा दिया जाता है।

झूरी

लामण की तरह झूरी सिरमौर क्षेत्र में गाई जाने वाली एक प्रचलित लोकगीत शैली है। झूरी मनोरंजन के अतिरिक्त सफर से थके हुए लोगों को उत्साहित कर, उनके जीवन में एक नवचेतना का प्रवाह करती है एवं मन में शान्ति व प्रेम का संचार करती है। झूरी गीतों में नायक एवं नायिका होते हैं जो दूर दूर घाटियों से प्रेम का संदेश एक दूसरे को पहुँचाते हैं। इन गीतों में नायक एवं नायिका दूर दूर रहते हुए भी एक दूसरे को कुशलता का संदेश देते हुए निकटता का एहसास करते है। ये गीत अनिबध होते हैं। प्रमुख रूप से झूरी गीत, विरह, समाज का भय, प्रतीक्षा एवं प्रेम के प्रति सत्यता के लिए सराबोर है।

झूरी सिरमौर के प्रसिद्ध श्रृंगार रस प्रधान गीत हैं। निम्नलिखित झूरी में नायिका ने अपनी व्यथा का वर्णन किया है।

झूरी गीत–

पाणि गेरा मजनुआं पूरबो खे पारो बेरे
होरों झूरो होरी के हाम झूरो ताखे बेरे
तारा छूटा गोईणी, सोनी के चाला बेरे
आशु थोलका मेरी आख़िर कुनि, ना भाला बेरे

भावार्थ–इस गीत का भावार्थ इस प्रकार है, नायिका कहती है कि जिस प्रकार नदी के किनारे मजनू के वृक्ष की शाखाएँ सदैव पूर्व दिशा की ओर रहती हैं उसी प्रकार मेरा हृदय भी सदैव तुम्हारी ओर झुका रहता है। चाँद चमक रहा है और उसकी ज्योति चारों तरफ सफेद उजाला फैला रही है लेकिन मेरे नसीब में तो सिर्फ अँधेरे हैं मैं पल पल तुम्हारे आने की प्रतीक्षा में अपने आँसू समाप्त कर चुकी हूँ।आकाश से टूटा तारा सबने देखा है परंतु मेरे सूखते हुए आँसू किसी ने नहीं देखे।

लोक गीत

लोका गीत झूरी गीतों की भाँति श्रंगार प्रधान एवं अनिबध गीतों का एक प्रकार है। निम्नलिखित लोका गीत में नायिका अपने प्रेमी से प्रेम की अभिव्यक्ति करते हुए कहती है कि हमारे प्रेम की बात चारों तरफ फैल चुकी है इसी कारण, इसीभय से हम दोनों दूर हो गए हैं क्या मालूम अब कभी आपस में हम लोग मिले या ना मिले।

लोका गीत–

लोका रियाँ छोटियाँ जियू जियू,
ते बी उक्काई ओ
जीना पीछे छड्डे ओ घर बार हाउ लोका
जीने गल्ला बरजां तेरियां गल्ला कितियाँ
जिने गल्ले हुई गे दिल दूर जी लोका।

गंगी

गंगी गीत लगभग संपूर्ण हिमाचल में गाए जाते हैं। यह गीत सभी स्थानों में अलग अलग तरह से गाए जाते हैं। मंडी सिरमौर बिलासपुर कांगड़ा आदि क्षेत्रों में यह गीत बहुत लोकप्रिय हैं। इन गीतों में पंजाब में गाए जाने वाले टप्पा गीतों का प्रभाव साफ तरह से देखा जा सकता है हिमाचल प्रदेश में भाषाओं की भिन्नता के कारण अलग अलग स्थानों पर इन में प्रयुक्त ताल व धुन में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। गंगी गीत को पुरुष नायक स्वरूप एवं स्त्री नायिका स्वरूप प्रश्नोत्तरी रूप में गाते हैं बीच बीच में अन्य लोग भी ऊँची आवाज में ओये. होए, शाबासे, जियो, आहॉ इन शब्दों को जोड़ते रहते हैं जिससे इन गीतों की श्रृंगारिकता में चार चाँद। लग जाते है।

गंगी गीत–

फुल्ल फुल्ली कने डुली गईं रा
रास्ता बतायाँ गोरिए
परदेसी बंदा भुलि गई रा।
तेरे आंगना दे पाणी बरसे
सामने ना आया गंगि,
मेरे बालकों रा जियूँ तरसे।

भावार्थ–उपरोक्त पंक्तियों का सामान्य सा अर्थ नायक एवं नायिका को एक दूसरे को छेड़ने का एवं हंसी मजाक है नायक नायिका को तुकबंदी बनाते हुए बोल रहा है की पुष्प खिल कर मुरझा चुके हैं, प्रेयसी तू मुझे ये बता की मैं परदेस में रहने वाला तेरे प्रेम में पड़ कर रास्ता भटक चुका हूँ।

गिद्दा

यह मुख्यतः नृत्य के लिए गाए जाने वाले गीत हैं। इन गीतों की लय द्रुत होती है जो कि इनकी विशेषता है। गिद्दा गीत स्त्रियां गाती हैं और प्रसन्न होकर गीत की लय के साथ द्रुत लय में नृत्य करती हैं। स्थाई की धुन गाकर अंतरे गाए जाते हैं उसके उपरांत स्थाई की पंक्तियों को दोहराया जाता है। गिद्दा गीत हिमाचल प्रदेश के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में गाए जाते हैं। यह गीत खुशी के अवसर पर विवाह तथा अन्य आयोजनों पर नृत्य गीतों के रूप में गाए जाते हैं नृत्य गीतों के लिए गिद्धा गीतों की प्रमुख विशेषता है।

गिद्दा गीत–

जंगल वासी ओ किंने मारेया मेरा मोर
उड़उड़ मोरा बाँगा मंच बैठी जा
निम्बुआ दे हेठ लुकाई रखदीं
किंने मारेया मेरा मोर।

भावार्थ–उपर लिखित गिद्दा नृत्यागीत में मोर को ना मारने के उपक्रम का वर्णन किया गया है। नायिका कहती है की यदि मोर उड़ कर बाग में बैठेगा तो मैं उसे नींबू के पेड़ के नीचे छुपा के रख दूँगी। इसी प्रकार मोर को सुरक्षित रखने के लिए विभिन्न स्थानो के नाम लेकर गीत को आगे बढ़ाया गया है।

नाटी

नाटी गीत हिमाचल प्रदेश के लिए बहुत लोकप्रिय नृत्य गीत हैं इन गीतों को पुरुष महिलाएं मिलकर एवं पृथक् पृथक् भी गाते हैं। महासू और सिरमोरी नाटी हिमाचल प्रदेश में अत्यंत प्रसिद्ध है। नाटी गीत एवं नृत्य विलंबित मध्य एवं द्रुत लय में किया जाता है जिससे नाटी का सौंदर्य बढ़ जाता है। सिरमौर क्षेत्र में नाटी गीतों में विभिन्न प्रकार की कथाओं का वर्णन भी मिलता है। ये नाटी वास्तविकता में आनन्द तथा लय में गाए जाने वाली लोक शैली है। ऊपरी हिमाचल के लोकगीतों में नाटी ही प्रसिद्ध गीत है।

नाटी गीत–
ओरु दे भावी, मेरी दाचि
ओरु दे भावी, मेरी दाचि
देवा नरेणा लाणी पाची
देवा नरेणा लाणी पाची
बिंदरा बणे बासी ना बी
सबी ते बांठना मेरी भाबी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, मनोरमा (1996) लोक मानस के सुरीले स्वर, साँई बुक हाउस, इंद्र प्लेस मार्केट, संजौली शिमला।
2. चंद्र, कश्यप पदम (1972) कुल्लवी लोक साहित्य, नैशनल पब्लिशिंग दिल्ली।
3. सुदर्शन, विशिष्ट (1984), व्यास की धारा, हिमाचल पुस्तक भंडार दिल्ली।
4. नाथ, ठाकुर ओंकार (1983), भारत का लोक संगीत और उसकी आत्माण् लोक संगीत अंक, शिमला।
5. शर्मा, मनोज (1998), हिमाचल प्रदेश के सिरमौर जनपद की लोक गाथाओं का सांगीतिक विश्लेषणण् संगीत विभाग पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़।
6. जस्टा, हरिराम (1997), हिमाचल प्रदेश के लोक प्रिय गाथा गीतण् सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।
7. राम, खुशी (1992), सिरमौरी लोक साहित्य, कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी, शिमला।

Corona Period: Various Dimensions of Music Teaching and Stage Presentations in the Context of Globalization and Communication Revolution

Dr. Rajpal Singh
Assistant Professor,
Faculty of Music and Fine Arts,
University of Delhi

Jatin Mohan
Research Scholar,
Faculty of Music and Fine Arts,
University of Delhi

Abstract

The outbreak of Covid-19 has strongly affected every aspect of modern society including music. Lockdown implemented by almost every country including India as a preventive measure has created financial distress among musicians and motivated other technological alternatives as a replacement of traditional methods of Indian classical music. These alternatives have many benefits but also have severe disadvantages. This paper is about the critical assessment of the current situation with the help of an empirical study.

Key Words

Covid-19, Internet, social media, Webinar, YouTube

In December 2019, a new form of a pre-existing virus was found in the bush market of Wuhan, China (World Health Organisation, 2020). The virus was later named as Covid-19. Due to the easily communicable nature of the virus through human contact, almost every nation implemented a lockdown (the degree of it varied among nations) as a major act for prevention, in their territory where residents must stay inside their houses, avoid human contact, and maintain social distancing. In India, the lockdown was introduced on 24th March 2020 (The Economic Times, 2021). This measure modified many aspects of the human life, including Music.

Modifications in Music and Affects

Modifications in Performance

The implemented lockdown has transformed music in many possible ways.

The traditional course of performance where the audience used to gather at the venue and experience the live performance has taken a different form. The performers are using different technological and social platforms such as Facebook, Instagram, YouTube, Zoom, Skype, etc. They were originally invented for connecting people across the globe but during the current period, they are of great assistance in teaching and performance of music. Facebook, an American social media and technology company has a feature known as the Facebook-live in which the performer can broadcast its performance live and the audience can be part of that in real-time, without accumulation of them at a common venue. Instagram has a similar feature to this. This the closest replication of the traditional way of performance can be achieved during current period. These methods of performance and teaching of music are not completely novel, they were in prevalence earlier; many foreign students used to attend their music classes through these mediums from their Indian gurus, but in this precarious period they have become greatly prominent.

These are very easy and cost-effective methods of performance; they bypass all costs involved in the traditional method of performance ranging from booking a venue to the promotion of the event. It can be argued that due to this prime reason many new performers in the current period are getting the chances of performing and reaching to the audience. In addition, social media is not constricted to any national boundary hence performances on social media have a wide reach across the globe and can include audience from every whereabouts of it.

Despite all of its qualities, it has few significant drawbacks ranging from authenticity and quality of performance to the issues of network connectivity. First and foremost, all of these applications are not specifically designed for assisting music performances and teaching. In live vocal performances, a little time gap and little lag of sound clarity of both the singer and accompanying instruments specifically in the case of Tanpura is sometimes experienced. In the case of instrumental performances, and recorded rather than live performances, the experiences found to be better. With addition to it, all activities over social media are subject to network connectivity, therefore any abruption in the network on the performer or audience's part can lead to disrupt either the performance or audience's experience of it. If any interested individual does not have access to a healthy internet connection, then it will jeopardise the individual's ability to participate in any of them and compromise its whole experience whenever it becomes part of one. In a country where only 50% of the population has access to internet, this problem can be of quite significance (Statista, 2021). Another issue is about the accompaniment of manual instruments. Due to implementation of lockdown, performers are drawn to use electronic instruments such as electronic Tabla, electronic Tanpura which compromises both the authenticity and the subtle nuances of creativity which comes with real accompanying artists and manual instruments.

The convenience and cost-effectivity of performances over technology have given access to everybody with a healthy internet connection to take part in some kind of musical activity such as by posting videos over Facebook, giving online classes over YouTube, etc. It has reduced the significance of the prerequisite of being significantly trained and groomed required prior to participating in such musical activities. Students who are on very early stages of their musical career are regularly present on these social platforms with their ambitious attitudes but mediocre musical product. Traditional gurus and experts of Indian music have a particular disagreement with it. It would not be wrong to argue that what should be counted as one of the major benefits of technology perhaps due to its overuse has cultivated a worrying negative aspect within the community of young music aspirants which has short-sighted their vision and pushed them towards the realm of publicity and marketing, which is neither helpful for music nor for students who are promoting it.

Another major problem is that the lockdown has created a situation of financial crisis across India. India's GDP growth dropped down to 4% in 2019-2020 which was the slowest in 11 years, (Business Standard, 2021) before it raised up to 8.4% (IECONOMICS INC). This financial distress has also affected musicians. Many music teachers have lost their music classes and performances which were their primary source of earning specifically religious and folk singers whose entire earnings were through performing on religious ceremonies and commercial shows which can't be replicated through the use of technological resorts.

Modifications in Teaching Methods

Similar to the performance, different technological platforms are also proven to be of great assistance in the teaching of music. Applications such as Skype, Zoom, and Google Meet where multiple people can be connected to a single call are assisting to provide a closest replication of traditional Seena-*ba*-*Seena taleem (*Individualised teaching) and institutionalized teaching of music, achieved by students and teachers. Many academic institutions of music are resorting to them and commencing online classes for completion of their syllabuses.

Last year, a few well known artists of Indian music gave few valuable classes over different social media platforms. For example, on 27th march 2020, tabla maestro Ustad Zakir Hussain gave a live session of tabla on Instagram, which was available for all and was of no cost. Legendary vocalist Pt. Jayateerth Mevundi did a similar act on Facebook. During this difficult period, these teaching sessions through technology have fulfilled the demands of many music aspirants, which would have been difficult to be fulfilled otherwise. But all these alternatives are subjected to most of the issues mentioned earlier regarding performance, if not all. Technology is not a perfect alternative to the traditional method of teaching but considering the current situations, it is the best possible alternative.

On the academic level, the seminars are getting replaced by webinars, which can be understood as online seminars.

They were in practice earlier but, due to current conditions they are more ubiquitous. Many esteemed universities are utilizing this technological alternative, such as the music department of B.H.U (Banaras Hindu University) organized a two-day international webinar on 28th and 29th May 2020. I.K.S.V.V (Indira Kala Sangit Vishwavidyalaya) organised a similar event on 27th and 28th May in the same year. Apart from webinars, many other kinds of academic-musical events are getting organized over these technological platforms. For example, the music department of the University of Delhi organised their well celebrated Malhar festival online, which was live telecasted over YouTube (YouTube, 2021).

Empirical Research

Empirical research was conducted by the author through a questionnaire in which 24 students and 3 professors of music participated. All of the participants were from the Faculty of Music and Fine Arts, University of Delhi. The questionnaire attempted to review the opinion of current music students and professors about aforesaid technological options and their possible effects in the future.

The result of the questionnaire is in the appendix, at the end of the paper.

Conclusion

The pandemic situation of Covid-19 has modified and affected many aspects of music. The traditional method of performance, teaching, learning and academic work has resorted to different technological alternatives. As mentioned earlier, they all are subjected to different kinds of issues, but given the current situations and considering the fact these are the only options available, they must be accepted, utilized and appreciated. Recognizing the communication revolution, the pandemic has motivated and also the demand by the professional musicians, music students and institutions, it would not be wrong to expect that in the future new applications or a new feature would be added which would be specifically designed for music, which should improve the musical experience of both teaching and performance over the internet. The financial crisis of musicians should be supervised and managed by concerned authorities such as the Ministry of Culture etc.

The empirical research was done on a very small scale. But the obtained data suggest some revelations. The data suggest that still, the majority of musicians do not prefer technological platforms over traditional methods, the majority of them prefer them only less than thrice a week. The data argue that presently available technology is quite incompetent to take over our traditional methods of music, the majority of them rated it at 5 and 6 out 10. The majority of the participants, believing that current technological resorts should only be considered as alternatives to our traditional methods rather than replacements, supports the earlier point. Beside it, 50% of participants believe that at any point in the future technology might be able to overpower our traditional methods. Data suggest that musicians believe that their righteousness will depend on the capability of technology which will replace them. But the most

important finding of the data suggests that majority of the musicians would like to return to traditional methods when the situation returns to normalcy. The size of this empirical research is very microscopic considering the large population of Indian musicians and experts. Similar research done on large scale might bring different results.

Covid-19 is a perturbing situation and should not be taken incautiously. These different dimensions of music performance and teaching motivated by the circumstances created by it must be appreciated, but by no means should be seen as a comprehensive replacement of the traditional methods and everything must return to normal as the earliest. But it will not be wrong to argue that the realm of music will not ever be the same, I argue it will have much clearer interference of technology in it, which should be dealt with caution.

References

Business Standard Private Limited. "India's GDP growth rate for 2019-20 revised downwards to 4% from 4.2%." Business Standard. last updated 29th January 2021. https://www.business-standard.com/article/economy-policy/india-s-gdp-growth-rate-for-2019-20-revised-downwards-to-4-from-4-2-121012902037_1.html.

Google. ""Malhar Utsav || 25 AUGUST." YouTube. 25th August 2021 https://www.youtube.com/watch?v=gx3VKhYTW2I

IECONOMICS INC. "India GDP Annual Growth Rate." Trading Economics. https://tradingeconomics.com/india/gdp-growth-annual.

Statista. "Internet Usage in India - Statistics & Facts." Statista. May 8, 2020. https://www.statista.com/topics/2157/internet-usage-in-india/

The Times Group. "India Will Be Under Complete Lockdown For 21 Days: Narendra Modi."

The Economic Times. Updated on 25th March, 2020. https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/india-will-be-under-complete-lockdown-starting-midnight-narendra-modi/articleshow/74796908.cms.

The Times Group. "Covid-19: How the Deadly Virus Hints at a looming Financial Crisis." The

Economic Times. Updated on 22nd March, 2020. , https://economictimes.indiatimes.com/news/economy/finance/covid-19-crisis-how-the-deadly-virus-hints-at-a-looming-financial-crisis/articleshow/74752200.cms

United Nations Economic and Social Council. "Q&A on Coronaviruses (COVID-19)." World

Health Organisation. Updated on 17th April, 2020. https://www.who.int/emergencies/diseases/novel-coronavirus-2019/question-and-answers-hub/q-a-detail/q-a-coronaviruses

Appendix

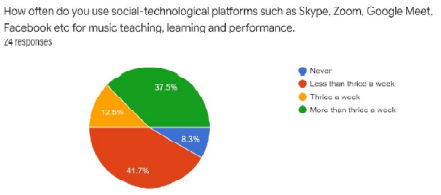

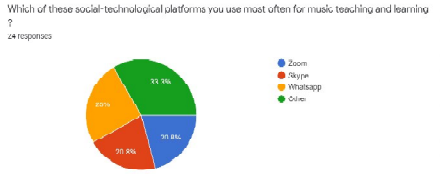

What kind of music seems to be better suited for its practical application over technology ?

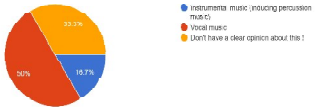

How much you rate different social-technological platforms with regards to currently available technology as mediums for music teaching, performance and learning ?

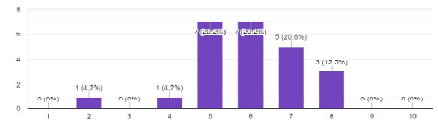

According to you, how these social -technological platforms must be seen in contrast with traditional methods of music learning, teaching and performance ?

What method would you prefer to use for a music performance over internet?

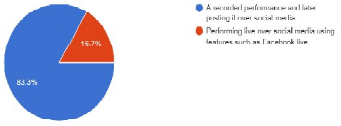

What are the main problems you face while using different social-technological platforms for music teaching,learning and performance ?

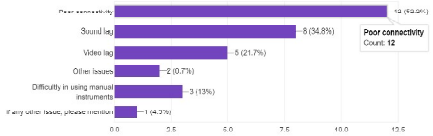

Considering the high pace of technological advancements, do you think that traditional methods of music will be predominantly taken over by technology in some point of time ?

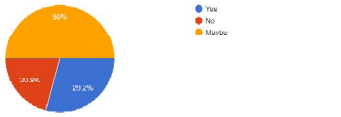

According to you, how these social-technological platforms must be seen in contrast with traditional methods of music learning, teaching and performance ?

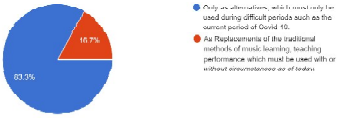

If that happens, How would you consider it ?

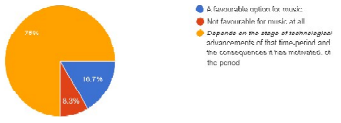

If the current circumstances of the pandemic returns to normalcy, what would you prefer ?

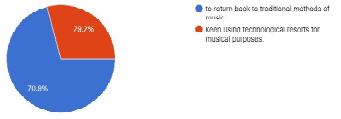

Impact of Music Therapy on Stress Reduction

Anubhuti Gupta

Research Scholar
Faculty of Music and Fine Arts, Delhi University

Abstract

Since the origin of mankind, music has always played a significant role in our society. The effect of music on human body is not a new concept to be discussed and practised. Stress is an inevitable part of our everyday life. It is a well-known risk factor for the onset of various physical and psychological disorders like cardiovascular diseases, cancers, anxiety disorders and depression. The causes of stress may differ from individual to individual but the end result is an adverse effect on both physiological as well as psychological well-being of the person. To cope up with the demands of today's society, millions of people over the world use tranquillizing medications which may have a lot of negative side effects, including substance dependence and abuse. Music helps to treat stress in a variety of ways, it can improve mood, vitality, self-esteem and personality.

This article has taken references from books, research papers and seminar proceedings related to this subject. It has highlighted some past instances where music has served as an effective healing tool. Through this paper, an attempt is done to find out the appropriate usage of music for a better living condition without a stress-free life.

KEYWORDS

Music Therapy, Stress, Raga, Vedas, Human Body

Music is the most beautiful language invented in the course of history. Music has been the companion of human beings since the beginning of the society. Music therapy is the use of sounds and music within an evolving relationship between client and therapist to support and encourage physical, mental, social and emotional well-being. [1]

Decades back, during the war days, the Americans accidentally happened to know of the power of music when some local bands came to play casually in their hospitals where war savaged veterans were convalescing. It was recognised that music does have a role in healing the wounds of the mind and worked as a

soothing sedative too. The earliest known reference to music therapy appeared in 1789 in an unsigned article in *Columbian Magazine* titled "Music Physically Considered." According to American Music Therapy Association, "Music therapy is the clinical and evidence-based use of music interventions to accomplish individualized goals within a therapeutic relationship by a credentialed professional who has completed an approved music therapy program" [2].

However, coming to the musical culture in India, the healing secrets of sound and music were long recognised ever since yoga came to exists. Nada Yoga which celebrates the science of using sounds and yogic asanas has enormous healing power. The concept of Indian classical music employed as an instrument of music therapy has emerged from the correct intonation and right use of its basic elements such as nada, shruti, swara, raga, tala, laya, time theory and rasa theory. It is unique in its practice as it draws notes from deep within and uses it to pulsate and vibrate a targeted chakra.

TENSION AND ANXIETY- MAIN MALADIES OF OUR MODERN LIFE

"Stress is a feeling of emotional and physical tension. It can come from any event or thought that makes you feel frustrated, angry or nervous. Stress is your body's reaction to a challenge or demand" [3]

The effects of stress and anxiety on human behaviour have been widely recognised. Technological advancements, unhealthy lifestyles and changing social structures of families have made us all prone to stress related diseases than ever before. Living in depression, taking anti-anxiety pills, topsy turvy daily routine is nothing but a common fashion among youngsters now. Experts estimate that between 50% and 80% of all medically related disorders are directly attributable to stress related etologies. Hanser's literature review (1985) found that psychosocial stressors are considered to be the major catalysts in the development of progression of hypertension and associated illness, gastrointestinal problems, skin disorders, headaches, insomnia, coronary, artery disease, and other potentially life-threatening diseases.[4]

Anxiety is frequently connected to sleeping problems. Excess worry and fear make it harder to fall asleep and stay asleep through the night. Sleep deprivation can worsen anxiety, spurring a negative cycle involving insomnia and anxiety disorders. [5]

EFFECT OF MUSIC THERAPY ON STRESS RESPONSE

Music is regarded as an effective tool in stress reduction. Studies have shown that when people are deeply involved in activities which amuse them, physiological factors such as the heart rate, blood pressure and respiratory rate are lowered, thereby lowering the stress levels.

The qualities of different musical frequencies which manipulate the brain wave to its desirable proportion are responsible for maintaining the neutron level of a human body. This in turn controls the hormonal activities which may be the fundamental reason for every

mental and physical problem.

Major elements that go into music are pitch, timbre, key, harmony, loudness, rhythm, meter, and tempo. Neuroscientists deconstruct sound into its components to study selectively which brain regions are involved in processing each of them, and musicologists discuss their individual contributions to the overall aesthetic experience of listening. [6]

A study made the newspapers and morning talk shows several years ago, claiming that listening to Mozart for ten minutes made you smarter. (The Mozart effect). Specifically, music listening, it was claimed can improve your performance on spatial reasoning tasks given immediately after the listening session. U.S. Congressmen were passing resolutions, the governor of Georgia, appropriated funds to buy a Mozart CD for every new-born Georgian baby. [7]

The Mozart effect referred to immediate benefits, but other research has revealed long term effects of musical activity. Music listening enhances or changes certain neural circuits, including the density of dendritic connections in the primary auditory cortex. The Harvard neuroscientist Gottfried Schlaug has shown that the front portion of the corpus callosum- the mass of fibres connecting to two cerebral hemispheres- is significantly larger in musicians than non-musicians, and particularly for musicians who began their training early. This reinforces the notion that musical operations become bilateral with increased training, as musicians coordinate and recruit neural structures in both the left and right hemispheres. [8]

A 2019 study found that music encourages the release of dopamine in the synapses of the brain. Dopamine is a neurotransmitter that plays an important role in our cognitive, emotional and behavioural functioning. Known as the 'happy hormone', it helps to create the feeling of pleasure. While we have long known that music improves mood, there's increasing evidence that it can also contribute to mental and physical health.

Oxytocin is another hormone released while singing which can alleviate stress and anxiety. Studies have found that singing exercises decreases feelings of depression and loneliness. [9]

KNOW YOUR MUSICAL FINGER-PRINT

The statistic provides data on favourite music genres among consumers in the United States as of July 2018, sorted by age group. According to the source, 52 percent of respondents aged 16 to 19 years old stated that pop music was their favourite music genre, compared to 19 percent of respondents aged 65 or above. [10]

So, what type of music reduces stress the best? A bit surprising is that Native, American, Celtic, Indian stringed-instruments and flutes are very effective at relaxing the mind even when played moderately loud. Sounds of rain, thunder, and other nature sounds are also considered to be relaxing.

Dr. Rajam Shanker, a renowned Indian Classical Music Therapist from Hyderabad advocates the use and development of country specific practices and protocols factoring in social, cultural, lingual, ideological, religious and even

political contexts and sensitivities. [11]

The music therapy is entirely client specific. The client has to first like the music and then it will relax him/her. Vocal Music is seen as suitable to all age groups and for all kind of ailments. For therapeutic effect, people show certain preferences to certain kind of voices. A gentle voice is usually more therapeutic. In general, elongated notes add therapeutic value rather than a flurry of oscillations. [12]

Love and appreciation for any music (but not heavy and death metal), an open mind and a positive receptive attitude, faith and patience are the few things that are required in a person for music to charm its spell on. [13]

While self-administered music therapy is certainly inevitable for all musical listeners, being engaged with a therapist is being evaluated and guided to consciously selecting your 'musical finger-print'. [14]

SOME QUICK RAGA THERAPY INTERVENTIONS FOR STRESS MANAGEMENT

Raga Chikitsa forms the backbone of Indian Music Therapy. It's highly spiritual and is enriched with eternal musical energy.

Pt. Shiv Kumar Sharma created a raga named Antar Dhvani which is being extensively used for meditation. This raga is suited to times when the tired mind seeks complete peace, when a person wants to shut his being to all external stresses. [15]

Pt. Hariprasad Chaurasia stressed on listening to Indian classical ragas during the distressing phase of lockdown. He suggested listening to some ragas namely Raga Bhatiyar sung at the crack of dawn to soothe and refresh listeners; Raga Lalit, also a morning raga brings serenity; Raga Yaman, a night raga could work as a stress buster with its ability to evoke devotion, love and cheer and Raga Malkauns, rendered late night, it aids in the process of internalisation. [16]

In a recent electroencephalography (EEG) study on the impact of Indian classical music, especially of Hindustani ragas on individuals, Dr Shantala Hegde, assistant professor, neuropsychology unit, National Institute of Mental Health and Neurosciences (NIMHANS), Bengaluru, says that after listening to Hindustani ragas, 20 musically untrained subjects showed increased overall positive brain wave frequency power, higher even than that in highly relaxed meditative states.

Listening to certain ragas, for example Desi-Todi, for 30 minutes every day for 20 days, has been shown to produce a significant decrease in systolic and diastolic blood pressure, to reduce stress, anxiety and depression, and to enhance feelings of life satisfaction, experience of hope and optimism," says Hegde. [17]

CONCLUSION

Music therapy is one of the most effective alternate therapy without any side effects. There is a need to educate people in this aspect of utilizing music as a therapy. It has always been a part of our society since its origin. Unfortunately, there is less awareness regarding its practicality and usage. We have forgotten our rich and radiant cultural heritage and teachings. Educating people about this is the need

of the hour. In India, it is still in its budding stage. There are many trusts and organisations in India working towards it.

Yet much work needs to be done and a more scientific documentation is required. There is a vast ocean of different Ragas in Indian Classical Music which can be exploited for the betterment of mankind in general and to enrich the medical science in particular.

Just like how Yoga, meditation, and physiotherapy are being encouraged as different forms of treatment methods, music therapy should also be promoted by the AYUSH (Ayurveda, Yoga, Naturopathy, Unani, Siddha, and Homeopathy) ministry.

Memorable and timeless, music has been a constant source of comfort and companionship in challenging times like these. The show must go on.

REFERENCES

[1] Leslie Bunt, Music Therapy, An art beyond words, 2nd edition

[2] https://www.musictherapy.org/ ,What is Music Therapy? Web assessed on 5th, April, 2022, 16:20 hrs.

[3] https://medlineplus.gov/, Stress and your health, Web assessed on 10th April, 2022, 19:00 hrs.

[4] https://www.mtabc.com/, Music therapy for stress and anxiety, Web assessed on 2nd April, 2022, 13:20hrs.

[5] https://www.sleepfoundation.org/, Anxiety and Sleep, Web assessed on 15th April,2022, 20:25 hrs.

[6,7,8] Daniel J. Levitin, this is your brain on music- The science of a human obsession, published by Dutton, a member of Penguin Group (USA) Inc. (Page 73, 219, 220)

[9] Kim Waterman, Media Relations Manager, kimberly .waterman@nm.org.cell, The power of music to help cope with covid 19, www.nm.org, 9th April 2022 https://www.nm.org/about-us/northwestern-medicine-newsroom/nm-news-blog/power-of-music-to-cope-with-covid-19

[10] Favourite music genres among consumers in the United States as of July 2018, by age group- Statistical Research Department January 8, 2021

[11,12] Rajam Shanker, the healing power of Indian ragas- personal experiences of ragas applied in music therapy, (page 25,47)

[13] Manju Lata Kalanidhi. Music therapist Rajam Shanker uses raga to heal pain, The New Indian Express, 20 June, 2021

[14] Rajam Shanker, the healing power of Indian ragas- personal experiences of ragas applied in music therapy, page 34

[15] The Tribune, Jalandhar, Feb 16,2004 Feb 4, 2004 the Tribune, Chandigarh

[16] Chitra Swami Nathan, Pandit Chaurasia suggests ragas to boost you up during lockdown. THE HINDU, April 4, 2020

[17] The Economic Times, how neuroscience is reinventing music therapy, Aparna M Shridhar, 2 July, 2017

उत्तराखण्ड के पर्वतीय जौनसार बावर क्षेत्र की संस्कृति में हारूल लोकगीत

प्रो. शर्मिला टेलर
निर्देशिका, मंचकला विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

शारदा सहगल
शोधार्थी, मंचकला विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

सार-संक्षेप

भारत वर्ष विश्व का ऐसा अनुपम देश है जिसकी गौरवशाली वैदिक संस्कृति ने पुरातन काल से ही विश्व को एक जीवन दिशा दी है। परमात्मा की दिव्य शक्ति से उद्‌भव यह हिन्दु धर्म संस्कृति अपने आप में श्रेष्ठ मार्गदर्शी व उच्च मापदंडो को स्थापित करती है। देवात्मा हिमालय की गोद में विराजमान देवभूमि उत्तराखण्ड का ही एक पर्वतीय जनजातीय क्षेत्र है जौनसार बावर, जिसकी प्राकृतिक सम्पदा, प्राचीन संस्कृति व धार्मिक विश्वास अपने में अनूठी है। सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न यह जौनसार बावर क्षेत्र, अपनी लोक संस्कृति, परम्पराओं, रीति-रिवाजों, संस्कारों तथा आचार-विचारों की सशक्त अभिव्यक्ति अपने लोक संगीत द्वारा करता रहा है। यहां की लोक संस्कति को प्रवाहशील बनाए रखने में यहा के लोकगीतों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 'हारूल' यहां का सबसे प्रमुख व लोकप्रिय लोकगीत माना जाता है। यह गीत और नृत्य संयुक्त विधा की प्रस्तुति है तथा यह मुख्यतः वीरता व प्रेम प्रसंगों पर आधारित लोकगीत हैं। मेलों, त्यौहारों व पर्वो जैसे अवसरों पर इन गीतों का गायन बड़े हर्षोल्लास के साथ होता है। साथ ही विभिन्न बाद्य यन्त्रों के स्वर गूंजने लगते हैं। यहां लोकरंजन के साथ-साथ लोकमंगल की भावना की भी पूर्ति होती है। यह लोकगीत जनमानस की बहुमूल्य निधि है जो लोकमानस के हृदय को आनन्द और रंजकता का रसपान कराती हैं।

परन्तु वर्तमान में इन लोकगीतों की छवि धूमिल हो रही है, जो चिन्तनीय है। अतः हमें उनका संरक्षण करना चाहिए। हारूल लोकगीतों का हमारी संस्कृति में विशेष महत्व है, जिसका उल्लेख मैं अपने शोध पत्र में करूँगी।

बीज-शब्द

जौनसारी संस्कृति, हारूल, लोकगीत, जनजातिय क्षेत्र, परम्पराएं

हिन्दुस्तान विभिन्न संस्कृतियों का देश रहा है। नाना प्रकार की धार्मिक साधनाओं, कलात्मक प्रयत्नों और सेवा भक्ति तथा योग मूलक अनुभूतियों के भीतर से मनुष्य उस महान सत्य के व्यापक, और परिपूर्ण रूप को प्रवशः प्राप्त करता है। जिसे हम 'संस्कृति' शब्द द्वारा व्यापक करते है। संस्कृति ही समाज का संस्कार बनाती है, सुपात्र और सुयोग्य नागरिकों का निर्माण करती है। इस दिव्य संस्कृति का उद्‌भव परमात्मा की दिव्य शक्ति से ही हुआ है जिसे आर्य संस्कृति या सनातन धर्म संस्कृति के रूप में भी वर्णित किया

गया है'। यह संस्कृति विश्व की सभी संस्कृतियों की जननी है जो सबसे प्राचीन, जीवंत तथा वैज्ञानिक संस्कृति के रूप में भी प्रदर्शित है। किसी भी समाज की संस्कृति उस समाज की लोककलाओं द्वारा अंलकृत होती है। वे लोकगीत ही हैं जो लोक संस्कृति का दर्पण है जिसमें उसका वास्तविक स्वरूप प्रतिबिम्बत होता है। यें लोकगीत ही लोक संस्कृति के संस्कार का सच्चा व्याख्यता है। अतः कहा जा सकता है कि समाज के सारे संस्कार लोकगीतों की पारम्परिक विधाओं में ऐसे ही रचे-बसे हैं जैसे वस्त्राभूषणों द्वारा नारी का श्रंगार।

नगाधिराज हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं में स्थित भारत देश का एक छोटा सा राज्य है 'उत्तराखण्ड' जिसका नाम लेते ही देवभूमि के दर्शन होने लगते हैं। इसे प्राचीनकाल से ही ऋषि-मुनियों की तपोभूमि कहा गया है जो वैदिक आर्यों की निवास स्थली के नाम से भी जानी जाती है। इसी आद्यशक्ति पार्वती की जन्मभूमि उत्तराखण्ड का ही एक पर्वतीय जनजातीय क्षेत्र है 'जौनसार बाबर' जो अपनी अलग ऐतिहासिक व सांस्कृतिक पहचान के लिए पृथक सार्वभौम अस्तित्व बनायें हुये है। यमुना-टौंस नदियों से घिरा यह क्षेत्र खशों के प्रभुत्व व पाण्डवकालीन संस्कृति से जुडा रहा है । महाभारत काल से जुड़ा यह क्षेत्र पांडवों की कर्मभूमि रहा है। यहाँ के लोग स्वयं को पांडव वंशज मानते है। साथ ही जौनसार बाबर धार्मिक परम्पराओं की पहचान के लिए भी प्रसिद्ध है। यहाँ का लोक मानस मन, वचन, कर्म से धार्मिक तथा नैतिक संस्कारों में बंधा हुआ है। इस क्षेत्र के निवासियों की ईश्वर के प्रति असीम श्रद्धा एवं विश्वास है। 'महासु' देवता यहाँ के कुलाधिदेव हैं, आराध्य हैं, तथा हर व्यक्ति की पूजा-उपासना, आस्था व विश्वास के केन्द्र में विराजमान हैं। यहां के लोक जीवन में प्राचीन संस्कृति अपने मौलिक रूप में झलकती है। पारम्परिक बोली-भाषा, रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, शिक्षा-दीक्षा, खेती-बाड़ी, आचार-व्यवहार, बेशभूषा और पृथक जीवन शैली के कारण इसका अपना अलग अस्तित्व और पहचान है। स्वभाव में पहाड़ की स्वाभाविक सरलता एंव अतिथि सत्कार की परम्परा यहाँ का वैशिष्टय है।

देवात्मा हिमालय की गोद में स्थित जौनसार बावर क्षेत्र को देवस्थल व उत्तराखण्ड का तिलक माना जात है। ''यहाँ अत्यंत कष्टमय जीवन में भी संगीत तथा नृत्य की प्रधानता रही है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में लिखा है - 'यस्याम नृत्यन्ति गायन्ति यैतवा' , अर्थात् यहां के मूल निवासी अपनी भूमि में ही नाच-गाकर अपना मनोरंजन करते हैं''[1]। लोक संगीत का अभिप्राय जन-मानस की साधारण अभिव्यक्ति से है। अभिव्यक्ति की यह परम्परा आदिकाल से ही चली आ रही है। ''भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार जो संगीत देश, काल और जाति आदि के आधार पर स्वयं बनता है, फलता-फूलता है, वह लोक संगीत है''[2] इस पर्वतीय क्षेत्र की लोकसंस्कृति में लोकसंगीत, लोकभाषाओं, लोक कलाओं, पुरातत्वीय ज्ञान तथा संस्कारों की पारम्परिक प्रणालियों व पद्धतियों का अद्भुत समन्यवय है। यहां के लोकगीतों में लोक-विश्वास, स्वच्छंद जीवन और पर्वतीय लोक मानस के विराट हिमालयी दर्शन होते है। साथ ही इस क्षेत्र की लोक संस्कृति का सम्बन्ध इसके सीमावर्ती क्षेत्रों से भी दृष्टिगोचर होता है।

लोकगीत लोक मानस की सनातन आदिम प्रवृतियों को प्रतिबिम्बित करतें है। लोक संस्कृति जहां लोक के सम्पूर्ण वांड्गमय की औदार्य प्रांजलता को अभिव्यंजित करती है वही लोकगीत संस्कृति के एक बड़े भाग की युगानुरूप प्रांसगिकता को अक्षुण बनाए रखते हैं।

जौनसार बावर एक पर्वतीय जनजातीय क्षेत्र है। जनजातीयों की अपनी पृथक लोक परम्पराएँ है, अर्वाचीन मौलिक संस्कृति है। अपनी अलग विशेषताएं हैं। जौनसार बाबर की समूची लोक- संस्कृति प्रचलित पौराणिक, धार्मिक और पारम्परिक लोकगीतों में अभिव्यक्त है। यहाँ जीवन से मृत्यु तक के सारे संस्कार लोकगीतों में निबद्ध है। ये लोकगीत जीवन-वेद की ऐसी अमर ऋचाएँ है जिनमें इस लोक-संस्कृति की सम्पूर्ण सामाजिक सांस्कृतिक विरासत का इतिहास

विद्यमान है।

जौनसार बावर मेलों और त्यौहारों का पौराणिक क्षेत्र रहा है। इन अवसरों पर विभिन्न प्रकार के लोकगीतों का गायन होता है जिनके माध्यम से जौनसारी लोक संस्कृति के कई रंग देखने को मिलते है। ये लोकगीत इस क्षेत्र की आशाओं, आकांक्षाओं, हर्ष उल्लास एवं विषाद आदि का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रकृति-पूजा एवं देवी-देवताओं की स्तुति-आराधना के अतिरिक्त जन्म, विवाह एवं मृत्यु आदि संस्कारों, ऋतु-बहारों, पर्वो-उत्सवों, कृषि, पारिवारिक जीवन तथा दैनिक जीवन आदि की सहज अभिव्यक्ति का इस क्षेत्र के लोकगीतों में चरम उत्कर्ष है। मेलों तथा त्यौहारों का पौराणिक क्षेत्र होने के कारण इन अवसरों पर यहाँ विभिन्न प्रकार के लोकगीतों का गायन होता है जैसे-

1. हारूल गीत (प्रेमप्रंसगों व वीरता पर आधारित लोकगीत)
2. मांगड़ गीत (विवाह के मांगलगीत)
3. जंगू-बाजू (प्रेमी, प्रेमिका के उद्‌गारों का संदेश-संवाद)
4. कृषि गीत (उत्तम फसल की कामना के लिए)
5. भारत गीत आदि।

मध्य हिमालय की उपत्यका में स्थित जौनसार - बावर क्षेत्र में 'हारूल' लोकगीत यहाँ का सबसे प्रमुख व लोकप्रिय लोकगीत माना जाता है। 'हारूल' लोकगीत की एक ऐसी विधा है जिसमें सैकड़ो वर्षों का इतिहास समाहित है। 'हारूल' नृत्य तथा गीत संयुक्त विधा की प्रस्तुति है । यह विशेषकर प्रेम-प्रसंगों व वीरता पर आधारित लोकगीत हैं। इन लोकगीतों के गायन द्वारा स्थानीय वीरों या विशेष घटना का वर्णन किया जाता है। हारूल में दिन तारीख तो नहीं होती किन्तु मौखिक घटना इतना बता देती है कि घटना क्या हुई, क्यों हुई? उसका क्या परिणाम रहा? तथा कौन उस घटना या बहादुरी का नायक रहा? जनजातियों के कुछ अलग रीति रिवाज तथा मान्यताएं होती है। यहां त्यौहारों और उनसे जुड़े मेलों को मनाने का नितान्त अपना व पृथक ढंग होता है। जौनसार में माघ त्यौहार, दीपावली, बिस्सू, दशहरा (पांचोई), जागड़ा, नुणाई, मौंण आदि ये प्रमुख पर्व है। जागड़ा पूर्ण रूप से 'महासु देवता' का त्यौहार है।

जौनसार बावर के आराध्य, महासु देवता की आराधना हेतु जागड़ा होता हैं। इन त्यौहारों को मनाने की अपनी अलग परम्पराएं हैं। जैसे माघ त्यौहार पूस की संक्रान्ति के दिन शुरू होता है। उस दिन जौनसार बावर में घर-घर बकरे काटे जाते है। दीपावली (दीयाई) यहां आम दीपावली से एक माह बाद मनाई जाती है जिसे 'पहाड़ी दीवाली' या पुरानी दीवाली कहते हैं। बिस्सू त्यौहार यहां बुराँस के फूलों से घर-गाँव सजाने का बसन्तोत्सव होता है। विजयदशमी को 'पांचोई' के रूप में मनाते हैं। यह सारे पर्व बड़े हर्षोल्लास से मनाये जाते हैं। ऐसे पर्वो पर स्थानीय लोग अपनी पारम्परिक वेश-भूषा में सजकर जाते हैं तथा हारूल लोकगीतों का गायन होता है। अतः कहा जा सकता है कि 'हारूलों' की घूम रहती है।

'हारूल' एक ऐसी लोकप्रिय विधा है जिसे घर के भीतर या बाहर, गांव के आंगन में सामूहिक गान में अनेक लोकवाद्यों जैसे ढोल, दमामा, ढोलक, रणसिंगा, नग्यारा, करनाई आदि के साथ गाया जाता है। वेशेषकर बड़े-बुजुर्ग महिला - पुरूष इस पर जब आँगन मे गाते हुए चलते है तो अच्छा से अच्छा पीटी मास्टर भी अचंभित हो जाता है। इसकी विशेषता यह है कि यह प्रारम्भ करने से पहले लोकगायक सबसे पहले अपने ईष्ट देवता 'महासू' का गुणगान हारूल में करते हैं एवं महासू देवता की माता देवलाडी का भी गुणगान करते हैं। उसके बाद ही हारूल के नायक, स्थान घटना का विवरण आदि का वर्णन होता है। लोकगीत 'हारूल महासु देवता' की यह भावना इस प्रकार व्यक्त हुई है-

हारूल महासु देवता

मोले रै मोलाईरै केरी मोलाई हांईरै,
चारे गइणें महासू रै चारी औ भाई हांईरै।
देउ गाइणों बिजटौरे चूड़ी री ठाई हांईरै
हाटे गाइणी कोटिया रै दोरोगा माई।

थाने गाइणी मैन्द्रथ देवलाडी माई,
गीते गांइणी उगेले औनौली री ठाई।

भावार्थ- अर्थात् लोग मेले बनाते हैं, एक दूसरे की बाहों में बाहें डालकर गीत गातें हैं तथा चारों भाई महासू की स्तुति करतें हैं। साथ ही चूडी धार का बिजट देवता भी गाते हैं। तथा हाटकोटी की दुर्गा माता का भी गुणगाान करते हैं। मैन्द्रथ स्थान को भी गाया गया है, जहां देवलाडी माता है तथा गीतों में उगते हनोल को भी गाया है जो महासु देवता का प्रसिद्ध व प्राचीन मन्दिर है। इसी प्रकार जौनसारी जनजाति के लोग अपने ईष्ट देव महासु देवता की उपासना 'हारूल' में करते हैं।

दीपावली इस क्षेत्र की परम्परा और संस्कृति से जुड़ा प्रमुख पर्व है। यद्यपि माघ महीने में आयोजित 'पौणाई' तथा विवाह आदि अवसरों पर भी एकल नृत्य के लिए 'हारूल' गीतों का प्रयोग किया जाता है परन्तु दीपावली तो पूर्ण रूप से हारूल के ही नृत्य-गीतों का पर्व है। इस पर्व में अनेक प्रकार की हारूलें गाई जाती है। स्त्री पुरूष पंक्तियों में सजकर पौराणिक पारम्परिक आख्यानों पर आधारित लोक में प्रचलित हारूल नृत्य गीतों का समा बांध देते हैं एक दूसरे की कमर में हाथ डाल कर नृत्य करते हैं। इसके साथ ही ढोल, दमौ, रणसिंगा, ढाक करनाई, नगाड़े तथा डमरू जैसे अनेक लोकवाद्यों के स्वर गूंजने लगते हैं। इस त्यौहार में नन्तराम नेगी जी की हारूल को लोग झूम-झूम कर गाते हैं एवं नृत्य करते हैं। इस हारूल का गीत रचना निम्नलिखित है-

नन्तराम नेगी जी की हारूल

मोले रे मोलाईऐ केरी मोलाई हांईरै,
एक जोड़ी आदमी देऊ मौलौते खै लाई।
उबौ पौडौ जौनसार मौलौते गांव,
मौलौतिया नेगी नंतराम नांऊ।
दूणी पांवटा पाओ मुगलों रवाई,
तिमऊ देआ नन्तरामा पाछू फैराई।
नेगी लागा नन्तरामा पांवटे जाई
मूगलै राजा नन्तराम देणों थिरकाई।
फूलौं फुलरिऐ डालटी दाई,
राती पौछराती खै देणों मुगलों फीराई।

भावार्थ - यह हारुल मुगलों द्वारा सिरमौर रियासत पर आक्रमण करने व जौनसार बावर के 'मलैथा' गांव के नन्तराम नेगी जी की बहादुरी की गाथा है इन लोकगीतों से इतना ज्ञात होता है कि जौनसार बावर सिरमौर का हिस्सा रहा था तथा नन्तराम नेगी जी एक प्रसिद्ध क्षत्रिय थे।

इसी प्रकार प्रश्नोतरी के रूप में भी सास-बहू के बीच संवाद शैली में भी हारूल गीतों व नृत्य का प्रचलन है जो दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर देता है। -

बड़ा बाड़ी जुड़ों नाराणी तमाषा
मैं त मेरी सास्वे तमाषी के जाणों।
तेकी आईरे ब्बार्‌ये देषो रे बंठिया
तांऊ त मेरी ब्बार्‌ये जाणों बी ना देंदे।

भावार्थ - दीपावली के अवसर पर बहू नारायणी पर्व में जाने की जिद करती हैं परन्तु उसकी सास उसे वहाँ जाने नहीं देती है क्योंकि वहां देष- देशान्तर के छैल छबीले युवक आते हैं।

लोक संस्कृति के सभी अवयव न्यूनाधिक मात्रा में इस पर्व से जुड़े हैं यहां केदार बाछा की हारूल का भी प्रचलन है जिसका गीत निम्नलिखित है-

केदारबाछा की हारूल

मौले मोलाइरै केरी मोलाए,
केदार बाछा दैंउ शुणाई।
बाणें नारायणा धर्मों रा भाई,
देइया नारायणा बूदी बौतायी ।
बाछा केदार (रा) पौइछाणी ना आयी,
पाछू गो भीवा नारायणै खै जाई।
गाडी येरी केदार सतधर्मी री झालौ,
देणी ऐरी केदार भींवा लांगी उफालौ।

भवार्थ-केदार बाछा का तात्पर्य केदार बछडा से है । इस पौराणिक हारूल में बाबा केदारनाथ की उत्पति, पाण्डवों से केदार का सम्बन्ध कैसे जुड़ा, का विवरण है। यह हारूल गीत सावन में नुणाई मेले अर्थात् भेड़ पालन करने वालों के मेले में गाये जाते हैं।

इस प्रकार पूरे जौनसार बावर क्षेत्र में विभिन्न

रूप से यह पर्व मनाने की प्राचीन परम्परा है। हारूल गीत, नृत्य व संगीत के साथ-साथ अपनी लोक संस्कृति और लोकपंरम्पराओं में प्रकाशमान हो उठता है प्रकाश पर्व दीपावली। यहां उत्सवों, पर्वों व धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति उत्साह, समर्पण व निर्वहन की भावना सदा परिलक्षित होती है। जौनसार बावर क्षेत्र की संस्कृति का सम्पूर्ण वर्चस्व इन लोकगीतों में निहित है। हारूल लोकगीत विभिन्न पर्वों, उत्सवों, त्यौहारों की ना केवल शोभा बढाते हैं अपितु अपनी लोकपरम्परा को ये सुदृढ़ करते रहते है। लोकगीत हारूल अत्यन्त भावपूर्ण एवं हृदय ग्राही होते है। इनकी एक ही धुन में अनेक गीत गाये जाते हैं तथा यह अपनी लय व गीत के बोलों में परिवर्तन होने के कारण भिन्न होते हैं। इन लोकधुनों में हमें राग पहाड़ी, देस, दुर्गा, भूपाली, सारंग मिश्र खमाज, मैल्हार काफी, जोग, मालकौंस, भीमपलासी आदि रागों की छवि दिखाई देती है। इस तरह आदिम स्वरूप के समस्त संस्कारों की लय को यह समाज सनातन परम्पराओं के रूप में जीवित रखे हुये है।

उपर्युक्त अध्ययन से हम यह निष्कर्ष प्राप्त करते है कि पर्वतीय क्षेत्र जौनसार बावर की लोकसंस्कृति का अपना एक लुभावना रंग है। इस क्षेत्र के स्थानीय लोकगीतों, हारूलों में ही यहां की सांस्कृति व ऐतिहासिकता की छाप छिपी हुई है। जौनसार बावर में ये लोकगीत ही हैं जो मेंलों और त्यौहारों में मनोरंजन के प्रमुख साधन तो हैं ही, साथ ही यह एकता, अखण्डता, पारस्परिक मेल-जोल बढ़ाने का तथा समाज को एकता के सूत्र में बांधने का कार्य भी करते हैं। किन्तु अब विविध कारणों से यह लोग विधायें अपना अस्तित्व खो रही हैं। आधुनिकता के व्यामोह में अपनी संस्कृति से लोग कटने लगे हैं। उन पर पाश्चात्यता का रंग चढ़ रहा हैं जिसके कारण हमारे लोकवाद्य, जो लोकसंगीत के सच्चे धरोहर है लुप्त होने के कगार पर हैं। परिणामस्वरूप यह अद्वितीय, अदभुत, अनूठी विधायें अपने सांस्कृतिक परिवेश से पलायन करने को आतुर है। अपनी पुरानी संस्कृति से आधुनिक वर्ग के लोग अनभिज्ञ हैं तथा परंपरागत हारूल लोकगीतों के भाव सौन्दर्य से दूर होते जा रहे हैं जो अत्यन्त चिन्तमय है। अतः हमें चाहिये कि हम अपने पारम्परिक लोकगीत 'हारुलों का संरक्षण करें। जिसके लिए जरूरी है कि इन्हें गाया जाए, सुनाया जाए, सिखाया जाए तथा अधिक से अधिक हारूल लोकगीतों का संकलन कर जौनसारी लोक साहित्य को समृद्ध किए जाने का प्रयास किया जाए। साथ ही सरकार, समाज तथा स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा लोकसंगीत कलाकारों को मान-सम्मान तथा उचित आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए। इन प्रयासों से हमारी आने वाली पीढ़ी व संगीत प्रेमी इन गीतों को जान सकेंगे। तथा लोक संस्कृति के संरक्षण के साथ-साथ इन लोकवाद्यों को भी जीवित रखने व प्रचलन में पुर्नस्थापित करने में लाभकारी सिद्ध होगें।

निष्कर्षतः लोकगीत ही शास्त्रीय संगीत का प्रेरणा स्त्रोत है, संस्कृति एंव संस्कार के दर्पण हैं। यह हमारी एक बहुमूल्य सम्पति है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बलोदी, डा. राजेन्द्र प्रसाद, (प्रथम संस्करण-2008),-उत्तराखण्ड समग्र ज्ञान कोश, पृ. 299
2. यमन, अशोक कुमार, (प्रथम संस्करण-2016),-संगीत रत्नावली, पृ. 549
3. जोशी, घनश्याम, (प्रथम संस्करण-2003), उत्तराखण्ड का राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास।
4. बलोदी डॉ., राजेन्द्र प्रसाद, (प्रथम संस्करण-2008), जौनसार बावर-ऐतिहासिक संदर्भ (समाज, संस्कृति और इतिहास)।
5. यमन, अशोक कुमार (प्रथम संस्करण-2016), जौनसार बावर एक सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक अध्ययन।
6. बलूनी, डॉ. दिनेश चन्द्र, (प्रथम संस्करण-2008), उत्तराखण्ड की जातियां एंव जनजातियां ।
7. बिष्ट, डॉ. बी. एस. (प्रथम संस्करण-1997), उत्तरांचल- ग्रामीण समुदाय, पिछड़ी जाति एवं जनजातीय परिदृश्य।
8. शाह टीका राम, (प्रथम संस्करण-2016), जौनसार बावर-एतिहासिक संदर्भ (समाज, संस्कृति और इतिहास)।
9. जौनसारी, रतन सिंह (प्रथम संस्करण-2006), जौनसार बावर-एक सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक अध्ययन।

A Study on the Significance of Borgeet Ragas of Assam in 15th – 16th Century A.D.

Prof. Anupam Mahajan
Senior Professor
Department of Music
University of Delhi

Arkaja Bharadwaj
Research Scholar
Department of Music
University of Delhi

Abstract:

An overview of particular ragas of Borgeet have been signified through the present paper. Although, according to the scholars and musicians, the Ragas of Borgeet have distinct features, but the grim reality is that the musical potentialities of Borgeet may still be said as unexplored. The researcher has been trying to find out the importance of Borgeet ragas and also explaining that Borgeet may not be confined as only song of devotional category in Sattras or Naamgharas (prayer halls). The main objective of present study is to find out the significance and musical specimens of the ragas in Borgeet. The swaras applied in the ragas of Borgeet may have been found to be complex in patterns and universal values. The methodology in the study has been made on analysis and critical evaluation. The swara patterns of the ragas may have been found relatable with 'Modes' and different somehow from Hindustani music ragas prevalent today.

Key Words

Borgeet, Musical specimen, Sattra, Angkiya – Geet, Assam

1. INTRODUCTION:

During 15th -16th centuries, Mahapurush Srimanta Sankardeva (1449-1568), the endorser of Vaishnav religion in Assam, and his disciple Sri Sri Madhavdeva (1489-1596), had placed the greatest emphasis on Music in Assam with the creation of 'Borgeet' as a 'Great or Holy Song'. With the composition of 'Borgeet' they had considered 'Shravan – Kirtan' as the best place in devotion with creating Kirtan, Ghosha, Angkiya – Geet, Bhaona (a form of mythological drama), Naat, Nritya etc. which had given an artistic flavor to the religion. The Borgeet was the unique creation in the period of early 1500 to later 1600 A.D.

Kakoti, Dr. Banikanto quoted in his book 'Purani Asamiya Sahitya' that, "Although there is an abundance of

melodies in ancient literatures, the Borgeets are very different in feeling and language. The composition of Borgeets have created a new era in the field of literature and religion. The ideals of folklore and spirituality attracted the society towards Borgeet —— It is the historical feature of Borgeet in Assamese musical literature."[1]

The Borgeet has its own characteristics based on various Ragas and the Bhakti Rasa which may be called as the genre of classical music in Assam.

2. RESEARCH PROBLEM

There have been many discussions and effort for establishing Borgeet as a classical music at the indigenous level, but the first thing to consider is whether the effort in this direction is appropriate and systematic. After analyzing the review of related literature, the researcher has found that, the uniqueness of Borgeet ragas may have universal value which may be compared to any developed music from theoretical and practical aspects. For systematic study, the musical accomplishment of Borgeet ragas with its proper evaluation may set up the appropriate place for Borgeet in the world of Music.

Considering the above this study is fixed for the topic "**A Study on the Significance of Borgeet Ragas of Assam in 15th – 16th Century A.D**" to showcase the musical specimens and characteristics present in the ragas of Borgeet.

2.1 THE RAGAS OF BORGEET: THE CONCEPT

The Borgeets have been practicing as a part of religious purpose for five hundred years since the mediaeval period. It may not be possible to do comparative analysis between Borgeet with pre and contemporary musical genres of that period currently alive in India due to following oral tradition in Indian music. Goswami, Dr. Pabitrapran mentioned in his book 'Prabandhagitar Aitijiyabahi purba Bharatiya Sastriya Sangit Bargitar Rag Bivaran Aru Tattvik Alochana Saha Svaralipi' that, "we may not have any genre of all Indian standard today for judging correctly the ragas of Borgeet."[2]

Neog, Dr. Maheshwar wrote in his book 'Swararekhat Borgeet' that, "The structure and composition system of Borgeet, Nibaddha – anibaddha section, the Ragas mentioned in the starting considered Borgeet as an advanced music."[3]

Since the time of Srimanta Sankardeva, Borgeet has been practicing as an integral part of Naam – Kirtan. In fact, the program of Naam – Kirtan had been started with a Borgeet, continued with the four stanzas of Naam – Ghokha of Sri Sri Madhavdeva and ended with the Kirtan of Sankardeva. With this tradition the 'Prasangiya Shailee' of Borgeet is still being tried to hold by some Sattras. Basically, the daily 'Prasanga' is started by one person called 'Naam – Logua' with the prayer "Krishna Shankara Guru Hari" or "Govinda Hari Raam" in most of the Sattra and Naamghars (prayer halls) at the morning and evening time. These prayer words are considered as the expression of the ragas of Borgeet. Many others use some meaningless words like Ta, Na, Ne, Ri etc. for singing the Borgeet ragas. During the time of performance of a Borgeet in traditional way with the use of Khol and taal is followed with the

addition of formal seriousness by the devotees.

The researchers have found the number of Borgeet ragas is 36 (including Angkiya – Geets), which are namely "Ahir, Asowari, Badari, Belowar, Bhaatiyali, Bhupali, Dhanashree, Gauri, Gandhar, Kalyan, Kamod, Kanhara, Kau, Kau - Kalyan- Sindhura, Kedar, Karunya – Kedar, Lalit, Mahur, Mahur – Dhanashree, Mallar, Nat, Nat – Mallar, Purvi, Sharang, Suhai, Sindhura, Shree, Shree – Gauri, Shree – Gandhar, Shree – Payaar, Shyam, Shyam – Geda, Tur, Tur – Bhatiyali, Tur - Vasant, Vasant etc." Among these ragas, the Gandhar, Karunya – Kedar, Kau – Kalyan – Sindhura, Sharang, Shree – Gauri and Shree – Payaar; six ragas are found in Angkiya – Geets only. The use of raag Gandhara, Karunya – Kedar, Sharang and Kau – Kalyan – Sindhura is very limited as well.

3. OBJECTIVES OF THE STUDY:

The main objective of the present study is to find out the significance or specific characteristics of the ragas in Borgeet, the musical specimen of swaras applied in the ragas of Borgeet and to establish a conceptualized overview about the related topic.

3.1 METHODOLOGY OF THE STUDY:

An analysis has been made on the swaras of Borgeet ragas which were created in Mediaeval Period. Thus, the methodology of present study falls under the analytical research. The variables are thoroughly analyzed by playing the musical notes used in those particular ragas in the relevant instruments and made an evaluation about the related topic. There are only three ragas that have been taken as sample among 36 ragas for describing the particular characteristics of Borgeet through the present study. The notations of the ragas have been taken from the research work done by Goswami, Dr. Pabitrapan.

The study is based on various articles published in journals, related literatures from different books and some scientific analysis given by scholars. The basic conceptualization of the study is based on the theoretical and practical understanding of the interval positions of musical notes used in Indian music and the Western Music system.

3.3 SAMPLE:

Raag Asowari: Raag Asowari can be described as the 'Shuddha Raag' of Borgeet. Though in this raag, all the natural or shuddha swaras are found, but in some compositions, the patterns of 'Dha Ni Dha Pa' and 'Re Ga Re Sa' are also used. Of course, these patterns are not so important for every composition of Raag Asowari. In this case, the impact of Komal Ni and Komal Ga is very limited. This raag can be widely performed in all the saptaks (Mandra, Madhya and Taar). Specifically, the raag can be fully expressed in the Tripadi Chandas. The jati of this raag is 'Sampoorna-Sampoorna'. On the other hand, the less application of Ma and Ni swaras are significant. The vadi swara of this raag is 'Re' and the samvadi swara is 'Pa'. The timing of the raag to perform is evening.

Aaroh: Sa Re Ga Pa, Dha Pa, Ma Pa Dha Ni Sa

Avaroh: Sa, Ni, Dha, Pa, Ma, Ga, Pa, Re Sa

Rag-Abhas: Sa Ga Re, Ga Pa Dha Pa, Ga Re, Sa Re, Sa Dha Sa

Notation of The Raag:

Pa	Pa	Pa	Ma	Pa	Ma	Pa	Ni	Ni	--	Ni	Sa	NiSa	Ni	Pa
Ra	ma	Ra	s	s	s	s	s	ma	s	ae	s	ss	s	s
Pa	Pa	Pa	Ma	Pa	Ma	Pa	Ni	Ni	--	Ni	Sa	NiSa	Ni	Pa
Ra	ma	Ra	s	s	s	s	s	ma	s	ae	s	ss	s	s
--	Ma	Pa	Ma	--	Ga	Ma	Pa	Dha	Pa	MaPa	Ga	Ma	Ga	Re
s	s	s	s	s	Ra	s	s	s	s	ss	s	s	s	s
--	Sa	Sa	--	Sa	Sa	Sa	Sa	Sa	Sa	Sa	Sa	Sa	Sa	--
s	ma	Ra	s	ma	Kri	shna	Shan	ka	ra	Gu	ru	Ha	Ri	s
Sa	Ga	ReGa	Pa	--	Pa	Dha	Pa	Ga	--	Pa	--	--	Dha	SaSa
Ra	s	ss	Ma	s	Ra	s	s	s	s	s	s	s	Ma	Ram
SaSa	SaSa	Ga	--	--	Re	Ga	Re	Ga	Pa	Pa	--	Pa	Dha	--
Hari	Hari	Ra	s	s	s	s	s	s	s	ma	s	Ra	s	s
Pa	Ga	Pa	--	Pa	Pa	Dha	Pa	Dha	Sa	--	--	--	Dha	--
s	s	s	s	ma	ae	s	s	s	s	s	s	s	s	s
--	--	Ni	Dha	Ni	Dha	Pa	Ga	Pa	Dha	--	Pa	--	--	--
s	s	s	s	s	s	s	s	s	s	s	s	s	s	s
Pa	Dha	Pa	--	--	Re	Ga	Pa	--	--	Ga	Re	Sa	Sa	Sa
Ra	ma	Ra	s	s	s	s	s	s	s	s	s	ma	Ra	m

Raag Ahir:

The Ahir is one of the sweetes, but a complex raag of Borgeet. The swaras Re, Ga, Dha and Ni are applied as Komal in this raag, but in the taar saptak, Shuddha Rishabh is also used in the avarohan part. On the other hand, the Madhyam swara is found as both the structure Shuddha and tivra, which is functioned alternatively. Thus, the use of these vikrit swaras (distorted tones) has also increased the complexity as well as the beauty of the Ahir Raag. Specifically, the significant use of both the Madhyam swaras alternatively creates the real aesthetic of this raag. Most of time, in the composition of Ahir raag, the Pancham swar is excluded, but some singers applied the patterns like; Ga, Ma, Dha, Pa, Dha, Sa in the aarohan and Sa, Ni, Dha, Pa, Dha, Ni, Dha, Teevra ma in the avarohan. The vadi swar is Komal Ga and Samvadi swar is Komal Dha. Despite being a Poorvangavadi raga, it is generally extended into Madhya and Taar Saptak mainly. If we accept the exclusion of Pancham Swara, the jati of Ahir raag is 'Shadav-shadav'. The time period considered for this raag is from morning to noon.

Aaroh: Sa, Re, Ga Ma, Dha, Ni, Sa

Avaroh: Sa, Ni, Dha, ma Ma Ga, Ma ma Ma Ga, Re Ga, Re, Sa

Rag-Abhas: Dha ma Ma Ga, Ma ma Ma Ga, Re Ga, Re, Sa.

Notation of The Raag:

Ma Dha Dha Dha Dha	Dha Dha Dha Ni Sa	Ni Dha Ni Dha Pa
Kri sna Shan ka ra	Gu ru Ha ri s	s Ra s s s
Dha Sȧ Sȧ Sȧ --	Sȧ Sȧ Sȧ Sȧ Rė	Gȧ Rė Gȧ Sȧ Rė
s s ma Ra s	ma Ra ma Ra s	s s s s ma
Sȧ Ni Dha Ma --	Dha -- Ni Sȧ Ni	Dha Ni Dha -- Dha
s s s s s	Ra s s s s	s s s s m
Dha -- mа -- Ma	Ga Ma Dha -- Ni	Dha Dha Dha mа Ma
Ra s s s s	s s s s s	s s ma Ra s
Ga Ma -- mа Ma	Ga Re -- Ga --	Re Sa Sa -- Sa
s s s s s	s s s s s	s ma Ra s m

RAAG VASANT:

In Raag Vasant, all the notes(swaras) are applied as shuddha(natural) including Teevra Madhyam. Some singers used teevra madhyam only in the aarohan excluding the use of madhyam in the avarohan. When both the madhyam (shuddha and teevra) are utilized in the composition of vasant, then the shuddha madhyam is used as Vivadi swar in the avaroh of the raag. The main significant of the vasant raag is the ascending use of 'Gandhar to Pancham' and descending order of 'Pancham to Rishabh'. Some singers practice the trend of 'Rishabh to pancham' also. The vadi and samvadi swaras are chronologically 'Pa' and 'Re'. Raag Vasant can be considered as 'Sampoorna' jati, if the madhyam swara is not excluded in the avarohan. Otherwise, it can be included to 'sampoorna-shadav' jati. The timing is fixed for this raag to practice or perform from the late afternoon to evening.

Aaroh: Sa, Re, Ga, Pa, ma Pa Dha, Ni Sa

Avaroh: Sa, Ni, Dha, Pa, ma Pa Dha, Pa Re, Ga, Re Sa

Rag-Abhas: Ga Pa, ma Pa Dha Ni, Dha Pa, ma Pa Re.

Notation of The Raag:

Ga -- -- Re Ga	Pa Pa Pa Pa --	Dha Ni Dha Pa mа
Ae s s s s	s Ha ri Ra s	ma Ra s s s
Pa -- -- Re Sa	Re Ga Re Sa --	-- Re Ṇi -- Ni
s s s s s	s s s s s	s s s s m
DhaNi Sa Re -- --	Ṇi Sa Ṇi Dha --	Pa Pa Pa -- Pa
Ra s s s s s	s s s s s	ma Ra s s m

4. Findings and Comparative Analysis:

From the above study and analysis, names of Borgeet ragas are similar with the name of North Indian ragas, but similarity of tone has not been found clear between Borgeet ragas and Indian music ragas. For a universal decision the ragas and its

characteristics of Borgeet have a scope to be compared with some other advanced music that is popular universally. If we look up to the World Music, we can find from various research that similar kind of divine music composed by Srimanta Sankardeva and his disciple Madhavdeva had already become popular as different genres in many countries. In western countries, a prayer psalm namely 'Gregorian Chant' had been established by Pope Gregory based on eight musical modes during the 9th century. If we do scientific research about the tonal quality of these European psalms, we may find the similar tonal quality in the ragas of Borgeet. The divine power of these psalms and Borgeet of Assam can be compared on a Supreme level.

In 9th century the musical modes system was existed for composing of chants which are given below:

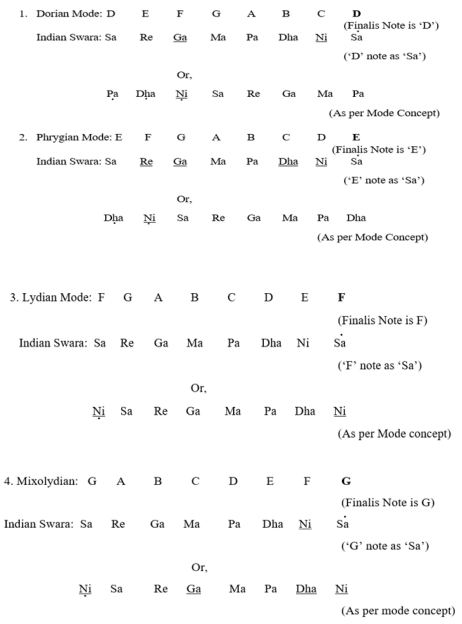

These modes were created by taking the species of 5th and placed the species of 4th above them, which were called as authentic modes in mediaeval period. The first and ending note of the sequence in those modes was called as '**finalis'**. If we take species of 4th below the species of 5th, we can get four plagal modes. It means that, plagal modes started from the P5 note (perfect 5th) of finalis note which was also called the Dominant Note, but from the lower octave. Here Species of 4th below means, the P4 (perfect 4th) note form the finalis in lower octave.

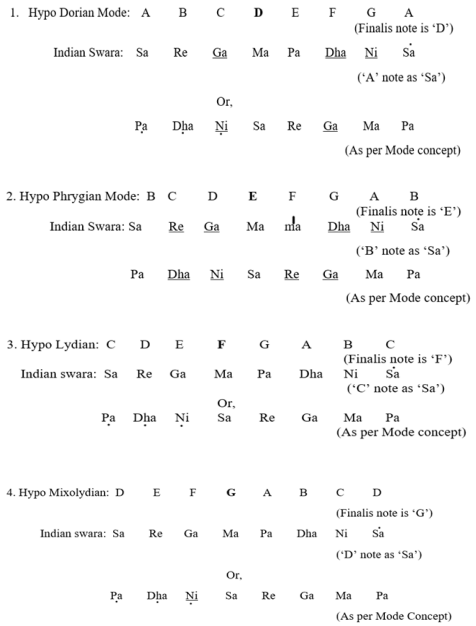

Now, the distance between notes used in musical modes with an example of Dorian and Phrygian mode giving reference of Indian thaat —

Here the 'W' defines 'whole step' (tone) and 'H' defines 'half step' (semi – tone) between two notes.

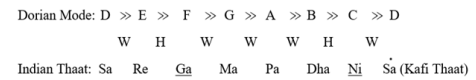

Phrygian Mode: E » F » G » A » B » C » D » E

H W W W H W W

Indian Thaat: Sa Re Ga Ma Pa Dha Ni Sa (Bhairavi Thaat)

With these similar notes, the above-mentioned Ragas of Borgeet as sample may have found in different Modes.

The Aaroh of 'Raag – Ahir' in Borgeet may be found in 'Phrygian Mode'.

Aaroh: Sa, Re, Ga Ma, Dha, Ni, Sa

Phrygian: H- W- W- W- H- W- W

Indian Swaras: Sa Re Ga Ma Pa Dha Ni Sa (BhairaviThaat)

Western Mode: C Db Eb F G Ab Bb C

(Describing as 'C' Phrygian Mode)

In Avaroh and Raag – abhas of 'Raag -Ahir' in Borgeet may be found in 'Locrian Mode', as

Avaroh: Sa, Ni, Dha, ma Ma Ga, Ma ma Ma Ga, Re Ga, Re, Sa

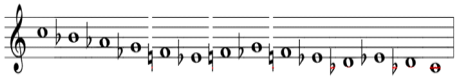

Locrian Mode: H- W- W- H- W- W- W

Indian Swaras: Sa Re Ga Ma ma Dha Ni Sa

(Non – existent Thaat)

Western Notes: C Db Eb F Gb Ab Bb C

(Describing as 'C' Locrian Mode)

Rag-Abhas: Dha ma Ma Ga, Ma ma Ma Ga, Re Ga, Re, Sa.

As we can see the aaroh, avaroh and Rag – Abhas are found in different western modes, but not in a particular thaat of Indian music.

Similarly, Borgeet's 'Raag – Asowari' may be considered in 'Ionian Mode', as—

Aaroh: Sa Re Ga Pa, Dha Pa, Ma Pa Dha Ni Sa

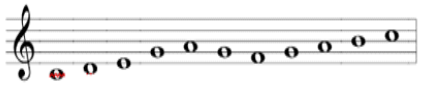

Ionian Mode: W- W- H- W- W- W- H

Indian Swaras: Sa Re Ga Ma Pa Dha Ni Sa (Bilawal Thaat)

Western Notes: C D E F G A B C

(Describing as 'C' Ionian Mode)

But, similar raag with same kind of name 'Raag – Asawari' in Hindustani Music based on Asawari Thaat, as

Aaroh: Sa Re Ma Pa, Dha Sa

Avaroh: Sa Ni Dha, Pa Ma Ga Re Sa

In Avaroh and Raag – abhaas of 'Raag – Asowari' in Borgeet, the swaras are used as, which may also be considered as 'Ionian Mode'.

Avaroh: Sa, Ni, Dha, Pa, Ma, Ga, Pa, Re Sa

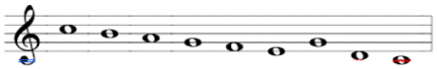

The names 'Locrian and Ionian' were not introduced initially in eight musical modes. In 16th century, eight modes system of Gregorian chant had extended to 4 more modes. These modes can be called as Theoretical Modes. If we consider two more finalis modes A and C, which were called as Aeolian and Ionian, then we can get two more plagal modes also. They are as -

9th Mode – Aeolian(A): **A** B C D E F G A

10th Mode – Hypo Aeolian: E F G **A** B C D E (finalis is A)

11th Mode – Ionian(C): **C** D E F G A B C

12th Mode – Hypo Ionian: G A B **C** D E F G (finalis is C)

In findings and analysis, two Borgeet ragas have been compared to Hindustani music ragas with similar names as well as modes to showcase about the peculiar characteristics of notes used in those particular Borgeet ragas. Also, these ragas may not have based on one particular Thaat, but in different modes. The swaras used in Aaroh, avaroh and raag – abhas, may have given a complex overview of ragas in Borgeet in comparison to Indian Ragas. The distance of swaras in Borgeet ragas may be applied to the distance among notes used in Modes, but not directly to Indian similar Raag. For example, swaras found in Raag – Asowari in Borgeet may have found in 'Raag - Bilawal' in Indian music. But Indian Raag -Asawari is Ashray raag of 'Asawari thaat', where Ga, Dha and Ni swaras are found as Komal Swara. If we compare Borgeet 'Raag-Asowari' to the formula of Mode, then it may have found in 'Ionian Mode'.

4. Result:

Though, some parts of the Borgeet Ragas are seemed to be similar to the Indian Thaats, but it is scientifically observed that these ragas may not be fitted in the definition of Indian ragas. Because, any of the mentioned raga does not belong to one specific Thaat of Indian music, but somehow relatable with different musical Modes. As the musical compositions of Borgeet ragas represented the diatonic system. These modes applied in Srimanta Sankardeva's creation, reflected the symbol of secular humanism and divine power of music in the Mediaeval period.

5. CONCLUSION:

A critical evaluation has been done on swaras applying in the ragas of Borgeet which may have relation with notes present in the Modes (authentic & plagal) in comparison with Indian Ragas. It is not surprising to find similarities between two concepts of music in the world. This study has faced many limitations in selection of sample, procedure and methodology. Of course, this study will give enough scope for further research on similar field. The result found by present study is analytical. Through this kind of analysis, we may focus on the development of music as well as harmonical findings.

The recognition of Borgeet as a classical music has been associated with the cultural development of Assam as well as other matters. Its historical development and singing style of this category of music can also identify economic, intellectual, moral and emotional character of the society. The Borgeets are sophisticated musical form, because of the combination of appropriate lyrics for worshiping to God, proper use of Alankaras or swara patterns and appropriate melody. The literary beauty of Borgeet may reveal restrained expression of devotional spiritual feelings which can be found in every Monotheistic Culture of the World.

ENDNOTES:

[1] Kakoti, Dr. Banikanto. Purani Asamiya Sahitya. Assam Prakashan Parishad. Guwahati 2014. Pp. 73.

[2] Goswami. Dr. Pabitrapran. Prabandhagitar Aitijiyabahi purba Bharatiya Sastriya Sangit Bargitar Rag Bivaran Aru Tattvik Alochana

Saha Svaralipi (Sanbardhita Tritiya Sanskaran). Guwahati: Aank-Baak, 2004. p. 6.

[3] Neog, Dr. Maheshwar. Svararekhat Bargit. Assam Sangit Natak Academy. Shillong, 1958. p. 21.

[4] Neog, Dr. Maheshwar. Aesthetic Continuum: Essays on Assamese Music, Drama, Dance and Paintings. Omsons Publications. New delhi, 2008. p. 20.

BIBLIOGRAPHY:

Books:

1. Borah, Dr. Madhab & Dihingia, Bipul. Borgeetar Sorlipi Bisleson Aru Bositra: A Collection of Mahapurus Sankardev & Madhavdevas' Borgeet, Sorlipi and articles in Assamese. Rekha Prakashan. Guwahati, 2017.
2. Goswami. Dr. Pabitrapran. Prabandhagitar Aitijiyabahi purba Bharatiya Sastriya Sangit Bargitar Rag Bivaran Aru Tattvik Alochana Saha Svaralipi (Sanbardhita Tritiya Sanskaran). Guwahati: Aank-Baak, 2004.
3. Kakoti, Dr. Banikanto. Purani Asamiya Sahitya. Assam Prakashan Parishad. Guwahati 2014.
4. Neog, Dr. Maheshwar. Svararekhat Bargit. Assam Sangit Natak Academy. Shillong, 1958.
5. Reese, Gustave. Music in the Middle Ages with an Introduction on The Music of Ancient Times. New York: W.W. Norton & Company, INC 1940.

Articles:

6. Konar, Sushan. The Sounds of Music: Science of Musical Scales. Resonance. October, 2019
7. Mahanta, Bapchandra. Borgeetar Shastriya Mulyayon. Borgeetar Sorlipi Bisleson Aru Bositra: A Collection of Mahapurus Sankardev & Madhavdevas' Borgeet, Sorlipi and articles in Assamese. Rekha Prakashan. Guwahati, 2017.

दरभंगा (अमता) घराने के यशस्वी गायक पंडित राम चतुर मल्लिक की गायन-शैली

प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह "काव्या"

संकाय प्रमुख, ल. ना. मि.वि.वि., दरभंगा
दरभंगा

प्रेरणा कुमारी

शोध छात्रा(संगीत), ल. ना. मि.वि.वि.,

सार-संक्षेप

दरभंगा घराना के यशस्वी गायक पंडित राम चतुर मल्लिक की गायन-शैली पर प्रस्तुत निबंध में प्रकाश डालने की चेष्टा की गयी है। प्रधानतः आप ध्रुपद के गायक थे। दरभंगा घराना या अमता घराना एक ही है। दरभंगा महाराज की ओर से आदि पुरूष राधेश्याम एवं कर्तारा‌म को उनके गायन से प्रसन्न होकर अमता गाँव में पाँच सौ बीघा जमीन देकर बसाया गया था। दरभंगा महाराज की ओर से ही अमता में दी गयी जमीन के लिए 'अमता घराना' कहा जाता है और दरभंगा महाराज की ओर से आश्रय मिलने के कारण 'दरभंगा घराना', दोनों ही नाम से पुकारा जाता है। इस घराने में अत्यंत ही यशस्वी गायक पंडित राम चतुर मल्लिक का जन्म 5 अक्टूबर, 1902 को हुआ था। आपकी गायन शैली में मधुपगी, कसी-मजी आवाज में राग की आलापचारी सुनते ही बनती थी। आप का भाव-भरा स्वर, लगाव, आपके मीड़-गमक भरे स्वर-गुच्छ और आपकी राग की क्रमशः कलात्मक अभिव्यंजना सभी अनूठे होते। आलाप के बाद जब गीत उभरता और उसमें लयदारी की छटा बिखरने लगती, तो आपका ध्रुपद गायन सचमुच मोहनी रूपमें बन जाता।

ध्रुपद की गायन शैली को बानी के नाम से जाना जाता है। ध्रुपद की चार बानियाँ हैं-(1) गउहरहार बानी या गोबर हार बानी या गौड़ बाणी (2) डागुर बानी, (3) खंडार बानी तथा (4) नौहार बानी। स्वर्गीय रामचतुर मल्लिक गोबरहार बानी का प्रतिनिधित्व करते थे और अपने आपको तानसेन की गायन-परंपरा से जोड़ते थे। वैसे आप चारों पट ध्रुपद, धमार, ख्याल तथा ठुमरी, टप्पा को गाने में भी दक्ष थे। जब ख्याल की अवतरणा करते, उसे अपनी मोहक स्वरावलियों और बहुरंगी तानों से सजाते, तो आश्चर्य होता कि एक ध्रुपदिया ख्याल इतनी सहजता और सफलता से गा सकता है और ठुमरी उसका कहना ही क्या। आप के बोल-बनाव में जो विलक्षणता होती, उसमें सभी शैलियों का मधुर मिश्रण होता। विद्यापति के गीतों को ठुमरीनुमा स्वरूप में गायन करने में विलक्षण प्रतिभा रखते थे। प्रस्तुत निबंध में आपकी गायन-शैली की विलक्षणता को दर्शाने की चेष्टा की गयी है।

बीज शब्द

ध्रुपद, बानी, अमता, दरभंगा, मिथिला, घराना, गायन-शैली

दरभंगा जिलान्तर्गत अमता मिथिला का एक सुप्रसिद्ध गाँव है। संगीत साधना का यह एक चिर-परिचित केन्द्र रहा है। इसे मिथिला का ग्वालियर कहा गया है। यहाँ एक भ्रांति दूर करना चाहूँगी कि 'अमता'

घराना और 'दरभंगा' घराना एक है, कुछ लोग इसे अमता घराना कहते हैं, तो कुछ लोग 'दरभंगा' घराना। जिस प्रकार कुछ लोग मिथिला पेण्टिंग कहते हैं, तो कुछ लोग मधुबनी पेंटिंग, परंतु दोनों तात्विक दृष्टि से तथा शैलीगत दृष्टि से एक ही है। यहाँ 'घराना' की एक उपयुक्त परिभाषा देखी जा सकती है :-

"Germinally originated perhaps by Amir Khusrau, developed by sultan Sharqui of the 15th Century and established as a classical style by Sadarang of the 18th century. The kheyal later proliferated into many gharanas of schools. The oldest, the Gwalior gharana is distinguished, by open-the reated singing, formal simplicity and some exposure in concerts or through recording which are now plentiful. But it is better not to try to fix the features of each gharana in any rigid or machanical manner. For each gharana has had the viality of growth to permit individual practitioners, generation after generation, to find a personal utterance that rings distinctive though within the frame of the broad stylistic features"[1]

उपर्युक्त परिभाषा में घरानों की विशिष्टताओं पर विशेष रूप से बल दिया गया हैं। यशस्वी गायक 'पद्मश्री' पंडित राम चतुर मल्लिक का जन्म दरभंगा घरानों के अमता गाँव में हुआ था। आपका जन्म 5. 10.1902 को हुआ।[2] मिथिला के संगीत घरानें की परिभाषा के अनुरूप स्वर्गीय प्रो. (डॉ.) चण्डेश्वर झा ने चार घरानों में वर्गीकृत किया-(1) अमता घराना, (2) मधुबनी घराना, (3) पनिचोभ घराना एवं पचगछिया घराना। इन चारों घरानें का सांगीतिक दृष्टि से अत्यंत ही व्यापक महत्व है। इनमें दरभंगा (अमता) घराना का इतिहास अत्यंत महत्वपूर्ण है। दरभंगा से अमता गाँव लगभग तीस किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित है। संगीत के क्षेत्र में इस गाँव का वही स्थान है, जो स्थान मध्यप्रदेश के ग्वालियर का है। मुख्यतः इस गाँव के कलाकारों को ध्रुपद एवं धामार गायन शैली में विशिष्टता प्राप्त है। ध्रुपद-गायन में आवाज लगाने की शैली, आलाप-तान-बोलतान लेने का ढंग, लयकारी का प्रयोग, राग-बंदिश गाने का ढंग, रागों की पसंद एवं ताल बरतने का ढंग आदि सभी विशिष्टताओं से निर्मित गायन-शैली ध्रुवपद के अंतर्गत 'बानी' कहलाती है। ध्रुवपद की चार बानियाँ हैं-(1) गउहार अथवा गोबरहार बानी, (2) डागुर बानी, (3) खंडार बानी तथा (4) नौहार बानी। इन बानियों को स्थान-विशेष के गायकों की गायन-शैली के आधार पर नाम दिये गये, यथा ग्वालियर की बानी तानसेन की बानी गाउरहार बानी या 'गोबरहार बानी' कहलायी। राजपूताने के डागुर निवासी ब्रजचन्द द्वारा 'डागुर बानी' का नाम दिया गया, राजपूताने के खण्डार प्रदेश के सम्मोखन सिंह द्वारा 'खंडार बानी' नाम दिया गया तथा नौहार प्रदेश के श्रीचन्द द्वारा 'नौहारबानी' सुस्थापित हुयी। इन बानियों के संबंध में एक उक्ति है जिसमें गोबरहार बानी को राजा, खंडारबानी को सेनापति, डागुर बानी को दीवान एवं नौहार बानी को बकसी बतलाया गया है। उक्ति इस प्रकार है-

बानी चारों के व्यवहार सुनि लीजै,
गुनिजन तब पावे यह विद्यासार।
राजा गुबरहार, फौजदार खण्डार
डागुर दीवान, बकसी नौहार।।3

अब इन बानियों की शैलीगत विशिष्टताओं को संक्षेप में दर्शाया जा रहा है। गोबरहार बानी में आँस और मीड़ की प्रमुखता के साथ राग एवं उसमें प्रयुक्त स्वरों के साथ शुद्ध व्यवहार पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस बानी के गीतों में शान्त, गंभीर एवं भक्तिपरक भावनाओं से ओत-प्रोत रचनाएँ हुआ करती हैं और ऐसी रचनाओं को गायन में प्रमुखता दी जाती है। इनकी गति से संबद्धता रहती है। डागुर बानी में गोबरहार बानी की अपेक्षा कम मीड़ एवं कण को स्थान दिया जाता है। सरल, लालित्यपूर्ण स्वरों की वैचित्र्य का पूर्ण रूप से लगाव से युक्त शुद्ध एवं भिन्नागीति मिश्रण इस बानी में निहित

होता है। खंडार बानी को खण्ड-खण्ड करके ओजपूर्ण शैली में एवं वीरतापूर्ण गमक प्रधान गायन-शैली मानी जाती रही है। इसे भिन्ना तथा गौड़ी गीति से जोड़ा गया है। यह शीघ्र ही रस उत्पन्न करने की क्षमता रखती है। गोबरहार बानी एवं डागुर बानी की अपेक्षा इसमें वेग एवं तरंगें ज्यादा पायी जाती हैं। नौहर का अर्थ सिंह होता है। इसमें बेसरा गीति के लक्षण मिलते हैं। सिंह जैसी इनकी प्रकृति होने के कारण यह शीघ्र ही रस उत्पन्न करने वाले होते हैं। इसमें मुख्यतया चंचलता एवं गमकपरक और छूट के साथ मध्य एवं द्रुत लय की निबद्धता देखी जाती है। वैसे इस विभाजन को प्राचीन गायकों की गायकी में ही स्पष्ट रूप से देखा जाता था।[3]

उपर्युक्त बातों से अपनी असहमति जताते हुए आचार्य वृहस्पति ने कहा है-''चूँकि बानी का अर्थ बोली या उक्ति होता है (गान शैली नहीं)। अतः मानसिंह (1486-1516) के द्वारा प्रदर्शित शैली में जब इन प्रदेशों के लोगों के द्वारा अपनी-अपनी बोली में ध्रुपदों की रचना हुई और अकबर के दरबार में इनका प्रवेश हुआ तब भाषा-संबंधी वर्गीकरण के लिए गौरारी, खंडारी, डागरी और नौहारी बानी (गान-शैली नहीं) शब्द प्रचार में आये। वृहस्पति जी के अनुसार गौरारी शब्द ग्वालियर का अपभ्रंश (ग्वालियर) ग्वारेरी-गौरेरी, गौरारी है और ग्वालियर में बोली जाने वाली भाषा का द्योतक है। यही भाषा ध्रुपदकारों की 'सुधवानी' (शुद्धवाणी) है।[4]

आचार्य वृहस्पति की जो कुछ भी धारणा रही हो, किन्तु आजकल संगीत की ध्रुपद-गायन-शैली को बानी ही कहा जाता है। स्व. पंडित रामचतुर मल्लिक अपनी गायन शैली को गौड़बानी ही कहा करते थे। वे कहा करते थे कि उनके पूर्वज भी गायन में राग की आलापचारी में भरपूर मीड़ तथा गमन का प्रयोग करते थे। आलापचारी में ही दुगुन, तिगुन और चौगुन करने के पश्चात् स्थायी, अंतरा, संचारी एवं आभोग के साथ गायन की समाप्ति करते थे। पंडित रामचतुर मल्लिक अपनी गायन-शैली को तानसेन की वंश-परंपरा से जोड़कर देखा करते थे। तानसेन को गौड़बानी ध्रुपद गायन-शैली का स्तंभ माना गया है। इस बानी की गायन-शैली का निबंध में पूर्व ही चर्चा की जा चुकी है। पंडित रामचतुर मल्लिक अपनी गायन-शैली में उन विशिष्टताओं को दिखलाते हुए अलापचारी मौलिक रूप में दिखलाते हुए बिना किसी लयकारी के प्रस्तुत करने का काम करते ये बंदिश को गाकर समाप्त किया करते थे। आपकी गायकी में गमकों का व्यवहार, स्वरों को शक्तिदायक बनाने की क्षमता, संपूर्ण गायन में शुद्धा गीति के लक्षणों की छाप अनायास ही दिख जाती थी। इसकी स्पष्ट घोषणा करते हुए श्री अमरेश चन्द्र चौबे ने कहा है-''तानसेन परंपरा के ध्रुपद गायकों तथा वर्तमान में इस बानी के प्रतिनिधि पं. रामचतुर मल्लिक का गायन जिन व्यक्तियों ने अच्छी तरह सुना है, वे आज भी इस कथन की पुष्टि करते हैं।5 इस प्रकार की गायकी की विशिष्टताओं को रेखांकित करते हुए प्रो. ओ. गोस्वामी ने अपनी पुस्तक ''The Story of Indian Music में कहा है- Generally speaking Gaudi or Gaurari style of singing Dhrupad is slow and heavy in its movement and requires a great control of breath. In its execution is rigid and disciplined. It is marked by correct, info nation, purity (exquisiteness) of design, simplicity of execution.''[6]

आपकी गायकी के बारे में डॉ. समर बहादुर सिंह ने कहा है, ''उनकी गायकी में स्वर, ताल और साहित्य का बड़ा ही मनोहारी संगम होता था। उनकी मधुपगी, कसी-मजी आवाज में राग की आलापचारी सुनते ही बनती। उनका भाव-भरा स्वर, लगाव, उनके मीड़-गमक भरे स्वर-गुच्छ और उनका राग की क्रमशः कलात्मक अभिव्यंजना सभी अनूठे होते। आलाप के बाद जब बन्दिश गीत उभरता और उसमें लयदारी की छटा छिहरने लगती, तो उनका ध्रुवपद गायन सचमुच मोहनी रूपम बन जाता। जब ख्याल की अवतारणा करते, उसे अपनी मोहक स्वरावलियाँ और बहुरंगी तानों से सजाते, तो आश्चर्य होता कि एक ध्रुपदिया ख्याल इतनी सहजता और सफलता से गा सकता है और ठुमरी उसका कहना क्या। उनके

बोल-बनाव में जो विलक्षणता होती, उसमें सभी शैलियों का मधुर मिश्रण होता।[7]

स्वयं स्वर्गीय पंडित राम चतुर मल्लिक ने कहा था कि ध्रुपद के आलाप का सिद्धान्त शास्त्रीय संगीत का मूल धन है और ध्रुपद भारतीय संगीत की परंपरा, इतिहास, ज्ञान आदि का एक पक्का स्तंभ है, इसलिए ध्रुपद का प्रचार तथा उसके सिद्धांतों की शिक्षा संगीत की रक्षा है।[8] स्वर्गीय रामचतुर मल्लिक के गायन की एक विशेषता थी कि आलाप के बाद ही श्रोता अपनी सुधि खोने लगते थे एवं संपूर्ण संगीत सुनने के बाद सुधि के साथ-साथ बुद्धि भी खोने लगते थे। इस तथ्य से विदेश के लोग भी परिचित थे, तभी तो पीटर पैंके (पश्चिम जर्मनी) ने उनके बारे में कहा है-''The greatest praise, however, was showered upon him by his audience, who calls him "Dhrupad Samrat", emperor of Dhrupad, wherever he appears, still touring while being high in his Eighties. Even in India, it is a singular phenomenon that a singer can hold his audience spell bound at this age.''[9]

उदाहरणस्वरूप, उनके द्वारा गाये गये एक ध्रुपद जो राग-अड़ाना में निबद्ध है, को देखा जा सकता है-

बंदिश इस प्रकार है[10]-

स्थायी :- त्रिवेणी कालिन्दी
सरस्वती अरूण वसन
और उजिल वरण
सोई गंगा।

अंतरा :- वेणी प्रवाह कटाक्षी
नयन तरंगिणी
नैन मीन लिये संगा।

संचारी :- तू हीं तारण निस्तारण तूही
दुःख सुख दरिद्र नित पाप कटंगा।

आभोग :- इतनी विनती सुनत हरिदास डागुर
देवान सेवा शीष अंगा।

राग अड़ाना का परिचय इस प्रकार है :-

राग अड़ाना का थाट आसावरी है। वादी स्वर तार षड्ज है, संवादी स्वर पंचम है। यह उतरांग प्रधान राग है। न्यास के स्वर प और सा हैं।

आरोह - सा रे म प, ध नि सां तथा अवरोह - सां ध नि प, म प, गम, रेसा।

पकड़ - सां ध नि सां, ध नि प, म प ग म रे सा। गायन समय-रात्रि का तृतीय प्रहार है।

इस राग को सूल ताल में निबद्ध कर स्व. पंडित रामचतुर मल्लिक गाया करते थे। यहाँ मात्र स्थायी की स्वर-लिपि दी जा रही है-

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
सां	ध	नि	प	म	प	ध	नि	सां	सां
त्रि	वे	ऽ	णी	का	ऽ	ली	ऽ	न्दी	ऽ
×		0		2		3		0	
प	म	प	ग	ग	ग	म	रे	रे	सा
स	र	स्व	ती	अ	रू	ण	व	स	न
×		0		2		3		0	
नि	सा	रे	ग	म	प	ध	ध	नि	सां
औ	ऽ	र	उ	जि	ल	व	र	न	ऽ
×		0		2		3		0	
सां	ध	रें	सां	ध	नि	प	म	प	सां
सो	इ	ग	ऽ	गा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

स्वर्गीय पंडित रामचतुर मल्लिक चार गीतों का एक रिकार्ड म्यूजिक फैक्ट्री के जी. एम. वी. एच. पश्चिम जर्मनी से बनकर आया। इन गीतों की 27 मार्च, 1982 को जयसिंह घेरा वृन्दावन के ध्रुपद समारोह में इस रिकार्डिंग हुई थी। इसका ध्वन्यांकन एक विदेशी मि. गौट फ्राइड डूरेन ने किया था और उनके शिष्य पीटर पैंके द्वारा निर्मित कराया गया। 1988 ई. से यह भारत में उपलब्ध है। इन का विवरण इस प्रकार है[11]-

पहले में 'राग विनोद' में आलाप है तथा दूसरे गीत में बंदिश के साथ गायन है। बंदिश के बोल इस प्रकार हैं-

स्थायी - पिया घर नाहि आली री,
कैसे री धीरण धरिये।

अंतरा- उमंग यौवन अरू बिरहा सताए,
रैन दिवस कैसे सहिये।

संचारी - आप ही जाय द्वारिका बैठे,
मदन कोप तन जरिये।

आभोग - रामकृष्ण प्रभु ऐसे न करिये,
कबलौ यह दुख सहिये।।

उपर्युक्त गीत चौताल (बारह मात्र) में निबद्ध है।

तीसरा राग सिन्दुरा में धमार ताल (चौदह मात्र) में निबद्ध है। बंदिश के बोल हैं -

स्थायी - लाड़ली तू मान न कीजौ,
होरी के दिन में।
अंतरा - बरस-बरस के खेल छाड़िके,
तू बैठी है भौएँ तान

चौथा राग परज में है, यह गीत भी धमारताल (चौदह मात्र) में निबद्ध है तथा बंदिश के बोल हैं :-

स्थायी :- एरी डफ मृदंग बाजत धमार सो,
मानो नभ धौन के धमाका।
अंतरा - उड़त गुलाल लाल भए बदरा,
पिचकारी की कीचम किचता।

इसी के साथ एक और बंदिश गायी गयी है, जो सूल फाक्ता ताल (दस मात्र) में निबद्ध है। बंदिश के बोल हैं-

स्थायी - दरशन को नैना मेरे तरसि रहे,
अंतरा - देखि मिलन सखि सांवरे सलौने,
बिन देखे कल न पड़त है।

उपर्युक्त रिकार्ड के सभी गीतों में गायक कलाकार पंडित रामचतुर मल्लिक एवं आपके शिष्य अभय नारायण मल्लिक हैं। श्री पुरुषोत्तम दास ने परवावज पर, श्री विनोद मिश्र ने सारंगी पर, श्री नाथी लाल ने हारम्पोनियम पर, श्री रामकुमार मल्लिक एवं श्री रमेश चन्द्र चतुर्वेदी ने तानपुरे पर संगत की है।

'मिथिला' मिहिर पत्रिका (दिसम्बर, 87 प्रथम पक्ष) के साक्षात्कार में श्री इन्द्रकान्त झा ने उनके घराने की विशिष्टता-संबंधी प्रश्न पूछा तथा मैथिली लोकगीत गाने के संबंध में भी जानना चाहा। जबाव में पंडितजी ने कहा-''मैं मुख्य रूप से ध्रुपद-गायक हूँ, मगर इसके अतिरिक्त मैं लोकगीत, विद्यापति गीत, भजन ठुमरी तथा धमार भी गाता हूँ। इतना रहते हमारी पकड़ समान है। वास्तव में, संगीत की भिन्नता में एकरूपता का संयोग करना हमारे घराने की गायकी की सबसे बड़ी विशेषताा है। साथ ही, उन्होंने यह भी कहा, ''जिस आदमी को जिस जगह से विशेष संपर्क रहता है उसकी छाप उस पर अवश्य पड़ती है। हम दरभंगा (अमता) घराने के हैं जो मिथिला का अभिन्न अंग है। उस माटी और पानी पर हम बड़े हुए हैं। मिथिला में मैथिली-लोकगीतों का बहुत ही प्रचलन है। इसलिए उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।[12]

इस प्रकार स्व. पंडित रामचतुर मल्लिक ध्रुपद, धमार, ख्याल तथा ठुमरी टप्पा को गाने में दक्ष थे। इन्हें चारों पट का गायक माना जाता था। विद्यापति गीत को ठुमरीनुमा स्वरूप में गायन करने में विलक्षण प्रतिभा रखते थे। परंतु आपकी पहचान मुख्य रूप से ध्रुपद गायन शैली से थी। आप की गायकी की सोहरत संपूर्ण देश में थी ही, आपने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी गायकी का परचम लहराया और सर्वकालिक महत्वपूर्ण गायकों में प्रतिष्ठापित हुए।

संदर्भ :

1. Heritage of Music by M/S the Eagle lithographing company Ltd. Calcutta, September, 1981
2. झा डॉ. चण्डेश्वर, शिरोमणि रामचतुर मल्लिक, पृ. 8, संगीत शोध संस्थान, ध्रुपद केन्द्र, पश्चिम दिग्घी, मिर्जापुर, दरभंगा (बिहार)।
3. अनहद लोक (अंक-1), संपादक-डॉ. मधुरानी शुक्ला, व्यंजन आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी, इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष (अनुपलब्ध)।
4. वृहस्पति, आचार्य कैलाश चन्द, कुमारी सुमित्र, संगीत चिन्तामणि, प्रथम खंड, पृ.सं. 64-65, संगीत कार्यालय, हाथरस, 1966
5. चौब श्री अमरेश चन्द्र, श्री चन्दन जी शताब्दी परिसंवाद, समारोह, पृ.सं. 27
6. झा डॉ. चण्डेश्वर, ध्रुपद शिरोमणि रामचतुर मल्लिक, पृ. 52
7. सिंह डॉ. समर बहादुर, कादम्बिनी, मई, 1990, पृ. सं. 64
8. स्वरूप कृष्ण, मासिक पत्रिका, मार्च 1990, पृ.सं. 53
9. झा डॉ. चण्डेश्वर, ध्रुपद शिरोमणि रामचतुर मल्लिक, पृ. 57
10. वही, पृ. 133-134
11. वही, पृ. 45-46
12. मिथिला मिहिर, पाक्षिक पत्रिका के लिए श्री इन्द्रकान्त झा के द्वारा लिया गया साक्षात्कार, दिसंबर, 1985

उपशास्त्रीय गेय विधाओं में काव्य की उपादेयता

शिल्पी झा

शोधार्थी, संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सार संक्षेप

प्राचीन समय से ही हम काव्य एवं संगीत के आपसी संबंध से परिचित है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक समय तक के संगीत एंव काव्य के संबंध में कई परिवर्तन होते रहे है। अलग-अलग संगीत की विधाओं में अलग-अलग रूपों में काव्य का प्रयोग होता रहा है। ध्रुपद, धमार जैसी विधाओं में जहाँ भक्ति परक गीतों/शब्दों की प्रधानता रहती थी, वही उपशास्त्रीय गीतों में अधिकतर श्रृंगारपरक गीतों का प्रचलन रहा। ख्यालगायकी में शब्द से ज्यादा स्वर एवं आलाप तान की प्रधानता थी। उपशास्त्रीय संगीत में काव्यों की उपादेयता कुछ इस प्रकार सिद्ध हुई कि उपशास्त्रीय गीतों की सभी विधाओं में भाव का स्थान सर्वोपरि रहा। गीतों से माधूर्य और रस का सृजन करना, यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहा। ठुमरी, दादरा, कजरी, होरी, चैती आदि सभी गीतों में स्वरों के साथ-साथ काव्य का स्थान सर्वोपरि रहा। इन सभी गीतों में शब्दों का विभिन्न स्वर समूहों से सजाकर भाव एवं रस का सृजन करना, हमें दिखता है। उपशास्त्रीय विधाओं में काव्य के शब्दों के अनुरूप, करूण, प्रेम, विरह, वीर आदि विभिन्न रसों का सृजन होता है। इसलिए उपशास्त्रीय गीतों में काव्यों की उपादेयता बिल्कुल उचित प्रतीत होती है।

बीज शब्द

उपशास्त्रीय गीत, काव्य, रस, माधुर्य, ठुमरी

'संगीत' के सदंर्भ में जब 'काव्यों की उपादेयता' पर बात करते हैं तो हम पाते हैं कि संगीत की सभी विधाओं में काव्य का अपना एक स्थान है। प्राचीन काल में ध्रुपद धमार जैसे गेय विधाओं में, स्थाई, अन्तरा, संचारी, आभोग इन रूपों में काव्य के 'वृहत रूप' का प्रचलन था। ध्रुपद के बाद ख्याल गायन अधिकतर आलाप एवं तान प्रधान हो गया। ख्याल गायिकी के बाद उपशास्त्रीय गायन विधाओं में पुनः काव्यों की उपादेयता सिद्ध होने लगी। उपशास्त्रीय विधाओं के अन्तर्गत ठुमरी, दादरा, टप्पा कजरी, चैती, होरी विधाओं को शामिल किया गया है।

इन उपशास्त्रीय विधाओं में काव्य का बहुत महत्व होता है। इनमें प्रयुक्त काव्य उस समय के क्रिया कलापों, मान-मनौवल और प्रेमसंबंधों को दर्शाते हैं।

1. ठुमरीः- 'ठुमरी' के काव्य में विशुद्ध हिन्दी काव्य के स्थान पर तत्सम शब्दों का प्रयोग होता है।

भाव प्रधान गायकी के होने के कारण, ठुमरी में सौन्दर्य एवं प्रेम संबंधी गीत अधिक मिलते हैं।

ठुमरी में प्रयुक्त काव्यों एवं लयों के आधार पर दो प्रकार की ठुमरी का प्रचलन है-

1. बोल बनाव की ठुमरी
2. बंदिश की ठुमरी

दोनों ही प्रकार की ठुमरी का विषय अधिकतर प्रियतम से बिछोह, प्रियतम से तकरार और उससे मिलने की उत्कंठा से संबंधित ही होता है। इस

प्रकार श्रृंगार एवं माधुर्य से ओतप्रोत काव्य को ठुमरी में स्थान मिला।

बोलबांट की ठुमरी में काव्यों का महत्व बोल बनाव की ठुमरी से अधिक दिखता है। बोलबांट की ठुमरी में बंदिश की रचना का चमत्कार होने के कारण इसे 'बंदिशों की ठुमरी' की भी संज्ञा दी गई है।

एक प्राचीन बनारसी बोल बनाव की ठुमरी

"जा मैं तोसे नाही बोलू
जिया की बात, पिया मैं तोसे ना कहु रे।।
जिया की बात, पिया रे। जा मैं तोसे....."

ठुमरी सम्राज्ञी रसूलन बाई के द्वारा गायी गई इस ठुमरी में "नाहि", "जिया की बात" इन शब्दों को लेकर जिस तरह से बात की गई है, जिससे नायिका के मन का भाव बहुत सूक्ष्मता से प्रकट होता है।

ठुमरी के बोल/काव्य प्रायः खड़ी बोली यथा ब्रजभाषा, वज्जिका, अवधि आदि में होती है। ठुमरी के काव्य में क्लिष्ट शब्दों की जगह अपभ्रंशात्मक पदों की महत्ता होती है।

कुछ प्रचलित ठुमरी और उनके भाव

1. भाव-श्रृंगार/विरह - राग खमाज

स्थाई - कोयलिया कूक सुनावे
पिया बिनकछु ना सुहावे...
अन्तरा- इतनी विनती मोरी कहिये जात
उन बिन जिय मोरा निकसो जात...

3. कृष्ण भक्त कवयित्री मीरा बाई का निम्न पद राग पीलू की पुरानी ठुमरी के रूप में प्रसिद्ध है-

"पपैया रे पी की बोली न बोल...

4. कबीरदास जी का यह निर्गुण पद संगीत परम्परा में पीलू की ठुमरी के रूप में प्रचलित है-

"सोच समझ नादान आशिक होना फिर जीना क्या रे।

बिन्दादिन महराज, सनद पिया, कदरपिया, कालिका दिन आदि बन्दिश के ठुमरी के रचयिताओं के रूप में प्रसिद्ध हैं। कुछ पुरानी बंदिश की ठुमरी को आज छोटे ख्याल के रूप में गाने की परम्परा हो गई है। जैसे तिलक कामोद की बन्दिश "नीर भरन कैसे जाऊं" पुरानी बंदिश की ठुमरी है। ठुमरी के काव्य की भाषा पूर्वी एवं क्षेत्रीय कहलाती है।

इस प्रकार अलग-अलग क्षेत्रों के अनुसार ठुमरी में शब्द परिवर्तित होते हैं, साथ ही ठुमरी के भाव को प्रकट करने का तरीका भी बदलता रहता है। क्षेत्रों के हिसाब से भाषा और शब्दों के विभिन्न प्रयोग ने ठुमरी की सहृदयता को और भी बढ़ाया है।

2. दादरा : 'दादरा' ठुमरी की तरह ही उपशास्त्रीय गायन विधाओं में एक महत्त्वपूर्ण गायन शैली माना जाती है। यह कहरवा, दादरा एवं एकताल/झपताल तालों में गाई जाता है। 'दादरा का अर्थ 'दादुर इस शब्द से लिया गया है। अर्थात् "मेढ़क" के समान कूद-कूदकर गति का आभास दिलाये तो वह 'दादरा' है। 'दादरा' गीत चंचल, क्रीड़ाशील एवं श्रृंगार युक्त काव्यों से युक्त खटकों-मुरकियो जैसे सांगीतिक उपकरणों के साथ गाई जाती है। 'दादरा' गायन में काव्यों का महत्त्व इस प्रकार समझ में आता है कि प्रायः सभी गीतों में स्थाई और एक से अधिक अन्तरे का समावेश होता है। काव्य में वैसे शब्दों का प्रयोग होता है, जो विभिन्न भावों या श्रृंगार प्रेम, मिलन विरह आदि को पूर्णरूपेण दर्शा सके। इसमें प्रयुक्त शब्द मधुर और भावुक होते हैं। चंचलता अधिक होने के कारण इस गायकी में शब्दों के स्वाभाविक तथा छोटे-छोटे भावुक बोल दिखाए जाते हैं। इस गायकी पर लोकसंगीत का स्पष्ट प्रभाव दिखावा है। इनमें विभि ा देशीय भाषाओं मगधि, भोजपुरी, अवधि, ब्रज आदि का प्रभाव दिखता है। दादरा गाने के दौरान बीच-बीच में शेर, कवित्त, दोहा इत्यादि का प्रयोग भी देखने को मिलता है। कुछ दादरा इस प्रकार हैः-

(1)

स्थाई - सैंया मानो ना मानो
मोरी बतिया
अन्तरा -खता माफ की बहुत जफा तुमसे हमने
सच तो यह है कि बहुत बुरा किया हमने

बोल बनाव, बोल बाँट, लघु लहकदार काम-ये विशेषताएँ दादरा के प्राण तत्व माने जाते हैं।

कहीं-कही तीन चार अन्तरे वाले दादरा भी मिलते हैं। जैसे-

ओजी, बाजू बन्द टूट गयो, मारो हंसत खेलत आधी रात...

1. रात पिया संग चौसर खेली...
2. सुन री सखी मोरा सासू लड़ेली...
3. मैं तो गई थी कुंज गलिन में...

३. टप्पा :- भारतीय संगीत विधा में टप्पा चमत्कारयुक्त आकर्षक गायन शैली है। टप्पा गान कठिन होता है। इस गायकी में मुर्की, खटका और सपाट तानोंकी बहुतायत होती है।

टप्पा गायन में यो तो शब्दों का प्रयोग बहुत कम होता है परन्तु जितने भी शब्द मिलते हैं वह पंजाबी भाषा के होते हैं। यह गीत पंजाब के लोकगीतों से भी प्रभावित जान पड़ता है।

कुछ टप्पा इस प्रकार है-

शोरी मियाँ ने टप्पा गायन को प्रचलित करने के लिए उर्दू और अवध की व्यवहृत बोली का समावेश अपनी रचनाओं में किया।

टप्पे के कुछ उदाहरण

ताल-टप्पा (राग-यमन)

स्थाई - नित दानिहो ओ आवेयार दा मानू।।

अन्तरा -जित बल जाऊ बारी उतबलकूचे वे
मियां इश्क नहीं जोर दा मानु शोरी।।

ताल-टप्पा (राग-भूपाली)

स्थाई - ओमनडोयां छेड़ी गैयां,
कीक रानी बेखला।

अन्तरा -जिन दियो लासा,
आवे मियां शोरी मतवाला।।

राग-बिहाग (ताल-त्रिताल)

3. कजरी, झूला, चैती,होरी

ये सभी विधाएं ऋतुकालीन विधांए मानी जाती है। ऋतु सम्बन्धित क्रिया कलापों को इन गीतों के काव्यों के माध्यम से दिखलाया जाता है। चैती, कजरी, झूला, होरी आदि कुछ उपशास्त्रीय गायन विधाएं हैं जो हमारी लोकसंस्कृति को भी उजागर करती हैं। ये सभी विधाएँ पूर्णतः शब्द प्रधान होते हैं।

वर्षा ऋतु से संबंधित काव्य में, बादरवा, भीजत, दादुर, मोर, उमड़ते-घुमड़ते, काले-काले बादल, घनघोर घटा, चमकती बिजली, झींगुर, की झंकार आदि शब्दों से, इसमें वियोग और संयोग दोनों ही तरह के प्रेम संबंधों एवं वर्षो ऋतु के क्रियाकलापों का वर्णन मिलता है। कजरी की ही तरह 'झूला' भी एक उपशास्त्रीय विधा मानी जाती है, केवल 'झूला' में झूला से संबंधित शब्द, नंद किशोर, राधा-कृष्ण की लीलाओं का ही वर्णन मिलता है।

कुछ कजरी एवं झूला के उदाहरण इस प्रकार हैः

कजरी

स्थाई - बरसन लागी बदरिया रूम-झूम के....

अन्तरा - 1. आयो सावन, अति मन भावन
झूम झूम....
2. झूलन हरिसंग, राधे पलना...

झूला

झमकी झुकी आइ बदरिया....
कारी झूला झूले नंद किशोर

1. एक ओर झूले कुंवर राधिका
दूजे नंद किशोर

2. झूमी-झूमी झोखा दे झूमी
सखियां ठाड़ी दौउ ओर,

चैती - चैत महीने में गाने के कारण इस गीत को 'चैती' कहा जाता है। इन गीतों में आलसी पति को सूर्योदय के बाद सोने से जगाने का वर्णन मिलता है, तो कभी पति-पत्नी के प्रणय एवं कलह की झाँकी, तो कहीं कृष्ण-राधा का स्वच्छन्द प्रेम है तो कहीं राम-सीता का आदर्श दाम्पत्य प्रेम है, कहीं राम के जन्म का आनन्दोत्सव चित्रित हुआ है। यह रूपक, दीपचंदी, कहरवा तालों में गाई जाती है। चैती में "हो रामा" की टेक लगाकर गाने का प्रचलन होता है।

1. माणिक हमरो हेराये गई लो रामा
ए जमुना में....
घर बा में ढूंढली, सेजरिया में ढूँढली

ढूंढ आइ पिया के चदरिया हो रामा, ए जमुना में

होरी - 'होरी' नाम से स्पष्ट है कि उपशास्त्रीय संगीत की ये विधा 'होली' त्योहार के आसपास गाई जाने वाली एक विधा है। यह अधिकांश सिंधुरा एवं काफी रागों में गाई जाती है। यह कहरवा एवं दादरा इत्यादि तालों में गाई जाती है। यह एक शब्द प्रधान गायकी है।

होरी का एक उदाहरण इस प्रकार है-

1. केसरिया अंगिया रंग डारो जी,
   डारो बृज के लालजी
   श्री वृन्दावन की कुंज गलिन में
   सकल गोपी ग्वाल जी, केसरिया.....

उपसंहार

अतः उपशास्त्रीय गायन विधाओं में काव्य अपने उत्कृष्ट रूप में हमें प्राप्त होता है। ये उपशास्त्रीय गायन शैलियाँ वस्तुतः भाव प्रधान गायकी है, इसलिए काव्य के शब्द ही विभि ा भाव के उत्पत्ति का माध्यम बनते हैं। श्रृंगार, करूण, भक्ति आदि भाव को दर्शाने के लिए उचित शब्दावलियों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता हैं। गायन में प्रयुक्त शब्द ही काव्य की उपादेयता सिद्ध करते हैं। शब्द और सांगीतिक अलंकरण यथा खटका मुरकी, छोटी-छोटी तानों का समायोजन रस निष्पत्ति के कारक बनते हैं। उपशास्त्रीय गायन शैलियों में प्रसंगात्मक एवं प्रयोजनात्मक बोलो में ही काव्यों की उपादेयता निहित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. द्विवेदी पूर्णिमा, ठुमरी एवं महिला कलाकार, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, पृ.सं. 98,
2. संगोराम, डॉ. श्री रंग, ठुमरी का काव्य-संगीत कला, पृ॰ 169
3. परांजपे, डॉ. शरच्चंद्र, संगीत बोध, मध्य प्रदेश ग्रंथ एकादमी, 1972
4. श्रीवास्तव, पं. हरिशचंद्र, संगीत निबन्ध संग्रह, संगीत सदन प्रकाशन, 2015
5. श्रीवास्तव, धर्मावती, प्राचीन भारत में संगीत, भारतीय विद्यापीठ, 1969
6. प्रसिद्ध ठुमरी गायिका बेगम अख्तर की शिष्या स्व. शान्ति हीरानन्द जी से प्राप्त रचना
7. प्रसिद्ध ठुमरी कलाकार श्री छन्नुलाल मिश्र की शिष्या (मेरी गुरु माँ), डा. रिचा कुमार से प्राप्त रचना

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के सोलह संस्कारों में लोकगीत

डॉ. सुनीता द्विवेदी

शोध निर्देशिका,
छत्रपति साहू जी महाराज कानपुर विश्वविद्यालय, कानपुर

अपर्णा पाण्डेय

शोधार्थी, संगीत विभाग

सार-संक्षेप

लोक मानव समाज का वह विशेष वर्ग है जिसमें कुलीनता, शास्त्रीयता और पाण्डित्य का भाव अथवा जिसमें अंहकार का कोई स्थान न हो और एक ही परम्परा के प्रवाह में जीवान्त हो ऐसा विशेष मानव समाज लोक कहलाता है। यह अत्यन्त प्राचीन शब्द है ऋग्वेद में 'देहि लोकम्' के अनुसार लोक का स्थान के रूप में प्रयोग वर्णित है। इसमें नगरों और गाँवों दोनों वर्गों की समूची जनता समाहित है। हिन्दी साहित्य में लोक अंग्रेजी के फोक के समानार्थी है।

बुन्देलखण्ड प्राकृतिक सुषमा में परिपूर्ण विश्वभूखण्ड का ऐश्वर्यवान क्षेत्र है जो कि भारत के हृदयस्थल पर विराजमान है। यहीं पर सर्वप्रथम मानव सभ्यता का निर्माण हुआ है। यहाँ का लोक जीवन, संस्कृतिक, वस्त्र-परिधान, भाषा, तीज-त्यौहार आदि सभी विशेषताओं से पूर्णित स्वयं को अन्य क्षेत्रों से अलग करता है।

हिन्दू धर्म में संस्कारों का विशेष महत्व है। ये संस्कार व्यक्तित्व का निर्माण करने में सहायक होते है और सही दिशा प्रदान करते है साथ ही उन्हें अपने नैतिक मूल्यों से अवगत भी कराते हैं। गौतम स्मृति के अनुसार संस्कारों की संख्या चालीस थी किन्तु समयावधि की कमी के चलते धीरे-धीरे घटकर व्यास स्मृति के समय तक सोलह रह गई अतैव अब मुख्य रूप से सोलह ही माने जाते हैं।

प्रत्येक क्षेत्र विशेष के लोकगीत इन्हीं सोलह संस्कारों में आबद्ध होते है। लोकगीत लोक के गीत है जिनका कोई एक विशेष व्यक्ति रचनाकार नहीं होता वरन् समस्त समाज की रचना हैं लोकगीत। इनके माध्यम से प्रत्येक समाज की संस्कृति, भाषा का बोध होता है ये लोकगीत मानव समाज का दर्पण है।

बीज शब्द

बुन्देलखण्ड, सोलह संस्कार, लोक, लोकगीत

लोक जीवन से अभिप्राय है कि जनसाधारण की जीवन परिचर्या अर्थात् किसी क्षेत्र विशेष में रहने वाले लोग जिनके द्वारा वहाँ की जीवन प्रणाली, रीति-रिवाज, वस्त्र-परिधान, भाषा, आचार-विचार एवं सांस्कृतिक परम्परायें आदि सभी प्रदर्शित होते हैं, लोक जीवन कहलाता है। रोजमर्रा की कार्य प्रणाली, व्यवसाय, धार्मिक स्थल, सास्कृतिक धरोहरें प्रत्येक क्षेत्र का दर्पण होते है जिनके हम सभी दर्शन कर पाते है। लोक जीवन की सुस्पष्ट व्याख्या करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कहा है कि ''लोक का अर्थ केवल आंचलिक ग्राम ही नहीं वरन शहरों और गाँवों में फैली सम्पूर्ण जनसंख्या है।'' इन वर्गो में शिक्षित, अशिक्षित दोनों ही वर्ग सन्निहित है। इनके व्यवहारिक ज्ञान का आधार ग्रन्थ, विशेष

साहित्य, अथवा पोथियाँ नहीं है अतः ये लोग सुसंस्कृत शिक्षित वर्ग की अपेक्षा अक्रतिम असभ्य होते हैं। लोक शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने' धातु में धञ प्रत्यय लगाने से बना है जिसका अर्थ- देखना है। वेदों में ऋग्वेद में उधृत ''देहिलोकम्'' के अनुसार लोक का स्थान के रूप में प्रयोग वर्णित है इसी में 'पुरुषसूक्त' में इनका जीव तथा स्थान दो अर्थों में हुया है यथा -

''नाभ्या आसीदतरिक्षं शीषर्णो धौ
समवर्तत पदभ्याः भूमिदिर्श :
श्रोत्रत्त या लोको अकल्पयन्''

हिन्दी साहित्य में लोक शब्द अंग्रेजी के फोक के समानार्थी है। यह एंग्लो सेक्सन शब्द जो जर्मनी में वोक के नाम से प्रसिद्ध है। आंग्लभाषी व्यवहारिक रूप में फोक सुसंस्कृत और शिष्ट समाज अथवा जाति का प्रतीक है। किसी भी प्रान्त का लोक जीवन पिपासा एवं आकर्षण का विषय होता है। प्राकृतिक सुषमा से सुशोभित बड़ी-बड़ी पर्वत मालाओं से आच्छादित बुन्देलखण्ड, जिसका प्राचीन नाम- जैजाकभुक्ति, झुझोती, मध्यप्रदेश, चेदि, दर्शाण था अपनी संस्कृति एवं लोकजीवन शैली के कारण विश्व ख्याति प्राप्ति क्षेत्र है यह वही पृष्ठभूमि है जहाँ सृष्टि का निर्माण तथा मानव सभ्यता का प्रथम आलोक हुआ और समस्त संसार में अवलोकित हो प्रवाहमान हुआ। प्रकृति के वरदान से सदैव प्राचीनकाल से लेकर आज कालान्तर तक इसकी झोली भरी पूरी रही है। यहाँ हरी भरी पर्वत शृंखलायें, नदियाँ, घने जंगल, खजुराहो के मन्दिर आदि बुन्देलखण्ड के शान रहे है। त्रेतायुग में भगवान राम का चित्रकूट प्रवास के समय इसी पृष्ठभूमि पर समय व्यतीत हुआ था जिससे यह भूमि अतिपावन और पवित्र हो गई यहीं महर्षि वाल्मीकि ने जन्म लेकर नीति और यशोगान के द्वारा रामकथा की रसधारा को प्रवाहित किया था। बुन्देलखण्ड की सीमा निर्धारण के सन्दर्भ में स्व0 दीवान प्रतिपाल सिंह देव जी ने महाराज छत्रसाल बुन्देला के समय की बहुचर्चित लोकोक्त कही है -

''इत चम्बल उत नर्मदा इन चम्बल उत टौंस।
छत्रसाल सौं लरन की रही न काहू हौंस।।

उत्तर में यमुना, दक्षिण में नर्मदा, पूर्व में टौंस एवं पश्चिम में चम्बल नदी तक इस क्षेत्र की सीमा इतिहासकारों ने आबद्ध किया है। चूँकि यह विश्वभूखण्ड का ऐश्वर्यवान क्षेत्र है और भारत के हृदयस्थल पर आसीन है इसकी सीमायें दो राज्यों उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश के अन्तर्गत आती है। उत्तर प्रदेश में सात तथा मध्य प्रदेश में तेरह पूर्ण तथा पन्द्रह आंशिक जिले आते है। यहाँ बुन्देली ही मात्रभाषा अधिक बोली जाती है। इनके अलावा कुछ क्षेत्रों में - पवारी, लोधंती, निब्हा, भदौरी उपबोलियाँ बोली जाती है। बुन्देलखण्ड का ग्राम्य जीवन आज भी खेती पर निर्भर है। खेती ही उनका मुख्य व्यवसाय रहा है। बुन्देलखण्ड सदैव गरीबी और शोषण का शिकार रहा जिसका मुख्य कारण शिक्षा रहा, शिक्षित न होने के कारण व्यापारी, साहूकार उनका शोषण करते थे। ये लोग अंधविश्वासी और भाग्य के भरोसे रहते थे किन्तु समय के प्रवाह से यहाँ की स्थिति में तेजी से सुधार हुआ और लोगों की सोच में परिवर्तन भी हुआ। बुन्देलखण्ड प्राचीनकाल से ही सांस्कृतिक प्रदेश रहा है। हमारी हिन्दू धर्म की संस्कृति का मूल आधार संस्कार ही है। संस्कारों से भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के उत्थान यर्थाथता ग्रहण करते हैं। क्योंकि संस्कारों से मनुष्य के सारे दोषों का नाश होता है और सद्गुणों की वृद्धि होती है। ऋषि मुनियों ने मानव जीवन को मर्यादित तथा मूल्यावान बनाने के लिए संस्कारों से परिष्कृत किया। धार्मिक व वैज्ञानिक दोनों दृष्टियों से संस्कारों का विशेष महत्व है। सनातनी परम्परा में प्राचीनकाल से लेकर आज परवर्ती समय में किसी भी मांगलिक कार्य का शुभारम्भ संस्कारों से होता है। गौतम स्मृति के अनुसार संस्कारों की संख्या चालीस थी किन्तु जैसे-जैसे व्यस्तता बढ़ी इनकी संख्या घटकर महर्षि अंगीरा के समय चालीस से पच्चीस हो गई तत्पपश्चात व्यास स्मृति में बाद में कुल सोलह संस्कारों का उल्लेख किया गया। ये सोलह संस्कार ही मुख्य रूप

से माने जाते हैं और इन्हीं संस्कारों के आधार पर प्रत्येक क्षेत्र के लोकगीत आधारित होते हैं। गौतम स्मृति के अनुसार चालीस संस्कार निम्नवत हैं। गर्भधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त, समापवर्तन विवाह, पंचमहायज्ञ, अष्टकाश्राद्ध, पावर्ण श्राद्ध, श्रावणी कर्म, आग्रहायनी कर्म, चैत्री कर्म, अग्न्याहोय कर्म, अग्निहोत्र, दर्शपौर्ण मासयोग, चातुर्मास्य योग, नवान्नेष्ठी, निरूढपशुयोग, सत्रोमास्योग, अग्निष्टोम, अत्याग्निश्तोम, उत्क्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिशत्र, आप्तोयार्द, उपाकर्म, उत्सर्ग, और पितृमेधकुल। व्यास स्मृति के अनुसार सोलह संस्कार निम्नवत है- गर्भधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कणभेद, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संस्यास और अंत में अन्तेष्टि। बुन्देली जन-जीवन व लोकगीतों में संस्कारों की विशेष मान्यता है। संस्कार लोकगीतों की आत्मा हैं पेरी के अनुसार- ''लोकगीत आदिमानव का उल्लासमय संगीत है गुफ़ाओं में पनपते हुये मनुष्य में जब कुछ समझ आयी तो उनमें भावनाओं के अंकुर फूटे और उन्हें व्यक्त करने के लिये विकर्त आलाप किया होगा यही संगीत पेरी के शब्दों में लोकगीत हैं''- बुन्देलखण्ड के लोकगीत प्रायः वीर रस प्रधान है। यहाँ की माटी में आज भी शूरवीरों के रक्त की सुगन्ध आती इस कारण यह वीरों की भूमि शुरभूमि कहलाती है गाँव में महिलायें काम करते समय एक विशेष धुन मं गीत गाती थी चाहे वो विवाह के गीत हो अथवा धर्मिक गीत सुनने में कर्णप्रियच लगते थे। इन लोकगीतों का कोई एक व्यक्ति रचनाकार नहीं होता है ये लोक के द्वारा रचे गये गीत है इन्हें पूरा समाज स्वीकारता है इनमें शास्त्रीय नियमों का बन्धन नहीं होता। लोकगीतों के माध्यमों से प्रत्येक समाज की संस्कृति, भाषा का बोध होता है ये लोकगीत हमारे सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक विकास की अभिव्यक्ति करने का सबल माध्यम हैं। बुन्देलखण्ड के लोकगीत बुन्देली बोली में गाये जाते है ये सोलह संस्कारों में आबद्ध है जिनका उल्लेख निम्न प्रकार से किया जा रहा है।

• गर्भधान संस्कार - बुन्देलखण्ड में यह गीत फूल चौक के नाम से जाना जाता है जो इस प्रकार है -

आज दिन फूल चौक सुनो मोरी देवरानी

चौक चन्दन पुराय, बाहमन देव बुलाया सबरी गणित लगाय,

राम जी को सुमरी लेओ मोरी देवरानी, राम जी सुमिरे से, भाव बनत है

लखन बूटी से, तन्त्र गढ़त है अब होओ रामजी तुम सहाय, मोरी देवरानी ...

• **पुंसवन संस्कार** - यह संस्कार गर्भधान के दूसरे या तीसे माह से गर्भ जन्म मलिन आदि दोषों की निवृति हेतु किया जाता है।

''धन्न मोरी कुख सलोचनी
लीवत ती धन ओबरी पोत्तत पौर दुआर
हँसत-खेलत राज आ गए बात कहो धन एक
सुनियो मन चित लाया ब्याव रचै हम दुसरो
कै हम कुल की टाँचरी, कै हम सेवा नै जोग
ब्याह रचो पिया दूसरो।
कुल की तो तुम दो तिल आगरी भौतिक सेवा जोग।
कूखारियाँ बैरन भई जेने घटाये तोरे मान।
ब्याह करें हम दूसरो।
इतनी तो सुन धन अनमानी हन लए बजर किबार।
आई ननदबाई पाहुनी
खोलो भौजी बजर किबार।
सांकर खोलों की।
भौजी भौतिक हुईयें नन्दलाल
अपन दोई जेइयें। सोने के थर परोसियो
भौजी रुपे कंटोरन दूध।
अपन दोऊ जेइयें।
जेय जुंठ वैया ओबरों पौंची
भौतिक देत असीस।
फरिसो भौजी करई नीम
सी, घिसलो बूटी दूब।
आंचल तोरे हुईयें ऐबात।
मन जो कहे धिया

जनमियो मोरे गजबज आहे बरात।
लटकत आबें मोरे सजना,
विहंसत दुल्हा दामाद।
घर मोरे रीतो अंगन मोरे
रीतो सब सुख रीतो पेट।

• **सीमान्तोनयन संस्कार** - यह संस्कार गर्भधारण के पाश्चात छठे या आठवें मास में किया जाता है। यह बुन्देलखण्ड में सादे के नाम से जाना जाता है -

ऐसी किरपा कब कर हैं
भगवान मोरे आँगन बजे बधावो।
रामजी से लला मोरे अंगना में डोले,
मुस्क्यावै रामजी किरपा सेई होवे,
सुफल मनोरथ हमरो
हे राम जी अपनी दया बनाय
रखियो मोरे आँगन बजे बधवो।

• **जात कर्म संस्कार (जन्म संस्कार)** - यह संस्कार बच्चे के जन्म के बाद किया जाता है इसमें माता के गर्भ में शिशु की शुद्धि की जाती है।

आज दिन खुसी का आया
जच्चा ने बच्चा जाया है
आज दिन खुसी का आया है।
मैंने सासू बुलाई, नहीं आयी,
मेरी चरुआ री घरियां चूक गई।
मैंने बुलाया शुरू किया,
दिन आज खुसी का आया।
मैंने जिठनी बुलाई नहीं आई,
मेरी पाच की घरियाँ चूक गई।
मैंने भौजी बुलाना शुरू
किआ दिन आज खुसी का आया।
मैंने ननदी बुलाई नहीं आई,
मेरी साथिये की घरियाँ चूक गई।
मैंने बहनी बुलाया शुरू किया
दिन आज खुसी का आया।

• **नामकरण संस्कार (खरिपटा)** इस संस्कार की महत्ता पूरे भारत में है। बुन्देलखण्ड में यह खरिपटा के नाम से प्रसिद्ध है -

दसरथ जू की रानियाँ रामा लये कनियाँ
कौन के रामा भये, कौन के लछमनिया।
कौसल्या के रामा भये,सुमित्रा के लाछमानियाँ
साँझा बेरा रामा भये, भोरे भये लछमनियां
सुभ घरी ललन राम भये हैं, मूल परे लाछमानियाँ
दसरथ जू .....

• **निष्क्रमण संस्कार (सोर उठाना/सूरज देखना)** - यह संस्कार जन्म के बाद चौथे महीने में किया जाता है—

ललन खां लैके निकरीं दसरथ
जू की रानियाँ
कौसल्या की गोदी में रामजी लदे हैं,
भरत कैकयी की कनियाँ
गैला में ठाढ़े अजुध्यावासी,
संगै-संगै चलती लुगैयाँ
ललन को साथ लये,
महलन को छोर के, निकरी भरबे पनियां

• **अन्नप्राशन संस्कार (पासनी)** - इसमें बच्चे को अन्न चटाया जाता है और जन्म के छठे महीने में किया जाता है -

जनक जू के महलने में कैसी पारी भीर
हरस भरी भीर, हुलस भरी भीर
नाना चटा रयें ललन को खीर
काहे कि बिलियाँ काहे की खीर
सोने की बिलियाँ अमरत की खीर
मामा चटा रयें ललन को खीर
चांदी की चम्मच चाउंर की खीर
रतन जड़ी चम्मच मेवान की खीर

• **चूड़ाकर्म (मुंडन) संस्कार** - इसमें जब बच्चा दो साल का होकर तीसरी में पड़ता है तब उसके सिर से बालों को उतारा जाता है।

जब आजुल घर होंय
झालर जबई मुड़ाय हों, झालर मोरी पाहुनी
ये झालर के कारने मैंने सहे हैं कष्ट अनेक
ये झालर के कराने तजे हैं अम्मा इमलिया बेर
ये झालर के कारने मैंने सहे हैं बोल कुबोल
झालर मोरी पाहुनी, झालर मोरी पाहुनी

• **कर्ण भेदन संस्कार (कनछेदन)** - इस संस्कार को बुन्देलखण्ड में दादरों कहते हैं -

आज समय सुख छायो,
राजजी को औसर मन भायो
कनछेदन सुन आई सखियन मंगल गायो
झेंगुली झीन सुभग तन राजत,
जामा परम सुहायो
बाबा दसरथ कौसल्या रानी,
मुतियन चौक पुरायो
बंदनबार द्वार बंधवाये,
कमल कुंअर लख आनन्द सुख पायो

• **उपनयन संस्कार** (जनेऊ/यज्ञोपवीत/बरुआ)–

तीन तगा कौ डोरा री,
दमरू कौ सूत सुन भैया
तीन तगा कौ जनवारी,
कौसो मजबूत सुन भैया
पैले में विष्णु दूजे में
बिरमा तीजे में संकर
अवदूत सुन भैया पैले
तगा में ओमकार है,
दूजे में अगन सबूत सुन भैया
तीन तगा ...
तीजे तगा में नाग बास है
चंद विराजे चौथे सूत ए भैया
पांचे सूत में पितर विराजे
प्रजापति छठे सूत में भैया
सांतव सूत अस्थान पवन
कौ सूरज कौं है
आठो सूत ए भैया
नवे सूत में विश्व ए देवा
हीरा कातें कन्या सूत ए भैया

• **वेदारम्भ संस्कार (पाटिपूजन)**–

सूक सूज पट्टी, चन्दन घुट्टी
राजा आये महल उठाये, महल में गाड़ौ झण्डा
झण्डा गऔ टूट पट्टी गई सूक सूक सुकायेगी
पांच टके पायेगी
हाथी घोड़ा एक में पांचो विद्या पेट में

• **समावर्तन संस्कार** - इसे केशान्त संस्कार भी कहते है और बुन्देलखण्ड में यह संस्कार समर नाम से जाना जाता है। जब बालक शिक्षा पूर्ण करके वापस आता है तो यह संस्कार होता है इसमें भी चूड़ाकर्म के गीत गाये जाते हैं।

• **विवाह संस्कार** - सोलह संस्कारों में विवाह संस्कार की विशेष महत्ता है यह ग्रहस्थ आश्रम से होकर मोक्ष दिलाने वाला होता है इसी से सृष्टि का निर्माण होता है।

लगुन के गीत

सो आज मोरे राम जू खों लगुन चढ़त है
लगुन चढ़त है आनन्द बढ़त है
सो आज जनक भवन ते लगुन जो आई
सो सुन सुन सखी मोरे हिय हुलसत है।

मटियानो/मायनों के गीत

सरग नसैनी पाटेह जा पैचढ़ न्यौतो देंय
तुम मोरे नेवते गनेस जू तुम मोरे आइयो
तुम मोरे नेवते लाता हरदौल तुम मोरे आईयो
तुम मोरे नेवते पवन सूत तुम मोरे आईयो

मड़वा गीत

आड़ो छाइन माड़ो हराइन हरे रे बांस
जेहि चढ़ देखे लडिलरी के
बाबुल केती दल आवै बरात
घड़वा तो आवै अरे अनगिनतिन
हाथिनी पूर पचास
मोरे बरातिन के गली न
सूझे सूरज आलोय जांय

वानप्रस्थ संस्कार

राम को नाम न गावै तोहे लजाई न आवै
उमर तमाम बितावै तोहे .....
जग दंदोरे सुहावै तोहे ....
हरि चर्चा नहीं भावे तोहे .....
दुष्टन में सुख पावै तोहे ....
संतन देख लजावै तोहे ....

संस्यास संस्कार - इसे श्रोताधान संस्कार भी

कहते है।

मन लागो है राम फकीरी में
जो सुख है मोय राम भजन में
सो सुख नैया अमीरी में
हाथ में सौटा बगल में
तुमा चारअ धाम जंजीरी में
मन लागो है ....
अन्त्येष्टि संस्कार (टिप्पे)
चलन चलप सब कोऊ कहे
चलबौ सांचे ओई कौ
जी कौ भैरों बुलावे टेर
चलन चलन .....

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- 'श्रीवास्तव वीणा', ''बुन्देलखण्ड लोकगीतों में सांगीतिक तत्व'', सन 2004, प्रथम संस्करण, राधा पब्लिकेशन, अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली।
- 'कुमुद अयोध्या प्रसाद गुप्त', "बुन्देलखण्ड का लोकजीवन", सन 2004, द्वितीय संस्करण-नमन प्रकाशन, मंडपम राठ रोड उरई उ. प्र.।
- 'गोस्वामी वासुदेव', "बुन्देली लोकगीत", सन 1989, प्रथम संस्करण, उ. प्र. संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ।
- 'पुरवार डॉ. हरि मोहन', "बुन्देलखण्ड में सोलह संस्कार", सन 2007, प्रथम संस्करण, बुन्देलखण्ड संग्रहालय समिति, भरत चौक उरई।
- 'चौरसिया डॉ. मोतीलाल', "बुन्देली लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन", सन 1989, प्रथम संस्करण, बलवीर नगर, शाहदरा नई दिल्ली।

An Analytical Study on the Composition – "Sangeetha Jnanamu Bhakti Vina"

Prof. Dr. V Janaka Maya Devi

Professor & Guide, Dept. of Music, Avinashilingam Institute for Home Science and Higher Education for Women, Coimbatore

Praseeda Bal

Research Scholar, Music Avinashilingam Institute for Home Science and Higher Education for Women, Coimbatore

Abstract

Tyagaraja was one of the greatest composers of Carnatic Music and he is one of the Trinities of Carnatic Music. Tyagaraja also known as Tyagayya was born in 1767 in Tanjavur district of Tamil Nadu. It is believed, he has composed about 24000 songs in his lifetime although there is no evidence supporting it. Out of thousands of songs he has rendered only 700 songs are known to the world of Carnatic music.

Tyagaraja's contribution to the carnatic music is meritorious. A carnatic concert is never complete without rendering at least one Kriti composed by Tyagaraja. Most of his compositions are in Telugu and Sanskrit. Most of Tyagaraja kritis are based on Ramayana or in praise of Rama but 'Sangeethajnanamu' the Kriti which has been taken for the analysis, is on greatness and power of music.

It is one of the finest compositions of Tyagaraja, and has been chosen for the analysis because of its greatness in its musical value as well as the theoretical aspects. It has incorporated a lot of brilliant musical nuances. This Kriti is considered as one of the popular Kritis composed in the Raga Dhanyasi.

The article is the study of the following aspects:

- *Analysis of the Kriti – "Sangeetha Jnanamu Bhakti Vina"*
- *Dhatu aspects of the Kriti*
- *Matu aspects of the kriti*
- *Tala aspects of the Kriti*

Key Words

Kriti, Sangeethajnanamu, Tyagaraja, Dhanyasi, Dhathu, Matu, Tala

Introduction

Devotion conveys a person's deep commitment and profound attachment to a sacred being which is expressed though loyalty and purposeful activities. In Panini Ashtadhyayi and in Mahabaratha the term

bhakti is used to refer to a selfless attachment and dedication and service to God. In Bhagavad Gita the term bhakti was extended to include reverence, ardent love, service and devotion to God.

Tyagaraja[1] was a saint and his compositions were based on devotion and love towards God. He worshipped Lord Rama and hence most of his compositions were about Rama. He gave equal importance to the expression of the song and the technicalities of it. He tried to get immersed in Lord Rama through music. His devotional songs have helped his followers to uplift their spiritual and moral values. Tyagaraja introduced the idea of 'Nadopasana' which means the worship of music and also "Nadayoga" which means the yoga of sound.

Kriti is one of the main genres of Carnatic music. It evolved from "Keerthana" which can be traced back to 14th -16th centuries. There were many other musicians as well during that period who had expressed their devotion through music.

Tyagaraja and two of his contemporaries (Muthuswami Dikshitar and Syama Sastri) are credited with perfecting Kriti form. Tyagarja is also acclaimed with improvisation in kritis (also known as Sangatis). Although Sahitya content will remain the same, Tyagraja varied the melodies in the Pallavi, Anupallavi and in the Charana part. Tyagarja has handled many ragas and he was instrumental in bringing out full features in the form of Sangatis.

For the selected composition, the researcher wants to express the beauty of composition because of the musical content and thought provoking lyrical aspects.

Since the analysis is on Sangeetha jnanamu, it is necessary to give the lyrics.[2]

Raga: Dhanyasi

Tala: Adi		
Pallavi	**Anupallavi**	**Charanam**
Sangitajnanamu bhakti vina Sanmargamugalademanasa	Brnginatesasami raja ghataja Matanganaradadulupasince	Nyaya nyayamudelusunujagamulu Maya mayamanedelusunudurguna Kayajadi shad ripulajayince Karyamudelusunu Tyagarajunike

About the Raga

This Kriti is beautifully blended in Dhanyasi[3] raga. It is a Janya raga of eighth Mela Hanumathodi. Dhanyasi is a bhakti rasa raga and perfectly apt for this Kriti. This raga creates a devotional mood and it is an auspicious raga. It is an old raga that came into existence even before 72 melakarta scheme. Tyagaraja has composed eight kritis in this raga.

Dhathu Aspects

1. Structure of the Kriti

The Kriti "Sangeetha Jnanamu" is comparatively a small kriti consists of Pallavi, Anupallavi and Charanam. The mudra,'Tyagarajunike' is given in the Charanasahitya. Usually most of Tyagarja Kritis has lot of Sangatis but this particular Kriti has comparatively very less Sangatis.

2. Swara Phrases

Pallavi : The first word of the Kriti 'Sangeetha Jnanamu'is commenced on Madhyastayi Panchama-

p, pmg, m,
sangee ta

Anupallavi starts with madhyastayi Gandhara and **Charana** starts with madhyastayi panchama

3. Samvadi Swaras

There are samvaditva in swara phrases. Example: In pallavisamvaditvaswara phrases are coming in two places. **p,** <s, n ṅs,, **p,** <s n (cycle of fifths) Bhakti vi na Jna na

In the last Sangati of the Pallaviin the phrase **p,**=m<g, also comes samvaditvaswara- (cycle of fourths) Bhak ti.

The researcher observed that the composer brought out the importance of Bhakti in Sangeetha through the progression of Sangati p, =m<g. A sudden shift from Madhyastayi panchama to Tara stayimadhyama to show the intensity of the Bhakti.

4. Stayi (Octave) of the Kriti

In pallavi the swarasancharas are from Madhya stayi Shadja to Tara stayi Madhyama. In Anupallavi the swaras travel from Madhyastayishadja to Tara stayi Panchama and in Charanaswara range is from Madhyastayi Shadja to Tara stayi Panchama.

5. Swara patterns

The researcher observed swara phrases in a particular patterns. Example: In pallavi, there are patterns like m, pm – <s,rs, in Anupallavin, <sn - p,np

Matu Aspects

The Kriti "Sangeetha Jnanamu" is a great example of Tyagaraja's Nadopasanaie; worshipping through music to attain salvation.

The Pallavi of the Kriti says that the knowledge of music without devotion would never lead you to the right path.

In Anupallavi, it is said that Lord Shiva (the God of Dance), Hanuman (the son of wind), sages like Bringi, Agasthya, Mathanga and Narada(the inventor of the musical instrument "Veena" and also the father of Carnatic music) worshipped God through music.

The Charana says that Tyagaraja knew how to discriminate between the right (Nyaya) the wrong (Anyaya). He was aware of the fact that nothing in the world (jagamulu) is real and transient (Mayamayamane). Also he had understood well, how to get away with the emotions of kama (lust), krodha (anger), lobha, Moha, Matha and Matsarya. He was convinced that knowledge in the form of music along with devotion and love could help one to attain salvation.

Dhatu- Matu aspects

Prasa

Prasa is rhyme which consists of identical or similar sounds placed at the end of lines or at predictable locations within lines. This is normally 3 types namely Adiprasa (first syllable of each line), Dviteeyaksharaprasa (second syllable of each line) and Antyaprasa (final syllable of each line).

Adi Prasa

In pallavi

Sangeetha – first line
Sanmargamu – second line

Antyaprasa

In Charana
Delusu**nu** - first line
Delusu**nu** - second line

Swarakshara[4]

Swaraksha is the literary and prosodical beauty in the Sahitya of Kritis. There are different kinds of Swarakshara.

In this Kriti, there are Swaraksharas in Pallavi and Charanam.

In Anupallavi
mp, p, n, **s** rs **s** n
Na te **sa sa**

In Charana – **m,,** m,, **m**, m,
Maya **ma** ya

Tala aspect

This Kriti sets in Adi Tala in one kala.In this Kriti Pallavi, Anupallavi and Charana set in Anagathaeduppu.

Conclusion

A true Bhakti (devotion) is unconditional and also a noble approach to surrender to God or attain salvation. Tyagaraja is considered as Demigod and called Tyaga Brahma in the world of Carnatic music. His contribution to the music has made evolutionary changes in many ways. Hence Carnatic music can be divided into two eras–Tyagaraja era and post Tyagaraja era ie ; 1767 to 1847. He has convincingly explained in all his Kritis that music and bhakti are inseparable and music along with bhakti will only lead towards the right path. He has beautifully conveyed his emotions and thoughts through the medium of devotional music. He never deviated from that. Tyagaraja kept on proving until his death that music and devotion go hand in hand or rather music itself is God.

References

1. Prof. P. Sambamoorthy, Great Composers Book II, The Indian Music Publishing House, Chennai, 2002
2. T.K. Govinda Rao, Compositions of Tyagaraja, Ganamandir Publications, Chennai, 1999
3. A.K Ravindranath, Dakshinendian Sangeetham, Department of Cultural Publication, Government of Kerala, Thiruvananthapuram, 1989
4. Prof. P. Sambamoorthy, South Indian Music Book III, The Indian Music Publishing House, Chennai, 2001

मैथिली लोक संस्कृति में लोकगीतों की जीवटता

डॉ. प्रीति सिंह
सहायक आचार्य हिंदी विभाग
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला

नेहा झा
शोधार्थी (हिंदी विभाग)
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला

सार-संक्षेप

लोक साहित्य समाज की भाषा का हिस्सा है, भाषा का सबंध साहित्य से होता है और साहित्य का समाज और जीवन से सीधा सबंध होता है इसलिए लोकसाहित्य को समाज का आधार माना जाता है। भारतीय लोकसाहित्य इसलिए हमारे समाज और संस्कृति का आधार है।

आज आधुनिक समय में नई पीढ़ी के लिए 'लोक' शब्द मात्र एक पिछड़े पन का अर्थ है। लोक संस्कृति या लोक साहित्य को यह अनपढ़ लोगों की चीज समझने लगे है। ऊँची इमारते तथा मेट्रो सिटी का समाज खुद को इन लोक संस्कृतियों तथा लोक साहित्य से अलग मानता है परंतु मिथिलांचल समाज एक ऐसा समाज है जिसने अपनी संस्कृति तथा लोक साहित्य को अपनी धरोहर की तरह माना है। अपवाद वहां भी देखने को मिल जायेंगे लेकिन उत्तर भारत में अगर किसी संस्कृति ने खुद की अपनी अलग पहचान स्थापित की है तो उसमें मैथिली संस्कृति का नाम सबसे पहले उल्लेख किया जायेगा। लोकसाहित्य किसी भी समाज और संस्कृति की धरोहर होता है। लोक साहित्य लोक की बात कहता है। मैथिलि लोकगीतों ने मैथिलि लोक संस्कृति के उत्थान तथा विकास में एक अहम भूमिका निभाई है। मिथिलांचल के हर पर्व तथा व्रत में लोकगीतों की विशिष्ट जगह है। मिथिला संस्कृति तथा लोकगीतों में यहाँ की महिलाओं की अहम भूमिका है।

बीज शब्द

लोक संस्कृति, लोकसाहित्य, लोकगीत, मिथिलांचल समाज, लोकजन

मैथिलि भारतीय भाषाई परिवारों में मागधी परिवार की भाषा के अंतर्गत आती है। भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से ही मैथिलि भाषा लोक साहित्य में अपना अहम योगदान देती आ रही है और संस्कृत साहित्य में भी मैथिलि की मौजूदगी देखी जा सकती है। बिहार की तमाम बोलियों एवं भाषाओं में सिर्फ 'मैथिलि' ही एक ऐसी भाषा है जिसमे 'विपुल साहित्य' मौजूद है। वैदिक काल से ही मिथिला में अनेक ऋषियों की उत्पति हुई। जिनमे वामदेव, गोतम रहूगणा, याज्ञवल्क्य, विश्वामित्र, कपिल आदि का नाम बड़े सम्मान के साथ मैथिलि के संदर्भ में लिया जाता है। सामवेद और यजुर्वेद के कुछ मंत्रों का रचियता भी गोतम रहूगणा और याज्ञवल्क्य को माना जाता है। मैथिलि भाषा के कुछ और प्राचीन रूप अशोक के शिलालेखों में उपलब्ध मिलते है। साहित्य में मैथिलि का प्राचीन रूप 'बोद्ध गान ओ दोहा' में मिलता है। 'बोद्ध गान ओ दोहा' विभिन्न भाषाओं से मिलकर बना है जिसके अंतगर्त मगही, मैथिलि, बंगला और

भोजपुरी भाषाओं के पर्व रूप आते है। भाषाविद ग्रियर्सन के अनुसार ''मैथिली भाषा बिहारी के अंतर्गत आती है। बिहारी से तात्पर्य ग्रियर्सन का यहाँ उस भाषा से है जिसमें मगही, मैथिलि और भोजपुरी समाहित हो। भाषा विज्ञान की दृष्टि से समझने पर ज्ञात होता है कि इन तीनों बोलियों में पारस्परिक अंतर भी कम नहीं हैं। 'अछ' और 'छू' धातु का प्रयोग मैथिलि में देखने को मिलता है, भोजपुरी और मगही में नहीं दृश्य मैथिलि साहित्य (संक्षिप्त परिचय—श्री वैजनाथ सिंह पेज - २२)। भाषा विज्ञानिकों की दृष्टि से देखें तो मैथिलि का निर्माण मगही अप्रभंश से ही हुआ है, इसलिए मैथिलि भाषा भोजपुरी और मगही की सगी बहन है। हर भाषा की अपनी एक लिपि होती है उसी प्रकार मैथिलि की भी अपनी विशेष लिपि है जिसे 'मिथिलाक्षर' अथवा 'तिहुर्ता' कहते है। मैथिलि की लिपि का विकास 'नागरीलिपि' से भी पहले हो गया था इसीलिए 'नागर लिपि' का प्रभाव उत्तर पूर्वी भारत में देखने को मिलता है मैथिलि पर नहीं है। यह बिहार के दरभंगा, मुजफ्फरपुर, मुगेंर, भागलपुर और पूर्णिया जिले में बोली जाती है।

किसी भी समाज के विकास और उसकी परंपरा को समझना हो तो उसकी लोक संस्कृति का समाज से जुड़ाव और उसका लोक साहित्य किस तरीके से समाज को प्रभावित करता है उससे महसूस किया जा सकता है। मिथिलांचल इस रूप में बहुत धनवान है। यह अपनी लोक संस्कृति तथा लोक साहित्य से प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक जड़ से जुड़ा है। मिथिला की आज पहचान ही देश-विदेश में उसकी संस्कृति तथा लोकसाहित्य में विशेष लोकगीतों से ही है। आज मिथिला के लोकगीत ही उसकी संस्कृति की पहचान बने हुए है। विभिन्न धर्मिक उत्सव तथा जीवन के विभिन्न पड़ावों पर पैदा होने से लेकर मरने तक मैथिलि लोकगीतों को अपनी विशिष्ट उपस्थिति रहती है।

मिथिला के मैथिलि लोकगीतों का प्रथम संकलन एवं संपादन का श्रेय भाषाविद जार्ज ग्रियर्सन को जाता है। जिन्होंने मैथिलि भाषा की विशेषताओं से आम जन को आकर्षित किया। उनके पश्चात मैथिलि लोकगीतों का सामान्य परिचय देते हुए उसके भावों एवं मार्मिकताओं को राम इकलाब सिंह 'राकेश' ने अपने शोधपरक किताब 'मैथिलि लोकगीत' में बेहतरीन तरीके से साझा किया है। मिथिला का समाज आज भी पुरानी परम्पराओं और व्यवस्था के साथ चलते हुए आधुनिक समाज से तालमेल बना रहा है। मैथिलि लोकगीतों के माध्यम से मिथिला की संस्कृति तथा धार्मिकता, समाजिकता को समझने की कोशिश करते है।

शिव की पूजा

मिथिला में शैवधर्म की उत्पत्ति बौद्ध धर्म के पश्चात देखने को मिलती है। मिथिला समाज के अधिंकाश लोग शिवभक्त के रूप में मिलते है। बच्चे बचपन से ही 'ऊँ नमः शिवाय सिद्धम्' का उच्चारण करना शुरू कर देते है साथ ही लिखना - पढ़ना भी। सालभर शिव से जुड़े त्योहारों को धूमधाम से मनाया जाता है और पूजा की जाती है। हर हफ्ते गीली मिट्टी से शिवलिंग बनाकर उनकी पूजा करने का चलन है। गाँव - गाँव में शिव के मंदिर देखने को मिल जायेगें जहाँ उपवास रखकर पूजा करते हुए शिवभक्त भी दिख जाएगें। जो मैथिलि में शिव भजन या गीत गाकर अपने अध्यता को प्रसन्न करने में जुटे रहते है।

कखन हरब! दुःख मोर हे भोलेनाथ!
दुखहि जनम भेल दुखहि गमाएबए
सुख सपनहु नहि भेल है भोलेनाथ!
आछत चानन अगर गंगाजल!
बेलपात तोहि देव है भोलेनाथ!
ई भव सागर थाह कतहु नही!
भैरव घरु करि आएल है भोलेनाथ!
भन विद्यापति मोर भोलनाथ गति!

(रामवृक्ष बेनीपुरी : विद्यापति - पदावली, पृष्ठ- 308)

कोकिल कवि विद्यापति द्वारा मैथिलि में लिखी गई ये महेश्ववाणी खूब प्रचलित है जिनमे बैधनाथ

धाम की ओर जाते समय शिवभक्त दिल से गाते हुए देवघर की ओर पैदल चले जाते है।

विष्णु की पूजा

मिथिला में विष्णु की पूजा का चलन भी खूब है, राम विष्णु के अवतार थे तो कुछ रामनवमी पर भी विष्णु की पूजा करते है और इस दिन उपवास रखते है। वैष्णव सम्प्रदाय के लोग अक्सर गले में तुलसी की माला पहनते हैं लेकिन मिथिला समाज की संस्कृति की खास विशेषता यह है कि वह लोग गल मर तुलसी की कंठी बिना पहने भी वैष्णव होते है और निरामिष आहार भी करते है। सत्यनारायण की कथा और हवन गाँव-गाँव होता रहता है और कृष्ण जन्माष्टमी पर भी मिथिला समाज में मिट्टी के कृष्ण बनाकर पूजा की जाती है। विभिन्न पूजा स्थलों पर वैष्णव भजन के तौर पर यह गाया जाता है -

के ओ ने बिपत्ति के साथी हो रघुवर,
केओ ने बिपत्ति के साथी!
पहिल बिपति पडल राज - दसरथ के,
राम लखन बन जाई।
दोसर बिपति पडल कौसल्या के,
अयोध्या सून भेल जाईए हो रघुवर!
तेसर बिपति पडल राम लछमन के,
बने बने रोबति जाईए हो रघुवर!
चारिम बिपति पड़ल सीता के,
राबन हरने जाई हो, रघुबर!
पाँचम बिपति पड़ल रावन के
सोना के लंका जरि जाईए हो रघुवर!
'तुलसिदास' प्रभु तुम्हरे दरस को,
कोइ ने विपति के साथी, हो रघुवर!

ऐसा कहा जाता है कि इस गीत में किसी अनाम मैथिली लोकगीतकार ने प्रचारात्मक भावना की दृष्टि से तुलसीदास का नाम अन्त में जोड़ दिया है। मिथिला के समाज और संस्कृति की विशेषता यह भी है कि उसमें शैव धर्म, शाक्त धर्म और वैष्णव धर्म का समन्वय हुआ है। वहाँ के लोकजन में तीनों धर्मों के प्रति अपार आस्था का भाव दिखाई पड़ता है।

प्रकृति की उपासना

गंगा - स्तुति बड़ सुख सार पामोल तुम तोरे!
छोड़इत निकट नयन बहनीरे!
कर जोरि बिनमो बिमल तरंगे!
पुन दरसन हो, पुनमति गंगे!
एक अपराध छमब मोर जानी!
परसल माय पाय तुम पानी!
कि करब जप तप जोग धेयाने!
जनम कृतारथ एकहि सनाने!
भनइ विद्यापति समदनों तोही!
अन्तकाल जनु बिसरह मोही!
(रामवृक्ष बेनीपुरी : विद्यापति - पदावली, पृष्ठ - 308)

मिथिला बिहार के उस क्षेत्र में आता है जहाँ कृषि के लिए जमीं मौजूद है, इसलिए मिथिला में मूलतः कृषि प्रधान संस्कृति है। 'चाहे जन्म, उपनयन या चाहे विवाह - संस्कार के लोकगीतों को लें, सब में हमें कृषि - प्रधान संस्कृति की ही विशेषता दिखाई पड़ती है। मिथिला के निवासियों को वस्त्रों के लिए कपास की खेती करनी पड़ती है। वे चरखा कातते हैं और चरखे के धागे को धार्मिक दृष्टि से पवित्र मानते हैं। उपनयन के अवसर पर यज्ञोपवीत के लिए 'चरख - कट्टी' नाम की क्रिया होती है जिसमें महिलाएं चरखा कातती हैं और उसी धागे से यज्ञोपवीत बनाया जाता है। खादी का उपयोग अधिक होता है। स्त्रियाँ चाँदी के गहने से ही संतृप्त होती हैं और विधवाएं चरखे से ही रोटी पैदा करती है। इसका कारण विपन्नता नहीं है, बल्कि कृषि प्रधान संस्कृति है।'' (मैथिलि लोकगीतों का अध्ययन : डॉ. तेज नारायण लाल, शास्त्री, पृष्ठ - 80)

मधुसावनी

मिथिला समाज की पहचान ही उसकी संस्कृति और त्यौहार है। मिथिला के त्यौहारों ने बिहार से बाहर भी अपनी पहचान बनाई है। सालभर विभिन्न प्रकार

के त्यौहार मनाये जाते है जिनमे मधुसाँवनी, फाग और छठ प्रमुख रूप से हैं।

यह त्यौहार सावन शुक्ल तृतीया को मनाया जाता है। मधुसाँवनी में नवविवाहिता लड़की को एक जलती हुई बत्ति से पैरो में दगा दिया जाता है। अगर फफोले पड़ते है और घर की बहु उस दर्द को सह लेती है तो यह सुशील बहु का निशान है। इसी त्यौहार में नवविवाहिता खुद जाकर तरह-तरह के फूलों को तोड़कर इकठ्ठा करती है और एक साथ कई नवविवाहिता मिलकर हंसी ठिठोलियाँ करती है। अगर कोई गरीब घर से होती है तो उसको मैथिलि गीतों के माध्यम से साहस दिया जाता है जैसे -

निर्धन घर गे बेटी, तोहरो जन्म भेल,
निर्धन घर गे बेटी, तोहरी विवाह भेल
कतय पैब गे बेटी, लालरंग केचुआ,
कतय पैब गे बेटी, हम चित्रसारी
से हो सुनि अमुक बर चलला बेसा है
(रामइकबाल सिंह 'राकेश' : मैथिलि लोकगीत। पृष्ठ - २७०)

छठ

मिथिला का छठ त्यौहार आज किसी पहचान का मोहताज नहीं है, मिथिला के सभी त्योहारों में एक प्रकार का तप और त्याग की भावना देखने को मिलती है। छठ पर्व भी उसी का एक उदाहरण है। यह त्यौहार आज बिहार से निकल पूरे भारत के साथ-साथ विदिशों में भी अब खूब धूमधाम से मनाया जाता है। दुनिया का यह पहला पर्व है जिसमे डूबते हुए सूरज की पूजा की जाती है। यह (चैत) के महीने के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को धार्मिक आस्था के साथ धूमधाम से बनाया जाता है। इसमें अराध्य देव सूरज होते हैं, जिन्हें नीबूं, नारंगी, मिष्ठान पूजा-पकवान आदि से नदी-तलाब में खड़े होकर भोर में सूर्य भगवान की पूजा की जाती है। बच्चों के लिए यह त्यौहार धार्मिक आस्था के साथ-साथ खाने पीने की चीजों के साथ मस्ती का भी बन जाता है और बच्चे (गाते) फिरते है 'बाँटी चुटी खाइए गंगा नहाई, असगर खाइए गुह डबरा नहाई' अथार्त जो बाँट कर खाता है उसको गंगा नहाने का पुण्य मिलता है। छठ मैया से लोग यह प्रार्थना करते है कि

घोड़ा चढ़न लागि बेटा मंगिलों,
मंगिलो घर - सचिनि पतोहू, माता!
बयना बहुरे लागि बेटी मांगिलों
पंडित मंगिलो दमाद छुठी मइया
परसन होऊ ने सहाय छठी माता

मिथिला की संस्कृति में छठ पर्व का बहुत बड़ा प्रभाव है और यही मिथिला की पहचान है।

सामाजिक - सुधार

मिथिला समाज बिहार में एक आदर्श समाज का प्रतीक है, प्राचीन समय से यह अपने पहनावे, रहन - सहन से आकर्षित करता रहा है। बिना किसी राग द्वेष के मिथिला समाज के लोग एकता के सूत्र में बंधकर रहते है। हर पर्व में सब मिलकर पूजा - अर्चना करते है। एक दुसरे के प्रति सहयोग की भावना रखते हैं। वर्ण-व्यवस्था होने के बाद भी किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव देखने को नहीं मिलता है। मिल-जुलकर एक सभ्य समाज का निर्माण करते हैं। प्रतिभा किसी में भी हो उसको आदर मिथिला में मिलता है। जब जब कोई अन्याय होता है तो मिथिला के लोकगीतों में उसका न्याय देखने को जरुर मिलता है। मिथिला में समाज को सुधारने वाले तमाम लोकगीत है जिनमे आधुनिक 'झूमर' प्रचलित है–

बुढ़बा सजिगेला बरात,
लड़की जानल इ सब बात
उतअ भागी पडेलइ, बहिन के ससुरारी में!
भारी जुलम देखइ छिए शादी लगन बुढ़ारी में,
पाकल - पाकल दाढ़ी में ना!
बहिन सुनइ समझइ ई बात,
शादी केलनि देवर के साथ

इस मैथिलि लोकगीत में यह बताया गया है जब लड़की की शादी किसी बूढ़े से होने लगती है तो वह बहन की ससुराल भाग जाती है और बहिन इस

अन्याय को दूर करने के लिए अपने देवर से ही उसकी शादी करा देती है।

निष्कर्ष

21वीं सदी आधुनिक सदी है जहाँ मनोरंजन के रोज नये रूप देखने को मिलते है। इस आधुनिकता ने भारतीय समाज की लगभग सभी परम्पराओं और रीतिरिवाजों को प्रभावित किया है। हर समाज में मनोरंजन के अपने साधन होते थे। अपनी लोककलाओं तथा लोक साहित्य के माध्यम से वह अपनी संस्कृति को तथा रीतिरिवाजों को जीते थे। आज वर्तमान समय में जब सोशल मिडिया से लेकर यूट्यूब जैसे प्लेटफोर्म मौजूद है जहाँ हर पल मनोरंजन के नित-नए तरीके है, ऐसे में हमारी कोई भी समाज अपनी संस्कृति तथा लोक की रक्षा कैसे करे। भारत की कुछ कलाएं तथा लोक साहित्य और समाज आधुनिकता से प्रभावित होकर खुद को बदल लिया है या फिर कुछ संघर्षरत है। मिथिला समाज आज भी जस का तस यूँ ही है। उसका लोकसाहित्य उसकी लोककलाएं अपने मूल रूप में आज भी समाज में मौजूद हैं। मैथिलि भाषा का समाज लगातार विकसित तो हो रहा है लेकिन अपनी जड़ो से बंधा हुआ है।

संदर्भ सूचि

1. दास, श्री कृष्ण (1956), लोकगीतों की समाजिक व्याख्या। साहित्य भवन, लिमटेड : इलाहाबाद
2. राकेश, सिंह रामइकबाल (1995) मैथिलि लोकगीत (द्वितीय संस्करण) हिंदी साहित्य सम्मेलन : प्रयाग
3. परमार, श्याम, (1995), भारतीय लोक साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
4. उपाध्याय, कृष्णदेव (2000), भोजपुरी ग्राम गीत, हिंदी साहित्य सम्मेलन : प्रयाग
5. श्रीवास्तव, राम किशोरी, (1946), हिंदी - लोकगीत। साहित्य भवन लिमटेड : इलाहाबाद
6. सत्येन्द्र, (१९६२), लोक-साहित्य विज्ञान, शिवलाल अग्रवाल एंड संस : आगरा

ऋतुकालीन रागों में ख्याल की बंदिशों का विश्लेषणात्मक अध्ययन (बसंत एवं वर्षा ऋतु के विशेष संदर्भ में)

प्रो. विद्याधर प्रसाद मिश्रा

शोध-निर्देशक
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

दिव्या श्रीवास्तव

शोध छात्रा
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सार-संक्षेप

हमारा भारत ऋतु प्रधान देश है। यहाँ छः प्रकार की ऋतुएँ पायी जाती है जो इस प्रकार है- वर्षा, ग्रीष्म, शरद, हेमंत, शिशिर एवं बसंत ऋतु। मानव-जीवन पर इन सभी ऋतुओं का प्रभाव पड़ता है। साथ ही साथ भारतीय शास्त्रीय संगीत पर भी इन ऋतुओं का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। यद्यपि प्रत्येक ऋतु से संबंधित रागों व बंदिशों की रचना की गई है किन्तु बसंत तथा वर्षा ऋतु, दो ऐसी ऋतुएँ है जिनका सर्वाधिक प्रभाव भारतीय राग संगीत व उनकी बंदिशों में देखने को मिलता है। जहाँ एक ओर बसंत ऋतु को 'ऋतुराज' की संज्ञा दी गई है। इस ऋतु से सम्बंधित रागों व उनकी बंदिशों में बसंत ऋतु की प्रशंसा, रसमयी वातावरण तथा खिली हुई प्रकृति का वर्णन प्राप्त होता है। वहीं दूसरी ओर वर्षा ऋतु को 'ऋतुओं की रानी' माना जाता है। इस ऋतु की रागें व उनकी बंदिशें मन-मस्तिष्क में नवीन चेतना व उमंग की भावना का संचार करती है जिससे मन प्रफुल्लित हो उठता है।

बीज शब्द

ऋतुकालीन राग, बंदिश, उत्फुल्लता, विश्लेषण, शब्दाभिव्यक्ति

प्रस्तावना

हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत राग की संकल्पना, मौलिक व अप्रतिम मानी जाती है। राग संगीत की एक ऐसी अद्भुत संरचना है जिसमें कठोर नियम होते हुए भी कलाकार को अपनी कल्पना तथा प्रतिभा के अनुसार, राग विस्तार की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। राग की अवधारणा सर्वप्रथम **मतंगमुनि** कृत **बृहद्देशी** ग्रंथ में प्राप्त होती है-

योऽ सौ ध्वनिविशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषितः।
रंजको जनचित्तानां स च राग उदाहृतः।।

अर्थात् स्वरों तथा वर्णों से विभूषित ऐसी विशेष ध्वनि युक्त रचना जिससे मनुष्य के चित्त का रंजन हो, उसे 'राग' कहते हैं।

हमारा भारत, ऋतु प्रधान देश कहलाता है। यहाँ छः प्रकार की ऋतुओं का आगमन सुनिश्चित होता है जो इस प्रकार है- वर्षा, ग्रीष्म, शरद, हेमंत, शिशिर ऋतु एवं बसंत ऋतु। संसार के किसी अन्य

देश में शायद ही ऋतुओं की यह विविधता देखने को मिलती होगी। इन ऋतुओं का हमारे भारतीय संगीत पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव देखने को मिलता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की अनूठी विशेषता यह है कि यह समय तथा ऋतु सापेक्ष है। इसमें दिवस एवं रात्रि के आठों प्रहर तथा प्रत्येक ऋतु में गाए-बजाए जाने वाले राग हैं। यह सर्वविदित है कि भारतीय संगीत भावना-प्रधान होता है अतः संगीतज्ञ इन भावों को सकारता प्रदान करने हेतु स्वरों के माध्यम से ऋतु-विशेष से प्रेरित होकर विभिन्न स्वरों के मेल से मनमोहक रागों की रचना करते हैं। **पंडित दामोदर मिश्र** ने अपने ग्रंथ **संगीत दर्पण** में विभिन्न ऋतुओं में गाने के लिए इस प्रकार वर्णन किया है-

श्री रागो रागिणीयुक्तः शिशिरं गीयते बुधैः
बसंत स सहायस्तु बसनततौ प्रगीयते
भैरवः सहायस्तु हतौ ग्रीष्म प्रगीयते
पंचमस्तु तथा गेयो रागिण्य सह शारदे
मेघ नारायणा रागो रागिण्या सह हेमका।

ऋतु-विशेष में गाए जाने वाले रागों को 'ऋतुकालीन राग' की संज्ञा दी जाती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में ऐसे अनेक ऋतुकालीन राग हैं जो ऋतुओं का वर्णन करते हुए रसास्वादन कराते हैं जैसे-राग बहार, हिण्डोल, मेघ, बसंत, वृन्दावनी सारंग आदि। इन रागों का गायन ध्रुपद-धमार, ख्याल इत्यादि गायन-शैलियों में होता है। इनमें ख्याल गायन शैली के अन्तर्गत विलंबित एवं द्रुत ख्याल की बंदिशों के नियमों का पालन करते हुए गायक अपनी इच्छानुसार विविध आलाप-तान के द्वारा विस्तार करते हुए बंदिश के माध्यम से राग का स्वरूप स्थापित करता है तो इसे 'ख्याल' कहते हैं। ख्याल गायन में रागों के प्रस्तुतिकरण का एक प्रमुख एवं प्रभावशाली माध्यम है 'बंदिश'। बंदिश की रचना में ही राग का पूर्ण शास्त्र स्पष्ट हो जाता है। राग मूलतः अमूर्त है जो बंदिश के माध्यम से मूर्त रूप प्राप्त करता है। **प्रो0 देवव्रत चौधरी** के अनुसार- बंदिश में एक बंधन का अर्थ समाया हुआ है जैसे सामाजिक और सांसारिक बंधन है। यह लय और ताल के दायरे और राग के नियमों में बंधी रहती है।

किसी राग में बंदिश बनाते समय कलाकार राग विशेष में लगने वाले स्वरों तथा उसके वादी-संवादी, अनुवादी-विवादी, अल्पत्व-बहुत्व इत्यादि समस्त नियमों को ध्यान में रखते हुए उसकी रचना करता है और राग के स्वरूप को बंदिश के माध्यम से सुरक्षित रखता है। बंदिशें राग को आधार प्रदान करती हैं जिससे राग का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है।

ऋतुकालीन रागों में ख्याल की बंदिशों का विश्लेषण-

विश्लेषण का अर्थ है खोज या छानबीन करना। किसी विधान या व्यवस्थाक्रम का सूक्ष्मता से परीक्षण करने तथा उसके मूल तत्वों को खोजने की क्रिया को 'विश्लेषण' की संज्ञा दी जाती है। संगीत में किसी राग में ख्याल की बंदिशों का विश्लेषण का अर्थ बंदिश में प्रयुक्त स्वर व स्वर संगतियाँ, लय शब्द, ताल, रस तथा भाव इत्यादि का अध्ययन करना होता है।

यद्यपि हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रत्येक ऋतु से सम्बंधित अनेक रागों व बंदिशों की रचनाएँ प्राप्त होती है किन्तु इनमें बसंत एवं वर्षा ऋतु को शास्त्रीय संगीत में सर्वोपरि स्थान प्राप्त है अर्थात् इन ऋतुओं से प्रभावित होकर अनेक रागों व बंदिशों की रचना की गई है। इसका कारण यह माना जा सकता है कि ये ऋतुएँ मानव मस्तिष्क व उनके जीवन को एक अलग स्तर पर ही प्रभावित करती है तथा उन्हें परम सुख की अनुभूति प्रदान करती है।

अतः यहाँ पर मैंने बंदिशों के विश्लेषण हेतु विभिन्न पुस्तकों एवं विद्वानों से प्राप्त जानकारी की सहायता से बसंत तथा वर्षा ऋतु में गायी जाने वाली क्रमशः दो ऋतुकालीन रागों, जिनका नाम है- **'राग बसंत'** तथा **'राग मियाँ मल्हार'** में ख्याल की बंदिशों का विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

इनका विवरण इस प्रकार है-

राग बसंत-

भारतीय शास्त्रीय संगीत के हिन्दुस्तानी पद्धति के प्राचीन रागों में से एक राग बसंत का वर्णन प्रायः सभी ग्रन्थों में देखने को मिलता है। **'लक्ष्यसंगीत'** में राग बसंत के विषय में इस प्रकार विवरण मिलता है-

वसंते पंचमो नैवानुलोमे रक्तिदो भवेत्।
परजाख्ये पुनश्चासौ विशिष्टां रक्तिमावहेत्।।

राग बसंत की उत्पत्ति 'पूर्वी थाट' से हुई है। इसमें ऋषभ, धैवत कोमल तथा दोनों मध्यम तथा अन्य शुद्ध स्वरों का प्रयोग होता है। वादी स्वर तार षडज तथा सम्वादी स्वर पंचम को मानते हैं। इसके आरोह में पंचम व निषाद वर्जित है तथा अवरोह में सभी स्वरों का प्रयोग होता है। अतः राग की जाति औडव-सम्पूर्ण मानी जाती है। इस राग के गीतों में विशेष रूप से बसंत ऋतु का वर्णन देखने को मिलता है अतः इस राग को बसंत ऋतु में किसी भी समय गाया बजाया जा सकता है तथा स्वर-प्रयोग की दृष्टि से इस राग का गायन समय रात्रि का अन्तिम प्रहर माना गया है।

उतरांग प्रधान होने के कारण इस राग में तार सप्तक का सा खूब चमकता है। शुद्ध म का प्रयोग केवल आरोह में एक विशेष प्रकार से होता है - सा म, म ग, मं ध़ सां। इसे राग परज से बचाने के लिए आरोह में नि का लंघन करते हैं - सा ग मं ध़ सां। इसके आरोह में पंचम टालने का प्रयास किया जाता है क्योंकि यह स्वर अधिक प्रमाण में लग जाने से श्रोताओं को राग परज का आभास होना संभव है अतः इसके आरोहात्मक स्वरूप में पंचम और निषाद को वर्जित कर दिया जाता है।

आरोह- सा ग मं ध़ रें सां

अवरोह- रें नि ध़ प, मं ग, सा मं म मं ग, म ग रे सा

पकड़- (प) मं ग मं ऽ ग, मं ध़ रें ऽ सां।

यह कहना सर्वथा उचित होगा कि किसी भी राग में आलाप करने के साथ-साथ उसकी कुँजी, उसकी बंदिश में होती है। बंदिश एक ऐसा माध्यम है जो प्रस्तुत राग के भाव, साहित्य और राग चलन को भली-भाँति प्रदर्शित करती है।

प्रस्तुत राग बसंत में ख्याल के अंतर्गत, द्रुत ख्याल की बंदिश का विश्लेषण इस प्रकार है-

बंदिश के बोल-

स्थायी- बैरन रूत आयी रे कोयलिया,
कूक हूक उठे मनवा मोरा तड़पे दिन रैन।

अंतरा- भवरा गुँजारे जारे तन मोरा,
'रामरंग' शीतल पवन लागे दहन उन बिन दिन रैन।

स्वरलिपि ताल - तीनताल (मण्यलय) स्थायी

															प
															बै
मं	ग	मं	ध	सां	-	-	नि	ध	मं	ध	नि	रें	नि	ध़	प
र	न	रू	त	आ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ई	रे	को
मं	ग	मं	नि	मं	-	ग	मं	ग	रे	सा	सा	सा	सा	मा	-
य	लि	या	ऽ	कू	ऽ	क	हूँ	ऽ	क	उ	ठे	म	न	वा	ऽ
मं	ग	प	ग	मं	ध	मं	ध	नि	ध	नि	रें	नि	नि	ध,	प
मो	ऽ	रा	ऽ	त	ड़	ऽ	पे	ऽ	ऽ	दि	न	ऽ	र	न,	बै
3				X				2				0			

अन्तरा

															म
															भ
ग	मं	-	ध	सां	-	-	नि	ध	म	ध	नि	रें	सां	-	नि
व	रा	ऽ	गुं	जा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र	ऽ	जा
-	रें	गं	रें	सां	-	-	नि	ध	नि	रें	नि	ध	प	-	मं
ऽ	रे	ऽ	त	न	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	मो	रा	ऽ	रा
-	ग	म	नि	म	-	ग	म	ग	र	सा	सा	म	-	-	म
ऽ	म	रं	ग	शी	ऽ	ऽ	त	ल	प	व	न	ला	ऽ	ऽ	गे
-	म	ग्म	ग	म	ध	म	ध	नि	ध	नि	रें	नि	ध्नि	ध,	प
ऽ	द	ह	न	उ	न	ऽ	बि	न	ऽ	दि	न	ऽ	रे	न,	बै
3				X				2				0			

बंदिश का विश्लेषण- प्रस्तुत बंदिश डॉ. गीता बनर्जी द्वारा लिखित पुस्तक राग शास्त्र, भाग-2 से ली गयी है, इस बंदिश के रचनाकार पं. रामाश्रय झा 'रामरंग' जी हैं।

इस बंदिश में बसंत ऋतु के आगमन पर एक विरहिणी द्वारा उसकी मनोदशा का वर्णन किया गया है। बसंत एक ऐसी ऋतु मानी जाती है जिसके आगमन से प्रत्येक प्राणी के मन में हर्षोल्लास का संचार होता है। शीत ऋतु के पश्चात् जब फागुन-चैत्र माह (फरवरी-मार्च) का आरंभ होता है तो वातावरण में चारों ओर प्रकृति खिल उठती है। वृक्ष नये-नये पुष्पों और पत्तियों से पल्लवित हो उठते हैं। भँवरे, कोयल इत्यादि पशु-पक्षी अपने मधुर कोलाहल द्वारा वातावरण को आनंदमय कर देते हैं। प्रस्तुत बंदिश में नायिका एक ओर बसंत ऋतु का सुंदर वर्णन कर रही है, साथ ही अपने प्रीतम से वियोग के कारण उस ऋतु का आनंद न ले पाने के कारण बसंत ऋतु को 'बैरन' की संज्ञा दे रही है। कोयल की कूक और भँवरे की गुंजार ध्वनि को सुनकर उसके हृदय में हूक (तड़प) की भावना उद्वेलित हो रही है जिससे वह दिन-रात बेचैनी का अनुभव कर रही है। इस मोहक ऋतु में रात-दिन चलने वाली शीतल पवन भी उसे दहकती हुई अग्नि के समान प्रतीत हो रही है जिससे उसे दुख का अनुभव हो रहा है।

इस प्रकार संपूर्ण बंदिश में श्रृंगार तथा वियोग श्रृंगार रस तथा करूण रस का सुंदर प्रयोग करते हुए विरहिणी स्त्री की भावनाओं को व्यक्त किया गया है।

स्वरों के प्रयोग की ओर दृष्टिपात करें तो बंदिश के प्रथम स्वर बंदिश के प्रथम शब्द 'बैरन रूत' जिसमें रागवाचक स्वर समूह 'प म ग म ध सां, प्रयुक्त हुआ है, से ही राग बसंत के दर्शन हो जाते हैं। प्रथम पंक्ति के शब्द 'आई रे' में प्रयुक्त स्वर समूह में ध नि रें नि ध प में तार षडज का लंघन, राग के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करता है। दोनों मध्यम का नियमानुसार प्रयोग भी बंदिश की मधुरता को बढ़ा रहा है। गंधार और पंचम, न्यास के बहुत के स्वर हैं जिनका प्रयोग बंदिश में परिलक्षित होता है। बंदिश में प्रयुक्त हुए प्रत्येक स्वर व स्वर समुदाय राग के चरित्र के साथ न्याय करते हैं। कोमल रे और ध स्वरों के प्रयोग से करूण रस का अनुभव होता है।

राग मियाँ मल्हार-

राग मियाँ मल्हार की रचना मियाँ तानसेन के द्वारा मानी जाती है। इस राग का अनेक प्राचीन ग्रंथों में वर्णन प्राप्त होता है। 'अभिनव राग मंजरी' ग्रंथ में इस राग का वर्णन इस प्रकार है-

रिमौ रिसौ निपमपा निधौ निधौ निसौ पगौ।
मरिसा साशंको लोके मीयांमल्लार उच्यते।।

इस राग की उत्पत्ति काफी थाट से मानी जाती है। इस राग में कान्हड़ा और मल्हार अंग का मिश्रण है। इसका वादी स्वर षडज तथा सम्वादी स्वर पंचम है। इस राग में कोमल गंधार, दोनों निषाद तथा अन्य शुद्ध स्वरों का प्रयोग होता है। आरोह में ग वर्जित तथा अवरोह में सातों स्वरों का प्रयोग होने के कारण राग की जाति शाडव-संपूर्ण मानी जाती है। वर्शाकालीन राग होने के कारण वर्षा ऋतु में इसे किसी भी समय गाया-बजाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मध्य रात्रि भी माना गया है।

इस राग का विस्तार साधारणतः तीनों सप्तकों में होता है परंतु मंद्र एवं मध्य सप्तक में यह राग अधिक निखरता है क्योंकि यह पूर्वांग प्रधान राग है। मल्हार के प्रकारों में राग मियाँ मल्हार का अपना एक स्वतंत्र रूप है। इस राग में म रे रे प मींडयुक्त स्वर-संगतियों का बहुतायत प्रयोग होता है। षडज, पंचम व शुद्ध निषाद पर न्यास किया जाता है।

आरोह- सा रे म रे प, म प नि ध नि सां
अवरोह- सां ध नि म प, ग म रे सा
पकड़- म रे सा नि ध नि म प, नि ध नि सा, म रे प म मग म सा सारे सा।

प्रस्तुत राग मियाँ मल्हार में ख्याल के अंतर्गत, द्रुत ख्याल की बंदिश का विश्लेषण इस प्रकार है-

बंदिश के बोल-

स्थायी - बरसन लागी रे बदरिया,
सावन की अतिकारी अतिभारी डर पावन लागी।
अन्तरा - चमक-चमक बिजुरिया चमके,
सियरी पवन बहे
अब तो प्यारी चौंक परी, गरजन लागी।

स्वरलिपि ताल - तीनताल (मण्यलय) स्थायी

										म	प	नि	ध	निसां
										ब	र	स	ऽ	न
सां	-	-	ग्नि	म	ग	ग्म	म	र	र	सा नि	सा	ग्रि	म	रे
ला	ऽ	ऽ	ऽ,	गी	ऽ	रे	ब	द	रि	या, सा	ऽ	व	ऽ	न
स	नि	-	-	नि	ध	नि	-	सा	-	- -	नि	सा	म	रे
की	ऽ	ऽ	ऽ	अ	ति	का	ऽ	री	ऽ	ऽ, ऽ	अ	ति	भा	ऽ
प	-	प	प	म	प	नि	धनि	नि	-	प म	प	नि	ध	निसां
री	ऽ	ड	र	पा	ऽ	व	नऽ	ला	ऽ	गी ब	र	स	ऽ	न
×				2				0			3			

अंतरा

											प	नि	ध	नि
											म	क	ऽ	च
सां	-	सां	-	सां	सां	सां	सां	नि	रें	सां -	नि	सां	रें	मं
म	ऽ	क	ऽ	बि	जु	रि	या	च	म	के ऽ	सि	य	री	ऽ
रें	-	सां	सां	नि	-	-	ध	नि	नि	सां -	नि	सां	नि	ध
प	ऽ	व	न	ब	ऽ	ऽ	हे	अ	ब	तो ऽ	प्या	ऽ	री	चौं
नि	प	म	प	ग्म	ग्म	ग्म	म	रे	-	सा -				
ऽ	क	प	री	ग	र	ज	न	ला	ऽ	गी ऽ	अति भारी...			
X				2				0			3			

बंदिश का विश्लेषण- प्रस्तुत बंदिश पं. विष्णुनारायण भातखण्डे जी द्वारा रचित हैं जिसे उनकी पुस्तक क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग-4 से लिया गया है।

साहित्य, भाव एवं रस सौंदर्य की दृष्टि से यह बंदिश सहज ही हमारे समक्ष बादलों के बरसने एवं उससे उत्पन्न स्थिति के कारण हृदय में उपजी भावनाओं को व्यक्त करती है। शब्दों का भावानुकूल स्वर प्रयोजन इस बंदिश को और अधिक रसमयी बनाता है। इस बंदिश में बादलों के गरजने, बिजली के चमकने इत्यादि से उत्पन्न भाव भयानक रस की उत्पत्ति करते हैं। बंदिश में संभवतः नायिका है जो अपनी सखी से सावन अथवा वर्षा ऋतु का वर्णन कर रही है। वर्षा के दौरान आकाश में बादलों और काली घटाओं के आगमन से वातावरण में अंधेरा छा जाता है, जिससे मुझे डर की प्राप्ति हो रही है अर्थात् यह भयभीत करने वाला दृश्य है। इसी के आगे वह कह रही है कि बिजली चमकने के साथ सियरी पवन बह रही है, इसी दौरान बादलों के गर्जन की ध्वनि विकल तथा भयभीत कर देने वाली है।

इस प्रकार प्रस्तुत बंदिश के शब्द चित्र मात्र से ही वर्षाकालीन दृश्य का व उससे उत्पन्न भय का आभास होता है। साथ ही साथ इस बंदिश की तीनताल में निबद्धता बंदिश के भाव को पूर्णता प्रदान करती है अर्थात् यहाँ तीनताल का प्रयोग बंदिशानुकूल है।

प्रस्तुत बंदिश के स्थायी-अंतरे का आरंभ ही राग-वाचक स्वर संगति 'म प नि ध नि' का प्रयोग करते हुए समान रूप से हुआ है। इस बंदिश में 'बरसन' और 'चमक-चमक' शब्दों में कोमल निशाद का धैवत को स्पर्श करते हुए शुद्ध निशाद पर आना तथा 'भारी' शब्द में ऋषभ से पंचम तथा 'परी गरजन' शब्द में पंचम से गंधार की चाल, एकदम वर्षा ऋतु की फुहार और मेघ गरजन का समा बाँध देती है। प्रकृति का जो प्रभाव वातावरण पर पड़ता है उसका प्रभाव गायक एवं श्रोता दोनों पर पड़ता है। संपूर्ण बंदिश में षडज, पंचम तथा शुद्ध निषाद का न्यास बहुत्व देखने को मिलता है। इसमें गंधार, मध्यम के सहारे प्रयुक्त हुआ है जैसे- 'परी गरजन' शब्द में 'प ग ग म रे सा, अर्थात् अवरोहात्मक अलंघन बहुत्व तथा वक्र रूप में प्रयोग हुआ है। मध्यम का लंघन अल्पत्व तथा धैवत का आरोहात्मक अलंघन बहुत्व के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विश्लेषण के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि बंदिश राग की अभिव्यक्ति है और उसके सम्पूर्ण रूप को प्रकट करने का सर्वोत्तम

साधन है। इन बंदिशों में ऋतुओं के अनुसार राग का जो स्वरात्मक, लयात्मक एवं भावात्मक स्वरूप प्रकट होता है वह अत्यंत सजीव तथा मनोहारी है।

संदर्भ सूची-

पुस्तकें

1. हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में राग की उत्पत्ति एवं विकास - डा. सुनन्दा पाठक, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
2. राग शास्त्र में पारंपरिक बंदिशों की भूमिका - डॉ. शिप्रा पंत, अंकित पब्लिकेशन्स, दिल्ली
3. राग शास्त्र, भाग-2, डॉ. गीता बनर्जी, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद
4. क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग-4, पंडित विश्णुनारायण भातखण्डे, संगीत कार्यालय, हाथरस

पत्रिका-

1. छायानट पत्रिका, उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ, जनवरी-दिसंबर अंक 2015
2. संगीत पत्रिका, संगीत कार्यालय हाथरस, अक्टूबर अंक 2017

गाँधी जी के शैक्षिक विचारों का दर्पण : नई शिक्षा नीति 2020

बीना नेगी चौधरी

शोध छात्रा - शिक्षा संकाय, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखंड)

सार-संक्षेप

यह सर्वविदित तथ्य है कि गाँधी जी को 'गीता' का सर्वाधिक पसंद थी। उनके विचारों में गीता की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। गाँधी जी ने भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार के ज्ञान को जीवन के लिए आवश्यक माना है। वे केवल राजनैतिक व्यक्ति नहीं थे। धर्म मर्मज्ञ, शैक्षिक चिंतक होने के साथ ही वे समाज सुधारक भी थे। गाँधी जी ने अंग्रेजों की तत्कालीन पुस्तकीय, सैद्धांतिक और परीक्षा प्रधान शिक्षा का विरोध किया। देशवासियों की परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं को देखते हुए गाँधी जी ने 1937 में एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना प्रस्तुत की जिसे बेसिक शिक्षा योजनाया बुनियादी शिक्षा या नई तालीम नामों से जाना जाता है। वे शिक्षा के माध्यम से बच्चे का सर्वांगीण विकास करना चाहते थे। सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहानुभूति, करुणा, साहस आदि मूल्यों के साथ - साथ व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करना (जीविकोपार्जन के लिए तैयार करना) उनकी शिक्षा के उद्देश्य थे। जो स्वंत्रतता प्राप्ति के 71 साल बाद भी पूरे नहीं हो पाए हैं। गाँधी जी की शिक्षा नीति के 81 साल बाद आई नई शिक्षा नीति 2020, गाँधी जी के शैक्षिक विचारों का प्रतिबिम्ब लगती है। प्रस्तुत आलेख नई शिक्षा नीति 2020 के सन्दर्भ में गाँधी जी के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता का अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द

बेसिक, बुनियादी शिक्षा, नई तालीम, शिक्षा नीति (एनईपी) 2020

सामान्य परिचय : शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। समाज में परिवर्तन के दो साधन हैं– प्राकृतिक और भौतिक। भौतिक साधनों में शिक्षा, परिवर्तन का सबसे बड़ा कारण है। समाज की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है। शिक्षा गतिशील प्रक्रिया है। समाज की संरचना और कार्य-प्रक्रियाओं में परिवर्तन होता रहता है। ये परिवर्तन समाज की प्रकृति के अनुसार या तो मंद गति से होते हैं या तीव्र गति से। शिक्षा, सामाजिक परिवर्तन करते हुए और शिक्षा इन परिवर्तनों को स्वीकार करती हुई आगे बढ़ती रहती है। अर्थात शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों आदि पर इन परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता है। हमारे देश में वैदिक कालीन शिक्षा पद्धित से लेकर आज तक सामाजिक परिवर्तनों के अनुरूप शिक्षा के स्वरुप में परिवर्तन हुआ है। वैदिक कालीन, बौद्ध कालीन और मुस्लिम कालीन शिक्षा धर्म प्रदान थी। ब्रिटिश काल में अंग्रेजों ने भारतीत शिक्षा को व्यर्थ बताते हुए यूरोपियन ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा को सर्वोत्तम बताया और भारतीयों के लिए अपने अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था की।

हमारे देश में शिक्षा में सुधार हेतु स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के पश्चात् समाज की बदलती

आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा में कई बदलाव किये जाते रहे हैं। गाँधी जी केवल साक्षरता को शिक्षा नहीं मानते थे। उनके अनुसार ''साक्षरता न तो शिक्षा का अंत है और न ही प्रारम्भ। यह केवल एक साधन है जिसके द्वारा पुरुष- स्त्री को केवल शिक्षित किया जा सकता है।'' गाँधी जी ने 3R (reading, writing, arithmetic) पढ़ना, लिखना और अंक ज्ञान की शिक्षा को, 3H (Head, hand, heart) हाथ, मस्तिष्क और हृदय में बदलने के लिए बेसिक शिक्षा का विचार दिया। 1986 के बाद नई शिक्षा नीति नहीं आई थी। परिवेश में नई शिक्षा नीति की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। 34 साल बाद केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा के. कस्तूरी रंगन की अध्यक्षता वाली नई शिक्षा नीति को 29 जुलाई 2020 में मंजूरी दी गयी। नई शिक्षा नीति का अध्ययन करने पर ऐसा ज्ञात हुआ कि इस शिक्षा नीति और गाँधी जी की नई तालीम में बहुत समानता है। इन्हीं बिंदुओं को नीचे स्पष्ट किया जा रहा है।

नई शिक्षा नीति के प्रावधान और गाँधी जी का शैक्षिक दर्शन :

शिक्षा के उद्देश्य : गाँधी जी की शिक्षा का उद्देश्य बच्चे का मानसिक, शारीरिक, नैतिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास करना था। जिसके लिए उन्होंने पाठ्यक्रम में सामान्य विषयों के साथ - साथ आचरण शिक्षा नैतिक शिक्षा, समाज सेवा पर भी बल दिया। शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 भी बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए उसके मानसिक, शारीरिक, नैतिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास पर बल दिया है।

अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा : गाँधी जी ने 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए सामान्य और निः शुल्क शिक्षा की बात की है। एनईपी 2020 ने शिक्षा के अधिकार को बनाये रखते हुए और शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु अनिवार्य और निः शुल्क शिक्षा की आयु को बढ़ाकर 14 से 18 वर्ष कर दिया है।

अनुदेशन मातृभाषा में : भाषा गाँधी जी का स्पष्ट मत था कि शिक्षा मात्रभाषा में ही दी जानी चाहिए। नई शिक्षा नीति भी शिक्षा को मातृभाषा में प्रदान करने पर जोर देती है।

व्यावसायिक शिक्षा : गाँधी जी शिक्षा द्वारा मनुष्य को स्वावलम्बी बनाना चाहते थे, उनका मत था कि यदि विद्यार्थी विद्यालय छोड़ता है तो वह इस योग्य हो कि अपनी रोजी रोटी कमा सके। उसे आजीविका के लिए किसी पर निर्भर न रहना पड़े। उनके ये विचार आज एनईपी 2020 में भी प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। जो सैद्धांतिक ज्ञान की बजाय व्यावहारिक और व्यावसायिक ज्ञान देने पर बल देता है और सभी पाठ्येतर विषयों, योग, लकड़ी का काम, बागवानी और बिजली के काम को विषयों के रूप में मानने पर जोर देता है। नई शिक्षा नीति 2020 में कहा गया है कि प्रत्येक बच्चे को बचपन से व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जाएगी।

पाठ्यक्रम चयन की स्वतंत्रता : गाँधी जी और नई शिक्षा नीति बच्चे को स्वयं की रूचि के अनुसार पाठ्यक्रम चुनने के लिए स्वतंत्रता की बात करते हैं। स्थानीय आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम पढ़ाये जाने या स्थानीय समुदाय की भागीदारी को प्रोत्साहित करने के प्रयास दोनों ही नीतियों में दिखाई देता है।

चरित्र निर्माण की शिक्षा : गाँधी जी विद्यालयों को चरित्र निर्माण की उद्योगशाला मानते थे। चरित्र निर्माण पर उन्होंने बहुत जोर दिया। एक अच्छे चरित्र में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, और निर्भयता का होना आवश्यक समझते थे। उनके अनुसार ''सभी ज्ञान का उद्देश्य उत्तम चरित्र का निर्माण होना चाहिए।'' नई शिक्षा नीति 2020 में भी विद्यार्थियों में बचपन से ही नैतिक, मानवीय और संवैधानिक मूल्यों जैसे सहानुभूति, दूसरों के लिए सम्मान, स्वच्छता, सेवा की भावना, सार्वजनिक संपत्ति के लिए सम्मान, वैज्ञानिक स्वभाव, जिम्मेदारी, समानता, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, सहानुभूति, करुणा, अहिंसा, भाईचारा, प्रेम, सहयोग और टीम वर्क, राष्ट्र प्रेम, पर्यावरण के प्रति प्रेम सिखाने की बात की है।

करके सीखना : NEP 2020 में बेसिक शिक्षा

नीति की तरह बच्चों के करके सीखना, अनुभव से सीखना की बात की गई है। ज्ञान के सृजन पर जोर दिया गया है। दोनों ही नीतियों में इस बात पर बल दिया गया है कि बच्चों को जो कुछ भी सिखाया जाये वास्तविक परिस्थितियों में, वास्तविक रूप से सिखाया जाये। विषयों और क्रियाओं को एकीकृत करके सिखाया जाये।

उपसंहार : उपरोक्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि गाँधी जी की बेसिक शिक्षा योजना की उस समय कितनी ही आलोचना क्यों न की गई हो, किसी भी कारण से वह विफल हो गयी हो लकिन उनके शिक्षा संबंधी विचार आज की परिस्थितियों में भी प्रासंगिक हैं। समाज की बदलती गतिशीलता के साथ, तकनीकी प्रगति के कारण NEP 2020 में हो सकता है आज कि परिस्थितियों के अनुसार कुछ नए परिवर्तन किये गए हो नए विषयों को जोड़ा गया हो, लेकिन इसे गाँधी जी के शैक्षिक विचारों से पृथक नहीं देखा जा सकता।

सन्दर्भ

लाल आरण् बी, (2004), *शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजशाहत्रीय सिद्धांत* (रस्तोगी पुब्लिकेशन्स), पृष्ठ 179-185

लाल और तोमर - (2010), *शिक्षा के दार्शनिक आधार* (आर लाल बुक डिपो), पृष्ठण् 227-228

https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrdf/iles/NEP_Final_English_0.pdf, accessed on 09 Feb.k~ 2022.

Understanding Rakthi Ragas: Importance of Sruti Analysis

Prof. Dr. Hamsini Nagendra
Research Guide
Department of Performing Arts,
Bangalore University

Deepashree S M
Research Scholar, Music
Department of Performing Arts,
Bangalore University

Abstract

*Raga, a pivotal concept of Indian music literally means an intricate combination of the Swara patterns embellished by **gamakas and anuswaras.** Gamakas are nothing but the ornamentations applied to the musical notes / **swaras** featuring in the ragas thereby giving them their unique identity; while anuswaras are the intermediate notes that assist in the process of this embellishment. The term **rakthi** means evocation of certain rasas or moods, which could be attained in the ragas by the application of proper **gamakas**. Hence rakthi ragas could be understood as the **gamaka-pradhana** ragas that are mainly dependent on the raga-swaroopa and not merely on the notes or scales. Any 2 ragas classified under the same **Mela/** parent might derive the same notes as that of the parent, but it is the proper application of gamakas that gives them the deserved uniqueness. The same is true for the ragas that share one or more notes in spite of being classified under different melas.*

***Sruti** is the smallest pitch difference or interval that a human ear can detect. The study of inherent srutis in ragas helps in decoding and understanding their identity. Gamakas have a very dear relationship with the srutis; for, the proportion that both really adhere to.*

This paper deals with the demonstration of select rakthi ragas that share one or more notes, while bringing out their identity by the analysis of their inherent srutis and their values.

Keywords

sruti; gamakas; raga; rakthi; frequency

The Raga concept is very unique and special to the Indian system of music. Raga literally means an intricate combination of the *Swara* (musical note) patterns ornamented by the characteristic oscillations or the *gamakas*. Gamakas or

the alankaras as they were previously termed, are the precise oscillations of various forms applied to a swara or a group of swaras, that contribute to determining the individuality of ragas. In the process of analysing a raga, it's the inherent *srutis* that are actually studied. Or in other words, the melodic individuality of ragas is very well demonstrated through analysis of the characteristic srutis.

Technical terms:

To have a better understanding of the topic, it is very essential to have a basic understanding of the technical terms involved.

N"ada/ Musical sound

A sound is a form of energy produced by the vibration of bodies and that which is perceivable by the ears. The sound that is made up of a single frequency or a combination of few correlated ones is very pleasing & melodious and hence is rightly termed as a musical sound or N"ada. (Varadarangan. 2002)

Sruti

The Sanskrit term 'sruti' is derived from the root '«sru' employed in the sense of 'to hear' (Gautam, 1988). The smallest pitch difference or interval that a trained human ear can detect could be hence defined as sruti. Srutis are the essential melodic units of a raga.

Swara/ Musical note

A musical sound of a definite frequency is Swara. The Sanskrit term 'svara' is derived from the root 'r"aj_r' used in the sense of 'to shine', with the prefix 'sva' meaning on its own. Hence 'Swara' could be understood as an entity that is capable of exhibiting its identity on its own. A group of srutis gives rise to the swaras.

In Indian music, we find a concept of *saptha swaras* or the 7 notes viz. *Shadja (S), Rishabha(R), Gandhara(G), Madhyama(M), Panchama(P), Daivatha (D) and Nishada(N).* These 7 are further broken down into 12 *swarasthanas* / frequency variations namely *Shadja(S), Suddha Rishabha(R1), Chatushruti Rishabha (R2), sadharana Gandhara (G2), Antara Gandhara (G3), Suddha Madhyama (M1), Prati Madhyama (M2), Panchama(P), Suddha Daivatha(D1), Chatushruti Daivatha (D2), Kaishiki Nishada (N2) and Kakali Nishada (N3)* for practical purposes. To sum it up, sruti is the lowest level, a swara could be broken down to.

Gamakas

The term 'Gamaka' has its origin in the Sanskrit root 'gam' which means to move. So, the concept of gamaka comes into existence when the oscillation on a swara starting from its own sruti moves, to take the support of another sruti of a neighboring swara thereby creating a musical effect (Gautam, 1988). This movement between the srutis of 2 swaras is significant, as it correctly connotes the term gamaka. In simpler words, Gamakas are nothing but the ornamentations or embellishments in the form of oscillations applied to the swaras featured in a raga, thereby giving the raga its unique identity.

Rakthi Raga

A specific combination of notes is termed

a raga, and the representation of notes featuring therein, a scale. Rakthi ragas are a sub-division of ragas.

Ragas that exhibit their identity on the basis of some characteristic swara-combinations and the specific gamakas, and not merely on the scales are called rakthi ragas. Gamakas form a vital component in these types of ragas.

Raga analysis

Ragas could be broadly classified into 'scale-based' and '*bhava*-based' ragas. While the former category depends on the swaras featuring in the scale of ragas to establish their identity, the latter is capable of declaring its identity by mere mention of certain gamaka-rich patterns. This second category of ragas comes under the rakthi raga heading and is the focus of this article. Each rakthi raga is characterised by a particular combination of swaras. Its scale only gives an outline/ skeleton of the broad picture. But practically, this has its own specific movements/ *sancharas* and the apt gamakas.

The following points are to be kept in mind while doing the raga analysis:

- A pitch/ sruti of a note is directly proportional to the frequency in which it vibrates; that is to say, a swara/ note of a higher frequency has a higher pitch, and that with a lower frequency has a lower pitch.
- A swara with a higher/ lower sruti than a given swara is said to be above/ below that note respectively. (Varadarangan, 2002)

Demonstration

The ragas 'Saveri' and 'Todi' are some of the very ancient and popular rakthi ragas and are considered one of the finest in the very category. They are known for their unique, intricate sancharas and individuality; thanks to the inherent gamakas .

Raga scales

Saveri:

S **R1** **M1** P **D1** S - S N3 **D1** P **M1** G3 **R1** S

Todi:

S **R1** G2 **M1** P **D1** N2 S - S N2 **D1** P **M1** G2 **R1** S

(Satyanarayana, 2017)

Sruti Analysis

Apart from being the top class of rakthi ragas to choose from, another reason for considering these ragas for demonstration is that they have 5 of the 7 notes in common. From the scales given above, it is evident that they both share the variable notes (*vikrti swaras*) R1, M1, and D1 apart from the constants S and P. But the similarity ends there. If one listens to the aural representation of these ragas, it is very well evident that the above-said notes sound in a very unique manner in the respective ragas, in spite of being the same. And interestingly this uniqueness itself gives the much-required individuality to these ragas.

There is a saying, "Picture is worth a thousand words ". In order to prove, what has been explained so far, a graphical representation of the audio of the scales of the two ragas has been taken up for demonstration.

Following is a graphical representation of the ragas demonstrating the frequency variations:

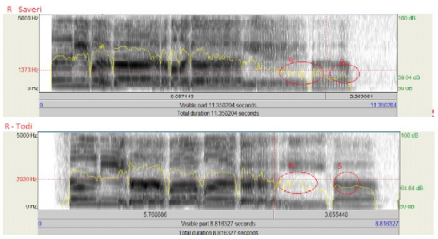

Fig 1: R1 representation (PC: PRAAT software)

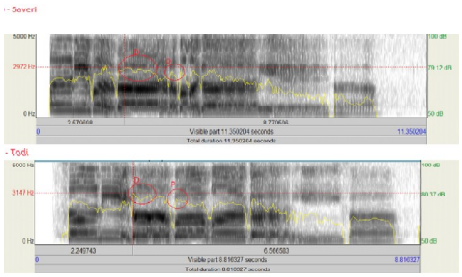

Fig 2: D1 representation (PC: PRAAT software)

Here only the notes R1 and D1 (out of the 5 common notes) are taken up for demonstration.

Observations

➢ R1 analysis

- In Fig.1 an attempt has been made to represent the frequencies of the note R1 in both the ragas and also their pitch differences with respect to the note S.
- The characteristic of the note R1 in the raga Saveri is such that it vibrates at a frequency very much closer to its adjacent note S. Or in other words, the note R1 stays most of its time on the note S before reaching its actual position
- The note R1 in Saveri vibrates at a frequency of 1373Hz compared to its counterpart in Todi which vibrates at a much higher frequency of 2030 Hz
- The sruti or the relative pitch difference between the notes R1 and S in Todi is more compared to that in Saveri.

➢ D1 analysis

- Fig.2 represents the D1 frequency difference in the ragas Saveri and Todi.
- The notes R1 and D1 are correlated, which is evident from the fact that the note D1 in Saveri vibrates at a lower frequency than that of its counterpart in Todi as in the case of R1.
- D1 in Saveri vibrates at a frequency of 2972Hz and at 3147Hz in Todi. As a result, the pitch difference between the notes D1 and its adjacent note P is less in Saveri compared to that in Todi.

From the above study, it is very much evident that though variables appearing in the two ragas are same it is the sruti analysis or the calculation of frequency at which the note vibrates, that helps in bringing out their subtle differences. In other words, it is the study of inherent srutis in the ragas that helps in decoding and understanding their identity.

Conclusion

Our Indian music, especially the Karnatak music is built mainly on the pillars called gamakas. They occupy such a strong position that our raga system which is built on top of it has survived the test of time while giving identity and richness to our music. Karnatak music is a mine of plethora of ragas, all unique and different in their own aspects;

interestingly produced out of a finite number of notes/swaras.

The sruti analysis done on the notes of the ragas helps in demonstrating their uniqueness in terms of their frequency variations. But practically, it is the gamakas that play the actual role; it is the proportion of oscillations that matters. It is very important to use the notes / swaras with the precise application of gamakas in the delineation of ragas. On a final note, it would be apt to say that any two ragas might share the same notes, but it is the correct application of gamakas, that gives them their deserved uniqueness.

References

Gautam, M. R. (1988). *Evolution of Raga and Tala in Indian Music*. (1st ed.). 164-172. Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd.

Satyanarayana, N. C. (February 2017). *Raagas of Indian Music. (3rd ed.)*. 325-326, 373-378. Nookala Chinna Satyanarayana

Varadarangan, K. (2002). *Srutis and Srutibheda*. (1st ed.). 1-9. Lalitha Prakashana

Ramanathan, H. & Ramanathan, N. Etymological Definitions and Technical Definitions of Musical Terms. *Musicresearchlibrary.net*

तिलका माँझी विश्वविद्यालय 'संगीत' विभाग (भागलपुर)
संगीत की उत्पत्ति एवं मानव जीवन पर इसका प्रभाव

डॉ. सुनील कुमार तिवारी
शोध निदेशक, विभागाध्यक्ष
संगीत विभाग
ति.माँ.भा. विश्वविद्यालय

सोनिका कुमारी
शोध छात्रा

डॉ. श्वेता पाठक
सह शोध निदेशक, मनोविज्ञान विभाग
टी.एन.बी. कॉलेज, भागलपुर
ति.माँ.भा. विश्वविद्यालय

सार-संक्षेप

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का उद्देश्य, संगीत की उत्पत्ति किस प्रकार से हुई तथा हमारे देश हमारे धर्म से संगीत किस प्रकार से जुड़ा हुआ है तथा सृष्टि के आरंभ के साथ-साथ संगीत भी किस प्रकार से पालित-पोषित हुआ एवं मानव जीवन में संगीत किस प्रकार से समाहित है और मानव के कल्याण में संगीत किस प्रकार से अपनी भूमिका अदा कर रहा है तथा संगीत की कितनी आवश्यकता हमारे मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में है इन सभी चीजों का उल्लेख प्रस्तुत शोध-प्रबंध में किया गया है, आज के समय में संगीत इस प्रकार से हमारे लिए सहायक तत्व के रूप में उभर कर सामने आया है कि यह सिर्फ आज हमारे लिए मनोरंजन का साधन नहीं है बल्कि मानसिक रूप से अस्वस्थ लोगों को संगीत के माध्यम से ठीक किया जा रहा है, जन्म से लेकर मृत्यु तक संगीत कदम-कदम पर हमारे साथ है तथा मोक्ष प्राप्ति का साधन भी संगीत को माना जाता है संगीत हमें आध्यात्म से जोड़ता है तथा आत्मा से परमात्मा का मिलन संगीत के माध्यम से ही संभव है, अतः प्रस्तुत शोध-प्रबंध यह बताता है कि संगीत किस प्रकार से हमारे जीवन से जुड़ा हुआ है एवं हमें संगीत के महत्व को समझकर हमेशा हमेशा के लिए सभी के हृदय में संगीत को जीवित रखना है।

बीज शब्द

मानसिक स्वास्थ्य, संगीत का प्रभाव, भागलपुर

भारत चूँकि एक धर्म प्रधान देश है, इसीलिए यहाँ नाना प्रकार के मत-मतान्तर, धर्म, मजहब, सम्प्रदाय, मठ, आदि के ठाट हैं, सबकी अपनी-अपनी रीति-नीति है और अपने-अपने सिद्धान्त और दृष्टिकोण हैं बहुधा एक पंथ या धर्म के दूसरे पंथ या धर्म को मानने वालों से नहीं पटती, परमलक्ष्य एक होते हुए भी चलने के रास्ते और परम तत्व को प्राप्त करने के उपायों में सभी में पर्याप्त मत-भेद और विचार-पार्थव्य पाया जाता है इसीलिए सनातन, जैन, बौद्ध, ईसाई, शुद्र पुत्र आदि मुख्य धर्म अनेकानेक शाखा प्रशाखाओं

में विभक्त होते गए और उनके संचालक एवं अनुयायी गण अपने-अपने धर्म को ही सर्वोच्च और प्रतिनिधि मूलक मानने का आग्रह रखते गए, यह संसार कैसे बना मनुष्य का जन्म कब और कैसे हुआ, इस अतीत के बारे में आज तक कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिला, मानव के अभ्युदय का इतिहास जितना पुराना व विशाल है उतना ही विशाल इतिहास है सभ्यता और संस्कृति का, किसी भी विषय के मूल को जाने बिना उसका ज्ञान अधूरा होता है।

भारत में संगीत की सर्वप्रथम व्युत्पत्ति हजारों वर्ष पूर्व वैदिककाल में हुई, वेदों के ऋचाओं का अनुसरण श्रुतियाँ करती हैं इन श्रुतियों को गेयता के साथ प्रस्तुत करने से ही संगीत की रचना हुई, ''सामवेद'' के मन्त्रों को बड़ी सहजता के साथ गाया जाता है, आठवीं शताब्दी में रचित 'छान्दोग्य उपनिषद' में शंख, वीणा और वंशी के साथ वेद की ऋचाओं को गान रूप में प्रस्तुत करने का वर्णन मिलता है उस समय के गायकों को शिक्षा अर्थात ज्ञान और छंद अर्थात लय का पूरा अभ्यास होता था सामवेद में संगीत के सप्त स्वरों- क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र और अतिस्वर का विस्तार के साथ उल्लेख मिलता है, वर्तमानकाल के सप्त स्वरों- षडज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद (सा, रे, ग, म, प, ध, नि) से जोड़ा जा सकता है सामवेद में ही सबसे पहले बंसी या बांसुरी का वर्णन मिलता है, बांसुरी संगीत के सप्त स्वरों की एक साथ प्रस्तुति का सर्वोत्तम वाद्ययंत्र है वैदिक युग के उपरान्त भारत में संगीत का वर्णन आगे चलकर वाल्मीकि रामायण में मिलता है, वीणा उस कालखण्ड का सर्वाधिक प्रचलित वाद्य माना जाता है रामायण में नारद वीणा, सरस्वती वीणा के साथ ही गंधर्वों के 'सोम रस' की प्रारंभिक अवस्था का विवरण मिलता है।

तीसरी शताब्दी में संगीत- नृत्य, नाट्य, वाद्य, गायन की उच्च कोटि की प्रस्तुति भरतमुनि द्वारा रचित 'नाट्यशास्त्र' में मिलती है इसमें 'दत्तिलम' का विस्तार से वर्णन मिलता है यह गंधर्व संगीत पर प्रकाश डालता है और स्वर के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन मिलता है, गुप्त काल में महाकवि कालीदास ने अपने ग्रंथों में वीणा, मृदंग, वंशी, शंख का उल्लेख किया है, बारहवीं सदी के अंतिम दशक में रचित ग्रन्थ 'संगीत मकरंद' में सर्वप्रथम प्राचीन संगीत को अधुनातन(आधुनिक) रूपों में बताया गया है, तेरहवीं शताब्दी में शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' की रचना की जिसमें उन्होंने संगीत के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत किया, मध्य काल में संगीत के वाद्य यंत्रों का खूब विकास हुआ, उस समय सितार, सारंगी, तबला का प्रयोग खूब बढ़ा और रागों को भक्ति एवं उपासना के गीतों से जोड़ा गया तानसेन, नानक, कबीर, विद्यापति, जयदेव, मीराबाई इत्यादि ने गायकी के साथ वादन का उत्तम संयोग प्रस्तुत किया, ग्वालियर के राजा मान सिंह तोमर का मध्ययुगीन भारतीय संगीत में बड़ा योगदान है उनके ही समय में सर्वप्रथम संगीत के घरानों की स्थापना हुई, संगीत का 'ग्वालियर घराना' सबसे पहला घराना बना, भारत का संगीत दो प्रधान रूपों में प्रचलित है- शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत, शास्त्रीय संगीत का अपना एक शास्त्र होता है उसके नियम उपनियम होते हैं इन नियमों से बंधा संगीत आगे बढ़ता है गायन, वादन और नर्तन थोड़े बहुत अंतर के साथ के ही नियम के अंतर्गत होते हैं, बहुत से विद्वानों का तो ये मानना है कि शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति लोक संगीत से ही हुई है इसका प्रमाण यह है कि लोक संगीत का प्रभाव शास्त्रीय संगीत पर स्पष्टतः परिलक्षित होता है, लोक संगीत लोक गीतों की आत्मा है भारतीय लोक जीवन का सुन्दरतम प्रतिबिम्ब लोक गीत और लोक संगीत में दिखाई पड़ता है लोक गीत सरल, सुंदर, अनुभूतिमय और संगीतमय होते हैं संगीत के बिना लोक जीवन प्राण रहित शरीर के समान है, भारत लोक संगीत ग्रामीणांचल, वनांचल और गिरअंचलों में पसरा पड़ा है जितने विविध क्षेत्र उससे भी अधिक तरह के नृत्य उतने ही तरह के गीत और वाद्ययंत्र होते हैं, भारत के लोकगीतों में शास्त्रीय गीतों ध्रुपद, ख्याल, तराना, टप्पा, ठुमरी, गजल इत्यादि की तरह कसा हुआ विधान नहीं होता अपितु लोक जीवन की तरह उनमें उन्मुक्ता और स्वभावगत स्वतंत्रता होती है, भारत का लोक जीवन उत्सवों एवं तीज-त्योहारों से भरा पड़ा है जन्म से लेकर मृत्यु तक उत्सव मनाये जाते हैं लगभग हर महीने में कोई न कोई त्यौहार होता ही है इसीलिए हमारा समाज हर पल प्रसन्नता

के क्षणों में जीता है, अपनी उत्सव प्रियता को वह गीत-संगीत के माध्यम से अभिव्यक्त करता है, संस्कृति किसी भी सभ्य समाज का प्राण तत्व है जिसके अभाव में सभ्यता के विकास की कल्पना कर पाना असंभव है लोक जीवन में छोटी से छोटी क्रिया भी संस्कृति की परिधि में आती है।

मानव-जीवन का संगीत से सनातन संबंध है उसके माध्यम से ही वह अपने शोक-हास्य, वात्सल्य-प्रीति, राग-विराग के समस्त भावों की अभिव्यक्ति करता आया है, भाषा का ज्ञान न होने पर भी किसी भाषा के गीत की धुन ही उसके अर्थ-बोध में सहायक होती है, शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति के विषय में यह मत है कि शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति लोक संगीत से ही हुई है हमारे देश में प्रारम्भ से ही संगीत की दो प्रणालियाँ रही है- शास्त्रीय संगीत एवं लोक संगीत, शास्त्रीय संगीत शास्त्र के बंधन में बंध गया, लोक संगीत का जो रूप आज पाया जाता है यह इतना ही पुराना होगा जितनी पुरानी हमारी आजकल की बोल-चाल की भाषा, पूरी मानव प्रजाति के लिए संगीत भगवान द्वारा दिया गया उपहार है यह आत्मा की चाभी है जो हमें मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य बनाने में मदद करता है संगीत वो लय है जो बीते समय के पसंदीदा स्थानों व्यक्तियों व उत्सवों आदि की सभी अच्छी यादों और साकारात्मक विचारों को लाता है, संगीत बहुत ही मधुर और वैश्विक भाषा है जो सब कुछ शान्ति से बताता है और हमारी सभी समस्याओं को हमसे बिना पूछे खत्म कर देता है संगीत वो शक्तिशाली यंत्र है जो हमारी ध्यान की शक्ति को बढ़ाता है और हमेशा हमें आगे बढ़ने में मदद करता है और हम अपने जीवन में सफलता प्राप्त करते हैं, जीवन में खुश और व्यस्त रहने के लिए संगीत सबसे अच्छा और बेहतर तरीका है इस व्यस्त भीड़-भाड़ दुनिया में जहाँ हर कोई हर एक समय हानि पहुँचाना चाहता है ऐसे कठिन समय में संगीत हमें खुश रखता है और हमारे मस्तिष्क को राहत प्रदान करने में मदद करता है,

संगीत हमारे जीवन में आंतरिक और आवश्यक भूमिका निभाता है, संगीत विभिन्न प्रकार का होता है जिनका हम अपनी आवश्यकता और जरुरत के अनुसार आनंद ले सकते हैं हम में से कुछ लोग पढ़ाई करते हुए कुछ इनडोर या आउट डोर खेल करते हुए संगीत सुनना पसंद करते हैं फिर भी सभी अपने खाली समय में आनंद और मस्तिष्क के आराम के लिए संगीत सुनना पसंद करते हैं, धीमी आवाज में संगीत सुनने से हमें आराम और शांति सा महसूस होता है और संगीत हमें आत्मिक और मानसिक स्वस्थता प्रदान करता है यह जीवन भर हमारी मानसिक और भावनात्मक समस्याओं से लड़ने में मदद करता है, संगीत कला वह श्रव्य ललित कला है जिसमें संगीतज्ञ अपने मनोगत भावों, कल्पनाओं और बुद्धिगत विचारों तथा अनुभूतियों को स्वर, लय और ताल के माध्यम से व्यक्त करता है संगीत कला के द्वारा संगीतज्ञ भाव चित्र उपस्थित करता है यह अपने मनोगत भावों को मूर्तिमान बना देता है, संगीत आध्यात्मिक मानसिक और शारीरिक शक्ति प्रदान करने के साथ ही मनुष्य में आत्मविश्वास विकसित करता है संगीत ध्यान की तरह है यदि पूरी लगन और श्रद्धा के साथ इसका अभ्यास किया जाए तो यह मानसिक स्वास्थ्य और एकाग्रता को सुधारता है, हम संगीत से जुड़े सत्य को नजर अंदाज नहीं कर सकते यह बहुत ही शक्तिशाली और क्षमता वान है जो सभी की भावनाओं को उजागर करता है,

मानव जीवन पर संगीत का प्रभाव-

संगीत और मानव जीवन का संबंध नैसर्गिक और शाश्वत है, जीवन संगीत के साथ आरंभ हुआ, संगीत के साथ पलित-पोषित हुआ और उसी के साथ उसका अंत भी होगा, इस कथन में तनिक भी अतिश्योक्ति नहीं है, जीवन जितना व्यापक और जटिल है संगीत भी उतना ही, जीवन के नवरसों की अभिव्यक्ति की क्षमता संगीत में है, संगीत के सरल सुंदर और सुबोध स्वरूप की ओर हम स्वभावतः विशेष आदृष्ट हुए हैं किन्तु उसका दूसरा पक्ष भी उतना ही सत्य और बलवान है, आधुनिक फिल्मी संगीत के प्रयोगों से यह संकेत मिलता है कि संगीत के द्वारा भयानक और वीभत्स रसों को और भी अधिक भयानक और वीभत्स बनाया जा सकता है,

संगीत के इस भयानक रूप की असुन्दरता में भी उसी परम सौंदर्य की झांकी दिखती है यदि ऐसा न होता तो हम रोने में भी सुख का अनुभव क्यों करते! दुखांत चित्र को हम जानते हुए भी क्यों देखना चाहते? इसीलिए कि वे हमारे जीवन के अंग हैं, जीवन पूर्ण है और उस पूर्णता में जो कुछ भी सुंदर अथवा असुंदर हमें मिलता है वह सभी सत्य है कल्याणमय है और वास्तव में सुंदर भी है।

आदि मानव ने अपनी आंतरिक इच्छाओं और भावनाओं की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम स्वर द्वारा की थी तब उसके पास न भाषा थी और न अर्थ की प्रतीति, उसके मुख से अनायास ही स्वर ध्वनित होने लगे थे प्रकृति ने भी तो स्वरों के सहारे ही अपना सुख-दुःख एवं अपनी अनुभूतियों को हमारे सम्मुख प्रकट किया है, आज भी हम आवाज के चढ़ाव-उतार, लय के हेर-फेर और हाव-भाव अथवा विविध भंगिमाओं द्वारा ही तो अपने तीव्रतम और सूक्ष्मतम भावों को व्यक्त करते हैं जिन्हें प्रकट करने में भाषा अपने को असमर्थ पाती है, ऐसी है संगीत की व्यापकता उसकी सर्वशक्तिमत्तता और श्रेष्ठता, तभी तो हमें स्वीकार करना पड़ता है कि जीवन ही संगीत है और संगीत ही जीवन है।

यह तो हुआ संगीत का जीवन के साथ सामान्य संबंध, हम जीवन के प्रत्येक पहलू पर विचार करेंगे तो हमें पता चलेगा कि विश्व में मानव-जीवन के विकास में संगीत-साधना के क्रमिक विकास और प्रसार ने कितनी अधिक मात्रा में सहायता पहुंचाई है, जीवन तन मन और आत्मा का योग है और प्रत्येक प्राणी की आत्मा परमात्मा तत्व के द्वारा एक-दूसरे से जुड़ी हुई है अतः वही जीवन सत्य है जिसमें एक का जीवन जन-जीवन के साथ भी जुड़ा चले, यह कार्य संगीत के माध्यम से ही सफलता व सरलता से संपादित हो सकता है क्योंकि संगीत आत्मा का व्यापार है, वह आत्मा की पुकार है जो प्रत्येक प्राणी के तन और मन को झंकृत करते हुए अंत में सम्पूर्ण जन-मन की एकता का कारण बन जाती है तब हमें विश्वव्यापी संगीत में विश्वजीवन अथवा विश्वात्मा का स्पष्ट प्रतिबिम्ब दिखने लगता है।

मानव-जीवन के तो प्रत्येक क्षण में संगीत भरा पड़ा है, शिशु के रोने में स्वरों का उतार-चढाव है उसकी हंसी में भी संगीत है उसके हाव-भाव में नृत्य की असंख्य मुद्राएं भरी पड़ी है, लोरियों के स्वरों में शिशु को सुलाने की शक्ति है, बालपन में खेलकूद के गीत, कवायद के गीत, राष्ट्रीय गान और इसी श्रेणी के अनेकों अनेक क्रियाशील गीतों का महत्व रहता है युवावस्था में सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के लिए संगीत के बराबर किसी वस्तु में भी शक्ति नहीं है, थके हुए किसानों व मजदूरों को संगीत से ही सांत्वना और नवोत्साह प्राप्त होता है, भारी बोझ उठाने या ढोने में लय और स्वर के प्रभावशाली प्रयोग कितनी सहायता पहुंचाते हैं। लोकगीतों ने तो लोकजीवन का निर्माण ही किया है गाँव वालों का तो भोजन और प्राण ही संगीत है नागरिक जीवन में संगीत के शास्त्रीय रूप की साधना भी होती है, मनोरंजन का विषय तो वह है ही साथ ही साथ कितने ही प्राणी उसके द्वारा जीविकोपार्जन भी कर रहे हैं, संगीत इस लोक को तो सार्थक करता ही है पर साथ ही वह मोक्ष प्राप्ति का भी साधन है संकीर्तन-भजन संगीत के ही रूप हैं। भारतीय इतिहास में जितने भी महान संगीतज्ञ हुए हैं वे सभी संत थे योगी थे अथवा भक्त थे, तभी तो उनमें यह शक्ति थी कि संगीत द्वारा पशुओं को मोहित कर लें मेघ को बरसा दें और पत्थर को पिघला दें, आज भी अच्छे गायकों या वादकों की कमी नहीं परन्तु कमी है संगीत के ईश्वर के साथ संबंध जोड़ने की, वह संगीत जो संगीतज्ञ की आत्मा को परमात्मा के सहचर्य का अनुभव न कराए, वह विश्वव्यापी और अखंड शक्तिशाली कैसे हो सकता है? सत्य यही है कि संगीत जीवन के हर अंग में सहयोग देता है वह विश्व के हर प्राणी को सांत्वना और शांति देता है, जड़ प्रकृति को भी सुंदर और आकर्षक बनाता है, मानव को स्थूल भोजन भी देता है और मानसिक भोजन भी, मानव-हृदय की गहराईओं में जो सूक्ष्मतम भावनाएं-संवेदनाएं और अनुभूतियाँ रहती हैं उन्हें प्रकट करने का सामर्थ्य संगीत में ही है। संगीत मानवता का पाठ पढ़ाता है असभ्य को सभ्यता का और संकीर्ण हृदय रखने वाले को विश्व-बंधुत्व का सन्देश देता है, संगीत समीर के शीतल झोंके, हृदय

की कलुषता, विकृत वासनाओं की संकीर्णता तथा तामसी एवं आसुरी भावनाओं का समूल विनाश कर आत्मा को निश्चल तथा पवित्र बना देता है, शास्त्रों में संगीत के विषय में कहा गया है-

ज्ञानं कोटि गुणं ध्यानं, ध्यानं कोटि गुणं स्त्रोंत,
स्त्रोत कोटि गुणं जपं, जपं कोटि गुणम गानं,

अर्थात ज्ञान, स्रोत, ध्यान, जप, तप इन सभी से बढ़कर "गायन" है, क्योंकि गायन से परे कुछ नहीं।

संगीत की महानता स्वीकार करते हुए महान अंग्रेजी कवि तथा नाटककार शेक्सपियर कहता है-

"The man who hath no music in himself or is not moved by the conchord of sweet is fit for treason, strategems and spoils; let no such man be trusted."

अर्थात जिस मनुष्य में गायन के प्रति रूचि नहीं, जो इसके मधुर स्वरों से मोहित नहीं होता वह पतित, विश्वासघाती एवं आत्मद्रोही है और उसका हृदय अंधकारमय रात्रि से भी भयंकर है, संक्षेप में दार्शनिक दृष्टि से देखा जाए तो भी संगीत एक महत्वपूर्ण ललित कला है क्योंकि हर एक कला का लक्ष्य आत्म साक्षात्कार है, आत्म साक्षात्कार के लिए संगीत एक महत्वपूर्ण सहायभूत तत्व है, विश्व के अंतिम तत्व को हम संगीत के रूप में देखते हैं, सभी तरह के आनंद संगीत से प्राप्त होकर जीवन आनंदमय बनता है तथा संगीत मनुष्य को उच्चतर भावों के लिए प्रेरित करता है एवं मानव जीवन की अद्भुद प्रेरणा संगीत में निहित है।

निष्कर्ष एवं उद्देश्य

संगीत की परिभाषा एवं मानव जीवन में उसका महत्व असीमित है जिसे अपनी शब्दों एवं कलमों से उतार पाना नामुमकिन है, क्योंकि जो चीज कण-कण क्षण-क्षण में विद्यमान हो उसे सीमित रूप दे पाना मुश्किल होता है और संगीत तो हमारे जीवन के प्रारम्भ से लेकर जीवन के अंत तक हमारे साथ चलता है अतः अंत में आत्मा का परमात्मा से मिलन भी संगीत द्वारा सरलता से संभव होता है।

हम जबतक आधुनिक युग में जीवन के स्वस्थ रूप को नहीं भर देंगे तबतक विश्व का कल्याण नहीं हो सकता, आज के युग में चारों ओर संदेह, निराशा, भय, द्वेष, अन्याय और युद्ध का अन्धकार फैला हुआ है, इस अन्धकार को संगीत का प्रकाश ही मिटा सकता है वही सम्पूर्ण विश्व में एक आत्मा का सन्देश दे सकता है वही एक राष्ट्र, एक जाति अथवा एक ही धर्म की शिक्षा समस्त राष्ट्रों को दे सकता है एवं संगीत के माध्यम से ही शांति और प्रेम का पाठ पढ़ा जा सकता है वह सभी के मन हृदय को एक सूत्र में पिरोकर विश्व की एकता का कारण बनेगा, संगीत हमें उस परम आनंद की अनुभूति करा सकता है जिसके सन्मुख धन, भूमि अथवा देश आदि की प्राप्ति के लिए झगड़ना युद्ध करना व्यर्थ ही नहीं बल्कि मानवता का घातक समझने लगेंगे।

अतः संगीत से पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए हमें संगीत-विचारकों की आवश्यकता है और यह तभी संभव है जब हम उच्च कोटि की संगीत शिक्षा पढ़े-लिखे विद्यार्थियों को देंगे इसीलिए संगीत के अध्ययन-अध्यापन एवं प्रचार-प्रसार का कार्य जोरों-शोरों से चालू किया जाना चाहिए।

संदर्भ-सूचि

1. भारतीय संगीत में निबंध, डॉ. सुभद्रा चौधरी, द्वितीय संस्करण, राधा पब्लिकेशन्स, दरियागंज, नई दिल्ली-2004.
2. हिन्दुस्तानी संगीत में साहित्य, डॉ. ओजेश प्रताप सिंह, प्रथम संस्करण, ईशान प्रकाशन, दिल्ली-2004.
3. भारतीय संगीत का इतिहास, शरदचंद्र परांजपे, द्वितीय संस्करण-1985, चौखम्बा विद्याभवन, चौक वाराणसी-221001(उ.प्र.).
4. भारतीय संगीतरू वैज्ञानिक विश्लेषण, प्रोद्व स्वतंत्र शर्मा, अनुभव पब्लिशिंग हॉउस, प्रयागराज-2010.
5. सहसरस- डॉ. प्रेमलता शर्मा, प्रथम संस्करण, संगीत नाटक अकादमी, रवीन्द्र भवन, फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली-1992.
6. संगीत और जीवन, महेशनारायण सक्सेना (संगीत-भैरव ठाठ अंक पत्रिका)-2000.
7. धरती गाती है, देवेन्द्र सत्यार्थी-2010.

Improvisatory Elements and Ornamentations

Prof. Ojesh Pratap Singh
Department of Music
University of Delhi

Bhavik Mankad
Research Scholar
Department of Music, University of Delhi

Abstract

Khayal, the most popular form of Hindustani Classical Music in present times is represented by various pedagogical lineages that differ in subtle aesthetic principles and interpretations. The improvisation within the form sees the use of several embellishments. While these ornamentations that define Khayal as a form remain identical across such traditions, also known as 'Gharana'-s, their proportion varies across the different styles based on the musical ideas each respective tradition was crafted upon. Eight such standard elements or 'Ang'-s of elaboration are identified, known as 'Ashtang'. Since these improvisatory mechanisms form the very identity of Khayal in general, their usage is inevitable in each Gharana.

Key Words

Gharana, Ashtang, qualitative, proportion, ornamentations, stratification.

Among the many forms of Hindustani Classical Music, Khayal is the most popular among performers and audiences in present times. Many historians and musicologists attribute the origin of Khayal to Hazrat Amir Khusrao, the famous poet in the court of Sultan Alauddin Khilji of the 13th century. However, Thakur Jaidev Singh (in Mukherjee, 2006), a noted scholar, opined that Khayal was neither imported from Persia, nor was it a brainchild of Amir Khusrao. He stated that a style similar to Khayal existed in India from around 7th-8th century and was a natural extension of Sadharan Geeti which used exquisite features of all the styles prevalent during that period. Plentiful use of ornamentations like Gamak-s, Khatka, Murkee, etc. in Sadharan Geeti led to the evolution of Khayal over a period of time.[1]

The development of modern style of Khayal singing is believed to be around the period of later Mughals, i.e., mid-18th century CE. The court of Mughal Emperor Muhammad Shah 'Rangeela' (1719-1748) boasted of two noted composers, Niyamat Khan 'Sadarang' and his nephew Feroze Khan 'Adarang'. It is unclear as to what style of music the duo practiced, but their compositions, mainly

Khayal-s, are immensely popular.

Concept of Gharana:

Practitioners of Hindustani Music, over the years, have had stylistic differences in presentation of their art. These variations are based on the subtle differences in their aesthetic approaches, making them unique and sound different from each other, even within a single genre or form. The principles pertaining to the form remain more-or-less common across the styles, but the treatment differs. Dhrupad, the oldest form of Hindustani Music, has had four Bani-s (Bani: lit. way of talking), namely Dagar Bani, Nauhar Bani, Khandar Bani and Gobarhari Bani. Thumri, similarly, has three basic styles, namely Purbi (from Benaras), Lucknowi and Punjabi.

Pandit Deepak Raja, a renowned musicologist, explains the concept of Gharana as below:

i) **Grand tradition**: A representation of the common features and factors that have been generally accepted, such as the principles of Raga-s, Taal-s and compositions. It also deals with architectural elements and designs like Alap, Taan-s, etc. that give Khayal its unique identity and qualitatively define Khayal as a form, thereby differentiating it from other forms.

ii) **Group tradition:** Pertains to the stylistic differences that arise out of individual approaches and interpretations to certain aspects of the vast grand tradition, creating something that is aesthetically unique. These stylistic variations, once accepted by the discerning cognoscenti, acquire a following. Successive generations of this style progressively add to the aesthetic coherence, making it distinct. This style that is distinct from other such collective wisdoms becomes known as a 'Gharana'.[2]

Gharana literally means family or clan. In Hindustani Classical Music, diverse musical styles with different sets of aesthetic values represented by pedagogy of musicians across generations become known as Gharana-s.

Senior exponent of Agra Gharana, Pandit Arun Kashalkar explains the concept of Gharana-s, "The differences can arise out of an individual's nature, psychology, liking, intellectual capabilities, nature, texture of their voices, etc. However, for the development of an intellect or liking, a basic exposure to the concerned form is essential. Childhood influences run deep, direct the line of thinking and condition the intellectual capabilities of an individual."

"If a musical thought of an individual is accepted by the musical community, that thought starts getting a following and gradually evolves into a principle or norm. Unless the principle is acceptable to the musical community, the definitions put forth will hold no good. These principles are refined over time and become a tradition or 'Gharana'. Since they have been accepted by the musical community, no tradition can be deemed unaccountable or unworthy. One must understand the goodness and the value it adds to the richness of music on a whole."

"Also, language is the basic means for communication for humans. Even though one can communicate through

gestures and body language, the need for speech arises for a clearer medium of expressing thoughts. In music, Sur becomes the prime medium for communication. Various ornamentations of notes, like Meend, Soot, Gamak, etc. enhance the ability to express emotions in a better way. Meaningless sounding phrases and syllables like 'Tom', 'Tana', 'Ri', 'Daani' also become a medium to express musical ideas. This becomes a language that the artist and the audiences understand. The differences within these musical languages gradually evolve into identities of different Gharana-s."

"Thus, Gharana-s are basically different musical designs, coming forth through the intellect of pioneers, developed through their long-term learning. Every Gharana is a discipline in its own right. They have certain rules and norms to be followed. Since art (and music) is ever changing, ever evolving, there can be no controlling authority to standardize the practices. Hence, while one develops a style of music, one must set certain rules and principles for oneself to make it sound unique. If the style evolves into a tradition or a Gharana, this would be the line of principles upon which it will be based. However, it is imperative to understand that the rules and norms followed in a particular Gharana are not necessarily acceptable in the same way to other traditions."

He continues, "Based on general principles of a form, there could be a pioneer Gharana, which later bifurcated into various branches based on an individual's liking, intellectual understanding, nature of the voice, etc. This is akin to a joint family living in a big mansion. As the family expands, ideologies and line of thought change and a need of separate spaces arise. Similarly, the pioneer musical style could get compartmentalized, each having their individual outlook towards the form. It is important to note that the principles across these traditions might be more or less identical. The minute differences, like a simple Khatka or a Murkee, that cannot be put on paper and need a practical demonstration, combined together, define a Gharana. These aspects become the identity of that particular tradition."[3]

Eminent musicologist Pandit Vamanrao Deshpande opines that even though individual artistic preferences and tastes vary greatly, certain musical practices and principles have become generally acceptable over time through validity of seasoned and knowledgeable practitioners and listeners. Individual preferences and approaches have not much to do with these generalized practices, which are followed across most traditions and Gharana-s. It is only the individual, specific aspects of a Gharana that differentiates it from the others and makes it unique.[4]

Understanding the improvisatory elements:

As mentioned above, the principles across Gharana-s remain more or less identical. Aspects like importance of Sur, a general agreement on the delineation of common, major Raga-s (like Yaman, Todi, Darbari Kanada, etc.), format of presentation, among other things, are similar across traditions. The chief dissimilarities between Gharana-s are usually found to be in the subtler factors like preference

of Laya, importance of Taal-s, use of ornamentations like Meends, Gamaks, type of Taans, etc. However, over time, these minute aspects magnify and become the identity of a particular tradition. Stylistic differences in the presentation and treatment of Khayal become evident. Even the simplest of designs or ornamentations specific to a Gharana become the identity of that Gharana.

Each of the various forms practiced in Hindustani Classical Music has a definite structural outline that evolved over generations of pioneers of the respective forms. While the precise nature of stratification might vary among different styles of presentation, the format that is commonly observed across the forms remains identical. The improvisation follows a slow unfolding of the melodic form, gradually increasing in intensity and leading to a crescendo. Be it Dhrupad, Khayal or Thumri, the framework of the presentation of each of these forms follows such an outline. Such a graduated progression can be compared to institutionalized education, where elementary grades offer fundamental teaching, followed by a gradual increment in the complexities of knowledge and skills. A fine-dine meal spread over multiple courses also follows a definite sequence of culinary preparations served on the plate. Numerous other examples can also be cited, the crux of each being the establishment of a definite sequence that culminates on a high.

In context of Khayal, the framework consists of a gradual unfolding of the Raga and presentation of the composition, followed by improvisation in segments of increasing intensity (Vistar, Behlava, Bol Baant, Bol Taan-s and Taan-s). The structural framework of the presentation may follow a formal stratification, as observed in traditions like Agra and Kirana, or an informal layering as found in Gwalior, where the division of different segments is often blurred. Nevertheless, each such segment has specific ornamentations that enable the performer to demonstrate the intensity of the respective segment.

Gwalior is probably the oldest and one of the most popular Gharana-s of Khayal form. Most other Gharana-s have been influenced by the music of Gwalior style in varying amounts. Here, the architecture of Khayal is based on what is known as 'Ashtang Gayaki' or elaboration through eight principal tools. These eight aspects include:

i) **Nayaki Ang**: Singing the composition exactly as taught by the Guru.
ii) **Gayaki Ang**: Departure from the laid down structure of the composition and playful elaboration of each line based on the anatomy of the Raga as per one's own creative abilities.
iii) **Vistaar**: Slow unfolding of the Raga, which is not as elaborate in Khayal as in Dhrupad. This includes usage of ornamentations like Alap, Bol-Alap, Meend, Gamak, Khatka-s, Murkee-s, etc.
iv) **Bahlava**: Literally meaning 'flow', Bahlava is a flow of notes and phrases using heavy Meend-s in medium-fast tempo, which gradually evolves into Taan-s.
v) **Baant**: Division of Taal using the words of composition. The division

is based on different rhythmic units, called 'Chhand'. The words of the composition are used in their original sequence and broken down in ways that make meaningful lyrical and musical sentences or phrases.

vi) **Bol Taan-s**: Superimposition of lyrics of the composition on Taan-s.

vii) **Layakari**: A unique aspect that has its origin in Dhrupad, it involves a rhythmic play with the Taal, often using criss-crossing rhythmic patterns and Tihayi-s.

viii) **Taan-s**: Fast-paced chains of notes with staccato articulation. The punctuations and patterns of these chains vary from Gharana to Gharana.[5]

Upon observation, one can figure out that the above tools essentially form the architectural elements that qualitatively define Khayal, as mentioned by Pandit Deepak Raja. Ustad Khadim Hussain Khan, veteran vocalist of the Agra Gharana was of the opinion that each Gharana utilizes these embellishments in varying proportions. In fact, he believed that each different style of presentation emerged out of the variable weightage and preference given to different embellishments. The gradual progression and extensive application of those specific ornamentations leads to the development of different Gharana-s, which cultivate diverse techniques and aesthetic ideas, over a period of time.[6] In an interview with Dr. Ashok D. Ranade, Ustad Khadim Hussain Khan mentions that the Agra Gharana prescribes the use of eighteen different tools and ornamentations that aid a musician render a Raga as per the required mood. Some of these, viz. Meend, Khatka, Murkee, Gamak, etc. are well known to musicians and connoisseurs, and are routinely used during the course of progression and elaboration of Khayal. With a long ancestry and a strong influence of Dhrupad, some of these embellishments or 'Ang'-s are specific to Agra Gharana. These include Sthayi-Antara, Behlava, Meend, Maand, Soot/Ghaseet, Murkee, Lahak, Phanda, Laya-Bol, Bol-Baant, Bol-Taan, Gamak, Dhunak, Dagar Ang, Laag-Daant, Bengi Ang, etc.[7]

The chief dissimilarities between Gharana-s are usually found to be in the subtler factors like preference of Laya, importance of Taal-s, use of ornamentations like Meend-s, Gamak-s, type of Taan-s, stratification of the various layers and their proportions, etc. A certain Gharana may focus on a detailed improvisatory Alap, while another one on the rhythmic elements like Bol-Baant and Layakari. Yet another might show a penchant for Taan-s of various patterns and accentuations. Over time, these minute aspects magnify and become the identity of a particular tradition. Stylistic differences in the presentation and treatment of Khayal become evident. Even the simplest of designs or ornamentations specific to a Gharana become the identity of that Gharana.

However, since these elements define Khayal as a form and differentiates it from other forms of Hindustani Music, the usage of each of these, in varying quantities, is found across the Gharana spectrum. Their usage varies based on the aesthetic principles upon which the pioneers of the respective Gharana-s developed their styles. Gwalior,

considered to be the oldest among present-day Khayal idioms, claims a moral high ground of being a complete Gayaki based on the balancing of the Ashtang elements. However other Gharana-s too, incorporate the same tools in varied amounts and present their Khayal styles. Some traditions with ancestries of Dhrupad practitioners or instrumentalists added more elements specific to their tradition and diversified their styles. Such differences magnify over time and offer variety and vividity to this widely popular form.

References:

1. Mukherjee, K.P. (2006), *The Lost World of Hindustani Music*, New Delhi, Delhi: Penguin Books India, pg.38.
2. Raja, D. (2009), *Khayal Vocalism: Continuity within Change*, New Delhi, Delhi: D.K.Printworld Pvt. Ltd, pg.16-17.
3. Kashalkar, A., personal interview.
4. Deshpande, V.H. (1973) *Indian Musical Traditions – An Aesthetic Study of Gharana-s in Hindustani Music* (S.Deshpande, Trans.), Mumbai, Maharashtra: Popular Prakashan, pg.12.
5. Mukherjee, K.P. (2006), *The Lost World of Hindustani Music*, New Delhi, Delhi: Penguin Books India, pg. 58, 102-103.
6. Kashalkar, A., personal interview.
7. Poki, P. [Karun Kian]. (2019, May 01). *Khadim Hussain Khan Interview Part 3* [Audio File] Retrieved from www.youtube.com/watch?v=fdjkQ-dXlFk

आचार्य बृहस्पति द्वारा रचित बंदिशों में साहित्यिक व सांगीतिक पक्ष : एक अध्ययन

रवि पाल

शोधार्थी

संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सार-संक्षेप

स्वर्गीय आचार्य कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति का नाम संगीत के जिज्ञासुओं, संगीत जीवियों, विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों के लिए नया नहीं है। आचार्य बृहस्पति संगीत और साहित्य के गगन में अपने युग के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। संस्कृत के शास्त्रों से प्रगाढ़ परिचय, सूत्र शैली की मर्मज्ञता, शब्दों के प्रकृति प्रत्यय ज्ञान, रस-सिद्धांत पर आसामान्य अधिकार एवं आधुनिक संगीत के व्यवहारिक ज्ञान से समन्वित होकर आचार्य जी के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था। आचार्य बृहस्पति को लोग संगीत-शास्त्री के रूप में ही जानते थे किंतु जब उनकी साहित्यिक रचनाएँ सामने आई तो साहित्य जगत को भी बहुत आश्चर्य हुआ कि इतनी श्रेष्ठ रचनाएँ करने वाला अभी तक कहाँ छिपा हुआ था। आचार्य बृहस्पति संगीत शास्त्र के सर्वश्रेष्ठ मर्मज्ञ थे। उन्होंने कई संगीत सिद्धांतों को ही कविता की पंक्तियों में बांध दिया। उन्होंने सैकड़ों बंदिशों को बनाया व स्वरबद्ध किया। वे अपनी रचनाओं को 'अनंगरंग' से मुद्रित करते थे। इस शोध पत्र में उनके द्वारा रचित बंदिशों के साहित्यिक व सांगीतिक पक्ष पर ही प्रकाश डालने का प्रयास किया जाएगा क्योंकि साहित्य व संगीत दोनों ही उच्चकोटि के हो तो एक अलग ही आनंद की अनुभूति होती है। प्रस्तुत शोध पत्र को लिखने में मूलरूप से आध्यात्मिक स्रोतों को ही लेखन का माध्यम बनाया गया है।

बीज शब्द

आचार्य बृहस्पति, बंदिश, साहित्य, अनंगरंग, संगीत, वाग्गेयकार

आचार्य बृहस्पति एक कुशल वाग्गेयकार थे उनमें सगीत और साहित्य का संगम था। संगीत रत्नाकर के अनुसार वाग्गेयकार वह विद्वान है जिसकी योग्यता 'वाक्' और 'गेय' दोनों की रचना में हो। आचार्य महोदय हिन्दी साहित्य के विद्वान होने के कारण आपकी सभी रचनाएँ रस और भाव की द्योतक है। उत्तम वाग्गेयकार के लक्षणों के आधार पर आचार्य जी की गेय रचनाएँ, उनके द्वारा रचित पदों में विभिन्न गुण दृश्टिोचर होते हैं, उनके रचित पदों व बंदिशों में शब्दानुशासन अर्थात् व्याकरण शास्त्र ज्ञान व 'छंद' के भेद-प्रभेदों का ज्ञान तथा उपमा आदि अर्थालंकारों और अनुप्रास आदि शब्दालंकारों के कुशल प्रयोग को देखा व समझा जा सकता है। ये सभी गुण आचार्य जी की बंदिशों में स्पष्ट रूप से दिखता है। आचार्य महोदय की सैकड़ों बंदिशें 'राग चिंतन' लेखमाला में 'संगीत' पत्रिका में प्रकाशित की गई हैं। आचार्य जी के गेय पदों में नवीन विषयों का उल्लेख प्राप्त होता है। वे विचारक थे अतः

किसी चीज़ को लिखने से पूर्व उस विषय को सुंदर शब्दों व भावों से संवारते थे। आचार्य महोदय शिव-भक्त थे अतः उनके पदों में बहुत बार देवाधिदेव शंकर की अराधना गाई गयी है। उनके रचित पदों में श्री कृष्ण लीला का एक मनोहारी दृश्य प्रकट होता है। आचार्य जी के बहुत से पद बोल-बांट की ठुमरियाँ हैं जिसमें स्वर-लय के द्वारा पद को सुन्दर रीति से सजाया है-उसका वैचिंय तो प्रत्यक्ष गाकर दिखाई पड़ता है।

आचार्य महोदय सिद्धांतवादी व्यक्ति थे, प्रत्येक कार्य खूब सोच-विचार कर करते थे। निरंतर चिन्तन करना उनके जीवन का लक्ष्य था। आचार्य जी ने अपने एक लेख 'संगीत और साहित्य के समन्वय' में लिखा है कि ख्याल के प्रमुख उन्नायक नेमत खाँ 'सदारंग' शब्दार्थ-भक्षी नही थे, उन्होंने महाकवि देव जैसे समर्थ आचार्य और रसिक शिरोमणि के चरणों में बैठकर साहित्य एवं संगीत की साधना की थी। आजकल गायक इस बात पर ध्यान देना नहीं चाहते हैं क्योंकि इसके कई कारण हो सकते हैं या माने जा सकते हैं। कुछ कलाकार ऐसे हैं जिनको भाषा का ज्ञान ही नही होता अतः वे रटी-रटाई बंदिशों को जैसा का तैसा दुहराते रहते हैं। दूसरे प्रकार के कलाकार जिनके पास पुरानी अच्छी बंदिशें हैं वे दूसरों को सिखाना नहीं चाहते, इस कारण अपनी विद्या छिपाने के लिए शब्दों का उच्चारण साफ-साफ नहीं करते। तीसरे प्रकार के गायक ऐसे हैं जिनको अच्छे गुरूओं से शिक्षा लेने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ अतः पुस्तकों की चीज़े ही रटते रहते हैं। अतः बंदिश की अदायगी और रसभाव दोषयुक्त हो जाते हैं। कहीं-कहीं तो अर्थ का अनर्थ भी गायकों को करते देखा गया है। अच्छा वाग्गेयकार ही वही है जिसका वाक्-पक्ष और गेय-पक्ष दोनों ही सबल हों। आचार्य बृहस्पति ने एक स्थान पर लिखा है कि-गीत में प्रयुक्त 'वाणी' या 'भाषा' को संगीत शास्त्र में 'मातु' और 'गेय' पक्ष को 'धातु' कहा जाता है। मातु और धातु की रचना में पूर्णतया समर्थ व्यक्ति ही आदर्श वाग्गेयकार कहलाता है। जयदेव, विद्यापति और सूर जैसे मनीषी उत्तम वाग्गेयकार थे।

उपरोक्त दोनों गुण आचार्य बृहस्पति में विद्यमान थे जो कि उनकी रचनाओं से प्रमाणित होता है। वे किसी बंदिश की रचना करते समय पहले शब्द-रचना करते थे तत्पश्चात् स्वर रचना। अतः पद में साहित्य व संगीत के समायोजन में परिपूर्ण व्यक्तित्व के धनी थे आचार्य बृहस्पति जी। उनका यह कथन अक्षरशः सत्य है कि- "इस युग में तो ऐसे व्यक्ति भी उस्ताद कहलाने लगे, जिन्होंने केवल मुखड़ा गाकर जीवन बिता दिया और नई पीढ़ी के मन में यह बात डाल गए कि न तो बंदिश की आवश्यकता है और न अर्थ की। तबले पर ठेका आरम्भ कराकर 'आ, ई, अ, ओ' का आधार लो, बहलावे करो, तानें मारो, टीप पर खड़े न हो, गला बराबर हिलाते रहो, बस गवैये बन जाओगे। यही कारण है कि जो 'गाना' कभी बजाने और नाचने की अपेक्षा 'उत्तम' कहलाता था, उसकी रीढ़ ही गायब हो गई है। उसका अस्थिपंजर लुप्त हो गया है।" संगीत और साहित्य के संबंधों में वर्तमान परिस्थिति से आचार्य जी को शिकायत थी कि दोनों एक-दूसरे से बहुत दूर हो गए हैं। पहले के गायक अच्छे साहित्यकार होते थे जबकि आजकल निरक्षर भट्टाचार्य होते हैं। परिणाम यह है कि बहुत-सी बंदिशों का साहित्य इतना व्यर्थ होता है कि न तो उसका कोई अर्थ है और न ही सिर-पैर। वर्तमान युग के गायकों ने अपनी कला की दुर्दशा कर दी है इसीलिए वे निम्न स्थान पर आ गए। आचार्य महोदय का प्रयास उस युग को पुनः वापस लाने का हुआ है, इसलिए उन्होंने अपने ग्रंथों में बार-बार इस बात पर ज्यादा जोर दिया है। संगीत कला जगत के कलाकारों को गंभीरतापूर्वक आचार्य जी के कथनों पर विचार करना चाहिए ताकि भविष्य में गायक अपनी कला को उसी उच्च स्तर पर ले जा सकें।

आचार्य जी की बंदिशें विशेषतया ब्रजभाषा में है क्योंकि इस भाशा की सरसता और कोमलता गेयपदों के लिए उपयुक्त होती है। वैसे खड़ी बोली और उर्दू भाशा में भी कुछ पदों की रचनाएँ की हैं। उदाहरण के लिए, आचार्य जी द्वारा उर्दू भाषा में रचित जो आचार्य जी द्वारा ही बनाए गए राग संजोग के स्वर स्वरूप में बंधी है जिसके शब्द इस

प्रकार से हैं-

राग - संजोग - (तीनतालद्ध)
ऐसी भी क्या नाराजगी कहिए
माना खता तो हमसे हुई
दीजे सज़ा बन्दानवाज

एक अन्य बंदिश प्रस्तुत है, जो शोधार्थी की बहुत प्रिय बंदिशों में से एक है-

राग - तोड़ी (द्रुत-एकताल)

स्थायी - *हम तौ कोउ भँवर नाहिं*
जो इत-उत मँडरावै
चातक सी हमरी बान
स्वाति-बूंद सुख पावै।।

अंतरा - *नई-नई कलियाँ अनंत,*
नित भँवरन भरमावै।
हमरे तो 'अनंगरंग'
उन ही के गुन गावै।।

प्रसंग - अनन्य प्रेमी को उक्ति है- हम तो कोई भ्रमर में नहीं है, जो इधर-उधर मडराएँ। हमारा स्वभाव चातक जैसा है जो स्वाति की बूंद (विशिष्ट प्रेम-मात्र) में सुख पाते हैं। अनंत नई-नई कलियाँ प्रतिदिन भौंरों को भ्रांत करती है, हमारे तो 'अनंगरंग' ही हैं, हम उनका ही गुण गाते हैं।

स्थायी

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
रे	ग	रे	-	सा	सा	ध	ध	नि	सा	-	रे
ह	म	तौ	ऽ	को	उ	भँ	व	र	ना	ऽ	हिं
×		0		2		0		3		4	
रे	ग	म	म	ध	ध	म	ग	रेग	रे	सा	सा
जो	ऽ	इ	त	उ	त	मँ	ड	ऽऽ	रा	ऽ	वैं
×		0		2		0		3		4	
प	-	प	म	ध	-	म	ग	म	ध	-	ध
चा	ऽ	त	क	सी	ऽ	ह	म	री	वा	ऽ	न
×		0		2		0		3		4	
ध	नि	ध	प	म	ध	म	रे	ग	रे	सा	सा
स्वा	ऽ	ति	बूं	ऽ	द	सु	ख	ऽ	पा	ऽ	वै

अंतरा

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
म	ग	मं	मं	ध	ध	सां	-	सां	सां	-	सां
न	ई	न	ई	क	लि	याँ	ऽ	अ	नं	ऽ	त
×		0		2		0		3		4	
नि	रें	नि	ध	प	प	मं	ग	मं	ध	-	ध
नि	त	भँ	व	र	न	भ	र	ऽ	मा	ऽ	वै
×		0		2		0		3		4	
ध	ध	गं	-	गं	-	रें	गं	रें	सां	-	सां
ह	म	रे	ऽ	तो	ऽ	अ	नं	ग	रं	ऽ	ग
×		0		2		0		3		4	
नि	रें	नि	ध	मं	ध	मं	ग	रेग	रे	सा	सा
उ	न	ही	ऽ	के	ऽ	गु	न	ऽऽ	गा	ऽ	वे
×		0		2		0		ऽ		4	

निष्कर्ष

बंदिश या चीज़ का अपना महत्व है। सुन्दर बंदिश को प्रारंभ करते ही महफिल में रंग जगने लगता है। सुर व ताल में सुरचित बंदिश में कुशल कलाकार अपनी आवाज़ से चार चांद लगा देता है। स्वर, शब्द व लय का सुन्दर सामंजस्य ही बंदिश का अपना गुण है। आचार्य महोदय अपनी रचित बंदिशों को 'अनंगरंग' के नाम से लिखते थे। आचार्य जी ने जिन गेय पदों की रचना की है वे सब अमूल्य हैं जिसकी सुन्दरता क्रियात्मक पक्ष में गाकर ही अनुभव की जा सकती है, क्योंकि जब पदों के शब्द, स्वर व लय में बांधे जाते हैं तभी उस बंदिश का आनंद श्रोताओं को तथा स्वयं कलाकार को प्राप्त होता है। आचार्य जी की बंदिशों को गाकर ऐसा आनंद प्राप्त होता है कि जैसे विलम्बित ख्याल के बोल समुद्री लहर के समान स्वरों में लहराते हैं। जबकि छोटे ख्याल के बोल नगीने में जड़े मोतियों के समान है। जिसका मुख्य कारण है उनकी बंदिशों में निहित उच्च कोटि का साहित्य व स्वर रचना। आचार्य महोदय की सैकड़ों बंदिशें 'राग-चिंतन' लेखमाला में 'संगीत' पत्रिका में प्रकाशित की गई है। संगीत नाटक अकादमी दिल्ली ने भी आचार्य जी की गेय कृतियों को छपवाने के लिए अनुदान दिया है, जो 'राग-रहस्य' पुस्तक के रूप में संगीत जगत में

प्रस्तुत की गई है। संगीत के क्षेत्र में आचार्य जी द्वारा किए गए इस योगदान का लाभ आज हम सभी ले रहे है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संगीत चिंतामणि (प्रथम संस्करण), आचार्य बृहस्पति, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ. प्र.), 1966
2. नाट्यशास्त्र 28वां अध्याय-स्वराध्याय, आचार्य बृहस्पति व सुलोचना बृहस्पति, बृहस्पति पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1986
3. राग रहस्य (प्रथम भाग), आचार्य बृहस्पति व सुलोचना बृहस्पति, बृहस्पति पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1986
4. संगीत चिंतामणि (द्वितीय संस्करण), आचार्य बृहस्पति, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.), 1976
5. भातखंडे स्मृति ग्रंथ, पं. विष्णु नारायण भातखंडे, संगीत कार्यालय, हाथरस, (उ.प्र.)
6. रामपुर की सदारंग परम्परा और प्रतिनिधि आचार्य बृहस्पति, सरयू कालेकर, बृहस्पति पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1984
7. भारतीय संगीत के आप्त ऋषि आचार्य बृहस्पति एक अध्ययन, सौभाग्य वर्द्धन बृहस्पति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
8. हमारे संगीत रत्न, लक्ष्मी नारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.), तृतीय संस्करण 1978
9. संगीत बोध, परांजपे, मध्य प्रदेश, हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2004
10. भारतीय संगीत और आचार्य बृहस्पति, डॉ. जतिन्द्र सिंह, अभिषेक पब्लिकेशन, चण्डीगढ़, 1990

आध्यात्म और संगीत

डॉ. संतोष कुमार पाठक
शोध निर्देशक,
बनस्थली यूनिवर्सिटी

कौस्तुभ पारे
शोध छात्र
वनस्थली यूनिवर्सिटी

सार-संक्षेप

संगीत हमेशा से आध्यात्म का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। कई संतों, पैग़म्बरों और गुरुओं ने संगीत को दिव्य आनंद और ईश्वर के साथ एकता का अनुभव करने के लिए, एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया है। संगीत जाति, देश, धर्म से बंधा नहीं होता। संगीत तो हृदय से उत्पन्न होने वाली विधा है, जो ईश्वर के मन को मोह लेती है। इस मार्ग को अपनाकर मीरा ने गिरिधर को पुकारा और तुलसीदास जी ने राम को मन में धारा। एक ओर कबीर ने निराकार की उपासना की जहाँ दूसरी ओर सूरदास, तुकाराम, नामदेव ने भगवान के मोहक रूप की महिमा को जग के सामने प्रस्तुत किया। इन सभी के गीतों-पदों और कीर्तनों में संगीत पाया जाता है। मन को वश में करने और सत्य की वास्तविकता को एकाग्रचित्त हो कर जानने के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता है वह ध्वनि ही संगीत है, जो बताती है कि हर जगह केवल ईश्वर और दिव्यता है। संगीत के सुरों में वह शक्ति है जो इंसान के मन मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ती हैं। अतः कलियुग में संगीत और आध्यात्म का सम्बंध बहुत ही गहरा, प्रभावशाली और प्रभु प्राप्ति का सबसे सरल उपाय हैं।

बीज शब्द

आध्यात्म और संगीत, आध्यात्मिक मार्ग, विक्षेप, आवर्ण, संगीत साधना, भक्ति

आध्यात्म सही मायने में अपने बारे में सत्य को जानना और हमेशा उसी चेतना में रहना है। जब व्यक्ति यह जान लेता है कि उसका जन्म किस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु हुआ है, तो वह असल मायने में आध्यात्म को जान जाता है। प्रकृति में सृजन से लेकर विध्वंस तक, जीवन से लेकर मृत्यु तक, आत्मा और परमात्मा जैसे इन सभी भेदो को जानना ही आध्यात्म है। किसी भी कला, जिसमें भौतिक रस की प्राप्ति होती है उसे कला नहीं कहा जा सकता। भौतिक रसों की चाह, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्यों की पूर्ति करना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है किंतु उन्हें यही सब चाह और आकर्षण उस समय एक विष की भाँति प्रतीत होने लगता है, जब उन्हें इनके पीछे छुपे हुए दुःख, द्वेष, कलह और पीड़ा का पता चलता है। जो नश्वर है, जो केवल थोड़े समय का सुख देने का माध्यम है, जो अनित्य है, एसी सांसारिक चाह में फँसा व्यक्ति एसे सुख की खोज में भागता रहता है, जो ज्यादा समय तक टिकता नहीं। वह उसी प्रकार इन असत्य सुखों के पीछे भागता रहता है जैसे कि रेगिस्तान की मृगमारिचिका। जब उसे इस असत्य

का पता चलता है वह अपने सारे प्रयासों को इन दुःखों से मुक्ति पाने में लगा देता है। इस मुक्ति का बस एक ही मार्ग है- आध्यात्म मार्ग। आध्यात्म एक ऐसा मार्ग है जिस को अपनाने से मनुष्य स्वयं तो सुख, शांति, और चित्त शुद्धि पाता है, साथ ही उसके आस पास रहने वाले मनुष्य भी उसके प्रभाव से वंचित नहीं रह पाते। लेखक के एस चौधरी अपनी पुस्तक 'मेरे महादेव' में लिखते है की ''आध्यात्म का अर्थ है अपने भीतर के चेतन तत्व को जानना, मानना या आत्म प्रज्ञ होना।''[1]

हमें अपने वास्तविक रूप का पता होना चाहिए। हम सभी शरीर, नाम, पेशे, लिंग आदि तक सीमित नहीं हैं अपितु परमात्मा का ही एक अंश हैं। अहंकार हमें इतना अंधा बना देता है कि हम इस शरीर को ही सत्य मान लेते है। हमें इस बात का स्मरण बार बार करना चाहिए की हम स्वयं भी ब्रम्ह हैं। दादा भगवान अपनी पुस्तक 'अप्तवाणी भाग 8' में अहंकार और अहम् ब्रह्मास्मि इन दोनो के फर्क को समझाते हुए लिखते हैं कि ''अहम् ब्रह्मास्मि, वे खुद अपने आप का अहम् करते है। और अहंकार वह है कि जहां पर खुद नहीं है वहाँ पर उसका आरोपण करता है।''[2] हमारे इस बात को भूलने का मुख्य कारण हमारा मन है। जो हमें बाहर की ओर खींचता है और हमें भ्रमित करता हैं कि हम सीमित है।

सभी आध्यात्मिक साधना मन को सत्य की ओर ले जाने की दिशा में निर्देशित होती है। अंतर्मन को पवित्र करने या जानने के बहुत से मार्ग है, जिनमे मुख्यतः निम्न मार्ग पाए जाते है।

ध्यान मार्ग- जिसमें व्यक्ति अपने मन को अनेकाग्रता से एकाग्रता की ओर ले जाता है।

ज्ञान मार्ग- जिसमें व्यक्ति आत्म विचार कर मन के प्रश्नो का उत्तर प्राप्त करता है।

भक्ति मार्ग- जिसमें व्यक्ति द्वारा, किसी भी अवस्था से प्रभावित न होते हुए, अपने मन को प्रभु के चरणो में समर्पित किया जाता है।

आध्यात्मिक मार्ग पर चलना या इसे समझना इतना आसान भी नहीं है। हमारे अंतःकरण के विकास में कुछ चीजें है जो बाधा डालती है। उन्हें मल, विक्षेप और आवर्ण कहा जाता है।

Paramahans Swami Maheshwarananda, Chakras.net esa लिखते है कि"There are three 'diseases' that frequently afflict the Antahkarana hindering our spiritual development. These are Mala, Vikshepa and Avarana."[3]

मल- ये हमारे अशुद्ध विचार हैं, जो हमारे दिमाग को अस्पष्ट और काला कर देते हैं। 'विचार की स्वतंत्रता' हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हर विचार, साथ ही हर क्रिया, कर्म के रूप में हमारे पास वापस आती है।

विक्षेप- ये हमारी बाहरी दुनिया या आंतरिक दुनिया से उत्पन्न हो सकती है। हम अपना बचाव बाहरी परेशानियों जैसे शोर, गर्मी या ठंड से कर सकते हैं, लेकिन अंदर की बुराइयाँ, जैसे कि भय, घबराहट, चिंता और झुंझलाहट आंतरिक अशांति है, जो हमारे मन को परेशान करती है और हमें तब तक बाधित करती है जब तक हम उनके मूल कारण तक नहीं पहुंच जाते।

आवर्ण- यह वो अज्ञान का पर्दा है जो मन को मंद या धुँधला कर देता है। यह आवरण हमारे लिए यह ना जानने का कारण है कि हम वास्तव में कौन हैं। विक्षेप की स्थिति से बाहर आने के लिए भक्ति का होना परम आवश्यक है, और भक्ति मार्ग में संगीत की बहुत बड़ी भूमिका होती है।

संगीत का उद्गम सामवेद में बताया गया है। कहा जाता है कि ''ऋग्वेद के मंत्र जब विशिष्ट गान पद्धति में गाए जाएँ तो उन्हें साम या सामान् कहते हैं।''[4] डॉ. स्वाति शर्मा अपनी पुस्तक 'संगीत चिकित्सा' में लिखती है कि ''सामवेद में संगीत तत्व कि प्रधानता है। सामवेद में कुल 1875 मंत्र हैं, ऋग्वेद के जो मंत्र सामवेद में आए है सामगायकों ने उन्हें गायन का रूप प्रदान किया है।''[5] प्रवेश सक्सेना अपनी पुस्तक 'सामवेद युवाओं के लिए' में लिखते है कि ''सामवेद गीत का, संगीत का वेद है। लय ताल के संतुलन से, स्वरों के समागम से संगीत पैदा

होता है।"[6] परवीन जरेट अपनी पुस्तक 'ठुमरी दादरा कल और आज' में लिखते हैं की "सामवेद को संगीत का वेद भी कहा जा सकता है।"[7] वे यह भी कहते है कि "सामवेद में सात स्वरों का प्रयोग होता था"[8] इस बात से यह सिद्ध हो जाता है कि संगीत वैदिक काल से चला आ रहा है। संगीत मन को शांत करने में मदद करता है और आसपास की दुनिया के भ्रम को भुलाने में मददगार साबित होता है। आध्यात्मिक जीवन का सबसे महत्वपूर्ण और सहज माध्यम संगीत को माना गया है। संगीत शास्त्र में 'नाद-ब्रह्म' को परम तत्व कहा गया है। कहा जाता है की नादोपासना द्वारा मनुष्य स्वयं का एकाकार कर सकता है। जब कोई अपनी आंखें बंद करता है और गाता है, तो इस प्रक्रिया में तीन इंद्रियां शामिल होती हैं- आंख, कान और मुंह। और भजन-कीर्तन के दौरान, यदि कोई ताली बजाता है, और बैठ जाता है, तो पूरा शरीर शामिल हो जाता है। इस प्रकार संगीत हमेशा से किसी का भी ध्यान ईश्वर की ओर निर्देशित करने का एक शक्तिशाली उपकरण रहा है।

पुराणों में भी संगीत का उल्लेख मिलता है। 'भारतीय संगीत परम्परा' पुस्तक के लेखक डॉ. संजीव कुमार शर्मा लिखते है कि "मार्कण्डेय पुराण के अनुसार- सरस्वती कहती है कि सात स्वर है, सात ग्राम राग है, सात गीतक है। 49 ताने है और 3 ग्राम हैं चार प्रकार के पद और अज्ञैर ताल हैं।"[9] वे और भी लिखते है कि "द्वापर युग के अर्जुन भी संगीत के कुशल जानकर थे। यहाँ तक की रामायण में राजा दशरथ की अंत्येष्टि के अवसर पर साम गायक ब्राह्मणों ने शास्त्रीय पद्धति से गायन किया था और उत्तरकांड में रावण द्वारा साम स्त्रोतों द्वारा शंकर की स्तुति गायन के बारे में बताया गया है।"[10] उसी प्रकार कलियुग के अनेक संतों के जीवन से हम इस बात को समझ सकते हैं। मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास, तुकाराम, नामदेव, त्यागराजा स्वामी, चौतन्य महाप्रभु आदि संतों ने वर्षों तक जीवात्मा से परमात्मा के लिए भजन कीर्तन गाये और सभी मनुष्यों को इस मार्ग पर चलकर इस सत्य से अवगत कराया, कि किस प्रकार भगवान शुद्ध आत्मा है और सभी में परमात्मा का एक अंश एक चिंगारी के रूप में विद्यमान है।

तुलसी दास जी अपने गीतों में लिखते है- भज मन राम चरण सुखदायी।

वहीं मीरा बाई अपने गीत में गाती है- मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरों ना कोई।

संत नामदेव अपने गीतों में गाते है- हरि नांव हीरा हरि नांव हीरा। हरि नांव लेत मिटै सब पीरा, हरि नांव जाती हरि नांव पांती। हरि नांव सकल जीवन मैं क्रांती।

त्यागराजा स्वामी के सभी गीतों में वे हमेशा ओ मनसा कह कर मन को भगवान पर केंद्रित करने की बात करते है- मानस सन्चररे। ब्रह्मणि मानस सन्चररे।

हिंदू धर्म के अलावा मुस्लिम धर्म, सिक्ख धर्म और अन्य धर्मों में भी एसे बहुत से पैगम्बरों और गुरुओं ने संगीत को माध्यम बना कर निराकार और साकार रूप पर समग्र ध्यान लगाने की बात पर जोर दिया है। चौदवी शताब्दी में अमीर खुसरो ने संगीत को नए आयाम तक पहुँचाया। मियाँ तानसेन जो कि बहुत ही प्रख्यात संगीतकार थे, और उन्हीं गुरु स्वामी हरिदास जिन्होंने ईश्वर प्राप्ति के लिए संगीत के माध्यम को अपनाने की बात को जन जन तक पहुँचाया था।

संगीत की गूढ़ता का ज्ञान सिर्फ उसके बारे में जानने या अध्ययन करने से नहीं होता है, अपितु संगीत की साधना में निरंतरता, सही दिशा-निर्देशन और तत्परता आवश्यक है। अनेक ग्रंथों, पुस्तकों, और संगीत के बड़े बड़े विद्वानों ने संगीत के क्षेत्र में 'साधना' को ही परम आवश्यक मार्ग माना है। चाहे वो साम-गान हो या संगीत कला के दूसरे रूप, जैसे- ठुमरी, ख्याल, भजन, गुरुद्वारों के शबद, कीर्तन, कव्वाली आदि सभी में संगीत और आध्यात्म का एकाकार देखा गया है। संगीत पूजा है, साधना है, और ईश्वर भक्ति का सबसे सरलतम मार्ग है। लेकिन ऐसा बोल देना ही काफी नहीं होगा, संगीत की उस तरंग को अनुभव करने वाला व्यक्ति ही उस

मार्ग पर अग्रगामी हो सकता है। जिस प्रकार हमने कभी ईश्वर को देखा नहीं परंतु उसके होने और उसकी शक्ति पर विश्वास करने के लिए हम बाध्य हो जाते हैं, और यही भावना मनुष्य को आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर करती करती है। संगीत मनुष्य को आध्यात्मिक बनाता है संगीत में भक्ति, प्रेम, योग, आध्यात्म, सांख्य, वैराग्य, सभी समाहित होते है। सतत, निरंतर साधना से इन सभी सत्य को जाना जा सकता है। इसी से यह सिद्ध होता है की संगीत से श्रेष्ठ उपासना का कोई अन्य मार्ग नहीं है।

संदर्भ सूची

1. चौधरी, के.एस. (9 नवम्बर 2021). मेरे महादेव, बिलासपुर, संकल्प पब्लीकेशन, पृ. 115.
2. भगवान, डी. (21 अगस्त 2015). अप्तवाणी भाग 8, अहमदाबाद, दादा भगवान फ़ाउंडेशन, पृ. 135.
3. Paramahans, S- M- (2018). Mala,Vikshepa, varana Three Obstacles on the Spiritual Path, Chakras.net, Austria. https://www.chakras.net/yoga-principles/mala-vikshepa-avarana
4. त्रिपाठी, डी. (4 अप्रेल 2013). सामवेद से हुआ संगीत का जन्म, जागरण, https://www.jagran.com/uttarakhand/dehradun-city.10272309.html
5. शर्मा, डॉ एस. (10 फ़रवरी 2022). संगीत चिकित्सा, आगरा, श्री विनायक पब्लीकेशन, पृ. 18.
6. सक्सेना, पी. (2009). सामवेद युवाओं के लिए, दिल्ली, आर्य प्रकाशन, पृ. 11.
7. जरेट, पी. (6 अगस्त 2021). ठुमरी दादरारू कल और आज, चेन्नई, के. के. पब्लीकेशन, पृ.144.
8. वही, पृ. 144.
9. शर्मा, एस. के. (5 नवम्बर 2021). भारतीय संगीत परम्परा, नांदेड़, कल्पना प्रकाशन, पृ. 46.
10. वही, पृ. 49.

भारतीय संस्कृति का दर्पण भारतीय संगीत

डॉ. सिम्मी.आर.सिंह
शोध निर्देशिका
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ

अमृतपाल सिंह
शोधार्थी-संगीत विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

सार-संक्षेप

भारतीय संस्कृति में संस्कारों की क्रिया सम्पूर्ण करने हेतु विशेष नियम व विधियाँ हैं, परन्तु संगीत के अभाव में यह सब संस्कार एवं अनुष्ठान नीरस तथा अपूर्ण प्रतीत होते हैं। जन्म तथा विवाह संस्कार से सम्बंधित गीत तो भारत के प्रत्येक कोने में पाये जाते हैं। परन्तु मृत्यु के अवसर पर भी गीत गाने का विधान है।

गाँवों में दैनिक जीवन के प्रत्येक कार्य के साथ कोई न कोई गीत जुड़ा है। जैसे-स्त्रियों के चक्की पर गेहूं पीसने, कूएँ से पानी भरने, धान कूटने आदि से संबन्धित तथा पुरुषों के खेतों में बुआई करने, फसल काटने तथा अन्य कार्यों से संबन्धित गीतों की प्रथा भारत के ग्रामीण क्षेत्र में आज भी प्रचलित है। इसी प्रकार दैनिक दिनचर्या के अतिरिक्त विभिन्न ऋतुओं से संबन्धित गीत, फागुनगीत, कार्तिक स्नान, बसंतगीत, वर्षागीत, इत्यादि अनेकों ऐसे गीत हैं जो भारतीय संस्कृति के परिचायक हैं।

बीज शब्द

संस्कृति, भारतीय संगीत, सद्भावना, संस्कार गीत, सांगीतिक समारोह

किसी भी देश के तीन मूल स्तम्भ उस क्षेत्र की सभ्यता, संस्कृति एवं कला होती है। संस्कृति का कला से अटूट सम्बन्ध है। विद्वानों का मत है कि यदि किसी देश की संस्कृति को जानना हो तो उस क्षेत्र की कला का अवलोकन करना चाहिए। परन्तु सर्वप्रथम यहाँ 'संस्कृति' के अर्थ के बारे में जानना अनिवार्य है।

'संस्कृति' शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है। यदि शाब्दिक अर्थ को देखें तो मूल रूप से यह 'संस्कृत' भाषा का शब्द है। 'संस्कृति' के दो शब्द हैं 'सम'+'कृति'। इस शब्द का मूल, 'कृ' धातु में है- जिसका अर्थ है क्रिया। इस दृष्टिकोण से संस्कृति का शाब्दिक अर्थ सम प्रकार अथवा भली प्रकार से किया जाने वाला व्यवहार अथवा क्रिया है।

अंग्रेजी भाषा में संस्कृति के लिए 'कल्चर' 'Culture' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह शब्द 'लैटिन' भाषा के 'कलचुरा' तथा 'कोलियर' से निकला है। इन दोनों शब्दों का अर्थ 'उत्पादन' तथा 'परिष्कार' है। उत्पादन शब्द के अर्थ से हम परिचित हैं, परिष्कार से यहाँ भाव 'शुद्ध अलंकार, स्वच्छता, परिष्कृत, सजा हुआ तथा विभूषित से है। यदि इन दोनों शब्दों के सामूहिक भाव को देखें तो संस्कृति को 'परिष्कृत मानसिक उत्पादन' माना जा सकता है। अर्थात जो मानव सभ्यता सांस्कृतिक गुणों से परिष्कृत अथवा सजी हुई है वही उस भू-खण्ड या क्षेत्र की संस्कृति है।

किसी भी देश या क्षेत्र में रहने वाली मानव जाति द्वारा प्रयोग में लाई गयी क्रिया जैसे धर्म, दर्शन, संस्कार, कला, भाषा, पहनावा, जीवन दर्शन अथवा शैली को उस देश की संस्कृति कहा जाता है।

संस्कृति के अर्थ की व्यापकता के फलस्वरूप संस्कृति की परिभाषा भी अनेक दृष्टिकोणों से की गयी है। उनमें से कुछ विद्वानों की परिभाषाएं निम्न है-

''प्रसिद्ध मानवशास्त्री एडवर्ड बनार्ट टायलर (1832-1917) के द्वारा सन् 1871 में प्रकाशित पुस्तक 'Primitive Culture' में संस्कृति के संबंध में सर्वप्रथम उल्लेख किया गया है। इनके अनुसार, ''संस्कृति वह जटिल समग्रता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला आचार, कानून, प्रथा और अन्य सभी क्षमताओं तथा आदतों का समावेश होता है जिन्हें मनुष्य समाज के नाते प्राप्त करता है। टायलर ने संस्कृति का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है। इनके अनुसार सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति अपने पास जो कुछ भी रखता है तथा सीखता है वह सब संस्कृति है।''

बोगार्डस के अनुसार, ''किसी समूह के कार्य करने और विचार करने के सभी तरीकों का नाम संस्कृति है''।

विद्वानों द्वारा वर्णित अर्थ एवं परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है के संस्कृति एक ऐसा पर्यावरण है जिसमें रहकर मनुष्य एक समाजिक प्राणी बनता है। अतः संस्कृति के अंतर्गत जनसमूहों की जीवन शैलियाँ, उत्पादन, नैतिक मान्यताएं, मत आदि समाविष्ट होते है।

भारतीय संस्कृतिः- 'अनेकता में एकता' सिर्फ कुछ शब्द नहीं हैं, बल्कि यह एक ऐसी चीज है जो भारत जैसे सांस्कृतिक विरासत में समृद्ध देश पर पूरी तरह लागू होती है। भारत को मानव शास्त्रियों के लिए स्वर्ग माना जाता है इस कथन की सत्यता इस बात पर निर्भर करती है कि भारत में बहुत सारी संस्कृतियाँ पाई जाती हैं। भारत की संस्कृति को अनेकों संस्कृतियों का मिश्रण कहा जाये तो अतिशियोक्ति नहीं होगी क्यों कि भारत एक ऐसा देश है जिसमे विभिन्न जातियाँ, भाषाएँ, एवं धर्म हैं और यही बहुरूपता भारत की विशेषता है।

हमारी संस्कृति की मिश्रित प्रगति, हमारे संगीत, नृत्य के स्वरूपों, नाटकों, कला और अन्य कलाकृतियों जैसे चित्रकला, मूर्तिकला तथा हमारे स्मारकों की वास्तुकलाओं में और हमारी सभी भाषाओं के साहित्य भी इसी प्रगति को प्रतिबिंबित करते हैं।

अर्थात किसी भी देश की संस्कृति का सार उस देश की कला में निहित है। कला के कई रूप हैं जो संस्कृतियों को प्रतिबिंबित करते हैं। कला मुख्य रूप से दो प्रकार की होती हैं, दृश्य एवं श्रव्य। दृश्य कला में कला को प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता जैसे- चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला। श्रव्य कला वह है जिसे सुना जा सकता है जैसे- संगीत कला में गायन एवं वादन। इसके अतिरिक्त कला की कुछ ऐसी विधाएँ भी हैं जिन्हे सुना और देखा जा सकता है जैसे- नृत्य कला और नाट्या कला।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि कलाएँ किसी भी देश का अक्स हैं। इस दृष्टि से संगीत ऐसी कला है जो दृश्य एवं श्रव्य दोनों है। संगीत न केवल कला है अपितु ललित कला है। भारतीय संस्कृति के प्रत्येक संस्कार में संगीत किसी न किसी रूप में निहित है। जन्म संस्कार से लेकर मृत्यु तक, संगीत हर संस्कार का अंश है। बालक के जन्म से ही माँ की लोरी से संगीत का प्रारम्भ हो जाता है।

उपरोकत्त शोध पत्र के शीर्षक से संभवतः यह प्रश्न उत्तपन्न हो की कैसे संगीत किसी संस्कृति का दर्पण है? तो इसी प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास इस शोध पत्र में किया गया है।

भारतीय संगीत की प्राचीनता वैदिक काल से स्पष्ट हो जाती है जिसमें सांगीतिक ग्रंथ, सामवेद के अतिरिक्त अनेक ऐसे ग्रंथों की रचना हुई जो उस समय में संगीत के प्रचार का अनावरण करते हैं।

भारतीय संस्कृति ने सदैव ही स्थिरता का अनुसरण किया है और यही गुण भारतीय संगीत पर भी लागू हुआ। भारत पर विदेशियों के आगमन तथा राजनैतिक उथल-पुथल से भारतीय संगीत की स्थिति भी प्रभावित हुई। जिसके परिणाम स्वरूप उत्तर भारतीय संगीत में कई नवीन सांगीतिक शैलियों का उद्गम हुआ। भारतीय संस्कृति में इतना हस्तक्षेप होते हुए भी भारतीय संगीत ने इन शैलियों को ऐसे आत्मसात किया कि वह भारत की ही धरोहर बन कर रह गईं।

भारत की इस ग्रहणशीलता की प्रवृति के कारण भारत में अन्य संस्कृतियों का जन्म भी हुआ।

भारतीय संस्कृति ऐसी संस्कृति है जिसमें सदैव कर्म को महत्व दिया गया है। इसी प्रकार भारतीय संगीत में भी अभ्यास यानि कर्म को अत्यंत आवश्यक माना गया है। कोई संगीत का विद्यार्थी संगीत को कितना भी सुन, समझ या उसके शास्त्र पक्ष का ज्ञान एकत्रित कर ले, परन्तु यदि वह इस पर रियाज़ नहीं करेगा तब तक वह संगीत की प्राप्ति नहीं कर पाएगा। इस प्रकार भारतीय संस्कृति का सिद्धांत 'कर्म ही पूजा है' संगीत पर भी लागू होता है।

भारतीय संस्कृति में सर्वशक्तिमान ईश्वर को अनेकों नामों से स्मरण किया जाता है। परन्तु विद्वानों की मान्यता है कि इन सब का मूल एक ही है। ईश्वर एक है, अडिग है, अमर है। इस प्रकार संगीत में असंख्य राग, गायन- वादन शैलियाँ, और असंख्य सांगीतिक विधाएँ हैं, परन्तु इन सब का मूल 'ध्वनि' अथवा 'नाद' है और इस नाद को विद्वानों ने ब्रह्मम रूप स्वीकार किया है। नाद ही प्राण तत्व है, नाद ही ईश्वर है। सम्पूर्ण जगत नादमय तथा नाद के अधीन है।

एतिहासिक साक्ष्यों से प्रमाणित होता है कि ईश्वर भक्ति भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। भारतीय संगीत को प्राचीन काल से ही ईश्वर भक्ति का साधन माना गया है। आदि काल से ही मानव ने ईश्वर के आवाहन हेतु ध्वनियों का प्रयोग किया। अपितु आज भी पूजा, आरती, भजन आदि के लिये संगीत का प्रयोग अनिवार्य है। भारतीय संगीत में साधना का परम-लक्ष्य प्राप्ति को ही माना है। यह सर्वमान्य है कि अनेक संतो ने संगीत को माध्यम बना कर परमानंद की प्राप्ति की है।

भारतीय संस्कृति का एक गुण यह भी रहा है कि भारतीय संस्कृति का मुख्य लक्ष्य मानव कल्याण रहा है। भारतीय संगीत भी प्रत्येक दृष्टि से मानव कल्याणकारी रहा है। प्रेम सदाचार, शांति, परोपकार, आदि गुण स्वतः ही किसी संगीत अभ्यार्थी में आ जाते हैं।

भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है कि इसने सभी को धर्म के प्रति सदभावना तथा अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता दी है। भारतीय संगीत में भी धार्मिक सदभावना तथा वैचारिक स्वतंत्रता प्रचुर मात्रा में देखने को मिलती है। यहाँ एक ओर गेय रचनाएँ गणेश, शिव, सरस्वति, दुर्गा, आदि की स्तुति के रूप में मिलती हैं तो दूसरी ओर करीम, अल्लाह की उपासना से सम्बंधित गेय रचनाएँ सप्रेम व आदर सहित गायी जाती हैं। हर धर्म से सम्बंधित गायक एवं वादक बिना कोई भेद-भाव किये एक परमात्मा का गुण गान करते हैं। यहाँ तक कि यह कलाकार संगीत की शिक्षा ग्रहण तथा प्रदान करते समय कोई धार्मिक या जातिय भेद-भाव भी नहीं करते। इसी धार्मिक सदभावना तथा वैचारिक स्वतंत्रता के कारण ही भारतीय संगीत अमर है।

संगीत न केवल संस्कृति के गुणों का अनुकरण कर उसे स्वयँ में ढ़ालता है अपितु संगीत संस्कृति का सहयोगी भी है। भारतीय संस्कृति में संस्कारों की क्रिया सम्पूर्ण करने हेतु विशेष नियम व विधियाँ हैं, परन्तु संगीत के अभाव में यह सब संस्कार एवं अनुष्ठान नीरस तथा अपूर्ण प्रतीत होते हैं। जन्म तथा विवाह संस्कार से सम्बंधित गीत तो भारत के प्रत्येक कोने में पाये जाते हैं। परन्तु मृत्यु के अवसर पर भी गीत गाने का विधान है। पुराने समय में व्यवसायिक रूदन गायिकाएँ बुलाई जाती थीं।

परम्पराओं का संगीत से अटूट संबंध है। भारतीय संस्कृति के एतिहासिक पहलू पर विचार करें तो ज्ञात होता है कि ऐसी असंख्य परम्पराएँ हैं जिनका संगीत से चोली दामन का साथ है। वैदिक काल में धार्मिक कृत्यों के अतिरिक्त अनेक अवसरों पर सांगीतिक कार्यक्रमों की प्रथा थी। ऐसे ही जनसाधारण में अनेक परम्पराएँ व उनमें संगीत की महत्ता पाई जाती है। गावों में दैनिक जीवन के प्रत्येक कार्य के साथ कोई न कोई गीत जुड़ा है। जैसे- स्त्रियों के चक्की पर गेहूं पीसने, कुएँ से पानी भरने, धान कूटने आदि से संबन्धित तथा पुरुषों के खेतों में बुआई करने, फसल काटने तथा अन्य कार्यों से संबन्धित गीतों की प्रथा भारत के ग्रामीण क्षेत्र में आज भी प्रचलित है। ये गीत ग्रामीण जनता के

मनोरंजन का साधन है। इसी प्रकार दैनिक दिनचर्या के अतिरिक्त विभिन्न ऋतुओं से संबन्धित गीत, फागुन गीत, कार्तिक स्नान, बसंत गीत, वर्षा गीत, इत्यादि अनेकों ऐसे गीत हैं जो भारतीय संस्कृति के परिचायक हैं।

जैसा कि पूर्व ही वर्णन किया जा चुका है कि संगीत वैदिक काल से ही सामाजिक उत्सवों का अंग रहा है। वर्तमान समय में भी प्रत्येक समारोह चाहे वह राष्ट्रीय हो, निजी हो, व्यावसायिक समारोह हो, यह सब संगीत के अभाव में नीरस प्रतीत होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि सामाजिक समारोहों का प्राण संगीत में निहित है।

सामाजिक समारोहों में संगीत के समावेश के अतिरिक्त विशेष सांगीतिक समारोहों व सम्मेलनों द्वारा भी संगीत ने भारतीय संस्कृति को ज़िंदा रखा है। इनमें कुछ मुख्य संगीत सम्मेलन, सवाई गंधर्व उत्सव (किराना), गुणीदास संगीत सम्मलेन (आगरा), हरिवल्लभ समारोह (जालंधर) इत्यादि। इन सम्मेलनों के माध्यम से प्रतिषठित कलाकारों के साथ-साथ नए कलाकारों को भी अपनी प्रतिभा को श्रोताओं के समक्ष रखने के अवसर प्राप्त होते हैं।

किसी भी संस्कृति की परिपूर्णता में संगीत का महत्वपूर्ण हाथ है। भारत में भले ही सांस्कृतिक विविधता पाई जाती हो परन्तु भारत के प्रत्येक कोने में संगीत एक ही है अर्थात संगीत एक से सात सुरों में संचारित होता है और संगीत सांस्कृतिक, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय एकता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अंततः हम कह सकते हैं कि संगीत, संस्कृति का प्रमुख अंश है। संगीत की शिक्षा प्रदान अथवा ग्रहण करने वाला प्रत्येक विद्यार्थी संगीत का विकास कर परोक्ष रूप से संस्कृति का विकास करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-:

1. भारतीय संगीतः शिक्षा और उद्देश्य- डॉ. पूनम दत्ता- राज पब्लिकेशन 4855/24 अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली-110009
2. भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं संगीत- अंजलि मित्तल- कनिष्क पब्लिकेशन डिस्ट्रीब्यूटरस अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली- 110002
3. सांस्कृतिक शिक्षा के उ. विकास में संगीत का योगदान- राज श्री- राधा पब्लिकेशन 4363ध्4। अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली-110002

संगीत-चित्रकला-मूर्तिकला-शिल्पकला-स्थापत्य कलाओं का क्रमिक विकास, अंतःसम्बन्ध तथा परस्परावलंबन विष्णुधर्मोत्तर पुराण के परिपेक्ष्य में

डॉ अपर्णा भट्ट
शोध निर्देशक

वेदांगी दांडेकर
शोध छात्रा

सार संक्षेप

भारतीय परंपरा में ललित कलाओं का महत्त्व अनन्य साधारण हमेशा ही रहा है। ललित कलाओं के अंतर्गत आने वाली पाँच कलायें संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला, शिल्पकला तथा स्थापत्य के विकास का एक निश्चित क्रम विष्णुधर्मोत्तर पुराण में उपलब्ध होता है। यह कलायें केवल अंतरसंबंधित ही नहीं अपितु एक दूसरे पर अवलंबित भी है। सबसे कम साधन सामग्री से लेकर अत्यधिक साधन सामग्री लगने वाली कलायें किस तरह विकसित हुई इसका अत्यंत विस्तृतपूर्ण विवरण इस पुराण में किया गया है जो की अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है। मनुष्य ने किस तरह ईश्वर दत्त साधनों का कलाओं के विकास के लिये उपयोग किया इसका सुंदर विवरण पुराण के तीसरे खण्ड में प्राप्त होता है। सर्व प्रथम भाषा जिससे गायन फिर वादन पश्चात नर्तन का विकास संगीत के अंतर्गत हुआ। क्योंकि नर्तन गायन तथा वादन पर निर्भर करता है इसलिए इन कलाओं का विकास क्रम महत्व पूर्ण प्रतीत होता है। नर्तकों को सामने रखकर फिर चित्रकला का विकास हुआ, चित्रकला से मूर्तिकला का, मूर्तिकला से शिल्पकला का तथा इससे स्थापत्य कला का जो आज सम्पूर्ण भारत के पुरातन मंदिरों में दृष्टिगोचर होती है। नर्तन कला या नृत्त को चित्रकला के विकास के लिये किस तरह उपयोग किया गया यह उजागर करना इस शोध पत्र का उद्देश है। नृत्त के विकास के पश्चात अन्य कलायें कैसे विकसित हुई, केवल आपस में इन कलाओं का सम्बन्ध ही नहीं बल्कि एक दूसरे पर निर्भरता भी है यह विष्णुधर्मोत्तर पुराण को आधार बनाकर इस शोध पत्र को प्रस्तुत किया गया है। विवेचनात्मक शोध पद्धति का जिसके लिये प्रयोग किया गया है।

बीज शब्द

विष्णुधर्मोत्तर, नृत्त, ललित कला, पुराण, चित्रकला, शिल्पकला

ललित कलाओं के सम्बन्ध की कथा

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के तीसरे खण्ड में राजा वज्र मार्कण्डेय ऋषि से पूछते है कि, देवताओं के पृथ्वी पर आना बन्द करने की वजह से अब क्या उपाय करना चाहिये? तब प्रश्न के उत्तर में ऋषि कहते है कि मनुष्य को मंदिर निर्माण कर उसमे देवताओं की प्रतिमा स्थापित कर के अर्चना करनी चाहिये। फिर मंदिर कैसे बांधने चाहिये ये सवाल उठता है, तब संगीत में नृत्त, नृत्त से चित्रकला, चित्रकला से प्रतिमा शास्त्र, प्रतिमा से शिल्पकला, तथा शिल्पकला

के ज्ञान से स्थापत्य कला को सीखा जा सकता है ऐसा मार्कण्डेय ऋषि कहते है। इस छोटीसी कथा में भारतीय ललित कलाओं का एक दूसरे पर अवलंबन स्थापित होता है। वैसे तो कई ग्रंथों और पुरणों में इन कलाओं का विवरण दृष्टिगोचर होता है परंतु जो क्रम और विकास विष्णुधर्मोत्तर पुराण में उपलब्ध है वह अन्यत्र कही भी नहीं है। इन सभी कलाओं का मध्य नृत्त दिखाई पड़ता है। गायन और वादन के शुरू होते ही मानव शरीर निसर्गतः थिरकने लगता है और नर्तकी या नर्तक की भवभंगिमाओं को देखे बिना चित्र बनाना भी असंभव है। नृत्यांगनाओं को मॉडल की तरह शिल्प बनाने के लिये इस्तेमाल किया जाता था। ओरिसा के कई मंदिरों में शिल्पकार के साथ नर्तकियों के नामोल्लेख भी प्राप्त हुये है। (1) उपरोक्त कथा प्रायोगिक स्तर पर भी अत्यंत महत्वपूर्ण प्रतीत होती है।

Image-1

ललित कलाओं का क्रमिक विकास

पुराण में जिस क्रम में ललित कलाओं का वर्णन उपलब्ध है वैचारिक तथा प्रायोगिक स्तर पर भी यह क्रम महत्वपूर्ण है।सर्व प्रथम मनुष्य ने भाषा का विकास किया भाषा से गायन फिर गायन का सौन्दर्य वृद्धिगत करने हेतु वाद्यों का निर्माण हुआ। फिर गायन वादन की नैसर्गिक उत्तेजना ने नृत्त को जन्म दिया। नृत्त की भावभंगिमाओं को आधार बनाकर चित्रकला का विकास हुआ 'विना तु नृत्त शास्त्रेण चित्रसूत्रम् सुदुर्विदम्'। चित्रकला की मदत से प्रतिमा शास्त्र का विकास हुआ, फिर शिल्पकला का और अंत में स्थापत्य कला ने जन्म लिया।

Image 2

इस तरह मंदिर निर्माण में नृत्त का ज्ञान अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करता है। पारुल दवे मुखर्जी ने अपनी टीका में नृत्त को सादृश्य, सत्य और अनुकृति को आधार मानकर चित्रकला से सम्बन्ध जोड़ा है।

Image-3

वे कहती हैं–'अन्य शिल्पशास्त्र ग्रंथों के साथ तुलना करने पर जैसे अपराजितप्राच्च्य, समारंगण सूत्रधार, चित्रलक्षण इत्यादि से विष्णुधर्मोत्तर में ललित कलाओं पर व्यापक दृष्टि से विचार किया है।

नृत्तशास्त्र की मुद्राओं को यथावत चित्रकला या चित्रसूत्र ने अपनाया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में नृत्तसूत्र का विवरण प्रस्तुत करने के बाद चित्रसूत्र के विवरण के प्रारंभ में ही पुराणकार कहते है –

"यथा नृत्ते तथा चित्रे त्रैलोक्यानुकृतिः स्मृता।"

(वि ध पु, तृतीय खण्ड, अ 35, श्लों 5)

अर्थात नृत्त में जिस प्रकार त्रिलोक्य की अनुकृति की जाती है वैसे ही चित्र में भी। सभी अंग प्रत्यंग के भावों को नृत्त की तरह ही दिखाया जाता है। तत् पश्चात् अंग प्रत्यंग के मान से ही पुरुष और स्त्रियों के प्रतिमा लक्षण के प्रमाणों का वर्णन किया गया है। त्रिमूर्ति और अन्य देवताओं की प्रतिमाओं के निर्माण का वर्णन पुराण में उपलब्ध होता है। इसी क्रम में आगे शिला परीक्षण आदि अर्थात शिल्प शास्त्र के विषयों का वर्णन प्राप्त होता है। अंत में भूमि परीक्षा, ब्रम्ह शिल्प ध्वज वर्णन, प्रतिष्ठा कल्प उद्धार, तोरण वर्णन इत्यादि स्थापत्य कला से संबंधित विषय आते हैं।[3] ललित कलाओंके क्रमिक विकास का यह विवरण अत्यंत महत्वपूर्ण दिखाई देता है। हालांकि विष्णुधर्मोत्तर पुराण के कालखण्ड पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है, परंतु इन कलाओं के विकास का यह सिलसिला निश्चित ही विस्तृत रहा होगा। ललित कलाओं विषयक विष्णुधर्मोत्तर का विवरण इतना सुव्यवस्थित व सारगर्भित है की इसे प्राचीन भारतीय कलाओं का विश्वकोश कहा जा सकता है।

ललित कलाओं का क्रम
संगीत (गायन, वादन, नृत्त)
चित्रकला
मूर्तिकला (प्रतिमा शास्त्र)
शिल्पकला
स्थापत्य कला

ललित कलाओं का अंतरसम्बन्ध

अपराजितपृच्छा में उद्धृत यह श्लोक देखिए –

तालप्रस्तारगीताद्यम् वादित्रैः स्याच्चतुर्विधम्
चित्रपट्टप्रभेदाश्च रेखा चित्र समुद्भवाः[4]

रेखा चित्र के विषय को प्रतिपादित करते हुये इस श्लोक में नृत्त शास्त्र का ही आधार लिया गया है। शिल्पकला के निम्न फोटो में भी नृत्त की मुद्राएं तथा वादन आदि का उदाहरण दृष्टव्य है। शिल्पकला का एक और ग्रन्थ समरांगण सूत्रधार में भी नृत्त शास्त्र के मुख कर्म का ही सहारा लेकर शिल्पनिर्माण का विवरण किया गया है यथा ऋजुस्थानमुखं यत्र तत्रान्यत् कण्ठतो अपि अधः। चित्रकला और शिल्पकला का सम्बन्ध इस तरह कई ग्रंथों में देखा जा सकता है। पूर्व में कई विद्वानों द्वारा इस विषय पर शोध भी किये जा चुके है। परंतु विष्णुधर्मोत्तर में जिस प्रकार क्रम के आधार पर वर्णन किया गया है वह अन्य किसी भी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं है। स्पष्टतः नृत्त के ज्ञान के बिना अन्य कलाओं को सीखना असंभव है कही अन्यत्र नहीं विदित होता। ललित कलाओं का आपस में इससे न केवल सम्बन्ध बल्कि एक दूसरे पर निर्भर होने के भी प्रमाण मिलते हैं। वर्तमान में ये कलायें भिन्न भिन्न शाखाओं के स्वरूप में विकसित हुईं वही पुराण काल में ये एक दूसरे के बिना असंभाव्य थी। शिल्पकला के बाद स्थापत्य कला के ग्रंथों में भी रंगमण्डप, नृत्तमण्डप आदि निर्माण के विधि प्राप्त होते है। पुराण के तीसरे खण्ड में नृत्तसूत्रम् के अध्यायों में पूर्वरङ्गविधि में वस्तु देवता पूजन का समावेश करना इन कलाओं के समकालीन तथा आपस में। सहयोगीन विकास को दर्शाता है।[6] स्थापत्य कला के विकास के बाद जब मंदिरों का निर्माण हो गया था तब नृत्त से ही ईश्वरोपसना करने को भी पुराणकार ने कहा है। डॉ प्रियबाला शाह ने अपने अंग्रेजी भाषांतर में लिखा है जो मनुष्य नृत्त से ईश्वरोपसना कर्ता है उसे ईप्सित वस्तु, मोक्ष का मार्ग प्राप्त होता है।[7] यहाँ पर उल्लेखनीय है की नृत्त को आधार बनाकर ही अन्य कलाओं का विकास हुआ है और मंदिरों के निर्माण के पश्चात् भी नृत्त से ही भगवान की आराधना करने की बात विदित है। नृत्यकला का मंदिरों से सम्बन्ध सर्व विदित ही है परंतु नृत्त को कलाओं के आरंभ से अंत तक जोड़ने का कार्य केवल इसी पुराण में मिलता है। कुमारस्वामी ने अपनी किताब में ऐसे कई यूरोपीय लेखकों के कार्यों की सूची दी है

जिनमे उपरोक्त कलाओं के विषय पर पुस्तके प्राप्त की जा सकती है।[8] यही नहीं भारत के कित्येक मंदिरों का निर्माण विष्णुधर्मोत्तर के प्रमाणों पर आधारित है। सारांश ये है के संगीत या इस संदर्भ में नृत्त, चित्रकला, मूर्तिकला, शिल्पकला तथा अंत मे स्थापत्य कला का विकास हुआ है। ये सभी कलायें परस्पर पूरक भी है परंतु वर्तमान में इन कलाओं की शाखाओं को अलग-अलग कर दिया है। आज जरूरी नहीं की चित्रकार को नृत्त का ज्ञान अवगत हो अपने-अपने विषय का ज्ञान ही कलाकार बनने के लिये पर्याप्त है। परंतु पौराणिक काल में ये कलाये एक दूसरे के बिना अपूर्ण थी अपितु एक दूसरे पर निर्भर भी थीं। यह एक गहन विषय है और भविष्य में पाँचों कलाओं पर आधारित अध्यायों का वैयक्तिक अध्ययन करके अंतरसम्बन्ध गहन स्वरूप में अध्ययनशील है। नृत्त शास्त्र की भवभंगिमाओ तथा मुद्राओं को प्रायोगिक पृष्ठ भूमी पर शिल्पशास्त्रादि से जोड़ने का काम किया जा सकता है। नृत्त या नाट्य में जिस तरह प्राकृतिक उपदानों को नारी के रूप में दिखाया जाता है वैसे ही अन्य कलाओं में भी दिखाया गया है।[9] जिस तरह मनुष्य के हाथ की पांचों उँगलिया भिन्न होते हुये भी एक दूसरे के बिना कार्य करने के लिये असमर्थ है वैसे ही भारतीय ललित कलायें है। पुराण में वर्णित ये आख्यान समस्त ललित कलाओं को एक ही नाद ब्रम्ह में अधिष्ठित कर देता है।[10]

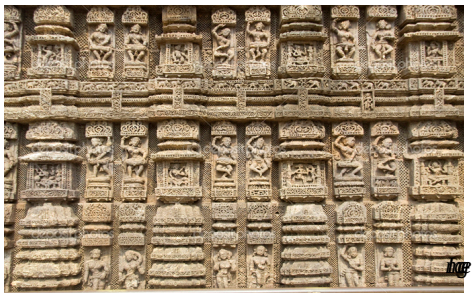

Image-4

संदर्भ सूची

1. दाधीच, डा पुरू, नृत्यसूत्रम्, बिन्दु प्रकाशन, 1990
2. Parul Dave Mukharji, The Citrasutra of The Vishnudharmottar Purana, IGNCA,2001
3. नारायण, श्री कपिलदेव, विष्णुधर्मोत्तरमहापुराणम् चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी, 2015
4. अपराजितपृच्छा, संकलन बी भट्टाचार्य, गायकवाड ओरिएंटल सीरीज, 1950
5. शुक्ला, डा दिजेन्द्रनाथ, समरांगण सूत्रधार, भारत भारती प्रेस, दिल्ली, 1965
6. Kramrisch, Stella PhD, The Vishnudharmottar (part III), Calcutta University press, 1928.
7. Shah, Dr Priyabala, Vishnu Dharmottar Puran, The New Order Book Co, Krishna Printery, Ahmedabad.
8. कुमारस्वामी, ए, 1025, बीबलोग्राफी ऑफ इंडियन आर्ट, म्यूजीअम ऑफ फाइन आर्ट्स बोस्टन
9. तिवारी अलका, विष्णुधर्मोत्तर पुराण में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद 1993 पृ 157
10. दाधीच, डा पुरू, नृत्य निबंध, बिन्दु प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2009, पृ 212
11. क्षेमराज, श्रीकृष्णदास, अथ विष्णुधर्मोत्तर महापुराण प्रारंभः एवेंकटेश प्रेस, 1929
12. Chatterjee satri,Asok, Visnudharmott-arapuranam, Varanaseya Sanskrit Vishvavidyalaya, Varanasi, 1971

Chittaiswaras – the Quintessence of Ragas and Ragaanga Ragas

Dr Poorna Vaidhyanathan

Lecturer
Department of Violin,
SV College of Music and Dance.

Sujaya Vijayakumar

Research Scholar
Department of Performing Arts Christ
(Deemed to be University)

Dr Muthulakshmi

Professor, Department of Performing Arts Christ (Deemed to be University)

Abstract

The aim of this study is to explore chittaiswaras of musical forms and study their style, structure and purpose in a composition with respect to the set rules of ragaanga ragas. Chittaiswaras are an important tool in the understanding of raga lakshana, raga bhava of common as well as rare ragas.

Popular kritis and Sangita Sampradaya Pradarshini kritis were studied and analysed.

Data was collected through various internet sources and audio clips. Professor Sambamurthy's "South Indian Music" provided lot of information on the nature and characteristics of compositions, kritis and chittaiswara. Senior violin artist and carnatic musician Shri R K Shriram Kumar sir helped in the selection of kriti and in the understanding of Sangita Sampradaya Pradarshini in terms of its importance as the earliest documented text in notation.

Chittaiswaras are of utmost importance in the understanding of the grammar of rare ragas. The mathematical patterns in it reveal the raga bhava and lakshana.

Many compositions originally devoid of chittaiswaras were incorporated with chittaiswaras much later and remains to be very much incomplete if rendered without them.

Keywords

chittaiswaras, raga, raga bhava, sangita sampradaya pradarshini, swaram

Musical composition is a manner in which musical writing is presented. It plays an important role in Carnatic music. In the words of Prof Sambamurthy about musical forms are:

"*The form of music that is studied and vocalised is called abhyasa gana. It*

is composed in a very simple manner so a beginner can learn it easily. It includes sarali varisai, janta varisai, alankaras, dhatu swaras, geetham, swarajati, varnam. Sabha gana include compositions that are predominantly sung at concerts. It consists of kalpita and manodharma sangitam. Tana varnam, keerthana, kriti, and javali are some of the musical forms in sabha gana."

"A lakshana prabandha is a musical composition wherein the sahitya tells in so many words the lakshana of the raga or elucidates a musical law, fact, or phenomenon"

A kriti consists of a pallavi, anupallavi and charanam. The pallavi consists of one or two lines. Anupallavi also consists of two lines and it is the second verse. The charanam usually consists of four lines and has the 'mudra' or signature of the author. Some kritis composed by Sri Muthuswamy Dhikshitar have a 'samashti'(last section of a song) charanam which is usually of 6 – 8 lines. The last two lines of this charanam are sung in madhyama kalam (double speed).

Chittaiswaras are added to kritis to elevate their musical value. "*This is a set solfa passage in 2 or 4 avartas if in adi tala, and 8 or 16 avartas if in chapu, triputa or rupaka tala and is sung at the end of the anupallavi and charana. Usually, it is set in madhyama kala. Chittaiswaras are crystallised kalpana swaras.*" according to Prof Sambamurthy. They bring out the colour and nuances of the raga of the composition, add beauty to it and highlight the signature of the ragam.

Classification of chittaiswaras – sama kala and madhyama kala

Sama kala - chittaiswaras are in the same tempo as the composition.

- Karunananda in Neelambari raga composed by Sri Kumara Ettappa Maharaja
- Neerajakshi in Hindolam raga composed by Sri Muthuswamy Dhikshitar

Madhyama kala - chittaiswaras are sung at a tempo faster than the pallavi and anupallavi

- Anathudanu Kanu in Jingala raga composed by Sri Thyagaraja
- Sri Kamakshi Kavave in Kalyani raga composed by Sri Shyama Sastry.

Some Interesting Features seen in Chittaiswaras

1. Makutam

In the kriti *Nimadi Challaga* in Anandabhairavi raga, the chittaiswara has a crown like ending called makutam. The makutam of the mukthayi swaram of the varnam *Viriboni* in Bhairavi raga has been composed skillfully.

Bilahari varnam, *Inthachowka* has interesting patterns in its chittaiswaras -

Taking the 5th chittaiswaram of the same as an example, we notice the following patterns:

P,drs,,,pdpmg,,,
R,gsr,,,Sndps,,,
Rsndg,,,pmgrd,,,
Sndpr,,,nsdnp,,,

In the last 2 avartas, the following patterns are seen:

Sss,ppp,dnp,mgr,P,,,S,,,R,,,G,,,

2. Palindromic Chittaiswaras

Another interesting feature the chittaiswaras of ragas that have

symmetrical arohana and avarohana (krama sampurna, krama shadava, krama audava) is that they can be sung forwards and backwards without offense to the raga bhava. It is said to be sung in the anuloma and viloma krama.

Examples of kritis:

- *Kamalambham Bhajare* (the second Kamalamba Navavarna kriti) in Kalyani raga, composed by Sri Muthuswamy Dhikshitar.
  srgmdn rgpd mdnß gß rß s nß rß gß nsn rs NnDdP
  Pd DnN ßs ß rnß s nß gß rn rsgndmdp ß gß rnd mgrs
- *Sadavinota Sadare* in Revagupti raga composed by Sri Muthuswamy Dhikshitar
  Swaram - rGp ds ßS rß gß R ßsDP Gpd pd ßS
  Graham – gMDdnrgmGrNDMdndnr
  Swaram – ßSdp dpG pDß s ßR ß gß r SdPGr
  Graham – rnd ndMdNr Gmgrn DMg

3. Chittaiswaras with Jathi

Example – *Ananda Natana Prakasham* - Kedaram raga - Misra chapu – Sri Muthuswamy Dhikshitar

1	2	3	4	5	6	7
] P	] n] n	_s tha	kaja	nutha	_s] n	] N
Jhum	tha r	tha _s		mg	mp	,n
mg						
thaja	nutha	ka m	gm	mp	ßsn	n tha
Jhum	,tha	ri p	,m	g tha	dhigi	nathom

Popular Chittaiswaras

Ranjani Mrudu Pankaja – Ranjani, Sriranjani, Megharanjani, Janaranjani composed by Thanjavur Sri Shankara Aiyyar set in Adi thalam

Ragam	1	2	3	4	5	6	7	8
Ranjani	_srg_s_s_n] d		_S_sr	gmdß s	,ßSß s	ndN	ndmg	,mg_s
Sriranjani	ßSNd	mgrg	M;	nDm	grc r	G;	mGr	_s_n_d_n
Megharanjani	Nßs	;nn	ßsßsnn	mmnn	M,n	;mm	nnmm	ggrr
Janaranjani	Ppm	Rgm	pmR	gmP	Nßsd	Pßsd	Pdp	mgrm

Ranjani

- Ranjani does not allow grs and it is compulsorily 'gsr' which is seen in the opening phrase of the Ranjani raga swaram.
- The ending is a combination of 3 times 5, that gives a sort of finish to the swaras : *S snd - Nndm - mgs*

Sriranjani

- The second and third swaras are repeated after the karvai, then the third and fourth swaras are repeated in a similar way:
  sn,dmgrgM;nd,mgrsrG;mGrsndn
- The above line may be sung with a small variation -
  sn,dmgrg**<u>mmm</u>**nd, mgrsr**<u>ggg</u>**mg, rsndn The swaras that have a longer karvai ';' come in 'threes'.

Megharanjani

- In addition to the given swara lines, the two lines are repeated in mandra sthayi.
- Except the first two swaras, all the swaras come in 'twos'. The first two swaras – N,S and M,N come in alternate lines in the madhya sthayi except for the third line which is in mandrasthayi.

Janaranjani

- PMR and GMP overlap creating an interesting pattern. The line ends in PMR making it recurrent with varying durations.
- In the second line, SDP is repeated twice with different duration – the first one being shorter than the second.

  P,pmr,gmPmr,gmp,

  N,**sdp,sdP,**dpmrgm

Nee Madi Challaga – Ananda Bhairavi – Adi – Sri Kavi Matrubhutayya

1	2	3	4	5	6	7	8
pdpßs	,ßsßs	ndpm	gr]sn	]S,m	grgm	pdmp	grgm
pdnp	,dmp	gmgd	pmgr	_sgrg	,mpm	grgg	M;
]Nsm	grgm	pmgm	grgm	gmpßs	,nsßg	ßsßs	N;
sgrßg	,ßmßgßm		ßgßrßsßg		ßrßsnd		
pßrßsn		dpdp	mgrc	grgm			

- pdpsp dnpg rgmp dmpg mgdp grgg dpdp

These zig-zag phrases are the essence of the raga. In the second and third avartas, M and N are used respectively to differentiate the avartas.

- In the last avarta the following pattern is noticed –

grs **grsndp** **rsn dp**d mgr - two patterns overlap here.

- Rishabham has mostly been used in the phrase g r g m. In a few places it has been used in r s r s and r s n d.

Ninne Bhajana – Nattai – Adi – Sri Thyagaraja

1	2	3	4	5	6	7	8
n]sr]s		;gm	gmpm	;mp	mpnp	;pn	mPm
gMr							
]sRr	Ggm	,mP	pDd	nßSn	Pmg	mPm	
gmr]s							

- This short chittaiswara captures the raga bhava of Nattai very effectively. In the first avarta the following pattern is seen -

  nsrs; gmgm pm;m pmpn p;pn

- In the second avarta, the swaras ascend with a pause on the second note in every doublet - sRrG gMmP pDdn

Chittaiswaras as seen in Sangita Sampradaya Pradarshini

Guruguha dhanyam – Balahamsa – Jhumpa – Sri Muthuswamy Dhikshitar

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
srP	mgrs	rmgr	srgs	RR	SG	pò ;	PòS	Rmg	,rgr
smp	dpßSL		ßrßmßgßr		ßsßrßgßs,ßsnp			pdnp	,pmr
srgs	SLnp	,mgr							

- The usage of the characteristic phrase is seen in the chittaiswara - Srmg rsrg Ssn This phrase is seen in the last avarta.
- Since rishabham is the jiva and nyasa swara according to Sangita Sampradaya Pradarshini, the characteristic phrases revolve around the rishabha. It is a lively raga with comparatively less gamakas.

***Kanchadalayadakshi* – Manohari – Adi – Sri Muthuswamy Dhikshitar**

1	2	3	4	5	6	7	8
ßS,s	ndpm	gmpn	dpmg	S,s	]n]dp]n		ssgs
gmpn							
ßS,s	nßsgßs		ßmßgßsn		dpnn	ßS,s	ndpm
gs]ns		gmpn					

- The kriti begins with the avarohanam. Usage of gandharam throughout the kriti is a characteristic of Manohari.
- The chittaiswara spans across the three sthayis and has a simple pattern. The laghu and dhrutam first start with S, s. The pauses in between the laghu and dhrutam elevates the chittaiswara.

***Sourasenesam* – Sourasena – Adi – Sri Muthuswamy Dhikshitar**

1	2	3	4	5	6	7	8
Srg	mdpd	mpmg	mgrg	gSG	,G	,Sp	mgrg
srgm	pDn	DN	ßSßrßm		ßgßrßgßs		
ßrßSn	dPm	Grg					

- The first and second avarta starts with the phrase – s r g. In the first avarta S is of long duration whereas in the second avarta, the gandharam of the previous avarta is of long duration.
- The chittaiswara dwells on the madhya sthayi mostly and the mel sthayi in a few phrases.

The word chittaiswara reminds one of swara passages that are breezy, brisk and the raga elements in a concise form that eventually brings out the beauty of raga, kriti, a guideline for kalpana swara singing for students and a glimpse of very mild musical calculations that never over take the aesthetics of the raga. The raganga ragas have certain characteristic phrases for each raga and the chittaiswaras are based on that. These phrases are unique for each raga. Many rare kritis have become quite obsolete today. Understanding the raga becomes difficult due to lack of information on it. The Chittaiswaras play an important role in the understanding of the nuances of these rare ragas. Apart from the rare ragas even well-known ragas which are in use today, have chittaswarams that have either some kind of significance or some aesthetic aspects but many are not sung today.

References

1. Madhav, A. (2021). Chitta Swaram in Carnatic Music Compositions. Retrieved 14 May 2021, from http://www.carnaticcorner.com/articles/chitta_swaram.htm
2. P, Sambamurthy (1950). *South Indian Music Vol 3* (pp. 138 - 144). Indian Music Publishing House.
3. P, Sambamurthy (1963). *South Indian Music Vol 4* (pp. 236 - 242). Indian Music Publishing House.
4. P, Sambamurthy (1963). *South Indian Music Vol 5* (pp. 183). Indian Music Publishing House.
5. Sangita Sampradaya Pradarsini in English. (2021). Retrieved 20 May 2021, from https://www.thehindu.com/news/cities/chennai/Sangita-Sampradaya-Pradarsini-in-English/article15411845.ece

संगीतात्मक कथक-बैले समूह नृत्य-शैली - एक अध्ययन

प्रो. सुधा सहगल
शोध निर्देशक

इशिता भट्नागर
शोध छात्रा

सार-संक्षेप

भारतीय संगीत में कथक नृत्य की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। उस समय इस नृत्य-शैली की प्रस्तुति मन्दिरों में होती थी जो कि इसके आध्यात्मिक स्वरूप की द्योतक है। कालान्तर में इसकी एकल प्रस्तुति समूह नृत्य-शैली के रूप में भी प्रदर्शित होने लगी। 20वीं शताब्दी में इस विधा में नवीन संयोजन और कल्पनाशील विचार बिन्दुओं का समावेश हुआ तथा कथक और बैले नृत्य-शैलियों के सम्मिश्रण से एक नवीन नृत्य-संरचना का उदय हुआ जो पौराणिक, धार्मिक व दार्शनिक कथाओं पर आधारित थी तथा इसे कथक-बैले के नाम से पारिभाषित किया गया तथा भारतीय संस्कृति में इसको 'कथक नृत्य-नाटिका' के नाम से संबोधित किया जाने लगा।

बीज शब्द

कथक-बैले, समूह-नृत्य, नृत्य-नाटिका, पाश्चात्य नृत्य-शैली, मंच प्रदर्शन

भारतीय संगीत का पारम्परिक स्वरूप सदैव से तीन अंगों पर आधारित माना जाता है जो कि गायन, वादन व नृत्य है। शास्त्रों में नृत्य को वाद्यों का अनुगमनकर्त्ता कहा गया है अर्थात् नृत्य 'वाद्य-वादन' अथवा 'गायन' का अनुसरण करता है। तात्पर्य ये है कि ये तीनों अंग अथवा कलाएँ परस्पर अटूट रूप से जुड़ी हैं। मानव जैसे-जैसे सभ्य होता चला गया उसकी भाषा व व्याकरण का विकास भी होता चला गया। तदनुरूप नृत्य-कला भी परिष्कृत होती चली गयी व उसकी भिन्न-भिन्न शैलियों का निर्माण व विकास भी होता चला गया। 'कथक नृत्य' इन्हीं विकसित शैलियों का एक रूप है जिसे उत्तर भारतीय नृत्य की विधाओं में शास्त्रीय नृत्य-शैली के रूप में प्रमुख स्थान प्राप्त है।

प्राचीनकाल में कथक नृत्य मंदिरों में प्रस्तुत किया जाता था, किन्तु उस समय कथक नृत्य का एकल रूप समक्ष आता था। कालान्तर में कथक नृत्य-शैली में जहां एक ओर अवनति हुई, वहीं दूसरी ओर विभिन्न नृत्य-शैलियों के समावेश से कथक नृत्य का नया रूप प्रकट हुआ।

संस्कृतिजन्य प्रभाव तथा समय के परिवर्तनशील चक्र सदैव गतिमान रहते हैं तथा नवीन-संयोजन और कल्पनाशील विचार-बिन्दुओं का सम्मिश्रण नवीन कलाओं को जन्म देते हैं। ऐसी ही एक नवीन संरचना 20वीं शताब्दी में 'कथक' और 'बैले' नृत्य-शैलियों के सम्मिश्रण से बनी, जिसको 'कथक-बैले' के नाम से परिभाषित किया गया। इस नवीन नृत्य-शैली में पौराणिक, धार्मिक अथवा दार्शनिक कथाओं पर आधारित नृत्य का समावेष हुआ। कथक-बैले एक ऐसी समूह नृत्य-शैली है जिसमें भारतीय एवं पाश्चात्य संगीतात्मक तत्त्वों का सृजनात्मक सम्मिश्रण अत्यन्त कलापूर्ण रीति से किया

जाता है, अर्थात् प्रस्तुत नृत्य-शैली दो संस्कृतियों के संगीतात्मक तत्त्वों के सम्मिश्रण से बनी है। इस नृत्य-शैली की द्विसांस्कृतिक संगीतात्मक व नाट्यात्मक रचनाधर्मिता न केवल भारतवर्ष अपितु विश्व में कीर्तिमान स्थापित कर रही है।

बैले नृत्य-शैली का जब सम्मिश्रण कथक नृत्य में हुआ, तो आधार तो यथावत् कथक का ही रहा तथा यह शैली बैले के समूह-प्रयोग व कथा-संयोजन के माध्यम से मंच पर चमत्कारपूर्ण रूप से अवतरित हुई। इसी संयोजन प्रधान समूह नृत्य के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को यदि दृष्टिगत किया जाए तो ज्ञात होता है कि भारतीय समूह नृत्य का उल्लेख हज़ारों वर्षों पूर्व के समूह-नृत्यों से किया जा सकता है और लोक में व्याप्त रास-नृत्य का भी लगभग यही स्वरूप है किन्तु "कथक-बैले" इस शैली के अंतर्गत जो कारक विद्यमान हैं वे भारतीय व पाश्चात्य समरूपता के परिणाम हैं।

Fig. 1 : Kathak, down the ages

भारतीय संस्कृति में कथक-बैले को 'कथक नृत्य-नाटिका' से संबोधित किया जाता है, अर्थात् जब किसी कथानक को नृत्य के माध्यम से रंग-मंच पर प्रस्तुत किया जाये, तो उसे नृत्य-नाटिका कहा जाता है। नृत्य-नाटिका चाहे भारतीय हो, या पाश्चात्य, दोनों में रचना-प्रक्रिया नृत्य की लयात्मक भाव द्वारा पूर्ण होती है। भारतीय नृत्य-कला के क्षेत्र में आधुनिक युग का प्रारम्भ पं. उदय शंकर से माना गया है। 20वीं शताब्दी में पं. उदयशंकर ने 'ओरिएन्टल डान्स' जैसी विधा का प्रारम्भ किया। उदयशंकर जी ने कई स्थानों में भ्रमण किया तथा उसी दौरान उन्होंने सुप्रसिद्ध बैले नर्तकी 'अन्ना पावलोवा' से प्रेरणा ली और अपनी नृत्य-शैली को एक नवीन रूप प्रदान किया तथा बैले नर्तकी के सहयोग से उदयशंकर जी ने बैले के तत्त्वों को भी अपनी नृत्य-शैली में सम्मिलित किया।

आधुनिक और प्राचीन कथानकों को नृत्य की भाषा प्रदान करते हुए उदयशंकर जी ने अपनी शैली में नृत्य के उन शास्त्रीय तत्त्वों को भी जोड़ा जो सौन्दर्य की वृद्धि करते थे। इस नृत्य-शैली में कथकली, मणिपुरी, भरतनाट्यम व लोक-नृत्यों का अध्ययन कर सबको उन्होंने अपने रंग में ढाला, जिसे 'ओरिएन्टल नृत्य' नाम से जाना जाने लगा।

कथक-बैले के क्षेत्र में 'मैडम मेनका' का नाम सर्वश्रेष्ठ माना गया है। उन्होंने कथक नृत्य को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित किया। यद्यपि वे कथक की एकल प्रस्तुति तो करती थीं, तथापि मुख्यरूप से उन्होंने सामूहिक नृत्यों की रचना की। उन्होंने विदेश में बैले-नृत्य का प्रस्तुतिकरण किया तत्पश्चात् उन्होंने, भारत में कथक-बैले जैसे 'कृष्णलीला' व 'देव-विजय' जैसे रचनाएं मंच पर प्रदर्शित कीं। कथक-बैले जैसी नवीन संरचना का श्रेय पूर्णरूप से 'मैडम मेनका' को ही जाता है। इसके पश्चात् भारत में नृत्य-नाटिकाओं का दौर चल पड़ा था जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पं. लच्छू महाराज पं. शम्भू महाराज, जैसे दिग्गजों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

पं. शम्भू महाराज जी की मृत्यु के उपरान्त् पं. बिरजू महाराज जी ने अनेकों अनेक कथक-बैले अर्थात् कथक नृत्य-नाटिकाओं की रचनाएं कीं। 'भारतीय कला केन्द्र' के अन्तर्गत 1955 में एक पृथक् विभाग की स्थापना हुई थी जिसको 'कथक केन्द्र' कहा जाने लगा। प्रस्तुत केन्द्र में एक 'बैले यूनिट' की स्थापना भी हुई जिसमें विभागाध्यक्ष का पद पं. बिरजू महाराज जी ने ग्रहण किया।

1955 में पं. बिरजू महाराज जी तथा अन्य कलाकारों के निर्देशन में 'गोवर्धनलीला' नामक कथक-बैले की रचना की गयी। 'भारतीय कला केन्द्र' द्वारा 1957 में 'मालती-माधव' नामक कथक-बैले का निर्देशन हुआ, जो पं. लच्छू महाराज

तथा पं. बिरजू महाराज की सर्वोच्च रचनाओं में से एक है। इस प्रकार से विभिन्न नृत्य-नाटिकाओं अर्थात् कथक-बैले की रचना हुई तथा देश-विदेशों में अत्यन्त ख्याति प्राप्त की। कालान्तर में 'कृष्णायन', 'बाण-बहादुर', 'रूपमती' जैसे कथक-बैले का प्रदर्शन हुआ तथा वर्तमान में भी विविध प्रकार के कथक नृत्य-नाटिकाओं की प्रस्तुति की जा रही है।

कथक-बैले शैली में कथक नृत्य के मुद्रा-संचालन, पद-संचालन, भाव-सम्प्रेषण का योगदान है तथा भारतीय सांगीतिक राग-प्रधान रचनाएं, गायन-शैलियां, वाद्य-प्रयोग इसे और अधिक प्रभावशाली बना देते हैं तथा पाश्चात्य बैले की कलात्मक प्रविधियां आकर्षक मुद्राएं, अधः पद मुद्रा, समृद्ध वाद्य-वृन्द, ऑपेराजन्य प्रभाव तथा उचित मंच-सज्जा जैसे तत्त्व इस शैली में सोने पर सुहागा का कार्य करते हैं। नाट्यकला के साहित्यिक पक्ष कथा के रूप में इस समूह-नृत्य को जीवन्त करते हुए सहगामी भारतीय पारम्परिक परिधान व सुरुचिपूर्ण शृंगार इसे अविस्मरणीय बना देते हैं अर्थात् कथक-बैले समूह नृत्य-शैली में प्रयुक्त संगीतात्मक तत्त्व के साथ नाट्य कला व साहित्य कला इतनी प्रबल हैं जिन्होंने कथक को नवीन दिशा प्रदान कर भारतीय व पाश्चात्य संस्कृतियों को एक सूत्र में बांध दिया है।

कथक नृत्य में बैले-नृत्य के असंख्य तत्त्व समाहित हैं, जैसे - कथा की प्रधानता, वाद्य-वृन्द का प्रचुर एवं सजीव प्रयोग, बहुल पात्रों की सहभागिता, परिधान का प्रभाव, अंग संचालन, मंचीय सज्जा का प्रभाव इत्यादि। सर्वप्रथम कथा की प्रधानता में कथक नृत्य-नाटिकाओं की विषय-वस्तु मुख्यरूप से धार्मिक, पौराणिक आदि विषयों तक ही सीमित थी। समयान्तर में बैले नृत्य के सम्मिश्रण के पश्चात् विषय वस्तुओं में परिवर्तन दृष्टिगत् होने लगे, जिसके कारण भारतीय कथक-बैले की कथायें धार्मिक, पौराणिक के साथ-साथ सामाजिक, ऐतिहासिक व प्रेम विषयक प्रसंगों पर भी प्रस्तुत होने लगीं।

Fig. 2 : Ananya - The unparalleled' a festival of group dance

वर्तमान में जयपुर घराने की सुप्रसिद्ध नृत्यांगना 'डॉ. गीता ठक्कर' द्वारा रचित Women empowerment नामक 'कथक-बैले' की अनेकों प्रस्तुतियॉ की जा चुकी हैं, जो कि सामाजिक विषय-वस्तुओं पर आधारित है। लखनऊ घराने की सुप्रसिद्ध कलाकार 'शोवना नारायण' द्वारा रचित कथक-बैले 'मुझे भी जीने दो', 'पद्मावती' आदि स्त्रियों की समस्याओं पर आधारित संरचनाएं हैं। प्रेम विषयक कथक-बैले की श्रेणी में 'सुजाता बैनर्जी डान्स कम्पनी' की निर्देशक 'सुजाता बैनर्जी' द्वारा रचित 'Swan Lake - The Famous Ballet Love Story' को कथक नृत्य के माध्यम से दर्शाया गया है।

कथा के पश्चात् कथक-बैले का मुख्य आधार वाद्य-वृन्द है। वैसे तो कथक नृत्य में सामान्यतः हारमोनियम और तबले जैसे वाद्यों का प्रयोग होता है, किन्तु आधुनिक काल से कथक-बैले में अनेक अन्य वाद्यों का भी समावेश हुआ है, जैसे - सितार, सरोद, मृदंग, वायलिन, मंजीरा, सिन्थसाइज़र आदि। यह सभी वाद्य कथक-बैले के प्रदर्शन के अभिव्यक्तिपूर्ण चरण में प्रभाव, गहराई और संरचना को जोड़ने का कार्य करते हैं। मंचीय सज्जा का प्रभाव कथक-बैले शैली पर पूर्णरूप से पड़ा है। वर्तमान समय में चित्रों अथवा प्रॉप्स जैसे - मंदिर, हवन-कुण्ड, अग्नि, पेड़, घर आदि का प्रयोग मंच पर किया जाने लगा है जिससे श्रोता, नृत्य-नाटिकाओं की प्रस्तुति को पूर्णरूप से अपने हृदय में ग्रहण कर पाते हैं। तात्पर्य यह है कि पाश्चात्य बैले नृत्य के तत्त्वों, जैसे रंग-मंच,

दृश्य/मंचीय सज्जा, प्रकाश-व्यवस्था इत्यादि का प्रभाव कथक-बैले नृत्य-शैली पर पड़ा है।

बैले-नृत्य के अंग-संचालन व पद-संचालन कथक नृत्य की हस्त मुद्राओं से काफी हद तक साम्यता रखते हैं। बैले के पद-संचालन में अधः पद मुद्रा (Toe point) का प्रयोग कथक नृत्य में भी किया जाता है। कथक और बैले में चक्कर का मुख्य रूप से काम किया जाता है। बैले ने उसे Pirouette कहते हैं और कथक में भ्रमरी। यह चक्कर एक पैर से लिये जाते हैं। भ्रमरियों का प्रयोग सर्वाधिक रूप से कथक नृत्य में दृष्टव्य है तथा यह विशेष लक्षण दोनों शैलियों को निकट लाता है।

Fig. 3 : St. Petersburg Ballet Theatre - La Bayadere - London

जिस प्रकार से बैले नृत्य-शैली का प्रभाव कथक पर पड़ा है, उसी प्रकार से भारतीय विषय-वस्तु का प्रभाव पाश्चात्य संस्कृति पर भी पड़ा है। La Bayadere (The Temple Dancer) एक पाश्चात्य बैले है जिसमें पौराणिक भारत में स्थापित एक महान योद्धा, सोलार और सुन्दर मंदिर नर्तकी 'निकिया' के बीच विनाशकारी प्रेम की कहानी है। La Bayadere की प्रस्तुति में विभिन्न अंग तथा पद-संचालन तथा पोषाक भारतीय नर्तकों से प्रभावित हुई है, जैसे पुरुषों के कमर पर दुपट्टा, सिर पर पगड़ी, आभूषण, स्त्रियों के घेर वाले कुर्ते, लम्बी चोटी, दुपट्टा, मुख-सज्जा आदि का उपयोग हुआ है। अंग-संचालन में गत् जैसी चाल, ताण्डव नृत्य जैसी छलांग आदि कथक नृत्य से मिलते-जुलते प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार से 'Laila rookh, 'The Talisman', 'Le Dieu Blue' नामक बैले-नृत्यों में भारतीय सभ्यता झलकती है, अतः यह दोनों नृत्य-शैलियाँ एक दूसरे की पूरक हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कथक-बैले सदृष समूह षैली अपने आप में एक ऐसी रचनात्मकता का प्रस्फुटन है, जिसमें द्विसांस्कृतिक मिश्रण, कथा-संयोजन व संचालन, कलापूर्ण नृत्य विन्यास, विविध राग-प्रधान सांगीतिक रचनाएं, मंचीय कलात्मक वाद्य-वृन्द प्रयोग, भावपूर्ण भंगिमाएं, उत्कृष्ट अंग व पद-संचालन तथा सुरुचिपूर्ण शृंगार व वेषभूषा सम्मोहन की भांति प्रभाव छोड़ती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

पुस्तकें :-

1. Banerjee, Projesh (1983), Indian Ballet Dancing -Shakti Malik Abhinav Publication, New Delhi,
2. दाधीच, डॉ पुरू, (1981), कथक नृत्य शिक्षा - भाग 1 एवं 2 - बिन्दु प्रकाशन, इन्दौर।
3. गर्ग, लक्ष्मी नारायण (1981) कथक नृत्य, संगीत कार्यालय, हाथरस।
4. खरे, शिखा (2005), कथक सौन्दर्यात्मक शास्त्रीय नृत्य गहन अध्ययन एवं चिन्तन, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

शोध-प्रबन्ध

- अजय कुमार सावाने "शास्त्रीय नृत्य कथक एवं समकालीन नृत्य के आहार्य अभिनय का तुलनात्मक अध्ययन एवं नवीन प्रयोग" कुरुक्षेत्र विश्व विद्यालय, कुरुक्षेत्र 1998
- माधुरी शर्मा "कथक नृत्य पर पश्चिमी देशों की नृत्य शैलियों का प्रभाव"वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान 2015
- Vidula Rajendra Kudekar "Khathak Nrityakan Jivan Kushalycha Vikas Vishaleshanatmak Adhyayan" Tilak Maharashtra Vidyapeeth, Pune, 2018

शोध पत्र

- "अष्टनायिका के कुछ कवित्त कथक नृत्य में प्रस्तुतिकरण हेतु"- श्रीमती राजेश्वारी वाय; संगीत कला विहार, गंधर्व निकेतन महाराष्ट्र - Vol 62. No. 7-12 Aug. 2009
- "कथक नृत्य में सृजनात्मकता" - श्रीमती मिकी वर्मा; संगीत, संगीत कार्यालय हाथरस - Vol 74. No. 7- 12 Aug. 2008
- "कथक नृत्य में भाव निरूपण" - राजश्री शाह; संगीत कला विहार, महाराष्ट्र - Vol 65. No. 1- 6 Jan. 2012
- "भारत की शास्त्रीय एकल एवं समूह नृत्य परम्परा - एक विचार" - राजश्री शाह; संगीत कला विहार, महाराष्ट्र - Vol 64. No. 1- 6, March 2011
- "नृत्य कला की उत्पत्ति" - डॉ. भगवान दास माणिक; संगीत कला विहार, महाराष्ट्र - Vol 64. No. 1- 6, September 2011

भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र में निरूपित ताल का स्वरूप

डॉ0 विशाल जैन

शोध निदेशक
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

स्नेह लता

शोध छात्रा
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सार-संक्षेप

भारतीय संगीत में ताल की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। ताल, लय को दर्शाने की क्रिया है। संगीत में विभिन्न स्वरो के बीच जो अन्तराल होता है, उसको नापने के लिये ताल की क्रिया आरम्भ होती है। लय एक नैसर्गिक प्रक्रिया है, जिसका विस्तार समस्त प्रकृति में सर्वत्र पाया जाता है। लय स्वयं एक अखण्डित एवं व्यापक क्रिया है। इसको वांछित अन्तराल में बांधकर क्रिया से दर्शाना ही 'ताल' कहलाता है।

ताल की उत्पत्ति छंद से हुई है अर्थात छन्द के ह्रस्व-दीर्घ अक्षरों के उच्चारण भेद से ही ताल के अंग (लघु, गुरु, प्लुत) की अवधारणा बनी एवं इन्हीं अंगों को आधारभूत मानकर शनैः शनैः ताल के स्वरूपों का विकास हुआ।

बीज शब्द

ताल, स्वरूप वर्ण, द्विकल, चतुष्कल।

प्राचीन ताल पद्धति एवं उनके स्वरूपों का निरूपण सर्वप्रथम भरतमुनि द्वारा संरचित 'नाट्यशास्त्र' ग्रन्थ में ही वर्णित है। जिसके 31 वें अध्याय में ताल विधान का वृहद रूप से विश्लेषण किया गया है।

भरतमुनि ने ताल के दो भेद का उल्लेख किया है।

(1) चतुरस्त्र
(2) त्र्यस्त्र

इन दोनों की उत्पत्ति या प्रकृति समान मानी गयी है। इन दोनों भेदों के द्वारा चच्चतपुट ताल एवं चाचपुट ताल का निर्माण होता है। चच्चत्पुट को चतुस्त्र एवं चाचपुट का त्र्यस्त्र ताल भी कहते है। इन दोनों का मिश्रण 'मिश्रताल' कहलाता है।[1] अर्थात इन दोनों तालों के मिश्रण के द्वारा षट्पितापुत्रक (मिश्रताल या पंचपाणिताल) की व्युत्पत्ति होती है। इसी प्रकार त्र्यस्त्र भेद के अनुसार सम्पक्वेष्टाक एवं उद्घट्ट ताल का निर्माण होता है। इन्हें ही परवर्ती शास्त्रकारों ने 'पंचमार्ग ताल' कहा एवं इसी आधार पर पांच जाति भेद का विकास हुआ। 2

1. चच्चत्पुट ताल
2. चाचपुट ताल
3. षट्पितापुत्रक ताल
4. सम्पक्वेष्टाक ताल
5. उद्घट्ट ताल

१. चच्चत्पुट ताल - यदि आरम्भ के दो वर्ण गुरू, एक लघु तथा अंतिम वर्ण प्लुत हो तो 'चच्चत्पुट' बनता है।[1]

जब तालो के रूप उनके नाम में प्रयुक्त अक्षरो की स्थिति के अनुसार होता है तो वह 'यथाक्षर' (एककल) कहे जाते है। अर्थात ताल का जैसा रूप होगा उस प्रकार ही यथाक्षर बनेगा।

चच्चत्पुट का यथाक्षर रूप-

ऽ ऽ । ऽ

च च्च त्यु टः[2]

इसमें अन्तिम अक्षर गुरू होता है परन्तु भरत के विधान में प्लुत माना गया है।

यथाक्षर को द्विगुणित मात्राये होने पर 'द्विकल' रूप बनता है।[3] जैसे- यथाक्षर के रूप (ऽ ऽ । ऽ) को दुगना करने पर द्विकल रूप बन जायेगा परन्तु इसमें यथाक्षर के दो अंतिम वर्णो को (लघु एवं प्लुत) दो गुरू बनाकर उसका दुगना करने पर ही द्विकल रूप दृष्टिगत होगा। जैसे- द्विकल- ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ, इसी प्रकार द्विकल रूप को दुगना करने पर चतुष्कल रूप बन जायेगा। जैसे- चतुष्कल-ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ

चच्चत्पुट ताल का स्वरूप-

यथाक्षर रूप में - ऽ ऽ । ऽ

द्विकल रूप में - ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ

चतुष्कल रूप में - ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ

विशेष- द्विकल रूप के हर पादभाग में दो-दो कलायँ एवं चतुष्कल के हर पादभाग में चार-चार कलाएँ होती है। कला का अर्थ गुरू से है।

पात भेद के अनुसार चच्चत्पुट के तीन भेद होते हैं।

1. सन्निपात, शम्या, ताल, शम्या- इसको सन्निपातादि कहा जाता है।
2. शम्या, ताल, शम्या, ताल- इसको शम्यादि कहा जाता है।
3. ताल, शम्या, ताल, शम्या- इसको तालादि कहा गया है।

भरत मुनि जी के अनुसार- द्विकल में निष्काम और प्रवेश का योग कहा है। इसकी व्याख्या में अभिनवगुप्त जी ने जो विधि बताई उसे सार रूप से इस तरह समझा जा सकता है। द्विकल के लिये हर पादभाग में पहले निष्काम और प्रवेश रखकर यथाक्षर की सशब्द क्रियाओं को यथाक्षर के अनुपात के अनुसार ही द्विकल में निःशब्द क्रियाओं की जगह रखना चाहिये। चतुष्कल के हर पादभाग में आवाप, निष्काम, विक्षेप और प्रवेश रखकर द्विकल की सशब्द क्रियाओं को यथास्थान रख देना चाहिये। द्विकल और चतुष्कल में सन्निपात अंत में रहता है।[1]

चच्चत्पुट की क्रियाविधि निम्नलिखित है-

	2	2	1	3
	चच्	चत्	पु	टः
यथाक्षर रूप में -	ऽ	ऽ	।	ऽ
	सं	श	ता	श
द्विकल रूप में -	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
	नि श	नि ता	शप्र	निस
चतुष्कल रूप में -	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ
	आनिविश	आनिविता	आशाविप्र	आनिविसं[1]

चच्चतपुट ताल में द्विकल रूप में 8 गुरू अर्थात 16 लघु होते है। चतुष्कल में 16 गुरू अर्थात 32 लघु होते हैं।

२. **चाचपुट ताल-** इस ताल में आरम्भ में एक गुरू फिर दो लघु तथा अन्त में एक गुरू के संयोग से 'चाचपुट' ताल बना।

चाचपुटः ताल का यथाक्षर स्वरूप-

ऽ । । ऽ

चा च पु टः[2]

द्विकल का रूप बनाते समय यथाक्षर के सभी मात्राओं को तोड़कर गुरू में परिवर्तित कर लिया जाता है। इस प्रकार चाचपुट के बीच की (ऽ ।। ऽ) दो लघु मात्राओं को मिलकर 1 गुरू बनाकर उनका दुगन करने पर द्विकल स्वरूप प्राप्त होगा जैसे-ऽऽ ऽऽ ऽऽ, इसी प्रकार द्विकल के रूप को दुगना करने पर चतुष्कल का रूप प्राप्त हो जायेगा जैसे- ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ

चाचपुट ताल का स्वरूप -

यथाक्षर रूप में - ऽ । । ऽ

द्विकल रूप में- ऽऽ ऽऽ ऽऽ

चतुष्कल रूप में- ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ

चाचपुट की ताल की क्रियाविधि -

	2	1	1	2
	चा	च	पु	टः
यथाक्षर रूप में -	ऽ	।	।	ऽ
	सं	श	ता	श
द्विकल रूप में -	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	
	नि श	ताश	निसं	
चतुष्कल रूप में -	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	
	आनिविश	आताविश	आनिविसं[1]	

द्विकल चाचपुट में 6 गुरू अर्थात 12 मात्राएं होती है तथा चतुष्कल में 12 गुरू अर्थात 24 मात्राएं होती है।

३. षट्पितापुत्राक ताल- इस ताल में प्रथम वर्ण प्लुत, दुसरी लघु, तीसरी और चौथी गुरू, पांचवा लघु और अंतिम प्लुत प्रयुक्त होता है।[2] (ऽ । ऽ ऽ। ऽ)

षट्पितापुत्रक ताल का यथाक्षर स्वरूप-

ऽ	।	ऽ	ऽ	।	ऽ
ष	ट्पि	ता	पु	त्र	कः[1]

इस ताल का द्विकल रूप बनाने के लिये यथक्षर के आरम्भिक वर्ण प्लुत(3) व लघु (1) एवं अंतिम दो वर्ण लघु(1) प्लुत (3) को दो-दो गुरू बना लिया गया है। जैसे- ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ और फिर यथाक्षर के इस रूप को दुगना करके द्विकल रूप बनाया गया। जैसे- ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ इसी प्रकार द्विकल के स्वरूप को दुगना कर चतुष्कल स्वरूप बनाया गया।

जैसे- ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ

षटपितापुत्रक ताल का स्वरूप-

यथाक्षर रूप में -	ऽ	!	ऽ	ऽ	।	ऽ
द्विकल रूप में-	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
चतुष्कल रूप में-	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ

भरतमुनि जी के अनुसार षट्पितापुत्रक में छः पात और छः अक्षर होते हैं। छः पात इस प्रकार है- सन्निपात, ताल, शम्या, ताल, शम्या तथा ताल।[2]

इन्होंने शुरू के 'षट्' एवं अन्तिम 'कः' अक्षर गुरू होते हुये भी प्लुत माना है।

षटपितापुत्रक ताल की क्रियाविधि -

	3	**1**	**2**	**2**	**1**	**3**
	ष	ट्पि	ता	पु	त्र	कः
यथाक्षर रूप में -	ऽ	!	ऽ	ऽ	।	ऽ
	सं	ता	श	ता	श	ता
द्विकल रूप में-	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
	निप्र	ताश	निता	निश	ताप्र	निसं
चतुष्कल रूप में-	ऽऽऽऽ		ऽऽऽऽ		ऽऽऽऽ	
	आनिविप्र	आताविश	आनिविता			
	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ			
	आनिविश	आताविप्र	आनिविंस[1]			

द्विकल षट्पितापुत्रक में 12 गुरू अर्थात 24 मात्राएं एवं चतुष्कल में 24 गुरू अर्थात 48 मात्राएं होती है। इन दोनों में एक पादभाग 4-4 मात्राओं का होता है तथा इन सभी की तालक्रिया भिन्न-भिन्न होती है।[2]

४. सम्पक्वेष्टाकः ताल- इस ताल के आरम्भ में प्लुत, मध्य में तीन गुरू तथा अन्त में प्लुत हो तो वह 'सम्पक्वेष्टाक' ताल कहलाती है।[3]

सम्पक्वेष्टाक ताल का यथाक्षर स्वरूप-

ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
स	म्प	क्वे	ष्टा	कः

सम्पक्वेष्टाक ताल को द्विकल रूप बनाने के लिये यथाक्षर रूप के 12 मात्रा एवं 5 विभाग को गुरू में परिवर्तित करने के लिये 12 मात्राओं को 6 विभाग में बदलकर प्रत्येक विभाग में गुरू हो जायेगा जैसे- ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ इस रूप को दुगना करने पर द्विकल रूप बनाया गया। जैसे- ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ इसी प्रकार द्विकल के स्वरूप को दुगना कर चतुष्कल स्वरूप बनाया गया। जैस- ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ

सम्पक्वेष्टाक ताल का स्वरूप-

यथाक्षर रूप में -	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	
द्विकल रूप में-	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
चतुष्कल रूप में-	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ

भरतमुनि के अनुसार पातो का क्रम- सन्निपात, शम्या, ताल, शम्या, ताल है।

सम्पक्वेष्टाक ताल की क्रियाविधि-

	3	2	2	2	3	
	स	म्प	क्वे	ष्टा	कः	
यथाक्षर रूप में -	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	
	ता	श	ता	श	ता	
द्विकल रूप में-	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
	निप्र	ताश	निता	निश	निप्र	निसं
चतुष्कल रूप में-	ऽऽ		ऽऽऽ		ऽऽऽऽ	
	आनिविप्र	आताविश	आनिविता			
	ऽऽऽ		ऽऽऽऽ		ऽऽऽऽ	
	आनिविश	आताविप्र	आनिविंस[1]			

द्विकल सम्पक्वेष्टाक में 12 गुरू अर्थात 24 मात्राएं है एवं चतुष्कल में 24 गुरू अर्थात 48 मात्राये होती है। सम्पक्वेष्टाक ताल एवं षट्पितापुत्रक की क्रिया विधि लगभग एक जैसी ही है इसलिये सम्पक्वेष्टाक ताल को पंचपाणि ताल का भेद माना जाता है।

५. उद्घट्ट ताल- भरतमुनि जी के अनुसार जब त्र्यस्त्र में सभी गुरू वर्ण (तीन गुरू) हो तो वह उद्घट्ट ताल कहलाता है।[2] मार्ग तालों में अन्तिम स्थान उद्घट्ट का माना गया है।

उद्घट्ट ताल का यथाक्षर स्वरूप-

ऽ	ऽ	ऽ
उ	द्घ	ट्टः3

उदघट्ट ताल में गुरू का प्रयोग हुआ है। इस ताल का द्विकल रूप बनाने के लिये यथाथर रूप को दुगना कर दिया जायेगा जैसे- ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ इसी प्रकार द्विकल रूप को दुगना करने पर चतुष्कल रूप प्राप्त हो जायेगा जैसे- ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ

उद्ऽाट्ट ताल का स्वरूप-

यथाक्षर रूप में -	ऽ	ऽ	ऽ
द्विकल रूप में-	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
चतुष्कल रूप में-	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ

भरतमुनि जी के अनुसार इनकी ताल क्रिया- निष्काम, शम्या, शम्या होगी। इस ताल में यथाक्षर में निःशब्द क्रिया का प्रयोग किया गया है।

उद्घट्ट ताल की क्रियाविधि-

	2	2	2
	उ	द्घ	ट्टः
यथाक्षर रूप में -	ऽ	ऽ	ऽ
	नि	श	श
द्विकल रूप में-	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
	निश	ताश	निसं
चतुष्कल रूप में-	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ
	आनिविश	आताविश	आनिविस[1]

द्विकल उद्घट्ट में 6 गुरू अर्थात 12 मात्रायें एवं चतुष्कल में 12 गुरू 24 मात्राऐं होती है। उद्घट्ट एवं चाचपुट ताल की क्रियाविधि लगभग एक जैसी होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- नाट्यशास्त्र (भाग-4)-आचार्य भरत, व्याख्याकार-शुक्ल शास्त्री बाबूलाल, चौखम्भा संस्कृत संस्थान के 37/116, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी पुर्नमुद्रण वि.स.-2065
- नाट्यशास्त्र का संगीत विवेचन-दधीच डॉ. पुरू
- भारतीय संगीत में निबद्ध ताल, गीतक, प्रबन्ध, छंद और ध्रुवा का लक्षण-लक्ष्मूलक अध्ययन-चौधरी सुभद्रा, राधा पब्लिकेशन्स
- ताल वाद्य परिचय- पटेल जमुना प्रसाद, मुद्रक एवं प्रकाशन -प्रिया कम्प्यूटर्स खैरागढ़ (छ.ग.) 491881
- अष्टोत्तर शत ताल लक्षणम्-दधीच पुरू

संगीत के परिप्रेक्ष्य में शिक्षण व संस्थागत प्रणाली : एक अध्ययन

डॉ. लता

निर्देशिका
सहायक प्राध्यापक, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, जलंधर
जलंधर

रमनदीप

शोधार्थी,
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी,

सार-संक्षेप

बीसवीं शताब्दी विज्ञान और तकनीकी युग की द्योतक है, जो जीवन के हर क्षेत्र में परिवर्तन की साक्षी रही है। परिवर्तन चाहे जीवन-शैली में हो, विचारों में, मूल्यों में या फिर शिक्षा में। भारतीय शिक्षण पद्धति व शिक्षण संस्थानों ने बदलाव की इस प्रक्रिया के फलस्वरूप नए विषयों को आत्मसात् कर नई संभावनाओं को जन्म दिया, जिसमें संगीत की शिक्षण संस्थानों ने बदलाव की इस प्रक्रिया के फलस्वरूप नए विषयों को आत्मसात् कर नई संभावनाओं को जन्म दिया, जिसमें संगीत की शिक्षण संस्थानों का महत्व अक्षुण्ण है। संगीत रूपी अतुलनीय संपत्ति को सुरक्षित रखने का उत्तम कार्य शिक्षण संस्थानों ने किया है, जहां पर गायन, वादन और नृत्य के प्रतिष्ठित कला मर्मज्ञों को उनकी कला को जानने, समझने, पढ़ने और सीखने का अवसर उपलब्ध होता है। संगीत के प्रवाह को जनसाधारण में प्रवाहित कर इन शिक्षण संस्थानों के घरानों की प्रतिष्ठा के साथ-साथ एक साधारण व्यक्ति की संगीत के प्रति जिज्ञासा और सर्मपण की भावना को भी सार्थकता दी।

बीज शब्द

शिक्षा, घराना, संगीत-शिक्षण, प्रादुर्भाव, संगीतज्ञ, शिक्षण संस्थान, प्रणाली

व्यक्ति के व्यक्तित्व के पूर्णरूपण विकास में शिक्षा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शिक्षा हमारे जीवन को एक अलग और व्यापक दृष्टिकोण देती है। इसके माध्यम से व्यक्ति मात्र विषय-विशेष से अवगत न होकर जीवन की सोद्देश्यता से भी अवगत होता है। शिक्षा शब्द संस्कृत की 'शिक्षा' धातु से बना है, जिसका अर्थ है- सीखने सिखाने की क्रिया।'' शिक्षा का व्यापक अर्थ एक ऐसी सोद्देश्य प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत मनुष्य अपने ज्ञान में वृद्धि करता हुआ सभ्यता, संस्कृति और योग्य नागरिक होने का पाठ पढ़ता है, वहीं संकुचित अर्थ में व्यक्ति विद्यार्थी रूप में विद्यालय या महाविद्यालय में निश्चित पाठ्यक्रम को पढ़कर परीक्षा उत्तीर्ण करता है। अतः संगीत के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा एक ऐसे सशक्त माध्यम के रूप में दृष्टिगोचर होती है, जिसने इस शक्ति को अपने व्यापक और सकुंचित दोनों अर्थों में सार्थक किया है। अन्य शब्दों में सांगीतिक शिक्षा व्यक्ति के आत्मिक परिष्कार के साथ-साथ समाज को नैतिक उत्कर्ष की

ओर उन्मुख होने हेतु प्रेरित भी करती है। वही ''संस्थान में साहित्य कला विज्ञान आदि की उन्नति के लिए अथवा इनका शिक्षण देने हेतु स्थापित संस्था का भाव रहता है।''

संगीत एक कला के रूप में हमारे जीवन में अवतरित हुआ, वही शिक्षण ने इस महती कला को जन-जन तक पहुंचाया। प्राचीन समय पर यदि एक विहंगम दृष्टि डालें तो ज्ञात होता है कि संगीत शिक्षण की परम्परा तब से ही प्रचलन में थी। जनश्रुति के अनुसार श्री ब्रह्मा जी द्वारा महामुनि भरत को 'नाट्यवेद' की शिक्षा देना, महामुनि भरत द्वारा अपने पुत्रों को शिक्षित करना, रामायण काल में भगवान् श्री राम व रावण दोनों का साम संगीत का ज्ञाता होना, बौद्ध काल में नृत्य व युद्ध की शिक्षा और जैन धर्म में भिक्षुओं का संगीत शिक्षा प्राप्त करना इस बात का प्रमाण है। आगे चलकर गुरू-शिष्य परम्परा की यह शिक्षण पद्धति एक सुव्यवस्थित रूप में घराना-पद्धति के माध्यम से अस्तित्व में आई। 'वर्ग' शब्द का द्योतक 'घराना' भारतीय संगीत की ऐसी विशेषता है जो कि विश्व के अन्य किसी संगीत के इतिहास में नहीं मिलती। इस बात में कोई अतिश्योक्ति नहीं कि यदि घरानों की परम्परा नहीं होगी तो भारतीय संगीत की अमूल्य निधि को सुरक्षित रख पाना संभव नहीं होता। भारतीय संगीत का इतिहास देखों तो पता चलता है कि मध्यकाल के अन्तिम चरण में इसकी उत्पत्ति हुई। डॉ. कृष्णराव पंडित के अनुसार, 'शाताब्दियों या बहुत पुरानी परम्परा, उच्च कोटि के गुरू और कई पीढ़ियों की गुरू-शिष्य परम्परा सब मिलाकर एक घराना बनता है।'' अतः घराना संगीत जगत में एक ऐसी परम्परा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ, जिसने संगीत के संरक्षण, विकास से साथ-साथ संगीत-शिक्षण के क्षेत्र में भी अहम व प्रधान भूमिका निभाई।

यद्यपि संगीत- शिक्षण हेतु विभिन्न घराने यथा ग्वालियर, आगरा, पटियाला, किराना, इंदौर आदि श्रेष्ठता की पहचान हैं और इन घरानों के कलाकार स्वयं में वरेण्य संस्थाएं तथापि संगीत को आम लोगों जैसे विद्यार्थी या शोधार्थी वर्ग तक पहुचाने का कार्य संगीत शिक्षण संस्थाओं ने बखूबी किया। शास्त्रीय संगीत को साधारण जनता तक प्रेषित करने हेतु शिक्षण संस्थाओं का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने लोगों में शास्त्रीय संगीत के प्रति आकर्षण, जागरूकता और सीखने की ललक को पैदा किया।

संस्थागत शिक्षण के प्रादुर्भाव पर दृष्टिपात करें तो ''प्राचीन काल में संगीत शिक्षा सामान्य विद्या मन्दिरों में तथा संगीत शालाओं में दी जाती रही।'' वही आधुनिक काल में ''19वीं शताब्दी में अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ ही सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली के पाश्चात्यकरण के प्रारम्भ होने पर संगीत विद्यालयों एवं संस्थानों की स्थापना के सम्बन्ध में छुटपुट प्रयास प्रारम्भ हुए। मानविकी एवं विज्ञान के साथ-साथ ललित कलाओं एवं संगीत की शिक्षा भी गुरूकुल प्रणाली के स्थान पर संस्थानों या विद्यालयों में सामूहिक रीति से प्रारम्भ हुई।'' संगीत को संस्थानों की परिधि में लाने का श्रेय जिन महानुभावों को दिया जाना चाहिए, उनमें उस्ताद मौलाबख्श, पण्डित आदित्यराम, पण्डित विष्णु नारायण भातखण्डे और पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर सदैव अग्रणी रहेंगे। संगीत जगत पण्डित विष्णु नारायण भातखण्डे और पण्डित पलुस्कर जी के अथक प्रयासों के लिए उनका हमेशा ऋणी रहेगा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात संगीत विषय के रूप में विश्वविद्यालयों तक भी पहुंचा। फलस्वरूप संगीत विभागों की स्थापना हुई और इन विभागों के अन्तर्गत स्नातक, स्नातकोत्तर, कला निष्णात, विद्यावाचस्पति इत्यादि की उपाधियों का भी आरंभ हुआ। विश्वविद्यालयों में संगीत विषय ने केवल उपाधियां ही नहीं अपितु विद्यार्थियो को आलोचक, शोधार्थी, शिक्षक, संगीत निर्देशक बनने के अवसर भी प्रदान किए। इतना ही नहीं व्याख्यान, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार, सम्मेलन, वर्क शॉप आदि का आयोजन विद्यार्थियो को संगीत की नई उपलब्धियों की प्राप्ति हेतु प्रेरित करता रहता है।

शिक्षण संस्थानों में शोध हेतु विद्याथियों को अवसर दिए जाते हैं। उनके द्वारा लिखे गए शोध-ग्रन्थ संगीत जगत की अमूल्य निधियों के सरक्षण व आने

वाली पीढी तक हस्तांतरित करने में अपना योगदान देते है इस संदर्भ में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दी जाने वाली छात्रवृत्तियां जैसे राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा, इंदिरा गांधी छात्रवृत्ति योजना, राजीव गांधी छात्रवृत्ति योजना आदि भी सराहनीय प्रयास हैं। ''क्रियात्मक पक्ष के अन्तर्गत शिष्यों को मंच प्रदर्शन के सुअवसर मिलते है, जिसके द्वारा वे अपनी कला को श्रोताओं के सामने प्रस्तुत करते हैं।'' यह प्रस्तुति युवक समारोहों के आयोजन के माध्यम से भी होती है, जो 'ज़ोनल 'इंटर ज़ोनल' 'इंटर यूनिवर्सिटी, व 'राष्ट्रीय स्तर' पर वर्गीकृत होता है।

संगीत के प्रचार-प्रसार में जो शिक्षण संस्थाएं सराहनीय कार्य कर रहीं है उनमें से गांधर्व महाविद्यालय, माधव संगीत महाविद्यालय (ग्वालियर), प्रयाग संगीत समिति (इलाहाबाद), भातखण्डे विद्यापीठ (लखनऊ), प्राचीन काल केन्द्र (चण्डीगढ़), संगीत एवं ललित कला संकाय (दिल्ली विश्वविद्यालय), विश्व भारती शांति निकेतन, रवेन्द्र भारती विश्वविद्यालय (कलकत्ता), बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (वाराणसी), नेशनल सेंटर फार द परफार्मिंग आर्ट्स (बम्बई), यूनिवर्सिटी म्यूज़िक सेंटर फार द परफार्मिंग आर्ट्स (बम्बई), यूनिवर्सिटी म्यूज़िक सेंटर (बम्बई), कॉलेज ऑफ इण्डियन म्यूज़िक डांस एवं ड्रामा (बड़ौदा), पंजाबी विश्वविद्यालय (पटियाला), कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, पंजाब यूनिवर्सिटी (चण्डीगढ़), शंकर गन्धर्व महाविद्यालय (ग्वालियर), अलाउद्दीन खां संगीत अकादमी (भोपाल) श्री राम भारतीय कला केन्द्र (नई दिल्ली), इंदिरा गांधी संगीत विश्वविद्यालय (खैरागढ़), संगीत रिसर्च अकादमी (कोलकाता), राजस्थान विश्वविद्यालय (जयपुर), महार्षि दयानंद विश्वविद्यालय (रोहतक) इत्यादि के नाम लिए जा सकते है।

वर्तमान समय में संस्थागत शिक्षण प्रणाली में संगीत को व्यवसायोन्मुखी बनाकर एक अलग पहचान दी है, जिसे आधुनिक तकनीक व जनसंचार के माध्यमों ने इसके क्षेत्र को और भी व्यापक बना दिया है। इसके अन्तगर्त किसी भी साधारण विद्यार्थी द्वारा नियमित शुल्क देकर न केवल सांगीतिक शिक्षा ग्रहण की जा सकती है बल्कि पुस्तकालयों की सहायता से संगीत जगत की महान विभूतियों उनके जीवन परिचय, शास्त्रकारों, ग्रंथाकारों के संदर्भ में अमूल्य जानकारी भी प्राप्त की जा सकती है। इतना ही नहीं सांगीतिक शिक्षण संस्थान वरेण्य संगीतज्ञों को श्रवण करने का अवसर भी प्रदान करते हैं। छात्रों के पास शिक्षा प्राप्ति की अवधि तो निश्चत होती है। परन्तु उसमें प्रयोगात्मक शिक्षण के साथ सैद्धांतिक शास्त्र के अन्तर्गत श्रुति, नाद, ग्राम, मूर्छना, जातिगान, प्रबन्ध गान, सामगान, राग-परिचय, अलंकार, स्वर, स्वर के प्रकार संगीत की विविध, गायन शैलियां, ध्रपद, धमार, ख्याल, तराना, ठुमरी, दादरा, टप्पा को अतिरिक्त संगीत का इतिहास, संगीत की उत्पति, घरानों की उत्पत्ति, घरानों के संगीताकार, विशेषताएं आदि का अध्ययन करने का अवसर भी प्राप्त होता है इसी के साथ-साथ विभिन्न गुणीजनों से सीखने का प्रश्न करने का और अपनी शंकाओं का समाधान करने का मौका प्राप्त होता है।

संगीत की संस्थागत शिक्षण प्रणाली ने संगीत के प्रचार-प्रसार के साथ ही विद्यार्थियों के लिए रोज़गार संबंधी कई मार्ग, खोले है इनमें विज्ञापन संगीत और धुने, पार्श्व संगीत, फिल्मी संगीत, संगीत निर्देशन मुख्य रूप से आता है। इसके अलावा वाद्य-वादन, सहगान, समूहगान रेडियो और दूरदर्शन मे प्रचलित हैं। वही संगीत पत्रकार, टी.वी चैनलों में आयोजित प्रतियोगिताएं वाद्य निर्माता, कम्पोजिंग, ऑडियो इंजीनियर, साऊड रिकार्डिंग, म्यूज़िक थेरेपिस्ट आदि कई ऐसे विकल्प है, जिनका संगीत के विद्यार्थी चुनाव कर सकते है।

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि संगीत की संस्थागत शिक्षण प्रणाली ने स्वयं की एक सुदृढ़ पहचान बनाई है। परम्परागत रूप में जहां संगीत के प्रयोगात्मक पक्ष को महत्व दिया जाता है, वहीं संस्थागत शिक्षण में संगीत को शास्त्रपक्ष को पुष्टता प्रदान की जाती है। देखा जाए तो आज संगीत को सभी पहलुओं पर कार्य हो रहे है, जो संस्थागत शिक्षण प्रणाली की एक विशेष उपलब्धि है इन

संस्थाओं का उद्देश्य शास्त्रीय संगीत के प्रति सकारात्मक भाव पैदा करना, विद्यार्थी के अन्दर संगीत की पैनी समझ पैदा करना और उसे एक विश्लेषक की दृष्टि देना भी है। एक संगीत के छात्र के लिए सबसे बड़ा अवसर विभिन्न घरानों से शिक्षा प्राप्त संगीतज्ञों से विद्यार्थी के रूप में सीखना होता है, जो केवल संस्थागत शिक्षण प्रणाली के माध्यम से ही संभव है। अतः संगीत के परिप्रेक्ष्य में जिस ध्येय को लेकर शिक्षण संस्थानों ने कार्य का आरंभ किया था, उस में वह सफल सिद्ध हुई है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. अरूण गुप्ता, डॉ उमा टण्डन, उदयीमान भारतीय समाज में शिक्षक, अलोक प्रकाशन लखनऊ, 2000, पृ. 03
2. संगीग पत्रिका (संगीत संस्था), अंक- जनवरी फरवरी, 1989, पृ. 05
3. डॉ. कृष्णराव पंडित 'ग्वालियर घराना' संगीत पत्रिका जुलाई 1966, पृ. 25
4. डॉ. शरतचन्द्र श्रीधर परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2006, पृ. 133
5. डॉ. अमेरश चन्द्र चौबे, संगीत की संस्थागत शिक्षण प्रणाली, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, 1988, पृ. 21
6. ऋतु कौशक, संगीत मासिक पत्रिका, लेख संगीत की शिक्षण प्रणाली का प्रारम्भ एवं मंच प्रदर्शन का योगदान, जून-2012,संगीत कार्यालय, हाथरस, उत्तर प्रदेश, पृ. 47-48

Effectiveness of Gurbani Sangeet on Mental Health: A Survey Study

Aman Kaur

(Ph.D. Research scholar, Department of Music, Guru Nanak Dev University, Amritsar, Punjab (India)

ABSTRACT

Aim: – The purpose of this research paper is to find the effect of Gurbani Sangeet on mental well-being and relief from stress with the use of Gurbani sangeet. **Methods: -** researcher has used the online survey method with the help of google forms. **Sampling-** The researcher has used random sampling for this work. **Results–** Results show that Gurbani from the Shiri Guru Granth Sahib gives a positive effect on mental health. According to this survey,95.3% of people know Gurmat Sangeet, daily listeners to Gurmat sangeet are 47.7% and frequently listeners are 43% & other options are mentioned in the Graph. 82.2% of people feel calm when they listen to Gurmat Sangeet. According to the graph, 85% of the people have strongly agreed that Gurbani of Shri Guru Granth Sahib inspires everybody to stay away from vices. Gurmat sangeet has a therapeutic effect on the human mind, 75.7% of people have strongly agreed with this. Gurbani is considered as a good source of positivity and healthy lifestyle, 85% of people give us a good response.

Keywords

Gurbani, Mental health, Gurmat Sangeet, Music, effectiveness.

INTRODUCTION

MENTAL HEALTH

Mental health is the ability that helps us adjust to the difficult and difficult situations of life. Mental health increases peace of mind, effectiveness and happiness, contentment in life, and strengthens our resolve. Fitness depends on both our body and mind, that is, the ability to maintain the dexterity and consistency of both body and mind, to give life the ability to run in a rhythm. Good mental health maintains harmony in one's interactions with friends, family, society, and enhances self-esteem, self-confidence. Mental health is an essential part of life, which plays a role in maintaining good social health and intellectual abilities of human beings. It also helps in proper social development and socialization. Human beings also

need a lot of mental health to adopt moral values. Only a person with good mental health can control his emotions and adjust his strength according to social and moral values. Only a mentally healthy person is able to adapt properly to his environment, maintain consistency, and achieve the goals of life. One should keep positive thinking in one's mind. According to the World Health Organization (WHO), mental health is "a state of well-being in which the individual realizes his or her own abilities, can cope with the normal stresses of life, can work productively and fruitfully, and is able to make a contribution to his or her community"[1]

At present time in everybody's life there is a lot of stress due to so many problems (related to education, business, family, social etc) and disorders (stress, anxiety, depression, insomnia, fear, etc). When it has been going on for a very long time and the problem is not solved then it has a profound effect on the mind. Due to this many human beings lose their mental balance and fall prey to mental disorders and diseases. Mental imbalance causes of mental disorders such as stress, anxiety, depression, insomnia, poor mental balance etc. "This can be said this is a type of acute or strong and fast change in outer environment due to which there is the change in patients tolerating power. This takes the form of physical or mental disorders. Process of Stress In human beings, a nervous system under stress produces biochemical substances (e.g., epinephrine, norepinephrine, endorphin, P-encephalin, hormones etc.) which are either more or less. these substances result in changes in physiological functions and person develops disorder with many symptoms" [2] Numerous epidemiological studies have tried to define the effects of social, workplace and lifestyle on stress, health and wellbeing.[3][4]"Indeed, job stress is by far the major source of stress for American adults and has escalated progressively over the past few decades. Increased levels of job stress as assessed by the perception of having little control but many demands have been demonstrated to be associated with increased rates of heart attack, hypertension, obesity, addiction, anxiety, depression and other disorders." [5] Causes of Stress**:-** Genetic constitution and favorable environment makes a person more prone to many disorders. The events which greatly affect a person are death of a close relative, divorce, martial maladjustment, financial loss, unemployment, marriage, retirement, loss of job, change in job, legal action, any physical or mental disorder, failure in examination or love. Some professions are themselves stressful e.g. police, drivers. physicians, rulers, students etc. "People often experience a general state of worry or fear before confronting something challenging such as a test, examination, recital, or interview. These feelings are easily justified and considered normal. Anxiety is considered a problem when symptoms interfere with a person's ability to sleep or otherwise function. Generally speaking, anxiety occurs when a reaction is out of proportion with what might be normally expected in a situation"[6]Decrease in attention, memory and power of decision making, phobia of some disease or death, tension, restlessness, sleeplessness, decrease in work capacity and fainting or fear of

fainting.

Thus sometimes a human being gets entangled in these disorders in such a way that it becomes difficult to get out and then the mental balance is lost. Disorders arising from different situations in human life, stress, depression(236,588), anxiety(88,192,201), fear(44,49), etc are solutions in Guru Granth Sahib Ji. Gurbani has given a new direction to human life, and also protects the "five evils"[7] Kaam (lust or desire), Krodh(anger), Lobh(greed/covetousness), Moh(attachment) and Hankar(pride). "The cause of all the problems of the modern man lies in the instability of his mental state and to remedy this he has always resorted to spirituality. This desire to get rid of mental problems in the past centuries has come to the fore as the hope of fulfillment by going to the shelter of religion."[8] "Sikhs believe that those who recognize that God resides in each individual and recite God's name through the regular practice of Nam Simran will find peace and live a life free of anxiety, stress and not suffering. The Divine Name therefore became the medicine for all ailments, and it has the capacity to remove all mental, physical or spiritual pain and suffering. Hearing the true bani dispels sufferings, ailments and agonies".[9] "It also suggests meditation as having a therapeutic effect, provided it is done with the Lord's name in the mind, Through meditation and listening to the religious scholars and spiritual teachers, devotees are forever in bliss."[10]

MUSIC INTERVENTIONS

Music of India has been known for its rich cultural heritage and traditions. Indian traditional healing systems like Yoga and Ayurveda giving scientific endorsements for their positive therapeutic effects have been accepted globally. That's all are Indian traditional systems of healing. Music has a significant effect on the human body and mind. Along with the other benefits of music at present days it is used as a therapy also. In India, Indian classical music is used as a form of therapy. The consolidation and evocation of *Rasa* or positive aesthetic mood is the function of Indian music. Indian Music therapy is the use of a suitable type of music, with specification quality, played at suitable time, which helps to drive out negative feelings like dependency and loneliness. "A technique, which engages the client by playing musical instruments or by singing with the music therapist, thereby making communication achievable. Music therapy makes it possible for a person to converse. It uses music and sounds for communication in some ways. Music therapy was seen as advantageous for persons having other physical cognitive and emotional disabilities" [11] In Indian Yoga and Music therapy both has been practiced in naturopathy since time of immemorial. In modern times musicologists and yogis have introduced Music as an independent medical system and have successfully used it to cure diseases.[12][13]Music is considered to be an incredibly powerful healing tool. Physical, mental and emotional challenges are met so much more easily with music.

Nowadays a form of devotional music preventing in the Punjab region of India, named Gurbani Shabad Kirtan, also known as Gurbani Sangeet, Gurbani

Kirtan, Shabad Gayan and "Gurmat Sangeet" [14]continuing from 15th century. It has very powerful healing sources. It's based on the "Shiri Guru Granth Sahib" [15] [16] "Gurbani" [17] and mentioned raags of different Gurus. First Guru of Sikhs Shiri Guru Nanak Dev called it "Dhur Ki Bani" [18]. The founder of Sikh musical traditional, Guru Nanak Dev (1469-1539) kept with him as his lifelong companion a musician, Bhai Mardana, who used to play the Rabab while he sang the praises of God. What came to be known as Shabad Kirtan is a unique confluence of Shabad and Kirtan propounded by the founder of Sikhism, Guru Nanak Sahib with the help of divine music emanating from Bhai Mardana's in the Indian and world music tradition. In Shabad Kirtan has been assigned a very prominent status as stated in the following couplet.

"Kaljug meh Keertan Pardhaanaa. Gurmukh Japee-ai Laa-e Dhiaanaa."[19]

Sri Guru Granth Sahib contains Bani of the Gurus in addition to the Bani of contemporary and earlier Saints and Bhagats. The classification of Bani according to Raagas makes it clear that the Bani is written in accordance with a particular system as conceived by Guru Arjan Dev Ji, the fifth Guru while compiling and editing Sri Guru Granth Sahib. Beside the Raagas, different classical and folk singing styles, Rahaao and other music signs are those elements of Gurmat music system which always remain active due to their original musical characteristics and for the presentation of Shabad Kirtan."[20] It has also made the existence of Sikhs meaningful. At the present time have collected successful results of healing with Bani of Sri Guru Granth Sahib. The great work of "Shri Guru Granth Sahib" [21] editing was done in 1604 AD by Guru Arjan Dev. In 1708 AD, Shiri Guru Gobind Singh completed it by incorporating the holy hymns of his father Shiri Guru Tegh Bahadur. It contains the teachings of six great beings Gurus, Guru Nanak Dev, Guru Angad Dev, Guru Amar Das, Guru Ram Das, Guru Arjan Dev & Guru Tegh Bahadur.

In modern times Many famous Sikh personalities & Raagi's (composers) of Gurbani Sangeet are using Gurbani for healing. The effect of Gurbani is very much on human life. This practice is now known as "Gurbani Sangeet Therapy". Prof. Surinder Singh Yogi is an active personality in healing by Gurbani Sangeet. According to Prof. Surinder Singh Yogi, "I have the details of about 2000 patients who are diagnosis from diseases with Gurbani sangeet." [22] Apart from this there are many verses recorded in Sri Guru Granth Sahib which are influenced in literary form and the raga-based singing of Bani prescribed in Sri Guru Granth Sahib has a more insignificant effect. On the basis of ragas [23] [24] [25], there are many kinds of effects. [26] Human diseases can be cured through Gurbani sangeet. If we look at the authentic facts of the musicologists, they have proved that music enhances the thinking aspect of a human being. If we talk about the literary aspect of Sri Guru Granth Sahib, then Bani inspires to be free from many vices. The curative effect of Gurbani is mentioned in many places in Guru Granth Sahib. "My physician is the Guru, the lord of the universe. [27]"

The name of lord is the medicine to cure all disease; with it no disease afflicts me" [28]When Bani is presenting in prescribed Raga with the melodious music then the music effect on human thinking and the literary aspect of the Bani directly affects the human mind and plays its important role in liberating the disorders of the human body. Ragas based and Bani have different effects on the human mind. This in itself is a unique system of the Gurus. These musical notations and hymns have liberated the human being from many diseases and problems. At present Gurbani Sangeet is being used in many institutions of world. Successful treatments are received in a positive way like Hardial Singh (IAS) and Dr. Balwant Singh, "Sarb Rog Ka Aukhd Naam' 'Guru Armadas Disease eradication center" [29] [30] [31] Mission started in Ludhiana in 1983. At present this mission is being prevented in the country and abroad. Many camps have been started across the world related to the subject. By the grace of Gurbani many people have been freed from many kinds of diseases. Apart from these, the institute name 'Naad yoga'' raj Academy' director "Prof. Surinder Singh Yogi" [32] is worth mentioning in the field of Sikh Music. [33] Gurbani Sangeet therapy is also being implemented at the institutional level. The practice of music therapy started for cancer patient by Gurbani Sangeet in Eternal University Bahru Sahib [34] [35] is running successfully under the Guidance of Baba Iqbal Singh. Prof. (Dr.) Gurnam Singh former chairperson Department of Gurmat Sangeet Punjabi University, Patiala is active in the field of Gurmat Sangeet. Prof. (Dr.) Gurpreet Kaur of Guru Nanak Dev University, Amritsar has successfully done many researches in the field of Music Therapy and at present, she is also working in Gurbani Sangeet . Gurbani inspires the entire humanity to stay away from vices. The obvious effect of which we can see from the daily events of our life. Gurbani is a source of inspiration for all of humanity. Gurbani has a special effect on the human mind, which is always positive. Due to this positive effect of Gurbani, the popularity of Gurbani is increasing day by day. Above mentioned personalities are successfully promoting working on healing effective of Gurbani sangeet. Ragas and Bani combine more effective for human beings and the variety of meanings which has a positive effect on the human mind and Gurbani has freed the human being from many diseases and problems.

METHOD

A survey method is a tool, process or technique that you can use to gather information in research by asking questions to a predefined group of people. Researcher has used online survey method with the help of Google forms. That has been shown to be an effective method of obtaining reliable and valid data. Researcher can email them directly to people, on there website, or even sent direct link on social media platform. In this research survey has been done to discover effect of Gurbani on mantel health. A sampling design has been selected 107ordinary persons related to different ages in the regions of Punjab.

SAMPLING

In this research Purposive sampling is

simple random sampling. It is type of probability. The term random has a very precise meaning. Each indusial in the population of interest has an equal opportunity of selection. Researcher can just collect responses have a random sampling.

RESULTS

The result of this survey has been found positive that is showing that music & Gurbani of Shiri Guru Granth Sahib gives positive effect on human life. Everyone those participated in this survey from the different religions knows 'Shiri Guru Granth Sahib ji'. According to this survey,95.3% of people know Gurmat Sangeet, daily listeners to Gurmat sangeet are 47.7% and frequently listeners are 43% & other options are mentioned in the Graph. 82.2% of people feel calm when they listen to Gurmat Sangeet. According to the graph, 85% of the people have strongly agreed that Gurbani of Shri Guru Granth Sahib inspires everybody to stay away from vices. Gurmat sangeet has a therapeutic effect on the human mind, 75.7% of people have strongly agreed with this. Gurbani is considered as a good source of positivity and healthy lifestyle, 85% of people give us a good response.The graph of the results researcher got in the above research is given below.

Graph-1

Selected the age group 20-25 years 25 to 30 years 30 to 35 years & 35 to above.

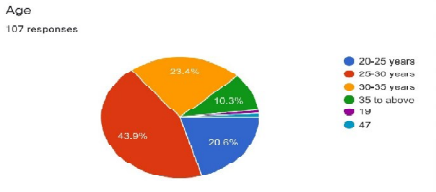

To begin with the analysis of data, four group 20-25(20.6%),25-30(43%),30-35(23.4%),35 to above(10%)

Graph-2

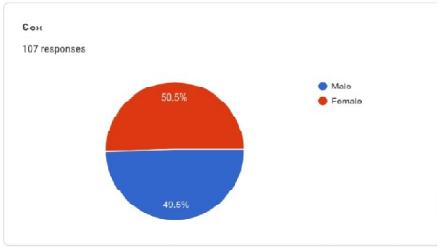

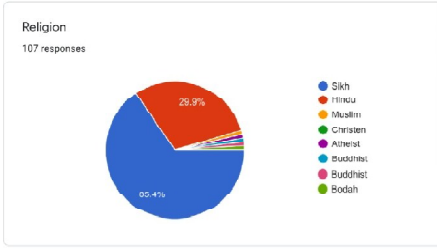

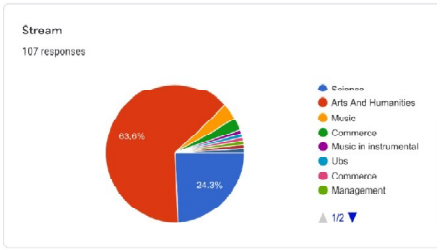

Graph-3

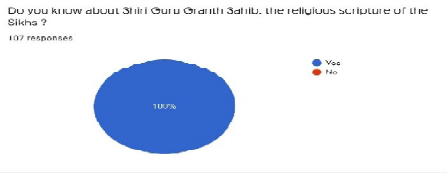

According to this survey everyone knows 'Shiri Guru Granth Sahib' which is the spiritual Granth of Sikhs.

Graph-4

According to this survey,95.3% people know Gurmat Sangeet.

Graph-5

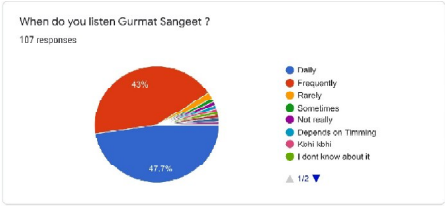

The of daily listeners to Gurmat sangeet is 47.7% and frequently listeners are 43% .

Graph-6

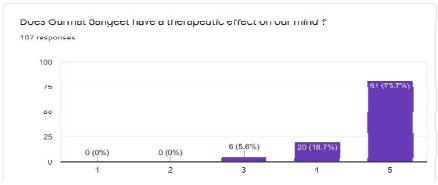

According to this survey 82.2% people have feel calm when they listen Gurmat Sangeet.

Graph-7

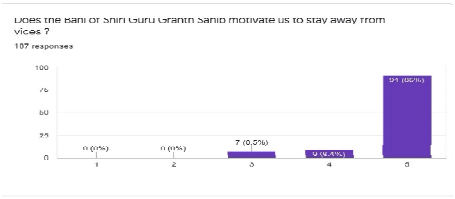

Bani of shri guru granth sahib ji inspires us to stay away from vices. According to this statement 85%of the people have strongly agree.

Graph-8

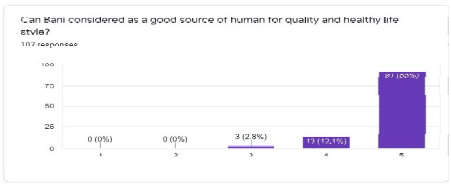

Gurmat sangeet have a therapeutic effect on human mind,75.7% people have strongly agreed.

Graph-9

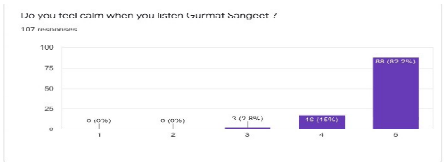

Bani considered as a good source of human for quality and healthy life stly,85% people given positive response.

Conclusion

It is realized through contemplation that Gurbani sangeet has a therapeutic effect on human beings. From the middle age, Bani of Shiri Guru Granth sahib inspired humanity to do good deeds. In this research survey was done to know the positive effect of Gurbani sangeet (Gurmat Sangeet). This research has been done in the field of music. In present time online surveys are most effective

surveying method in every field of research. It's a very simple and effective method researcher can email them directly to people, on there website, or even sent direct link on social media platform and collect there results. The above study was very unique and innovative experience with 107 responses. At the end of which we have come to the conclusion that Gurbani sangeet has a positive effect on human mind.

References

1. World Health Organization. *Promoting mental health: concepts, emerging evidence, practice (Summary Report)* Geneva: World Health Organization; 2004. [Google Scholar]
2. Bhatia Manjeet Singh, (2007) Mental disorders misconceptions and realities, p. 92
3. George M. Slavich, Life Stress and Health: A Review of Conceptual Issues and Recent Findings, Cousins Centre for Psychoneuroimmunology, University of California, Los Angeles, UCLA Medical Plaza 300, Room 3156, Los Angeles, CA 90095-7076, USA.
4. Michael Trimble1 and Dale Hesdorffer, (2017) Music and the brain: the neuroscience of music and musical appreciation
5. Fink George, (2010) Stress: Definition and history, University of Melbourne, p. 4
6. American Psychiatric Association, (2000). Diagnostic and Statistical Manual of Mental Disorders (Fourth Edition), Text Revision. Washington, DC: American Psychiatric Association.
7. Shri Guru Granth Sahib, Ang 600
8. Kang Dr. Jaspal Kaur, (2021)guru granth sahib vich sachiar:sidhant vihar (adhunik manukh diyan samasiava de sandharabh vich) ,saptrishi publication p.21.
9. Jagbir Jhutti-Johal , (2011)Sikhism and mental illness: negotiating competing cultures.
10. Kalra Gurvinder et al, does guru granth sahib describe depression, 2018
11. Aldridge, (1994,) explains music therapy, p.3
12. Bahman Salehi et al. (2016)The effects of selected relaxing music on anxiety and depression during hemodialysis: A randomized crossover controlled clinical trial study. The Arts in Psychotherapy
13. Jaak Panksepp, (2002) Emotional sounds and the brain: the neuro-affective foundations of musical appreciation, Behavioural Processes 60 133/155
14. Singh Dr.Gurnam, (2012) Gurmat sangeet prbandh te pasar, p. 1 to 26
15. Prof. sahib singh, (2018)aayd bhidd bare, p.11
16. Singh Dr.Gursharnjit, (2005)ajoke prsang vich shri guru granth sahib pranpa ate etehas, p.59.
17. Madhn Inderjit (2013) Guru granth sahib vich sankalit rag mukat bani da smajak sabheyacharak pripekh
18. Singh Dr.Gurnam, (2012)Gurmat sangeet prbandh te pasar, p. 3
19. Shri Guru Granth Sahib, Ang 1075
20. Singh Dr. Gurnam , (2009)Sikh musicology Sri Guru Granth Sahib and Hymns of the Human Spirit, kanishka publishers. P.1
21. Guru Granth Sahib - SikhiWiki, free Sikh encyclopedia.
22. Yogi Prof.Surinder Singh, Interview, date 24-10-2019
23. Sikh Ragas-Sikhi Wiki, free Sikh encyclopedia.
24. Singh Prof.kartar, (2003) gurmat sangeet darpan,
25. Singh Dr.Gurnam, (2010) shri guru granth sahib raag ratnakr, p. 5
26. Shri Guru Granth Sahib, Ang 1423 (Raag naadu sabh hai kimat kahi na ja-ai)
27. Shri Guru Granth Sahib, Ang 618 (Mera baid guru gobinda)
28. Shri Guru Granth Sahib, Ang 814(Aukhadh har ka namu hai jitu rog na viape)
29. https://youtu.be/x_8OHilkwDM
30. https://youtu.be/Qr5qmP_dDy4
31. Sarab Rog Ka Aukhad Nam Mission (gurunanakhealing.com)
32. Raj Academy Conservatoire | Sikh Net
33. Raj Academy - YouTube
34. Eternal University | First Girl University of Northern India
35. https://www.youtube.com/watch?v=jOT72j1Qi_E

नई दिल्ली में स्मारक डाक टिकटों की प्रदर्शनी

सूर्यनंदिनी नारायण
शोध निर्देशक

विनय पटेल
दृश्य कला,
कला एवं सौन्दर्यशास्त्र संस्थान, जवाहलाल नेहरु विश्वविद्यालय

सारांश

रंग बिरंगी यादों में डाक टिकटों की कहानी में एक अलग ही रोमांच हैं। पहले डाक टिकट का उपयोग आम जनता द्वारा नहीं किया जा सकता था। इनका उपयोग सरकारी कार्यों में ही किया जाता था। समयांतराल के बाद डाक का विकास हुआ और ये डाक टिकट आम जनता के उपयोग में आये। भारतीय अर्थव्यवस्था को सुंड बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन डाक टिकटों पर चित्रित दृश्य हो चुकी हुई घटनाओं के इतिहास को उजागर करती हैं। ये डाक टिकट उस देश के इतिहास की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और वैश्विक परिदृश्य को भी निरुपित करते हैं। ये डाक टिकट किसी देश या राष्ट्र के लिए कैसे महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं इस बात को भी अंकित करते हैं। बड़े-बड़े शहरों, नगरों और गैलरियों में तथा विदेशों में भी ये प्रदर्शनियां आयोजित की जाती हैं। इन प्रदर्शनियों के नियोजन में विभिन्न आकार-प्रकार के टिकटों को शामिल किया जाता है। इन प्रदर्शनियों से डाक व्यवस्था उसके विकास और आगामी योजनाओं का भी पता चलता है। इन योजनाओं में सांस्कृतिक प्रचार, आर्थिक विकास, सामाजिक उत्थान एवं गतिशील देश की आधुनिक तकनीकी का भी मिश्रण होता है। इन डाक टिकटों की प्रदर्शनियां क्यों की जाती है और इनका प्रयोजन क्यों होता है इसका भी ज्ञान प्राप्त होता है घ् यह टिकट देश की धरोहर है यह भी प्रदर्शनियों द्वारा बताया जाता है। इन प्रदर्शिनियों का सबसे ज्यादा लाभ किसे प्राप्त होता है और कैसे यह भी संज्ञान लिया जा सकता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में डाक टिकटों की होने वाली प्रदर्शनियों के नियोजन, उनके महत्व और डाक प्रदर्शनियों के दृश्यात्म प्रभाव पर प्रकाश डाला गया है।

शब्द संकेत

डाक का इतिहास, आयोजन में डाक प्रदर्शनी, डाक का वैश्विक परिदृश्य, डाक संस्कृति का विस्तार, डाक इन्डिपेक्स, डाक इंपेक्स, त्रिनाले प्रदर्शनी, डाक योजनायें।

भारतीय डाक टिकट का इतिहास

भारत के डाक टिकट का इतिहास ठप्पा डाक टिकट से हुआ था। जिसे हैण्डस्टक डाक टिकट भी कहा जाता था। इन डाक टिकटों पर हाथ से ही डाक घर का नाम, शुल्क प्राप्ति व तारीख समेत कई विवरण हाथ से ही लिखा जाता था। जब डाक टिकट प्रचलन में आया तब इसे लेबल के नाम से जाना जाता था। पुराने समय में डाक को कई माध्यम से जैसे घोड़ागाड़ी, ऊंट आदि के द्वारा पहुँचाया जाता था। उस समय सभ्यता और संस्कृति का विकास संचार व्यवस्था पर ही निर्भर था। मिश्र की सभ्यता

में संचार व्यवस्था का अच्छा प्रचलन था। इसी परम्परा में बेबिलोनिया सिन्धु सभ्यता में भी डाक संचार को महत्व दिया गया था।

पहले डाक टिकटों पर राजा रानी या उनके परिवार का ही चित्र छापा जाता था और उसी का अनुकरण कर विभिन्न देशों ने इस परम्परा का अनुगमन करते हुए डाक टिकटों पर शासकों के चित्र अंकित किये। यह कहना उचित हो सकता है कि डाक टिकट सभी शासकों के उत्थान और पतन का सूचक भी रहा है। जो अपने अंदर कई बातों को छुपाये हुए है। उसी परम्परा को भारतीय डाक टिकटों में भी देखा जा सकता है। जिस प्रकार से साहित्य समाज का दर्पण होता है उसी प्रकार से डाक टिकट भी समाज का दर्पण है। जिसमें उसका समस्त इतिहास निरुपित होता है। डाक टिकट की शुरुआत पेनी ब्लैक नामक डाक टिकट से होती है जिस पर इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया का शबीह चित्र बना है।

इंडिया 1958 प्रदर्शनी नई दिल्ली

सन 1958 में भारत के शहर नई दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय स्तर की यह एक संगठित प्रदर्शनी थी। इस प्रदर्शनी में 300 मंडप और 22 केन्द्रों में विभाजित छोटी दुकाने शामिल थी। इस प्रदर्शनी में स्वतन्त्र भारत के बाद पांच वर्षों के योजनाओं के प्रभाव में नए भारत के विकास का चित्रण किया गया था। इस समय भारत द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं के मध्य में था और योजननाओं के मूल को बनाने वाली अधिकांश परियोजनाओं में पर्याप्त प्रगति हुई। इस प्रदर्शनी में भारत के लोगों को विभिन्न विकास योजनाओं और हासिल की गई प्रगति के चरणों को प्रदर्शित करने और लोगों को यह बताने के लिए सुनहरा अवसर दिया गया था। यह योजना लोगों के लिए थी और इस योजना से यह सफलता भी प्राप्त जा सकी थी। इस ऐतिहासिक घटना को याद करने के लिए भारतीय डाक और संचार विभाग ने लाल बैगनी रंग में 15 पैसे का डाक टिकट जारी किया। चित्र संख्या।[1]

प्रथम त्रिनाले नई दिल्ली

31 मार्च, 1968 में 15 पैसा मूल्यवर्ग का यह टिकट जारी किया गया। जिसका रंग नारंगी, शाही नीला और हल्का था। विश्व में कला की प्रदर्शनियां विदेशों में वेनिस या पेरिस में आयोजित की जाती हैं, पर भारत देश में अब तक ऐसे प्रयास नहीं किए गए थे। ललित कला अकादमी ने समकालीन अंतर्राष्ट्रीय कला के त्रिवार्षिक परियोजना की शुरुआत की है। यह उद्यम कार्य यूनेस्को के तत्वावधान में आयोजित प्रमुख परियोजनाओं का एक हिस्सा था। इससे पहले त्रिवेणी का उद्घाटन नई दिल्ली में 10 फरवरी, 1968 को भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ जाकिर हुसैन द्वारा किया जा चुका था। इस प्रदर्शनी में 32 से अधिक देशों से बड़ी संख्या में प्रदर्शन किये। इनमें पश्चिमी देशों के साथ अल्फ्रो-एशियाई देश भी शामिल थे। प्रदर्शन कला के कार्यों में ग्राफिक्स, पेंटिंग और मूर्तियाँ शामिल थी। पहला त्रिवेणी प्रदर्शनी भारत देश और विदेश में कलाकारों के लिए प्रमुख महत्व की घटना थी। जिसमें से भारतीय कला एक अभिन्न अंग रूप से भारत और दुनिया के समक्ष प्रकट हुई। प्रथम त्रिनाले भारत और अन्य देशों के कलाकारों के बीच विचारों के मुक्त आदान-प्रदान हुआ। भारतीय डाक और तार विभाग द्वारा जारी किए गए डाक टिकट भारतीय कलात्मक जीवन और उसकी संस्कृति के विभिन्न तथ्यों का प्रतिनिधित्व करते थे। चित्र संख्या।[2]

इण्डिया नेशनल फिलाटेलिक प्रदर्शनी नई दिल्ली

भारतीय डाक टिकटों का उपयोग विदेशों में तथा भारतीय राज्यों, भारतीय एयर मेल, पोस्टल स्टेशनरी और साहित्य में किया जाता है। अन्य विदेशी देशों के टिकटों का संग्रह भी भारत में टिकट कलेक्टरों और डाक टिकट संग्रहकर्ताओं के पास होता है। प्रदर्शनी की विषयगत धारा वास्तव में जानवरों, जंगली जीवन, फूल, सैन्य, अंतरिक्ष उड़ान, पंखों के विकास आदि जैसे विषयों के साथ नियोजन परिवार के साथ ही साथ रेडक्रॉस और विभिन्न अन्य विषयों पर प्राप्त होते हैं। स्टैम्प एकत्रित करने के विषयों

पर 23 दिसंबर 1970 से 6 जनवरी 1971तक आयोजित होने वाली भारत राष्ट्रीय दर्शन प्रदर्शनी 1970 को मनाने के लिए किया गया। सामान्यत प्रथम दिवस कवर के अलावा डाक विभाग ने प्रदर्शनी की साइट पर प्रत्येक टिकट अलग होता है। इस टिकट का रंग नारंगी भूरा है। मूल्य 1 रुपया है। चित्र संख्या।[3]

इन्डिपेक्स 73

भारतीय डाक प्रदर्शनी को चिन्हित करने के लिए 8 जनवरी, 1973 को यह टिकट जारी किया। इसमें टिकटों की चार श्रृंखलायें हैं। स्टैम्प का आकार लंबवत है। रंग कला और सुनहरा है। यह प्रदर्शनी कला की उपलब्धियों को दर्शाने और सामाजिक कार्यों का प्रदर्शन था। प्रदर्शनी को मनोरंजक और आकर्षक बनाने के लिए कला के आलावा विज्ञान और कई प्रकार के डाक टिकटों को शामिल किया गया है। इन प्रदर्शिनियों का उद्देश्य तात्कालिक व दूरगामी होता है। सन 1840 में, पहले डाक टिकट जारी करने के साथ ही डाक टिकटों के संग्रह का शौक शुरू हुआ। स्टैम्प संग्राहकों द्वारा अब तक व्यक्तिगत संग्रहों की खोज की आवश्यकता को महसूस किया गया। इन कारण से फिलाटैलिक प्रदर्शनियों की शुरुआत हुई। इससे पहले 1890 में, लन्दन में पहले डाकटिकट की 50वीं वर्षगांठ पर अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी आयोजित हो चुकी थी। बाद के वर्षों में पेरिस, हेग, एम्सटर्डम और वियेना में अन्य कई अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों को आयोजन किया गया। भारत ने अपनी पहली अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी 1954 में, भारत के पहले डाक टिकट के उत्सव पर आयोजित की थी। इसके बाद 1970 में, भारतीय टेलीग्राफ विभाग ने वृहद् तौर पर राष्ट्रीय प्रदर्शनी का आयोजन किया। भारतीय फिलाटेलिक प्रदर्शनी इंडपेक्स.73 को 1973 में, दिल्ली में आयोजित किया गया था। इस डाक टिकट का मूल्य 1ण्45 रूपये, रंग चमकीला गुलाबी, सुनहरा और काला, मुद्रक भारतीय सुरक्षा प्रेस नासिक, कोई जलचिन्ह नहीं, मुद्रित मात्रा 3 लाख, प्रति पत्रक टिकटें 50, वेध का आकार 13×13, छपाई तकनीकी फोटोग्रुव्योर है। चित्र संख्या।[4]

इंपेक्स 1975

यह टिकट 25 दिसंबर, 1975 को जारी किया गया। टेलीग्राफ विभाग ने भारतीय राष्ट्रीय फिलाटेलिक प्रदर्शनी में यह दूसरी प्रदर्शनी थी। इसके अतिरिक्त समय-समय पर कई क्षेत्रीय प्रदर्शनियों को भी आयोजित किया जा चुका था। ये प्रदर्शनिया लोगों को उत्साहित करने के लिए की जाती है। इंपेक्स 75 के इस अवसर पर भारत में डाक टिकटों को रद्द करने के लिए उपयोग किए जाने वाले शुरुआती पोस्टमार्क के उत्पाद पर अधिक ध्यान दिया गया था। दुनिया में कहीं भी हस्तनिर्मित पोस्टमार्क का सबसे पहला उपयोग 1661 में, ग्रेट ब्रिटेन में हुआ था। कर्नल हेनरी बिशप के बाद उनके नाम का चिन्ह 'बिशप मार्क' रखा गया। इसका डिजाइन बहुत सरल है जो एक चक्र से मिलकर क्षैतिज रूप से आधे भाग में विभाजित होता है। ऊपरी आधे हिस्से में महीने की तारीख और महीने के निचले आधे हिस्से को संक्षिप्त रूप में दर्शाने के लिए एक संख्या होती है। बिशप मार्क के शुरुआती उदाहरण अप्रैल 1661, के लंदन जीपीओ में इस्तेमाल किए गए थे। जबकि बाद में, उनका उपयोग डब्लिन, क्यूबेक, कलकत्ता आदि स्थानों में किया गया था। टिकट का मूल्य 25 पैसा, रंग काला और लेक.भूरा, मुद्रक भारतीय सुरक्षा प्रेस नासिक, कोई जलचिन्ह नहीं, मुद्रित मात्रा 3 लाख, प्रति पत्रक टिकटें 35, वेध का आकार 13×13, छपाई तकनीकी फोटोग्रुव्योर है। चित्र संख्या।[5]

इन्डिपेक्स 86

इस डाक टिकट को बिशप मार्क के नाम से जाना जाता है जो पहले कलकत्ता में पोस्टपेड सेवा के लिए प्रयोग किया जाता था। यह पहले मेल भेजे जाने का एक उदाहरण है। जिसमें घोड़े के माध्यम से डाक को भेजने के लिए प्रयुक्त होता था। इस टिकट का आलेखन बेनोय सरकार ने किया है। इसका रंग काला और भूरा है। डाक टिकटों की प्रदर्शनी में

प्रकृति की सुन्दरता, कला, विज्ञान और ऐतिहासिक घटनाओं में मानव की उपलब्धियों को पुनः प्राप्त करने का एक प्रयास था। ये प्रदर्शनियां संग्राहकों के लिए अपने संग्रह प्रस्तुत करने के नये अवसर प्रदान करता है। इन प्रदर्शनियों से युवाओं के लिए भारत का दार्शनिक रूप प्रस्तुत होता है। जिससे इनकों डाक टिकटों की दुनियां में प्रवेश करने में सहायता मिलती है। भारतीय डाक टिकट की शताब्दी मनाने के लिए पहली अंतर्राष्ट्रीय स्टैम्प प्रदर्शनी 1954 में, नई दिल्ली में तथा पहली राष्ट्रीय प्रदर्शनी 1970 में, नई दिल्ली दूसरी 1975 कलकत्ता में, तीसरी 1977 बंगलौर में, आयोजित की गयी थी। सन 1982 में, यह प्रदर्शनी अंतिम बार की गयी थी। 5वीं राष्ट्रीय फिलाटेलिक प्रदर्शनी 14 फरवरी, 1986 से 19 फरवरी, 1986 तक सिटी पैसेल जयपुर में आयोजित की गयी थी। चित्र संख्या य6द्ध।

छटवां त्रिनाले कला प्रदर्शनी

यह कला प्रदर्शनी दिल्ली में हुई थी। त्रिवेणी भारत के अवसर पर यह टिकट 22 फरवरी, 1989 को जारी किया गया। यह प्रदर्शनी ललित कला द्वारा आयोजित की गयी थी। यह प्रदर्शिनियाँ समय समय पर कला में होने वाले बदलाव के परिवर्तन का सूचक थी। इसके आलावा कला के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण भी कला के मध्य एक श्रृंखला है। यह प्रदर्शिनियाँ विभिन्न देशों की संवेदनाएं, चिंताएं और उन देशो की अंतर्दृष्टि का भी प्रतिनिधित्व भी करती हैं। इस त्रिवेणी प्रदर्शनी में 42 देशों ने प्रतिभाग किया था। इन प्रदर्शिनियों में चित्रकारी, ग्राफिक्स, मूर्तियाँ. लकड़ी, शीशा, धातु, मिश्रित माध्यम, पत्थर, टेराकोटा आदि से निर्मित होती हैं। इस प्रकार की प्रदर्शिनियाँ कला में सहयोग के साथ अन्य देशों की गुटनिरपेक्षता के अवसर को भी दर्शाती हैं। यह प्रदर्शनी त्रिवेणी अकादमी के परिसर में समायोजित किया गया था। टिकट का मूल्य 1 रुपया, रंग काला, चमकीला बैगनी और नारंगी, मुद्रक भारतीय सुरक्षा प्रेस नासिक, कोई जलचिन्ह नहीं, मुद्रित मात्रा 1ण्5 लाख, प्रति पत्रक टिकटें 35, वेध का आकार 13ग्13),छपाई तकनीकी फोटोग्रुव्योर है। चित्र संख्या य7द्ध।

भारत 89 वर्ड फिलाटेलिक प्रदर्शनी

यह डाक टिकट 20 दिसंबर, 1988 में जारी किया गया। भारतीय डाक प्रणाली दुनिया में सबसे बड़ी है। वर्ल्ड फिलाटेलिक प्रदर्शनी के लिए डाक विभाग टिकटों की एक श्रृंखला जारी करता है। यह चौथा सेट है जिसमें दो रद्दीकरण एक आरएमएस और दूसरा डीएलओ को वहन करता है। अदन, सिंगापुर और शांगाई जैसे ब्रिटिश साम्राज्य कुछ प्रमुख थे जहाँ भारतीय टिकटों का उपयोग किया जाता था। पहला स्टैम्प श्इलाहाबाद.कोवनपोरश् रेलवे क्षेत्र में यात्रा डाकघर के शुरुआती हाथों में से एक में दर्शाया गया है। यह चिह्न दिसंबर, 1864 से 1869 तक उपयोग में था। इन दोनों स्थानों के यात्रा छंटाई कार्यालयों द्वारा इसका उपयोग किया गया था। पहला डाकघर इलाहाबाद में एक अधीक्षक के तहत 1 मई 1864 को स्थापित किया गया था। टीपीओ इलाहाबाद.कोवनपोर और कलकत्ता दिल्ली रेलवे क्षेत्र पर संचालित था। स्टांप पर दिखाए गए गोलाकार पोस्ट मार्क पर परिधि के ऊपरी रिम के साथ 25 से 26 मीटर का व्यास होता है, और निचले रिम के साथ ष्पोस्ट ऑफिसष् सेट, तारीख और श्एसीश् के नंबर 1 के साथ है। घेरे के अन्दर अंतरिक्ष में तीन क्षैतिज रेखाओं में 21 अगस्त, 1864 को प्रायोगिक टीपीओ के 1 श्रृंखला द्वारा इसे रद्द करने का उपयोग किया गया था। दूसरा स्टैम्प 1886 में, डेड लेटर कार्यालयों द्वारा उपयोग किए गए रद्दीकरण के प्रकार को दर्शाता है।

डेड लेटर दफ्तरों की उत्पत्ति का पता 1837 के, अधिनियम से लगाया जा सकता है। जिसने तीन महीने से अधिक समय तक किसी भी डाकघर में पड़े हुए अक्षरों का उपचार निर्धारित किया है जो प्रारंभ में प्रेसीडेंसी के जीपीओ को भेजा गया था। ऐसे अघोषित पत्रों और पार्सल की सूची आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित की गई थी। वे 18 महीने तक जीपीओ में रहे और 12 महीने की एक और अवधि

के बाद, वे नष्ट हो गए। मृत पत्र कार्यालयों को 1860 के दशक में कहीं स्थापित किया गया था जिसमें लिफाफे और अन्य डाक सामग्री पर वास्तविक चिह्नों का उपयोग किया गया था। लिफाफे के पीछे के हिस्से पर दर्शाया गया अंकन 18 मिमी का एक वर्ग है और इसमें वर्ग के भीतर अंतरिक्ष में तीन क्षैतिज रेखाओं में डी. एल. ओए पोस्ट ऑफिस और तारीख शब्द हैं। डाक टिकट पर यह विषय सामग्री जी. बी. पाई, और कर्नल एल. जी. शनोई तथा भारत सूची-80 द्वारा प्राप्त हुई है। चित्र संख्या।[8]

भारत 89 वर्ड फिलाटेलिक प्रदर्शनी यलौह स्तम्भ, इण्डिया गेट, दीवाने खास, लाल किला

यह टिकट 17 अक्तूबर, 1987 में जारी किया गया। जनवरी, 1989 में नई दिल्ली में आयोजित होने वाली वर्ल्ड फिल्टेलिक प्रदर्शनी के लिए डाक विभाग ने विशेष टिकटों की एक श्रृंखला बनाई। विश्व डाक टिकट में लोगो और ऐतेहासिक स्थल को दर्शाया गया है। यह चार टिकटों की श्रृंखला है। जिसमे दिल्ली के चार ऐतिहासिक स्मारकों को दर्शाया गया है। इस श्रृंखला में पहला टिकट लौह स्तम्भ का है।

लौह स्तम्भ

कुतुब मीनार परिसर में कुव्वत.उल.इस्लाम मस्जिद के प्रांगण में स्थित भारतीय धातु कौशल नमूना है। इसकी खासियत यह है कि इस स्तम्भ में जंग नही लगता है। इसमें गुप्त लिपि का एक शिलालेख है ये चंद्रगुप्त द्वितीय की स्मृति में बनाया गया था जो संभवतरू 5वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में बना। डाक टिकट का मूल्य 60 पैसा, रंग मिश्रित, मुद्रक भारतीय सुरक्षा प्रेस नासिक, कोई जलचिह्न नहीं, मुद्रित संख्या 1.5 लाख, प्रति पत्रक टिकटें 35, वेध का आकार 13)×13 छपाई तकनीकी फोटोग्रुव्योर है।

इण्डिया गेट

यह नई दिल्ली के सर एडविन लुटियन विजन के केंद्र में था। जिसे अब वाइसरेगल पैलेस जो अब राष्ट्रपति भवन कहा जाता है। 10/2/1921 को ड्यूक ऑफ कनॉट द्वारा इंडिया गेट की नींव रखी गई थी। यह मूल रूप से प्रथम विश्व युद्ध के दौरान मारे गए 70,000 सैनिकों के लिए समर्पित था। अज्ञात योद्धा को श्रद्धांजलि के रूप में एक ज्वाला लगातार उसके आधार पर बनी रहती है। टिकट का मूल्य 1ण्5 रुपया, रंग मिश्रित, मुद्रक भारतीय सुरक्षा प्रेस नासिक, कोई जलचिह्न नहीं, मुद्रित संख्या 1ण्5 लाख, प्रति पत्रक टिकटें 35, वेध का आकार 13)×13, छपाई तकनीकी फोटोग्रुव्योर है। इस गेट का डिजाइन लैंडसियर लूटयंस द्वारा किया गया जो 1931 में पूरा हुआ। शुरुआत में इसका नाम 'ऑल इण्डिया वॉर मेमोरियल' था। यह स्मारक पेरिस के आर्क डी ट्रोम्फ से प्रेरित डिजाइन है। स्मारक का निर्माण लाल बलुआ पत्थर और ग्रेनाईट से किया गया है। इसकी ऊंचाई 42 मीटर है। यही पर अमर ज्योति भी बनाई गयी है शहीद सैनिकों के याद में जो काले संगमरमर में निर्मित है। आजादी के बाद इसमें कई संशोधन किये गये। इस स्मारक की खास बात यह है कि इस पर शहीद सैनिकों, स्वतंत्रता सेनानियों तथा अन्य समुदायों के शहीदों का नाम लिखा गया है।

अतः यह स्तम्भ यह भी बताता है कि स्वयं को भारत का राष्ट्रवादी और हिन्दुत्ववादी कहने वाले लोगों का कोई सहयोग व योगदान नही है भारत की आजादी में। राष्ट्रवाद का दिखावा करने वाले आजाद भारत का ढिंढोरा पीटने और उसका सेहरा अपने सर बांधने वाले ऐसे हितैशी लोगों का चेहरा भी दिखाता है ये इण्डिया गेट। भारत की हिन्दूत्ववादी विचारधारा भारत के सभी समुदायों के लिए एक कोढ़ के समान है। ये कोढ़ और इन कोढ़ियों का समाप्त होना ही भारत की और भारत के लोगों की वास्तविक आजादी है। यह कोढ़ ऐसी वीमारी है जैसे कोरोना वाइरस है इससे प्रत्येक व्यक्ति संक्रमित होता है पर मरता नही बल्कि संक्रमण को बढ़ाता ही जाता है।

दीवाने खास

लाल किला में दीवान.ए.ख़ास निजी दर्शकों के हॉलव भवन मुगलों के समय के हैं। इसका निर्माण शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान किया गया था। स्तंभों के

साथ सफेद संगमरमर का निर्मित मंडप भी बना है। यह 'पीट्रा ड्यूरा' शैली के साथ समृद्ध रूप से अलंकृत है। यह ईमारत उस समय की भव्य वास्तुकला का प्रतिनिधित्व करता है। टिकट का मूल्य 5 रुपया, रंग मिश्रित, मुद्रक भारतीय सुरक्षा प्रेस नासिक, कोई जलचिन्ह नहीं, मुद्रित संख्या 1.5 लाख, प्रति पत्रक टिकटें 35, वेध का आकार 13)×13, छपाई तकनीकी फोटोग्रुव्योर है।

पुराना किला

पुराना किला पौराणिक इंद्रप्रस्थ पर स्थित है। जहाँ हुमायूँ ने दीनपनाह का पुनर्निर्माण किया था। शेरशाह ने अपने शासनकाल 1540-1545 ए.डी. के दौरान बना था। ये सभी चार टिकट पुलक विश्वास द्वारा डिजाइन किए गए हैं। प्रथम दिवस आवरण को अलका शर्मा द्वारा डिजाइन किया गया है और नेनु बगका द्वारा रद्दीकरण किया गया। टिकट का मूल्य 6.5 रुपया, रंग मिश्रित, मुद्रक भारतीय सुरक्षा प्रेस नासिक, कोई जलचिन्ह नहीं, मुद्रित संख्या 1.5 लाख, प्रति पत्रक टिकटें 35, वेध का आकार 13)×13, छपाई तकनीकी फोटोग्रुव्योर है। चित्र संख्या य9द्ध।

सेवेंथ त्रिनाले

यह टिकट12 फरवरी, 1991को जारी किया गया। यह टिकट भारतीय सेक्युरिटी प्रेस नासिक द्वारा डिजाइन किया गया। प्रथम दिवस आवरण को और विरूपण को विक्रम मेहरा ने डिजाइन किया है। विभिन्न देशों द्वारा आयोजित द्विवार्षिकी और त्रिवार्षिकी की प्रदर्शनियां कभी महत्वपूर्ण थी भारत के लिए जिसे ललित कला अकादमी द्वारा आयोजित किया गया था। इस प्रदर्शनी का आयोजन पहली बार भारत में 1968 में किया गया था। यह प्रदर्शनी सत्तर के दशक में भारतीय समकालीन कला के परिदृश्य में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई। इस प्रदर्शनी में कला के विभिन्न आयाम और माध्यम शामिल किये गये। रेखाचित्र, ग्राफिक्स, पत्थर, कपड़े, फाइबरग्लास, टेराकोटा, लकड़ी और धातु में निर्मित कृतियाँ तथा मल्टीमिडिया माध्यमों में निष्पादित आकृतियों को शामिल किया गया। इन प्रदर्शिनियों के माध्यम से कला के प्रदर्शन के लिए कलाकार को ऐसा मंच मिलता है जहाँ पर विभिन्न विचारों का एक साथ प्रस्तुतीकरण होता है। इस प्रदर्शनी में 67 कलाकारों ने प्रतिभाग किया। डाक टिकट का मूल्य 650 पैसे, रंग मिश्रित, कोई जलचिन्ह नहीं, मुद्रित मात्रा 1 लाख, प्रति पत्रक टिकटें 35, वेध का आकार 13ग्13, छपाई तकनीकी फोटोग्रुव्योर है। चित्र संख्या।[10]

आठवां त्रिनाले. सांस्कृतिक एवं पर्यटन के केंद्र इंडिपेक्स 97 (नालंदा, बोधगया, वैशाली, कुशीनगर)

इस टिकट श्रृंखला में नालंदा, बोधगया, वैशाली, कुशीनगर हैं। जब भारत की स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती मनाई जा रही थी तब नई दिल्ली में प्रगति मैदान में 1997 को, यह प्रदर्शनी आयोजित की गयी। इस प्रदर्शनी के लिए एक विशेष चिन्ह या प्रतीक को पारंपरिक स्वागत के लिए सुसज्जित हाथी को चित्रित किया गया। यह एक अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी थी जो प्रत्येक दस साल में एक बार आयोजित की जाती है। टिकटों की इन चार श्रृंखला में भारतीय संस्कृति को दिखाने के लिए नालंदा, बोधगया, वैशाली बिहार में, और कुशीनगर उत्तर प्रदेश को चित्रित किया गया।

नालंदा

इस डाक टिकट में नालंदा विश्विद्यालय के भग्नावशेष को चित्रित किया गया है। यह विश्विद्यालय मठवासीय था जो पांचवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक अपने चरमोत्कर्ष पर था। विश्वविद्यालय एक बौद्ध विश्वविद्यालय था जिसे अपनी अस्मिता को बचाने के लिए हिंदूवादी विचारधारा से संघर्ष करना पड़ा था।

बोधगया

इस टिकट में बोधि वृक्ष को चित्रित किया गया है।

बोधि वृक्ष के नीचे ही बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। बोधगया में महाबोधि मंदिर भी है जिसे सम्राट अशोक ने तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में बनवाया था।

वैशाली

यह लिच्छवी राजवंश की राजधानी थी। यह नगर मिथिला का प्राचीन शहर है। सम्राट अशोक ने बुद्ध की अंतिम प्रार्थना सभा के स्थल के रूप में इसकी स्मृति में यहाँ एक स्तम्भ का निर्माण कराया। टिकट पर इसी स्तूप को दिखाया गया है।

कुशीनगर

कुशीनगर भारत के उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित है। बुद्ध का महानिर्वाण यही हुआ था। यह टिकट 6.6. 1997 को, जारी किया गया। इन टिकटों का मूल्य 200, 600, 1000, 1100 पैसे, बहुरंगीय, कोई जलचिन्ह नहीं, मुद्रित मात्रा 5 लाख, प्रति पत्रक टिकटें 10, वेध का आकार 13.5×13.5, छपाई तकनीकी फोटोऑफसेट है। कुशीनगर एक व्यापारिक केंद्र था। यह हिरण्यवती नदी के किनारे स्थित है। बुद्धकाल में कुशीनगर का नाम कुशीनारा था और इससे भी पहले इसका नाम कुशावती था। कुशुनगर मल्ल राजाओं की राजधानी थी। यहाँ के मल्ल राजा चौत्यों की पूजा करते थे। जिस प्रकार वैशाली में चापाल चौत्य, उदयन चौत्य, गौतमक चौत्य, सत्तम्ब चौत्य, बहुपुत्र चौत्य और सानंदन चौत्य था उसी प्रकार कुशीनगर में मुकुटबंधन चौत्य और भोग नगर में आनंद चौत्य था। इनके पास हु देववन, शालवन, अम्ब वन आदि आराम चौत्य थे। मल्ल राजाओं को पुष्यमित्र और अजातशत्रु के हिंदूवादी विचारधारा के समय बहुत कठिनाईयों का सामना करना पड़ा था।

इस काल में बौद्ध धर्मावलम्बियों को शूद्रों की श्रेणियों में रखा गया। बौद्ध प्रधान केंद्र थे अंग, वंग, कलिंग, सौराष्ट्र, मगध आदि थे। मल्ल जातिवाद नही मानते थे। बुद्ध के परिनिर्वाण ई. पूर्व 543, के बाद मल्लों ने बुद्ध की धातु में बड़ा स्तूप का निर्माण कराया। कुशीनगर क्षत्रप राजाओं के राज में अनेक विहारों का निर्माण कराया गया था। कनिष्क ने अशोक की तरह बौद्ध धर्म की उन्नति की। इन्हीं के समय महायान की सर्वप्रथम संगीति हुई थी। कुषाण वंश के अध्रूपतन के बाद उत्तर भारत में गुप्त वंश का उदय हुआ। चन्द्रगुप्त द्वितीय से कुमारगुप्त प्रथम तक विहार, चौत्य मंदिर बनवाये गये। छठी शताब्दी में हूणों के बाद हर्षवर्धन का राज्य हुआ। हर्षवर्धन ने बौद्धधर्म का प्रसार किया। चित्र संख्या।[11]

निष्कर्ष

डाक टिकट एक ऐसा सूचना पत्र के समान है जो देखने में आकर्षक और जानकारी से संयुक्त होता है। इन डाक टिकटों के प्रदर्शन से एक ओर जहाँ भारतीय संस्कृति का प्रचार होता है तो वही दूसरी ओर इससे भारतीय अर्थव्यवस्था मजबूत होती है। डाक टिकट से सामाजिक और मानसिक परिवर्तन भी होता है। डाक प्रदर्शनी से ज्ञान में बढ़ोत्तरी और उत्सुकता उत्पन्न होती है। डाक टिकटों की प्रदर्शनी में विभिन्न संस्कृतियों का आदान.प्रदान व तकनीकी माध्यमों का भी प्रचलन होता है। डाक प्रदर्शिनी से डाक टिकटों में की जाने वाली राजनीती और अन्धविश्वास का भी पता चलता है पर इसे समझने वाले बहुत ही कम लोग है। डाक प्रदर्शनियों में अन्धविश्वास को बढ़ावा देने में भी अचूक माध्यम के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इस तरह की डाक प्रदर्शनियां होती रहनी चाहिए ताकि भारत की स्मारकीय स्थिति स्मारक डाक टिकटों पर कहा है

और डाक प्रदर्शनी के बदले आयामों का संज्ञान लिया जा सके।

(1) भारत प्रदर्शनी : जारी
30 दिसंबर 1958,
मूल्य 15 नया पैसा

(2) प्रथम त्रैवार्षिकी प्रदर्शनी :
जारी 31 मार्च 1968,
मूल्य 15 पैसे

(3) इण्डिया नेशनल फिलाटेली
प्रदर्शनी जारी 23 दिसंबर,
1970 मूल्य 1 रूपये

(4) इन्दिपेक्स जारी 14 नवम्बर 1973,
मूल्य 1 रुपया

(5) इंपेक्स जारी
25 दिसंबर 1975,
मूल्य 25 नया पैसा

(6) भारत 89 वर्ड फिलैटलिक
प्रदर्शनी जारी 20 जनवरी 1989,
मूल्य 60 नया पैसा

(7) छठी त्रैवार्षिकी भारत जारी

(8) भारत 89 वर्ड फिलैटलिक प्रदर्शनी

(8) भारत 89 वर्ड फिलैटलिक प्रदर्शनी जारी

22 फरवरी 1986, मूल्य 1 रुपया जारी 20 जनवरी 1989, मूल्य 1.50 रुपया 20 जनवरी 1989, मूल्य 5 रुपया

(8) भारत 89 वर्ड फिलैटलिक प्रदर्शनी जारी 20 जनवरी1989, मूल्य 6.50रुपया

(8) भारत 89 वर्ड फिलैटलिक प्रदर्शनी जारी 15 जून 1987, मूल्य 50 नया पैसा

(9) भारत 89 वर्ड फिलैटलिक प्रदर्शनी लौह स्तम्भ दिल्ली जारी 17 अक्तूबर 1987, मूल्य 60 नया पैसा

(9) भारत 89 वर्ड फिलैटलिक प्रदर्शनी इण्डिया गेट जारी 17 अक्तूबर 1987, मूल्य 1.50 रुपया

(9) भारत 89 वर्ड फिलैटलिक प्रदर्शनी दीवानेखास लाल किला जारी 17 अक्तूबर 1987, मूल्य 5 रुपया

(9) भारत 89 वर्ड फिलैटलिक प्रदर्शनी पुराना किला दिल्ली जारी 17 अक्तूबर 1987, मूल्य 6.50 रुपया

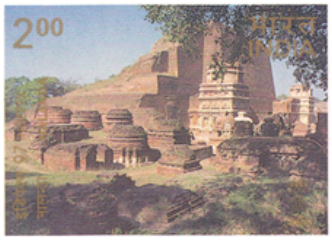

(10) सातवा त्रिनाले जारी 12 फरवरी 1991, मूल्य 6.50 रुपया

(11) इन्डिपेक्स 97 नालन्दा जारी 6 जून 1997, मूल्य 2 रुपया

(11) इन्डिपेक्स 97 बोधगया जारी 6 जून 1997, मूल्य 6 रुपया

(11) इन्डिपेक्स 97 वैशाली 6 जून 1997, मूल्य 10 रुपया
(11) इन्डिपेक्स 97 कुशीनगर जारी 6 जून 1997, मूल्य 11 रुपया

सन्दर्भ सूची

- भिक्षु, धर्म रक्षित त्रिपिटकाचार्य (2487) 'कुशीनगर का इतिहास' (देवरिया : प्रकाशन कुशीनगर बौद्ध विहार।
- चटर्जी, प्रसाद, सत्य, (1973) 'डाक टिकट की कहानी (हिंदी), नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया।
- मित्तल, ए.एस, (1986) 'डाक टिकट संग्रह कैसे करें' आदर्श प्रकाशन जयपुर-3।
- सिंह कुमार अरविन्द, (2006), 'भारतीय डाकसदियों का सफरनामा' नई दिल्ली : राष्ट्रीय पुस्तक ट्रस्ट, इंडिया।
- यह शोध पत्र मेरे द्वारा लिखित शोध ग्रन्थ 'Representation of identity and cultural politics 0n Indian postage stamp 1947-2017' के अध्यायों से उद्घृत किया गया है।
- यह शोध पत्र मेरे द्वारा लिखित डिजर्टेशन श्सरकारी नोट, सिक्के और डाक टिकटों पर गाँधी के चित्रों के दृश्यात्मक अध्ययन 1947-2015 से भी प्रभावित है।
- Any;1February2015).'Indeipex73',https://www.istampgallery.com/indipex-73/,Access; 12/12/2019.
- Design and produced by Directorate of Advertising - Visual Publicity, Ministry of Information - Broadcasting, Government of India, New Delhi, for the Department of post and Printed at Nu Tec Photo lithographers, New Delh-110002.
- bf.M;kxsVdkbfrgklbldkfuekZ.kfdlusdjok;k?;29June2018).https://hindi.mapsofindia.com /my-india/history/reason-behind-constructing-india-gate29;Access:17/6/2020
- Information Folder issued by Indian Posts & Telegraph Department, Government of India; http://www.amrutphilately.com/gallery/index.php?yer=k1958,Access:10.9.2019
- Praful,Thakkar.ExoticGalleryofIndianPhilatel.'India89WorldPhilatelicExhibition',New Delhihttp://www.indianphilatelics.com/stamps/miniature-sheets/miniaturesheets/item/567-india-89-world-philatelic-exhibition-new-delhi-clickforstampinformation.html,/Access; 13/12/2019
- Stampsathi.'http://www.stampsathi.in/php/public/stamps-gallery.php?page=k51',Access; 23/12/2019.

Chyabrung: A Traditional Percussion Instrument

Eric Dural

Research Scholar Department of Music Sikkim University, Gangtok, Sikkim (India)

Abstract

The rise of new electronic and computer-based music-making tools is challenging traditional musical instrument conceptions. Every day, if not every hour, we hear new songs with new musical genres fusing various instruments. All music creation and composing are now done virtually in such an age where musical scores may be played without the assistance of a human. Traditional instruments and their value are becoming increasingly blurred. This paper explores the traditional percussion instrument of an ethnic community Limboo, of Sikkim. Paper tries to preserve all the important aspects of the instrument along with their traditions and brief history.

Keywords:

Limboo, Traditional, Percussion, Instrument, Culture, Community, Digitalization.

Introduction

Culture has the characteristics and functions of being shared, acquired through socialization, and based on tradition, as well as being dynamic and adaptable; its elements tend to function as an integrated whole. Culture is founded on symbols and caters to people's values (Janto, 2017). As a result, because a nation's traditional music contains to a considerable extent every component of its cultural fabric, whether politically, philosophically, economically, or socially linked, it serves as a functional guide to the people's developmental needs (Ibekwe, 2020). Traditional music, then, is a practice that represents a people's tradition without being influenced by other cultures. It encompasses almost all indigenous activities that are essential to people's lives within a culture. (Ibekwe, 2020).

The way of life of the Indian people is also defined by their culture. The languages, religions, dancing, music, architecture, food, and customs of India vary greatly from state to state. The Indian culture, which is sometimes described as a mix of numerous cultures, encompasses the Indian subcontinent and has been influenced by a millennia-old past. India is one of the world's most religiously and

ethnically diverse countries, having strongly religious civilizations and cultures.

The State Sikkim is located in the western- most section of the Eastern Himalayan regions where Sikkim lies 27 degree 5 minutes and 28 degree 10 minutes latitudes and between 88 degree 4 minutes and 88-degree 58 minutes east longitude. It has a total size of 2,818 square miles or 7,096 square kilometers. (Gurung, 2011). It is a tiny mountainous state bordered on the north by Tibet, on the east by Bhutan, on the south by the Darjeeling district of West Bengal, and on the west by Nepal. The capital of Sikkim is Gangtok (Gurung, 2011).

The state of Sikkim is noted for its ethnic variety and indigenous people. The Lepchas, Bhutias, and Nepalese are the three ethnic groups that make up Sikkim's population. They are straightforward and industrious individuals. It can be said that among Sikkim's ethnic groupings that Lepchas were the first occupants of the state (Bareh, 2001). Because the Nepali community makes up the bulk of the population, Nepali is the official language of the state. Apart from that, there are various dialects spoken by Nepali castes like as Gurung, Rai, Tamang, Mukhia, Newer, Manger, Sherpa, and so on, however these languages are rarely spoken within these groups. They typically communicate in Nepali. The official languages of the state of Sikkim are English and Nepalese. The Hindu faith is practiced by the majority of the population. Buddhism and Christianity are two more prominent religions practiced by the people of Sikkim. Aside from that, there are a small number of Muslims, Sikhs, and Jains who are non-ethnic. Plainsmen, in contrast to the ethnic groupings, there are a few plains people who have come here for decades. Plainsmen, primarily Marwaris, came to Sikkim to trade. The state of Sikkim is home to people from all across India, including Bihar, Bengal, Assam, Orissa, Kerala, Punjab, and others. Some emigrant plainsmen worked in occupations other than commerce, such as education and administration (K Sharma, Bishnu; Chettri, Lokesh, 2020).

In Sikkim, the three ethnic groups form a combination of three different cultures, customs, and faiths. These Lepcha, Bhutia, and Nepalese groups are akin to a mash-up, each with its own particular identity (Arora, 2007). There is a mosque where there is a temple, and there is a church where there is a monastery. Traditional folk-dance styles exist in each community. The Nepalese, Lepchas, and Sikkimese all have their own folk dances, each one distinct and amusingly groovy.

Sikkim's terrain is like a magnificent bouquet, embellished with the vibrant colors and essence of various appealing folk dances, rituals, and traditions of various tribes and castes. n (Sharma, Bishnu K; Chettri, Lokesh, 2020).

Objective

1. To study the construction of Chyabrung drum, as well as to explore their playing skills, purposes, and traditions.

Methodology

The study is exploratory and descriptive in nature. The data has been collected

through unstructured interview schedule, Group Discussion and in-depth interviews have been carried out. Only the individual belonging to the Limbo community have been incorporated as respondent for the study. The study was undertaken in Tingchim Mangshila (North Sikkim). Tingchim Mangshila is a village in Dzongu Tehsil in North District of Sikkim State, India. It is located 12km toward South Sikkim from District Head Quarters of Mangan 23km from state Capital Gangtok. As the village had the maximum Limbo population and this was considered an ideal choice for research. Mr. P.B Maboo along with his family members and elders volunteered for the interview.

Limbo: The indigenous inhabitants of Sikkim

Sikkim is home to a diverse cultural-racial population, including Lepchas, Bhutias, and Nepalese, among others, with Nepalese making up the majority. Aside from them, there are also other Nepalese groups in Sikkim, such as the Sherpa, Tshong (Limboo), and others (Limboo, 2018). The term Limbu is the eponym of a hazy area. The name 'Limboo' loosely translates to 'archer' or bow and arrow carrier (Dutta, 2014). Limboo tribes are known as Tshong, a trader, by Lepchas and Bhutias in Sikkim, Subba means village leader, and Yakthung means yak-herds, another interpretation is yak means hills and thungs means heroes, i.e., heroes of the hill (Limboo, 2018). It is also reported that the term Sikkim was derived from the Limboo word Sukhim, which means New and Khim meaning Palace, i.e., New Palace, which was then distorted into Sikkim. According to legend, when Bhutia first arrived in Sikkim from Tibet in the 13th and 14th centuries, they discovered that Sikkim was inhabited by the Lepchas and Limbos. Sikkim has only existed since 1642 AD, when Phuntsog Namgyal came to the throne as the 1st Chogyal (King) in Yoksum, West Sikkim, and attended the consecration ritual of the first Chogyal (Subba, 2008). Sikkim's Limboos have the most registered organizations, such as Sukhim Yakthung Sapsok Songjumbo (Literary society), Sukhim Yakthung Wenchha Chumbo (Youth), Sirijunga Yakthung Sakthim Phojumbo Art and Culture, Sukhim Yakthung Nichhamcha Sapsok Chumbo (Student literary society), Namdha Sukhim Yakthung Saplan Chumbho (Publication), In 1979, the Sirijunga Limboo Cultural Society was founded in Tharpu West Sikkim. The fundamental goal of this society is to keep Limboo culture and tradition alive, since they have become more important to the Limboo community. Every year on August 23rd, the foundation day is commemorated, providing a chance to represent and promote Limboo culture across the world. On March 31, 1981, the Government of Sikkim recognized Limboo as an official language. Limboo language was first taught in schools as an optional subject in 1968, and then in 1975, it was upgraded to formal education as the first vernacular or mother tongue in Sikkim's Government schools, and then in 2000, Limboo language was made a core subject for undergraduate study at North Bengal University (Subba J. , 2002).

The Limboo are rich in Folk literature that includes Mundhum, proverbs folklore, folk songs and dances. The folk

literature of the Limboo is very rich and because of that they have their own identity. Their folk dances, songs music and musical instruments are primitive (Sherpa, 2021).

Result and Discussion

Chyabrung:

Chyabrung is a traditional percussion instrument that is an integral part of the Limboo community's folk culture. Chyabrung is known in Limboo as Kay, which means Tiger. According to etymology, Chyabrung was originally constructed of Tiger skin. The name Chyabrung comes from the exhilarating sound created by the instrument, which is comparable to a tiger's roaring sound, Chya-grung-grung (Sherpa, 2021).

Making Procedure:

1. Drum is made up from ***Duabanga grandiflora*** (syn. *D. sonneratioides)*. Common Name in Nepali is Lampate.
2. Wooden Log is cut from the Lampate from about 24-36 inches depending upon the region with two openings on either ends.
3. Skin of Goat and buffalo is used to cover the both ends of Chyabrung which is stretched with bamboo sticks in its earlier stages, left to dry for several days and gets cleaned and shaved before covering the Chyabrung.
4. A bamboo ring is used to stretch the skin on both ends of Chyabrung.
5. A bamboo nail like structure named as khisa is used to sew the skin with the bamboo ring.

Chyabrung Playing Techniques:

1. Chyabrung while playing is carried in left shoulder in a certain angle to provide an easy way to flex their body in their dance movements or sometimes carried for easy excess to the drums.
2. Left hand carries the stick known as Kesari Singh which is used to strike the left side of the drum creating a low frequency tone or style commonly known as Singhjange. As in Bol's commonly known as Brung.
3. Right hand playing is focused on the finger or the palm of the hands which is named as Huk, while beating the drum the palm rests on the ring of the drum and fingers are used to create a certain tone or style known as Hukjange which represents as Chya in Bol's.

Uses of the Chyabrung Instrument:

Chyabrung is used in the Traditional Limboo dance known as Kay Lang, Kay meaning Chyabrung and Lang meaning Dance. Commonly known as Chyabrung Naach. Kay Laang is solemn dance synchronized with footsteps performed by male dancers of more than two.

1. The dance is most appropriate and auspicious while solemnizing the marriage ceremony known as Mekkam.
2. It is used for welcoming special guest known as Lamdhan like one in laws, Bride grooms and royal members
3. It is used in New house warming ceremony known as Thak Thamma ritual.
4. It is used at the time of offering the newly harvested crops
5. It is also used in conducting death ritual of Limboo

Conclusion

Limboos are one of the most important tribes in the eastern Himalayan areas of Sikkim, West Bengal, and Nepal. Since a long time, the Limboos have lived in a blended culture of several groups. They have maintained their rich and distinct culture to this day, which clearly distinguishes them from the rest of Sikkim's ethnic groups. Digitalization has ushered in a new era. Preservation of ethnic groups' traditional instruments is essential for future generations to comprehend and learn their roots, customs, and culture. Thus, this paper has attempted to chalk out the historical narrative about the Limboo community in Sikkim along with their indigenous instrument Chyabrung.

References

Ibekwe, E. (2020). Traditional Music Technology and Natioal Development. *Nnamdi Azikiwe University, Awka, 8*, 78-85.

Janto, J. (2017). Traditional Folk Culture and Ethnology. *Ethnology for the 21 Century*.

Gurung, S. K. (2011). *Sikkim: Ethnicity and Political Dynamics: Atriadic Perspective*. Delhi: Kunal Books.

Bareh, H. (2001). *Encyclopedia of North-East India: Sikkim* (Vol. 7). New Delhi: Mittal Publication.

K Sharma, Bishnu; Chettri, Lokesh. (2020, September). Some General-Social, Economic, History, Geo-Political and Cultural Aspects of Sikkim (India): A Review. *International Journal of Arts and Social Science, 3*(5).

Arora, V. (2007). "Assertive Identities, Indigeneity, and the Politics of Recognition as a Tribe: The Bhutias, the Lepchas and the Limbus of Sikkim. *Sociological Bulletin, 56*(2).

Sharma, Bishnu K; Chettri, Lokesh. (2020). Some General-Social, Economic, History, Geo-Political and Cultural Aspects of Sikkim (India): A Review. *International Journal of Arts and Social Science, 3*(5).

Dutta, K. (2014). Limbus: An outline of their Music and Culture. *International Journal of Humanities , Arts, Medicine and Sciences,2*.

Limboo, R. (2018). Identity formation among limboo tribe of Sikkim. *Indian Journal of Social and Political*.

Subba, J. (2008). History Culture and Customs of Sikkim, Delhi. *Singhal Print Media*.

Subba, J. (2002). History and Development of Limboo language. *Ambica Printers*.

Sherpa, A. (2021). Limbu Ethnic Music: A cultural and Ethnic identity. *Journal of People's History and Culture, 7*.

Preferences for Christian Music and its Trends: A Study in Sikkim

Dr. Samidha Vedabala

Assistant Professor, Department of Music
Sikkim University, Gangtok, Sikkim (India)

Eric Dural

Research Scholar Department of Music
Sikkim University, Gangtok, Sikkim (India)

Abstract

Music has always been an inseparable aspect of all religions, particularly Christianity. Worship in Christianity is essential for people to connect with God, and music plays a significant role in it. This study investigated the impact of various types of music on the emerging Church music of Sikkim, using age and gender as potential influencers. Two hundred fifty people filled up a questionnaire with eight closed-ended questions. These discussed the impact of contemporary Christian music on the church as a whole and more specific aspects like musical tastes and instruments used in different churches. Participants came from various churches, notably from the Himalayan state of Sikkim.

Keywords

Christian Church Music, Preference, Sikkim Christian Music

Introduction

At the Himalayas' peaks, Sikkim is geographically and culturally related to the northeastern region and is one of India's most beautiful and diverse states. Despite its tiny size, it consists of diverse languages, cultures, traditions and religions. The diverse nature of the state led to the birth of various religious rituals and music in the region. Music is very much in the lives of the people of Sikkim; their adoration and worship all revolve around the very same factor, music. It is the crucial element. It is there in every religion, including Christianity.

Christian music has expanded beyond the church and is still evolving up to the present day, emerging on the radio, television, concert halls, and at large rallies and festivals (Evans, 2006). It has stretched to incorporate a wide range of styles. Rock, metal, rap, country, gospel, urban gospel, easy listening, and pop are all covered; whatever the musical preferences are, it feels home. Today's Christians can discover anything to listen to that they enjoy. Christian music is on the move with its videos, radio stations,

awards, magazines, and online sites (Praise, 2014).

Christian Music of Sikkim is no exception. With the widespread of Christianity in the region after the contribution of missionaries. As per the census of 2011, Christianity holds nearly 10% of its population and is overgrowing. Christians can be found in all parts of India and in all walks of life, with significant people in South India, the Konkan Coast, and the North-East. Christianity emerged into various denominations such as Roman Catholic, Baptist, Presbyterian and Pentecostal and now with independent churches with their own musical preferences. Christian Music has played its part in sustaining states Gospel. (Bitenieks, 2012)

The face of Christian music has evolved and grown over the last 30 years. Still, the transition hasn't happened overnight through the sacrifices of musicians/worshipers who dared to defy convention and give the music its shape following the times. It's worth noting that a study of the worship transformation and its musical impact by (Myers, 2013) concluded that while musical practices had altered considerably, the overarching framework had stayed unchanged, implying that the alteration was predominantly musical. Therefore, heterogeneity of musical preferences in such a small place with a minority community gives rise to concern about the actual picture of musical preferences and choices among the Christians. Various studies have been done on this in different parts of the globe, making Sikkim fresh and ready for this study.

The present study:

The following study investigates the impact of contemporary Christian music on Sikkim's church music. In pilot research, questions were asked to create a structured closed-ended questionnaire. These explored three essential topics: preferred worship music in churches as a whole and the extent to which contemporary Christian music has influenced Christian music of music.

Objectives:

The primary objective of the research is described below:

1. To analyze the gender and age differences in taste for different types of Church music.
2. To analyze the effect of modern/ contemporary music on the gospel in Sikkim.

Methodology:

For Church members, a systematic questionnaire with closed-ended questions was prepared. The respondents' certainty to the influences was projected in the constructed sheet of questions. All of the questions were answered completely and thoroughly in the research. Due to Covid 19 protocols and restrictions, Google forms were used for a questionnaire which was distributed online through different social sites like WhatsApp, Facebook and emails. Surveys were done among Sikkim's numerous churches, the Duration of the survey was 2 months, dating from 11/10/2021 to 15/12/2021.

The 250 respondents were divided into three age groups with a 15-year gap. It was discovered that among the first age group (15-30), a total of 176 respondents

were recorded, with 87 respondents (49.4%) being male and the remaining 89 respondents (50.6%) being female; similarly, among the second age group (30-45), a total of 46 respondents were recorded, with 25 respondents (54.4%) being male and the remaining 21 respondents (45.6%) being female. Finally, in the third age group (45-60), a total of 28 respondents were recorded, with 20 respondents (71.4%) being male and the remaining 8 respondents (28.6%) being female.

Music preferences of male and female in church:

This segment of the study is based on the responses of 250 people who took part in a survey. This segment of the study deals with the Gender and its musical taste on Church Music. The respondents ranged from students to professionals, all involved in Church activities.

The table below depicts their preferences in greater depth.

		Music Type			
	Indian	*Tradi-tional*			
Gender	*Chris-tian*	*Chris-tian*	*Western Christian*		*Total*
	Music	*Music*	*Music*		
Male	Count	23	57	52	132
	% within Gender	17.4	43.2	39.4	100%
	% within Music type	52.3	44.9	65.8	52.8%
Female	Count	21	70	27	118
	% within Gender	17.8	59.3	22.9	100%
	% within Music type	47.7	55.1	34.2	47.2%
Total	Count	44	127	79	250
	% within Gender	17.6	50.8	31.6	100%
	% within Music type	100%	100%	100%	100%

Table-1

Table-1 divides male and female respondents into three categories depending on their preferred music. Indian Christian Music was preferred by 44 respondents (52.3 % male and 47.7% female), whereas Traditional Christian Music was preferred by 127 respondents (44.9 % male and 55.1 % female). Finally, 79 participants (65.8% men and 34.2 % females) stated that Western Christian Music is their preference. 17.4 %, 43.2 %, and 39.4 % of the 132 male respondents listened to Indian Christian, Traditional Christian, and Western Christian Music, respectively.

We can also state that both men and women prefer traditional and western Christian music over Indian Christian music out of a total of 250 respondents.

To summarise, males (17.4%) and females (17.8%) prefer Indian Christian music. We can also observe that western Christian music is ranked between the most and least preferred music, with 39.4 % of males and 22.9 % of females preferring it.

Respondents are further separated into age groups based on their preferred music, as shown above. 24 respondents liked Indian Christian Music, 86 respondents preferred Traditional Christian Music, and 66 respondents preferred Western Christian Music in the first age group (15-30). Similarly, among those age 30 to 45, 12 liked Indian

Christian Music, 24 selected Traditional Christian Music, and 10 preferred Western Christian Music. Finally, among those aged 45 to 60, 08 respondents favoured Indian Christian Music, 17 liked Traditional Christian Music, and 03 preferred Western Christian Music.

There are total no. of 176 respondents in the first age group (15-30), similarly 46 in the second age group (30-45). Lastly 28 respondents in (45-60) age group.

It is clear from that Traditional Christian Music is the most popular among all three age groups. We can also see that the 15-30 age group chose traditional and western Christian music, whilst the 30-45 and 45-60 age groups preferred Indian and western Christian music.

Influence of contemporary Christian music

This segment of the study is also based on the responses of 250 respondents, which was done to obtain the data on whether the influence of Contemporary Christian music in the present Church music is good or not. The respondents were a diverse group of church members who were involved in the worship activities.

The table below depicts their preferences in greater depth.

	Gender	*Influences*		
		Yes	*No*	*Total*
Male	Count	112	20	132
	% within Gender	84.8%	15.2%	100%
	% within responses	53.6%	48.8%	52.8%
Female	Count	97	21	118
	% within Gender	82.2%	17.8%	100%
	% within responses	46.4%	51.2%	47.2%
Total	Count	209	41	250
	% within Gender	83.6%	16.4%	100%
	% within responses	100%	100%	100%

Table-2

Table-2 divides male and female respondents into two categories depending on their views upon whether the influences are positive or not. The respondents who agreed that the influence has been positive were a total of 209 respondents (53.6% male and 46.4% female), whereas those who didn't agree were a total of 41 respondents (48.8% male and 51.2% female). According to the data we can perceive that the growing influences has made a positive impact towards the present Church and its music.

The same section of the study is now analysed with their age groups, respondents are further separated into age groups based on their responses, as shown above. In the first age group (15-30) 150 respondents chose Yes and the other 26 respondents preferred No as their answer which made a total of 176 respondents. Similarly, among those age 30 to 45, 36 respondents chose Yes and the other 10 respondents preferred No as their answer which made a total of 46 respondents. Finally, among those aged 45 to 60, there are total no. of 28 respondents amongst which 23 chose Yes and 05 of them chose No. According to the Data obtained we can understand that the impact produced

by the influence of contemporary Christian music has been positive and also has been helpful in growth of Church Music.

Conclusion:

Worship is a human reaction to the divine's sensed presence, which is holy and beyond regular human activity. In the Bible, worship alternates between personal and collective experiences. It establishes a personal contact between man and God. God made man for the sole purpose of praising Him. This invitation to worship emphasises worship as a universal priority and every believer's primary task (White, 2012). While traditional Christian music is currently preferred in churches, the song type most frequently voiced in daily services is trending contemporary gospels, which we can attribute to the majority of youth. According to the study, these influences has a good impact aided expansion of church music; it has also served as a channel for church congregations to communicate with churches outside of Sikkim. However, just as two sides of the coin, so does the impact of influences; with influence quickly increasing, the study's last portion indicates that the force has pushed traditional Nepali Christian instruments and music to the brink of extinction. Even though youths have been an essential element, the study finds that church elders are more open to influences in the church and are more aware of the impacts on traditional Nepali Christian music.

References:

Bitenieks, M. (2012). *History of Gospel Music*. Retrieved 2022 February, from Gospel Music Heritage Foundation: http://gospelmusicheritage.org/site/

Evans, M. (2006). Open up the doors: music in the modern church. *Equinox*.

Kibor, E. (2006). Music in Worship Service. *Africa Journal of Evangical Theology*.

Myers, G. L. (2013). *Contemporary practices in Southern Baptist Church music: a collective case study of worship, ministry design and music education*. Boston University Theses & Dissertations.

Praise, S. (2014). Christian Music and Cullture in India. *International Journal in Management and Social Science, 2*(12).

White, P. (2012). Developing a Theology of worship of Today. *Stellenbosch University* .

The Relation Between Bandishes and Seasons in North Indian Classical Music

Dr. (Prof.) Neelam Paul
Supervisor
Professor & Head of the Dept.
Panjab University, Chandigarh

Mr. Arshdeep Singh
Research Scholar
Dept. of Music
Panjab University, Chandigarh

Abstract

Background: *The Indian classical music is the richest form than any other music in the world. The Indian classical music is a guru shiksha tradition or Parampara which denotes a succession of teachers and students and is still continue from generations to generations. The main elements of Indian classical music i.e. Raga, Tala and Laya. A Raga is the melodic form of Swaras (Notes).* ***Methods:*** *The mood and the sentiment of a Raga is expressed through Bandish (composition). 'Bandish' is a Poetry or Lyrics form which has meaningful words. The North Indian Climate has Seasonal variations which are very related to Indian Classical Music. There are some Ragas based on seasons. Bandish also consists of Seasonal lyrics form which depicts the atmospheric value of nature.* ***Conclusion:*** *The North Indian Classical Music inspired me to work with the collection of Bandishes which have the literature of Seasons' depiction. Which will be really helpful to the learners to inculate the value of Bandish and Season.*

Keywords:

Bandishes, Seasons, Ragas, North India, Classical Music.

'Bandish' is a Persian word which means to bind. The Indian classical music has two types: Nibadh and Anibadh forms. Here only Nibadh form is taken under Bandish that's because bandhishes are defined under the Nibadh Sangeet.

In Indian Classical Music, Nibadh form is Bandish. Bhatkhande has used 'cheez' word for Bandish. The composition or geet which is binded in Swaras, Taal and Laya is called Nibadh Sangeet. From the origin, the Indian Classical Music is known for Gayan, Vadan and Nritya. In which Geet (Song) is mainly taken. The others left are based on geet. In actual, the existence of Raga and Tala can only be understood by Bandish. By these Bandishes, Music tradition can be uphold through Guru Shiksha Parampara.[1]

In Indian Classical Music, Bandish is a specific literature form in any particular Raga. With Raga Bandish, Rala is performed with Tabla or Pakhawaj. In Gayan, Bandish is known as Cheez. In gayan sangeet, 'Bandish' is a form which is tied up with Tala and Laya. From generations to generations Khyal, Dhrupad, Dhamar etc. gayan shellies have been continued in Bandish form. In Music Instrumental, Gata is used in place of Bandish.[2]

In North Indian Classical Musical composition is known as Bandish. In North Indian Classical Music, Bandish has an important role. The types of geet (song) in Dhrupad, Dhamar, Khyal, Thumri, Tappa, Dadra etc., is called Bandish. Bandish word is the instead name of Ancient Prabandh. Every type of literature form of a song, poetry in various forms of Indian classical Music is called Bandish. The performance of gayan based on Bandish means particular style or way is called shelley of gayan, vadan mode.

'Swara Raga' and 'Laya Tala' both are equally important part of Music.

Pt. Sarangdeva defined Bandish as;

"rnjjak swara sandarbho gita kityabhidiyate"[3]

Bandish has three elements:

1. 'Tonal Swar' of specific Raag.
2. 'Bandish' is to be bound in any specific theka of Tala.
3. 'Pada' in which there will be significance of words and has been taken care of Samvaad Bhav (Consonance Mood).

In every Gharana, there have become different Musicians who constructed bandishes with the help of Swar, pada in their own individuality, imaginative and perspective. That's why Bandish made by these creators appear to have different different shapes.[4]

It has been seen since ancient times, there must have been meaningful or meaningless words in music. Actually if the medium of music is emotions and sentiments then to reveal, it is natural to have words or song literary words. Hence the words of songs or geet are called Bandishes which are tied to music.

Meaning of Bandish: In various dictionaries, Bandish word has different different meanings. In 'Manak Hindi Kosh', Bandish means 'to tie'. The process of tying sentiments, stages of poetry, sentence, words plan, composition, Parbandh like Geet or Song or Bandish of Ghazal. It is like management or initial arrangement before doing any important work.[5]

- In 'Hindi Sahitya kosh', Bandish means Management, arrangement, composition. etc.[6]
- In 'Hindi Vyutpatti Kosh', Bandish means to tie, initial arrangement, barrier.[7]
- In 'Sanskrit Shabadarth Kostub', Bandish has Bandh dhatu like Bandh: to tie, relation,fastened, specific words build form.[8]
- In 'Sanskrit Hindi Kosh', Parbandh means bondage imagination.[9]
- Actually Bandish is a Persian word.
- In Urdu Lughat (Dictionary), Bandish means arrangement of Words.[10]
- Bandish is known as Composition in English.

According to Vamanrav H. Desh Pandey, Bandish is not just a literary form

nut also a Tonal form and its singing modus is, which defines its words. With creativity variations in short expansion, Bandish is internally tied in every twirl.[11]

'Bandish' term is defined word for both Gayan,Vadan (Vocal, Instrumental) Music.[12]

Acc. To Vani Bai Ram, 'Rachna' is taken in the form of Music and a Geet or Song which is always divided in to three or four lobes like:

1. Sthayi
2. Antra
3. Sanchari
4. And Abhoga.[13]

In Instrumental Music, Gat word is used in place of Bandish.

In 'Groves Dictionary Of Music And Musicians', Composition means that Form which is formed by Musician.[14]

For Bandish eneluctable ingredients are:

1. Tala
2. Swarawali
3. Raag compatibility
4. Literature of Bandish
5. Mukhda of Bandish
6. Aesthetics in Bandish
7. Succulence and Emotiveness.

Bandish in Ragas and its types: Bandish based demonstrable singing process means the specific method is called shelley (genre) of Gayan and Vadan recipe. In every singing genre of Indian Classical Music Bandish has great role so we can say that without Bandish Raga is unenlivened as Geet or Song without Swara and Laya.

With the progression of constituents of Bandish there is also prolongation of Raga. There is no any other way to show off newness in Raga gayan.[15]

The swaras of Bandish which indicate Raga, have important role in Music. In Music there is an equal role of Literature as Swaras in Ragas.

There are many of Ragas which are depicted through Paintings and Literature form. Therefore Bandish is the best and separate method which defines properly.

Accoring to V.N. Bhatkhande, A Singer becomes visible towards a little and little Swara Rachna or Composition in any specific Raga. To make that safe there is need to have some or the other word composition. in that Swara Rachna, Singer without involving in any aesthetical squabble of Poetry he makes his own composition.[16]

There are three types of Bandishes in Ragas:

1. Which shows attentions towards Ragas
2. Based on Seasons
3. Based on Sentiments and Aesthetics.

There are many Gayan Shellies (Genres) in our Indian Classical music like Dhrupad, Dhamar, Hori, Khyal, Thumri, Tappa, Sadra etc. in which Raga based Bandishes are sung. Some of these Bandishes are based on Seasons having different moods and sentiments.

Seasons in North India: India has the Tropical Monsoon type. Influenced by Himalaya and other factors there six Seasons in the North India which is the sub-continent part of South Asia. These six Seasons are:

1. Spring
2. Summer
3. Rainy
4. Autumn
5. Pre-Winter
6. Winter

Relation Between Bandishes and Seasons:

We know that Bandish is a literature form which carries different emotions and feelings. From the Ancient time, our Music Scholars have been so attractive and well known to literature, poetry. Which let them the attention to make equal co-ordination of Music components and Literature forms. There should be equal ratio of Raga emotions and poetic feel which make the Listeners ecstatic.

Pt. Damodar defined main six Ragas and their Raginis and their relation with Seasons.

Likewise Shri Kanth also described the relation between Ragas and Seasons.

Raja Man Singh Tomar has the same Ritu Sidhant like Fakiirullah. Pt. Sarangdeva, Raja Man Singh Tomar and Maharana Kumba etc. have accepted the Season effect and mentioned Ritu Sidhant and did classification Ragas based on Seasons.

In Indian Classical Music we see the poetry of Ragas which is related to their mood. Hence if the Raga is based on the Season there is also predictable image of Raga in Bandish.

There are some Bandishes based on Seasons:

Raga Miyan Malhar

Sthayi: Dhun *dhaam te aayi badriya*
Garj barse jhahre jhoom jhoom

Antara: *Morwa sher kahe papiha pukare*
Taaye pawan chalat jhoom jhoom

Raga Basant

Sthayi: *phooli Basant bahar pyare*
Na sharki shavi dekhi man mein

Antara: *Nargaso sanjui gulab gul kheru*
Gul laala genda aur belrian banaban mein

There are many Bandishes in which we can observe that the literature of Bandishes depicts the Seasonal emotions. There are some Ragas like Megh Malhar, Bahar, Malkauns in which the literature of Bandish depicts both the Raga and Season. hence there is great relation between Bandishes and Seasons. Some Raga based on Seasons:

Season	**Raga**
Basant	Basant, Hindol, Bahar
Summer	Deepak
Rainy	Megh, Malhar
Autumn	Shri
Pre-winter	Malkauns
Winter	Bhairav

Likewise there will also have the seasonal depiction in Bandsihes in these Ragas.

It was my main focus to justify the relation between Bandishes and Seasons in North Indian Classical Music. The learners can also get the value to know about the richness of Indian Classical Music and its Climate.

REFERENCES

1. Gayan Evam Vadan Ki Bandishon Mein Parasprik Sambandh, Dr. Rahul Swarankar, Isara, Sagar, Madhya Pardesh, Vol. 5, 2014.
2. Companion To North Indian Classical Music, Satyendra K. Sen. Chib.
3. Bhartiya Sangeet Mein Nibadh Tatha Anibadh Gaan, Chandrokar, Vijya, Hindi Madhyam Karyanavaya Nideshalaya Delhi University, 1993.
4. Sharma, Swatantra, Prof., Saundrya, Rasa Evam Sangeet, Pratibha Publication, New Delhi, 1974.

5. Sharma, Ramchandra, Manak Hindi Kosh, Bhag-4, Hindi Sahitya Sammelan, Prayag,1965.
6. Varma, Dhirendra, Hindi Sahitya Kosh, Bhag- 1, Gyan Mandal L., 1985
7. Kumar, Naresh, Dr, Hindi Vyutpatti Kosh
8. Sharma, Chaturvedi Dwarka Parsad Tatha Tarinish Jha, Pt., Sanskrit Shabadarth Kaustubh, Ramnarayan Lal Beni Parsad Sanskaran, Ilahabad,1967.
9. Apte, Vaman Shivram, Sanskrit Hindi Kosh, Moti Lal Banarasi Das, P. L., Publishers, Teesra Sanskaran, Delhi, 1996.
10. Bhatti, Alhaaz Mohmaddin, Azhar-Ul-Lughat, Azhar Publishers.
11. Deshpande, Vamanrao H., Indian Musical Traditions (An Aesthetical Study Of Gharanas In Hindustani Music), Popular Parkashan, Bombay, 1973.
12. Neuman, Daniel M., The Life Of Music In North India (The Organization Of An Artistic Tradition), Wayne State University Press, Chicago, 1980.
13. Ram, Vani Bai, Glimpses Of Indian Music, Kitab Mahal, Allahabad, 1962.
14. Groves Dictionary Of Music And Musicians,ERICBLOM.
15. Sangeet, August, 1976, Ramanlal Mehta, Sangeet Karyalaya, Hathras, U.P.
16. Bhatkhande, Vishnu Narayan, K. P., Bhag-6, Sangeet Karyalaya, Hathras, U.P., July, 1973.

आधुनिक भारतीय संगीत में वृन्दवादन और फ्यूजन का प्रभाव

प्रो. अरविन्द शर्मा
शोध निर्देशिक
संगीत विभाग पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़

गुरप्रीत कौर
शोधार्थी,
संगीत विभाग पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़

सार-संक्षेप

वाद्यों को एक साथ एक समूह में बजाया जाए तो उसे वाद्यवृन्द, वृन्दवादन व आर्केस्ट्रा कहा जाता है। भारतीय आर्केस्ट्रा का जो रूप आधुनिक समय में दिखाई पड़ता है, उसकी शुरूआत ब्रिटिश काल में हो गई थी। भारतीय पारम्परिक वाद्यों के साथ आधुनिक समय में पाश्चात्य वाद्यों का प्रचार अधिक प्रभावशाली बन गया है। सितार, सरोद, प्यानो, वायलिन, गिटार, हारमोनियम, तबला, ड्रम, इत्यादि के सुमेल से एक ऐसी स्वर समूह रचना पेश की जाती है जो अधिक प्रभावशाली लगती है।

उस्ताद अली अकबर खां द्वारा फ्यूजन का प्रचलन हुआ। पं. रविशंकर द्वारा पाश्चात्य संगीत के साथ परम्परागत संगीत को मिलाकर नया रूप पेश किया गया, जो श्रोताओं को बहुत प्रभावित लगा। ऐसे कई प्रसिद्ध संगीत विद्वानों ने भारत में फ्यूजन पेश किया, जिनमें उस्ताद अमजद अली खां, पंडित रविशंकर, उस्ताद जाकिर हुसैन, पंडित शिव कुमार शर्मा, पंडित हरिप्रसाद चौरसिया, पं. विश्वमोहन भटट, ए.आर रहमान इत्यादि है।

प्रस्तुत शोध पत्र को लिखने का उद्देश्य भारतीय संगीत में वृन्दवादन और फ्यूजन में पाश्चात्य संगीत के प्रभाव को उजागर करना है। शोध प्रविधि के अन्तर्गत विभिन्न पुस्तकों एवं पत्रिकाओं द्वारा सामग्री एकत्रित कर शोध पत्र को सम्पूर्ण रूप देने का प्रयास किया है।

बीज शब्द

भारतीय संगीत, वृन्दवादन, फ्यूजन, आर्केस्ट्रा, वाद्यवृंद।

वाद्यवृन्द दो शब्दों के सुमेल से बना है-वाद्य तथा वृन्द। वाद्य संगीत गायन और नृत्य के साथ संबंधित है। आज के समय में वाद्य का अपना एक अस्तित्व बन चुका है। मध्यकाल में वाद्य गायन तथा नृत्य को संगत प्रदान करता था परन्तु 19वीं शताब्दी में वाद्य ने अपनी अलग पहचान बना ली। वाद्य चार प्रकार के होते है तत, घन, सुषिर व अवनद्ध। इन वाद्यों को एक साथ एक समूह में बजाया जाए तो उसे वाद्यवृन्द कहा जाता है। "वृन्दवादन, संगीत मेल एवं आर्केस्ट्रा ये सभी वाद्यवृन्द शब्द के ही प्रर्यायवाची है। वृन्दवादन, वाद्यवृन्द तथा संगीत मेल भारतीय नाम है तथा आर्केस्ट्रा शब्द विदेशी है, परन्तु आर्केस्ट्रा

शब्द विदेशी होते हुए भी भारत में व्यापक स्तर पर प्रयुक्त होने लगा।[1] वृन्द शब्द का अर्थ समूह से लिया गया है। जब एक समूह में गायन किया जाये तो उसे 'वृन्दगायन', और एक साथ जब एक समूह में वाद्य बजाये जाए तो 'वाद्यवृन्द', और ऐसे ही जब एक समूह में एक साथ नृत्य करे तो उसे 'नृत्यवृन्द' कहा जाता है। पश्चिमी देशों में भी यह धारणा समान रूप से प्रयुक्त होती है। भारतीय orchestra का आज जो रूप दिखाई पड़ता हैं, उसकी शुरूआत ब्रिटिश काल में हो गई थी। रेव्यू इंटरनेशनल डि ला म्यूज़िक में मुहम्मद जेरूकी-पाश्चात्य वाद्यवृंद के प्रति प्रतिक्रियाएं देते हैं कि ''पाश्चात्य वाद्यवृन्द संगीत की एक ऐसी टोली है, जिसका प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी राग अलापता रहता है। प्रत्येक वादक पूर्णतः अपरापेक्षी रहता है और अपनी इच्छा के अनुसार अपने राग में मस्त रहता है। लगता है कि उन्हें एक-दूसरे से कोई मतलब नहीं, और न ही वे एक-दूसरे के वाद्यों का स्वर ही सुनते हैं। जब संगीत पूरे जोर-शोर से चलता रहता है, तो सहसा उनमें से कुछ लोग अपने वाद्य बजाना बंद कर देते है-जबकि दूसरे लोग अपने-अपने वाद्य बजाना चालू कर देते हैं, तब अचानक उन्हें ख्याल आता है कि अब उनकी बारी आ गई है और वे खोए क्षणों को पूरा करने के लिए अपने पागलपन में दूसरों के साथ सुर मिलाने का यत्न करते हैं।[2] आधुनिक आर्केस्ट्रा का अर्थ एक ऐसे समूह से लिया जा सकता है जिसमें विभिन्न वाद्यों का तालमेल हो।

''वृंद-वादन की परंपरा को एक नया मोड़ आधुनिक काल में पाश्चात्य संपर्क से मिला हैं समूह-वादन की परंपरा प्राचीन काल से रही है। पहले इसे 'तूर्य' कहा जाता था और भरत व शारंगदेव ने इसके लिए 'कुतुप' संज्ञा का प्रयोग किया तथा सिंह भूपाल ने 'वृंद' कहा मुगल-काल में समूह वादन को 'नौबत' कहा जाता था।[3]

वर्तमान भारतीय संगीत पाश्चात्य वाद्यवृन्द से प्रेरित होकर उनकी तकनीक और वाद्ययंत्रों के प्रयोग से प्रभावित हो रहा है। पाश्चात्य वाद्यों का प्रचार इतना बढ़ रहा है कि जिनमें कुछ वाद्य ऐसे हैं कि भारतीय शास्त्रीय संगीत में भी प्रमुखता ग्रहण कर चुके हैं जैसे-वायलिन, हारमोनियम, गिटार इत्यादि।

आधुनिक काल में वाद्यवृन्द की नींव का श्रेय 'अलाउद्धीन खां' को जाता है। उन्होंने 1920 के आस-पास मैहर वाद्यवृन्द का एक समूह तैयार किया, जिसे मैहर बैण्ड से जाना जाता है।

आधुनिक समय में राष्ट्रीय व अर्न्तराष्ट्रीय एकता में वृन्दवादन, सामूहिक रूप में गाए राष्ट्रीय गीत, राष्ट्रीय भावना व एकता को जागृत करने के लिए बहुत सहायक सिद्ध हो रहे हैं। सुप्रसिद्ध सरोदवादक अमजद अली खाँ ने स्वाधीनता के अवसर पर राष्ट्रीय एकता के लिए दिल्ली दूरदर्शन द्वारा कई वृन्दगान, वृन्दवादन की प्रस्तुति की, जिसका **उद्देश्य** राष्ट्रीय जन चेतना, राष्ट्र के प्रति गौरवमई भावना जागृत करना है। इसमें दो गीत थे : 'सारे जहाँ से अच्छा, हिन्दोस्ता हमारा' व 'हम होंगे कामयाब'।

1989 में पंडित जवाहर लाल नेहरू की जन्म शती के उपलक्ष्य में एक 'द यूरोपियन कम्यूनिटी यूथ आर्केस्ट्रा' का एक संगीत कार्यक्रम हुआ, जिसमें संगीत निर्देशक 'जुबीन मेहता' और 'पंडित रविशंकर ने पूर्व और पाश्चात्य संगीत के मिश्रण से एक विशाल आर्केस्ट्रा की रचना तैयार की गई। पंडित रविशंकर द्वारा एक रचना मनोहारिनी है, जिसमें कंठ ध्वनि तथा वाद्य ध्वनि दोनों का समस्त महत्व है। यह एक भक्ति भावना प्रधान रचना है, जिसमें अंकार, गणेश वन्दना, सरस्वती वन्दना तथा गुरु वन्दना शामिल है। इन रचनाओं के पूर्व एक सुन्दर आर्केस्ट्रा प्रस्तुत किया गया है, जिसमें पं. रविशंकर ने भारतीय वाद्यों का ही प्रयोग किया है। यह आर्केस्ट्रा राग हंसध्वनि पर आधारित है।

वायलिन वादक डॉ. एल. सुब्रह्मण्यम का भारतीय संगीत भी पश्चिमी संगीत के साथ जुड़ रहा है। उन्होंने अपनी रचनाओं में रिद्म के लिए भारतीय ताल वाद्यों का प्रयोग किया है तथा मैलॉडी के लिए पश्चिमी तत् वाद्यों का प्रयोग किया है। यह रचनाए न्यूयार्क में जुबीन मेहता तथा फिलर्हामोनिक आर्केस्ट्रा दल द्वारा प्रस्तुत की गई। इसके अतिरिक्त कई संगीतज्ञों ने वृन्दवादन के कई अलग-अलग प्रयोग

कर नए तरीके से रचनाएं प्रस्तुत की, जिन में सरोदवादक अमजद अली खाँ, पंडित रविशंकर, जुबीन मेहता, डॉ. एल. सुब्रह्मण्यम, पंडित विश्वमोहन भटट्, पंडित हरिप्रसाद चौरसिया इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि वाद्य संगीत ने बहुत उन्नति की है। वाद्यवृन्द का स्वतंत्र वादन भी होने लगा है और यह राष्ट्रीय एकता व अन्तर्राष्ट्रीय एकता को जाग्रत करने के लिए सहायक सिद्ध हो रहा है। इसके साथ ही भारतीय संगीत में पाश्चात्य वाद्यों का प्रचार दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

फ्यूजनः

''प्रत्येक देश-प्रांत की अपनी अलग-अलग संस्कृति होती है। जब दो या दो से अधिक संस्कृतियों के संगीत आपस में मिलते हैं तो फ्यूजन बन जाता है।[4]

''फ्यूजन शब्द का वेबस्टर शब्दकोश में बताया हुआ अर्थ है to melt with or blend by melting आक्सफर्ड शब्दकोश भी इसका अर्थ इसी प्रकार बताता है 'to blend or amalgamate into one whole by or as by melting. जब दो या दो से अधिक संगीत रचनाओं को कलात्मक ढंग से मिलाया जाए तो उससे एक नई सांगीतिक रचना पैदा होती है, जिसे हम फ्यूजन संगीत की संज्ञा दे सकते है। यह एक नए दौर की नई रचना है जिस में भारतीय संगीत को पाश्चात्य संगीत के साथ जोड़ कर एक नए प्रयोग किए जा रहे हैं, जिससे आज की युवा पीढ़ी कला के इस नए प्रयोग से बहुत आकर्षित हो रही है। इसी के साथ पारम्परिक (शास्त्रीय) संगीत के प्रति समर्पित कलाकारों में यह दखलअंदाज़ी से नाराजगी भी है। फ्यूजन संगीत में भारतीय संगीत (मैलोडी) तथा पाश्चात्य संगीत (हारमनी) दो संस्कृतियों के संगीत को मिलाकर एक नई रचना का आविष्कार किया जा रहा है।

सर्वप्रथम फ्यूजन का प्रचलन 1955 में संयुक्त राज्य अमेरिका में भारतीय संगीतकार उस्ताद अली अकबर खां के द्वारा माना जाता है। 1960 व 1970 के बीच रॉक एण्ड रॉल (Rock and roll) के साथ भारतीय संगीत के मिश्रण से भारतीय फ़्यूज़न का एक रूप आया। उसी समय भारत में सर्वप्रथम भारतीय फ़्यूज़न को सुप्रसिद्ध सितार वादक पं. रविशंकर ने मंच पर प्रदर्शित किया। इसके उपरान्त पं. रविशंकर ने जैज संगीतकार बड शैंक (Bud-Shank) से मिलकर भारतीय परम्परागत (शास्त्रीय) संगीत को मिलाकर एक नया रूप तैयार किया। पंडित रविशंकर ने पाश्चात्य संगीत के साथ परम्परागत संगीत को मिलाकर संगीत को एक नया रूप दिया जिस से श्रोताओं को यह भारतीय फ़्यूज़न जैज संगीत आकर्षित लगा।

सर्वप्रथम 1960 के दशक में उस्ताद अली अकबर खाँ और पंडित रविशंकर ने ही विदेशों में भारतीय परम्परागत संगीत के साथ पाश्चात्य संगीत को मिलाकर एक नया प्रयोग कर मंच प्रदर्शन किये और विदेशों में छात्रों को वाद्य संगीत की शिक्षा देनी आरम्भ की।

पंडित रविशंकर और उस्ताद विलायत खाँ द्वारा तैयार किया गया संगीत सुप्रसिद्ध फिल्म निर्देशक सत्यजीत रे ने फिल्मों में भी प्रदर्शित किया है। पंडित रविशंकर ने प्रसिद्ध वायलिन वादक येहुदी मेन्युहन (Yehudi Menuhin) के साथ मिलकर पूर्वी-पश्चिमी संगीत को मिलाकर कई नए एलबम भी निकाले। सुप्रसिद्ध बांसुरी वादक पंडित हरिप्रसाद चौरसिया ने भारतीय परम्परागत संगीत के साथ पाश्चात्य संगीत का मिश्रण कर एक Eternity नाम की संगीत एलबम प्रस्तुत की है।

पंडित विश्व मोहन भट्ट ने गिटारवादक एस. अमेरिकन डोबरो, जेरी दुगलास व अमेरिकी गायक ताजमहल के साथ और अरेबियन ओध वादक सिमॉन शाहीन के साथ एक मिश्रित संगीत का प्रदर्शन किया। पंडित विश्व मोहन भट्ट ने चीनी इरहू वादक जी बिंग चैन के साथ मिलकर एक जुगलबंदी प्रस्तुत की जो कि भारत और चीन के इतिहास में सर्वप्रथम जुगलबंदी है।

गायन और वादन दोनों में ही फ़्यूज़न संगीत की लोकप्रियता बढ़ रही है। हाल ही में मेन्डोलिन

वादक यू श्रीनिवासन ने कैनेडा के गिटार वादक माइकल ब्रक के साथ एक 'Dream' नामक एलबम प्रस्तुत किया है। संगीतकार अदनान सामी ने इलैक्ट्रिक पियानों पर भारतीय शास्त्रीय संगीत बजाया है। गायक हरिहरन और लिडसे लेवी ने एलबम The colonial cousin में फ्यूजन का विदेशों में प्रस्तुतिकरण किया है। हाल ही में भारतीय संगीतकार ए. आर रहमान जिनको विश्व के सबसे प्रतिष्ठित फिल्म पुरस्कार समारोह में (आस्कर) से सम्मानित किया गया। ए. आर. रहमान को फिल्म 'स्लमडॉग मिलियनेयर' के लिए सर्वश्रेष्ठ संगीत और गीत 'जय हो' के लिए दो 'ऑस्कर' से सम्मानित किया गया।

ऐसे कई संगीतज्ञों ने भारतीय व पाश्चात्य संगीत का मिश्रण कर यूजफ़्न संगीत की रचना की, जिन में उस्ताद अमजद अली खां, पंडित रविशंकर, उस्ताद जाकिर हुसैन, पंडित शिव कुमार शर्मा, पंडित हरिप्रसाद चौरसिया, पंडित विश्व मोहन भट्ट, जॉर्ज हैरिसन, ए. आर रहमान, प्रीति पैंटल, डॉ. प्रतीक चौधरी के नाम शामिल हैं।

उससे यह निष्कर्ष किया जा सकता है कि वर्तमान समय में वाद्यवृन्द व फ़्यूज़न संगीत का प्रभाव भारतीय संगीत में बढ़ता जा रहा है। चित्रपट संगीत में भी हिन्दुस्तानी और पाश्चात्य संगीत को लेकर कई नए प्रयोग हो रहे हैं।

संदर्भ

1. भारतीय संगीत में वाद्यवृन्द (Orchestra in Indian Music) - डॉ. कविता चक्रवर्ती, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर
2. संगीत दिसम्बर 1971
3. संगीत (विश्व संगीत अंक) जनवरी-फरवरी, 1985
4. संगीत कला विहार, नवंबर, 2006
5. संगीत कला विहार, अगसत 2005

भक्ति संगीत के प्रचार प्रसार में अनुराधा पौडवाल का योगदानः शैव मत के संदर्भ में

गीतू बाला

शोधकर्त्री

गुरू नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर

सार-संक्षेप

'प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय संगीत जगत की महान् कलाकार अनुराधा पौडवाल के द्वारा भक्ति संगीत में विशेषतः हिन्दु धर्म में शैव संप्रदाय के प्रचार-प्रसार में दिये गये योगदान पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। भक्ति संगीत में एक अलौकिक शक्ति विद्यमान है। इसी अलौकिक शक्ति के कारण विभिन्न कालों में ऋषि, मुनि, संतों, फकीरों ने धार्मिक रचनाओं का संगीत के माध्यम से जन जन में प्रचार किया। समय के परिवर्तन एवं तकनीकी विज्ञान में हुए विकास अनुसार हिन्दी फिल्मी संगीत जगत के कुछ कलाकारों जैसे लता मंगेशकर, मोहम्मद रफी, नरेंद्र चंचल, अनूप जलोटा इत्यादि ने फिल्मों एवं गैर फिल्मों के धार्मिक क्षेत्र में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। परन्तु अगर महिला कलाकार की बात करें तो अनुराधा पौडवाल ने भक्ति की प्रत्येक शाखा चाहे वो हिन्दु धर्म में शाक्त, शैव या वैष्णव संप्रदाय हो यां फिर बौध धर्म, जैन धर्म, ईसाई धर्म व सिक्ख धर्म, उन्होंनें धर्म की इन सभी परंपराओं की भक्तिपरक रचनाओं का संगीत के माध्यम से खूब प्रचार प्रसार किया है। इस शोध पत्र को अनुराधा पौडवाल के द्वारा हिन्दु धर्म में शैव संप्रदाय की भक्ति परंपरा तक सीमित कर, उनके योगदान को आधुनिक पीढ़ी के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र को पुस्तकों एवं साक्षात्कार की सहायता से पूर्ण किया गया है।'

संकेत शब्द

शैव मत, भक्ति संगीत, रचनाएं, कृति, वाद्य

संगीत मनुष्य को प्रकृति से मिली एक अद्वितीय देन है। संगीत द्वारा मनुष्य अपनें मनोंभावों, आशा निराशा, हर्ष विशाद, सुख दुःख इत्यादि की अभिव्यक्ति करने में अत्यधिक सक्ष्म है। भारतीय मनीशियों नें नाद को ईश्वर के समान बताकर नादब्रह्म की सदैव उपासना की। मध्यकालीन भक्त कवियों में सूर, कबीर, मीरा, स्वामी हरिदास, गुरू नानक देव तथा नंद दास इत्यादि ने संगीत को मोक्ष का साधन मानते हुए झांझ करताल, इकतारा आदि की मधुर धुनों में लीन होकर गली-गली में प्रभु भक्ति से औतप्रोत भक्ति संगीत का खूब प्रचार किया। भक्ति की बात करें तो ''भक्ति'' शब्द ''भज'' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय लगने से बना है। भज् धातु के अनेक अर्थ हैं, जैसे सेवा, विभाग, अनुरागविशेष आदि।''[1] भक्ति मानव की नैसर्गिक संपत्ति है।भक्ति साधक द्वारा अपने आराध्य देव के प्रति स्मृति, प्रीति एवं निरंतर पूज्यभाव का

नाम है। भक्ति के विभिन्न प्रकार माने गये है। गीता में भक्ति के नौ प्रकार माने गऐ हैं। जिसे नवधा भक्ति के नाम से जाना जाता है। नवधा भक्ति के नौ लक्षण श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्म-निवेदन हैं। "नवधा भक्ति वस्तुतः भक्ति का ब्रह्म उपासना व पूजापरक रूप है।"[2] संगीत एक ललित कला है जिसका आधार नाद है, इसके बिना संगीत का अस्तित्व ही नहीं है।

''न नादेन बिना गीतं न नादेन बिना स्वरः।
न नादेन बिना नृतं तस्मान्नादात्मकं जगत्।।''[3]

'भक्ति संगीत' 'भक्ति' एवं 'संगीत' इन दो शब्दों के मेल से बना है। देवी देवताओं की स्तुति के लिए मंत्रों को संगीत की मधुर स्वरावलियों में राग, तालबद्ध करके गाना ही 'भक्ति संगीत' है। ''ईश्वर आराधना में शीघ्र सफलता के लिए भक्ति संगीत से बढ़ कर दूसरा साधन ही नहीं। इस बात के प्रत्यक्ष अनुभव का शास्त्र में प्रमाण हैः-

पूजाकोटि गुणं स्तोत्रं, स्तोत्रात्कोटिगुणों जपः।
जपात्कोटि गुणं गानं, गानात्परतरं नहि।।''[4]

अर्थात पूजा के बदले करोड़ गुना ज्यादा प्रभावशाली स्तोत्र पाठ है। स्तोत्र पाठ से करोड़ गुना ज्यादा महत्त्वपूर्ण मंत्रों का जाप है, तथा जप से भी करोड़ गुना ज्यादा प्रभावकारी एवम् तुरन्त परिणाम देने वाला 'भक्ति संगीत' है।

भक्ति की इस शाखा में आरंभिक काल से ही ऋषियों-मुनियों ने ईश्वर का साक्षात्कार करने के उद्देश्य से संगीत को भक्ति के माध्यम स्वरूप स्वीकृत किया। मध्यकाल में संतों, पीरों, फकीरों में गुरू नानक देव, कबीरदास, मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास, रविदास, नामदेव इत्यादि ने ईश्वर की महिमा में स्वयंरचित धार्मिक रचनाओं का गुणगान कर जन-जन के हृदय में भक्ति का दीप प्रज्वलित किया। समय के बदलते परिवेश में भारत में चित्रपट का आगमन हुआ, परिणामस्वरूप चित्रपट के माध्यम से ऐसे बहुत से कलाकार हुऐ जिन्होंनें संगीत के क्षेत्र में विशेषतः अगर भक्ति संगीत की बात करें तो इसके प्रचार में अपना विशेष योगदान दिया जिनमें महेंन्द्र कपूर, मुहम्मद रफी, नरेंद्र चंचल, सुरेश वाडेकर, लता मंगेश्कर इत्यादि के नाम उल्लेखनीय है। भक्ति संगीत की इसी धारा में इन कलाकारों के बीच अनुराधा पौडवाल एक ऐसा नाम है जिन्होंने हिन्दी फिल्मों में श्रृंगारिक गीतों एवं गज़लों को गाकर हिन्दी फिल्मी संगीत जगत में तो अपना योगदान दिया ही परन्तु विशेषतः भक्ति संगीत के क्षेत्र में उनका योगदान अविस्मरणीय रहा है। अनुराधा पौडवाल के जीवन वृतांत की बात करें तो इस महान् कलाकार का जन्म 27 अक्तूबर 1954 को संगीत एवं अभिनय का प्रयाग कहे जाने वाले मुम्बई शहर में एक ब्राह्मण परिवार के घर हुआ। "मेरा जन्म 27 अक्तूबर 1954 को श्री विट्ठल नादकर्नी तथा माता श्रीमती इंदुमती नादकर्नी के घर हुआ।"[5]

"अनुराधा जी का बचपन का नाम अल्का नादकर्णी था जो बाद में मराठी की प्रसिद्ध जोड़ी के महान् संगीतकार अमर मोहिले-अरुण पौडवाल जोड़ी के महान् संगीतकार अरुण पौडवाल से विवाह के पश्चात् फिल्मी संगीत दुनिया में अनुराधा पौडवाल के नाम से लोकप्रिय हुआ।"[6]

अनुराधा पौडवाल का संगीत के प्रति बढ़ते रुझान को देखते हुऐ इनकी माता इंदुमती नादकर्णी ने इन्हें संगीत का प्रशिक्षण दिलवाना प्रारम्भ किया। अनुराधा पौडवाल ने संगीत की थोड़ी बहुत शिक्षा श्री पंडित जसराज एवं पंडित सत्यनारायण मिश्रा जी से ग्रहण की। अनुराधा पौडवाल संगीत जगत की महान् गायिका स्वर सम्राज्ञी लता मंगेशकर जी को अपना आदर्श गुरु मानते हुऐ उनके गाऐ गीतों को सुन सुन कर अभ्यास करती थी। अनुराधा पौडवाल ने फिल्मी संगीत जगत में पार्श्व गायिका के रूप में उस समय अपने सांगीतिक सफर की शुरूआत की जब विश्व विख्यात महिला पार्श्वगायिका लता मंगेशकर एवं आशा भोंसले का स्वर्णिम युग चल रहा था। अनुराधा पौडवाल ने बहुत सी सुपरहिट फिल्मों के प्रेम प्रसंगिक, विरह, हर्षो-उल्लास भरे गीत-गज़लों को अपनी मधुर आवाज़ में गाकर सुपरहिट किया, किंतु फिल्मों में उन्होंने गीत, गज़लों के अलावा भक्ति संगीत का भी बेशुमार गायन किया। हिन्दु

धर्म में सनातन धर्म के अंतर्गत उन्होंने इष्टदेव के आधार पर तीन मत शाक्त, शैव तथा वैष्णव की धार्मिक भावना से औतप्रोत बनी लगभग सभी फिल्मों में भक्तिपरक रचनाओं का गायन कर भक्ति संगीत का प्रचार किया। लेकिन इस शोध पत्र का केन्द्रियमान बिन्दु अनुराधा पौडवाल द्वारा शैव मत पर आधारित भक्तिपरक रचनाओं के गायन पर केंद्रित किया गया है। शैव मत में भगवान शिव जी को इष्ट मानकर उनकी आराधना में भक्तिपरक रचनाओं का गायन कर शिव भगवान की भक्ति की जाती है। अनुराधा पौडवाल ने शैव मत में भगवान शिव की स्तुति में भक्तिपरक रचनाओं का गायन चित्रपट एवं गैर चित्रपट दोनों माध्यमों से कर भक्ति संगीत का खूब प्रचार किया।

शैवमत का प्रचार चित्रपट के आधार परः- चित्रपट के अंतर्गत अनुराधा पौडवाल ने भगवान् शिव की भक्ति पर बने चित्रपटों में शिव की महिमा का बखान अपनी मधुर तथा आकर्षक वाणी में कर शैवमत्त का प्रचार किया। शैव भक्ति के अंतर्गत उन्होंने भगवान् शिव की स्तुति में टी-सीरीज़ के मालिक एवं फिल्म निर्माता गुलशन कुमार द्वारा निर्मित चित्रपट 'शिव महिमा'(1992),'चल रे कावरिया शिव के धाम'(1996),एवं निर्माता रवि के. पटवा तथा संजय खंडेवाल द्वारा निर्मित चित्रपट 'महिमा काशी विश्वनाथ की'(2003) के विभिन्न भजनों का गायन विभिन्न रागों की स्वरावलियों में किया। चित्रपट 'शिव महिमा' में अनुराधा पौडवाल ने 'मैं तो शिव की पुजारन बनूंगी', 'शिवनाथ तेरी महिमा', 'मिलता है सच्चा सुख केवल' एवं 'सारे गांव से दूध मंगाकर शिवजी को नहलादो' जैसे सुपरहिट भजनों को अपनी मन को मोहित करने वाली आवाज़ में एकल रुप में गाया है। इन भजनों का संगीत संगीतकार अरूण पौडवाल के द्वारा तैयार किया गया है। भजन 'शिवनाथ तेरी महिमा' का गायन राग तोड़ी के स्वरों में अनुराधा पौडवाल ने शास्त्रीय शैली में बड़ी ही सुंदरता से किया है। उन्होंने भजन 'मैं तो शिव की पुजारन बनूंगी' का गायन राग मिश्र चारूकेशी के स्वरों एवं खेमटा ताल में किया। इस भजन में राग चारूकेशी के स्वरों का प्रयोग शब्दों के भावानुकूल उचित प्रतीत होता है। इसके इलावा इसी चित्रपट के एक अन्य भजन 'ज्योर्तिलिंगों का ध्यान करो' में शिव महिमा का गुणगान अनुराधा पौडवाल के द्वारा हिन्दी चित्रपट के विख्यात पार्श्वगायक हरिहरन के साथ युगल रूप में किया गया है। चित्रपट 'चल रे कांवरिया शिव के धाम' के भजन 'कांवरिया कांवरिया शिव से मिलादे मुझे' को अनुराधा पौडवाल के द्वारा राग कोमल ऋषभ असावरी के स्वरों में गाया गया है। इस भजन को भी खेमटा ताल में तालबद्ध किया गया है। इसके इलावा चित्रपट 'महिमा काशी विश्वनाथ की' में अनुराधा पौडवाल ने एकल रूप में दो भजनों को अपनी मधुर ध्वनि में गाकर प्रस्तुत किया है। जिसमें भजन 'शिव आई मैं तेरे द्वार' का गायन राग शिवरंजनी के स्वरों में किया गया है। इसी चित्रपट के अन्य भजन जैसे 'जय जय शिव शंकर रे जय जय बम भोला' एवं 'पूर्ण हुआ व्रत सोलह सोमवार' का गायन अनुराधा पौडवाल ने सहगायक लखवीर लक्खा, उदित नारायण, राम शंकर व सोनू निगम के साथ युगल रूप में किया। इस प्रकार अनुराधा पौडवाल ने हिन्दी चित्रपट के अंतर्गत भगवान् शिव की महिमा का गुणगान कर शैव मत के प्रचार में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

शैवमत का प्रचार गैर-चित्रपट के आधार परः- अनुराधा पौडवाल ने जहां चित्रपट के माध्यम से शैव मत्त का प्रचार किया वहीं गैर चित्रपट के अंतर्गत गुलशन कुमार की निजी संगीत कम्पनी टी-सीरिज़ के माध्यम से भी शैव मत्त का प्रचार प्रसार करने में अपनी विशेष भूमिका निभाई। उन्होंनें गैर चित्रपट के अंतर्गत 'शिव गंगा', 'महिमा महाकाल की', 'शिव अराधना', 'शिव सागर', 'शिव सुमिरन', 'शिव गुणगान' इत्यादि बहुत सी प्रचलित धार्मिक कृतियों को जनमानस में लोकप्रिय बना दिया। इन धार्मिक कृतियों के अंतर्गत उन्होंने भजन, स्तोत्र, अमृतवाणी, धार्मिक ऋचाओं एवं मंत्रों इत्यादि का गायन किया है। धार्मिक कृति 'शिव गंगा' सन् 1992 को टी-सीरीज़ कंपनी द्वारा रिलीज़ की गई जिसके भजनों का संगीत शेखर सेन ने तैयार किया। इस कृति के

अंतर्गत 'तूं है देवों का देव', 'शिव शंकर को मन में धार', 'काल करे न उस का कुछ भी' आदि भजनों का गायन अनुराधा पौडवाल ने एकल रूप में किया। उन्होंने भजन 'शिव शंकर को मन में धार' को राग जोगिया के स्वरों में बड़े भावों सहित प्रस्तुत किया। 'शिव सुमिरन' को सन् 1997 में टी-सीरीज़ कंपनी द्वारा रिलीज़ किया गया, जिसमें अनुराधा पौडवाल ने शिव वंदना, शिव सप्तक, महाकाल चालीसा, शिव अमृतवाणी, शिव सहस्त्रानामावली, शिव तांडव स्तोत्र, शिव महिम्न स्तोत्र, ध्यान श्लोक, स्तुति, शिव पंचाक्षर स्तोत्र, शिव मानस पूजा, शिव जाप, शिव भगवान की आरती, रूद्राष्टकम्, बिल्वाष्टकम् सोलह सोमवार व्रत कथा आदि शिव भगवान की स्तुति में अनेकों रचनाओं का गायन किया। उन्होंने इन रचनाओं का गायन राग बैरागी, पीलू, मालकौंस, शुद्ध कल्याण रागों एवं नटका, कहरवा इत्यादि तालों में कर शैव भक्ति का प्रचार करने के साथ साथ जनमानस को भी मंत्रमुग्ध किया। इन धार्मिक कृतियों के अंतर्गत अनुराधा पौडवाल ने संस्कृत जैसी कलिष्ट भाषा में रचित वेदों, धार्मिक ग्रंथों की बहुत सी जटिल रचनाओं का गायन अति कुशलता एवं स्पष्टता से किया। उन्होंने हिन्दी फिल्मों में भक्ति संगीत का प्रचार तो किया ही लेकिन इससे कहीं अधिक कैसेट, सी॰डी॰ के माध्यम से शैवमत्त का प्रचार किया। अनुराधा पौडवाल के मधुर कण्ठ से गाऐ गये इन धार्मिक कृतियों के भजन इतने अधिक प्रचलित हुए कि आज भी धार्मिक उत्सवों, धार्मिक स्थलों में उनके गाए भजन सुनने को मिलते हैं। अनुराधा पौडवाल ने हिन्दी एवं संस्कृत के अतिरिक्त मराठी, तेलुगु, उड़ीया, बंगाली इत्यादि भाषाओं में भी शैव भजनों का गायन किया।

इस प्रकार अनुराधा पौडवाल ने शैवमत के अंतर्गत हिन्दु धर्म ग्रंथों की रचनाएं जो केवल ब्राह्मण वर्ग तक ही सीमित थी उन रचनाओं को अपनी मधुर व आकर्षक ध्वनि में गाकर सांगीतिक क्षेत्र में तकनीकी विज्ञान की सहायता से घर-घर में सुलभ करवाया। उन्होंने अपने मनमोहक एवं सुरीले कण्ठ, प्रत्येक भाषा में शब्दों के स्पष्ट उच्चारण, कला एवं धर्म के प्रति विशेष निष्ठा, कर्मठता से हिन्दी चित्रपट एवं गैर-चित्रपट में अन्य महिला कलाकारों से कहीं अधिक भक्तिपरक रचनाओं का गायन कर भक्ति संगीत का खूब प्रचार प्रसार किया है। भक्ति संगीत के क्षेत्र में उनके द्वारा दिए गए अद्वितीय योगदान के कारण हमारा संगीत जगत सदैव उनका ऋणी रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जोशी, जयशंकर, हलायुधकोश, पृः 487, विनोद चंद्र पाण्डेय, निदेशक, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, राजर्षि पुरूषोत्मदास टण्डन हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ, 226001, प्रथम संस्करण-1957
2. भागवत पुराण-सप्तम स्कन्ध, श्लोकः 23, गीताप्रैस, गोरखपुर, 1980
3. मतंगमुनि, बृहदेशी, श्लोकः 16, पृः 3,महामहिम श्रीसेतुलक्ष्मीमहाराज्ञीशासनेन, राजकीयमुद्रणयंत्रालये तदध्यक्षेण, मुद्रयित्वां प्रकाशिता।
4. संगीत (भक्ति संगीत अंक) 1970- जनवरी,पृः 15, संगीत कार्यालय हाथरस।
5. अनुराधा पौडवाल से दूरभाष में हुई वार्तालाप, तिथिः-04.07.2015
6. कविता पौडवाल (सुपुत्री अनुराधा पौडवाल) से दूरभाष में हुई वार्तालाप, तिथिः-03.02.2016

दुष्यंत शकुंतला प्रणय : आधुनिक चित्रकारों की दृष्टि में

मिठाई लाल

शोध छात्र, चित्रकला विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सार-संक्षेप

महाकवि कालिदास का प्रकृति के साथ प्रगाढ़ संबंध है। वे प्रकृति को सजीव और मानवीय भावों से ओत-प्रोत मानते हैं। उनकी प्रकृति दुःख सुख का अनुभव करके मनुष्य के साथ दुःखी या सुखी होती है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में प्रकृति की गोद में ही महाराजा दुष्यंत एवं शकुंतला का प्रणय होता है जिसका चित्ताकर्षक वर्णन कालिदास ने किया है। इस सजीव प्रसंग को चित्रकार सदैव रूप देने का प्रयास करता रहा है। इसी क्रम में आधुनिक चित्रकारों ने भी दुष्यंत एवं शकुंतला के प्रणय लीला को चित्रित किया है, जिसका अध्ययन इस शोध पत्र में किया गया है कि कालिदास द्वारा वर्णित प्रसंग को आधुनिक चित्रकारों ने किस दृष्टि से देखा एवं उसे चित्रित करने में कितना सफल रहे हैं। साथ ही वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता क्या है।

संकेत शब्द

सौहार्दपूर्ण, नैसर्गिक, प्रस्फुटन, मनोज्ञता,मांगलिक, रचनाधर्मिता

महाकवि कालिदास मानवीय जीवन मूल्यों एवं उसके नैसर्गिक सौंदर्य एवं लक्ष्य को बड़ी सूक्ष्मता एवं गहराई से देखते हैं जो उनकी रचनाओं में प्रभावी रूप में दिखाई पड़ता है। उनकी दृष्टि व्यापक व महनीय है जो जीवन को सम्पूर्णता में देखती है। प्रकृति में रहने वाले समस्त प्राणियों (मानव, जीव-जंतु, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, पर्वत, झरने आदि) के सौहार्दपूर्ण संबंधों की कामना करते हैं जिसका मूल है प्रेम कालिदास की रचनाओं में इनका सुन्दर वर्णन है। सरल, सरस एवं परिष्कृत शैली, कल्पना की उन्मुक्त उड़ान, विचारों की गंभीरता जीवन-छंद का सूक्ष्म अनुभव, कविता की मनोज्ञता कालिदास की रचनाओं का वैशिष्ट है। कालिदास ने मानवीय अनुभूति एवं उसके भावों और उसकी संवेदनाओं को बड़ी ही कुशलता से अपनी रचनाओं में चित्रित किया है। मानवीय संवेदनाओं की सूक्ष्म अनुभूतियों को उन्होंने समान रूप से चराचर जगत के प्रत्येक वस्तुओं में अनुभव किया है और यही कारण है वे कि प्रेम प्रस्फुटन को प्रकृति के सानिध्य में ही देखते हैं। इसीलिए उन्होंने अपनी नाट्य-रचनाओं (अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोवार्शियम्, मालविकाग्निमित्रम्) में प्रणय कथा का सुंदर वर्णन प्रकृति की गोद में बड़े ही मनोहारी रूप में किया है।

अ.शा. में प्रणय कथा का जैसा सौंदर्यपूर्ण, लालित्यपूर्ण व श्रृंगारिक वर्णन हुआ है वैसा कालिदास की दूसरी अन्य नाट्य-रचनाओं में नहीं दिखता है। अ.शा. की कथा मूलतः शकुंतला और दुष्यंत के प्रणय को ही आधार बनाकर रची गयी है। अ.शा. में हस्तिनापुर के चंद्रवंशी राजा दुष्यंत एवं महर्षि कण्व की मानस पुत्री शकुंतला के प्रेम का सौंदर्यपूर्ण वर्णन है जिसकी नायिका शकुंतला अतिशय रूप सुंदरी वनकन्या है, जिसके यौवन और लावण्य के अद्भुत

संगम को देखकर नायक दुष्यंत दूर से ही आकृष्ट हो उठते हैं और वृक्षों की ओट से अकस्मात स्वयं से कहते हैं - तेज (विद्युत) भूतल से उत्पन्न नहीं होता। तत्पश्चात शकुंतला की तुलना एक विकसित लता से करते हुए दुष्यंत आगे कहते हैं - शकुंतला के अधर किसलय के समान लाल हैं, बाहें कोमल शाखाओं की भांति एवं यौवन पुष्प की भांति आकर्षक है। अभिज्ञानशाकुंतलम् के प्रथम अंक (1/20) में दुष्यंत शकुंतला के अप्रतिम स्वाभाविक लावण्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि - यह शकुंतला वल्कल वस्त्र से आवृत्त होकर भी अधिक सुंदर लग रही है ठीक उसी प्रकार जैसे कमल सेवार से और चंद्रमा धब्बे से शोभायमान प्रतीत होता है। अतः सुंदर आकृतियों के लिए प्रत्येक वस्तु शोभावर्धक होती है। कालिदास प्रेम एवं सौंदर्य तक पहुंचने हेतु प्रकृति को प्रथम सीढ़ी मानते हैं। इसीलिए शकुंतला का सौंदर्य एवं दुष्यंत के प्रति उसका प्रथम प्रेम प्राकृतिक वातावरण में और भी प्रस्फुटित होकर सामने आता है। प्राकृतिक सौंदर्य के बीच शकुंतला का जन्म तथा प्रकृति की गोद में लालन - पालन एवं संवर्धन, शकुंतला के शारीरिक सौंदर्य में प्रकृति के उपादानों का समायोजन एवम उसके सौंदर्य और उससे उत्पन्न आकर्षण, दुष्यंत शकुंतला के प्रेम प्रणय का आधार है।

इस प्रकार अभिज्ञानशाकुंतलम् में वर्णित महर्षि कण्व के आश्रम के मनोरम वातावरण में विशेष गुणों से संपन्न नायक-नायिका के प्रेम एवं तत्पश्चात उनके गंधर्व विवाह के मिलन का सुंदर वर्णन है। यह प्रसंग इतना मनोहारी एवं चित्ताकर्षक रूप में वर्णित है कि चित्रकारों को इन लालित्यपूर्ण दृश्यों को सजीव रूप देने के लिए स्वतः ही प्रेरणा मिली। यही कारण है कि आधुनिक चित्रकारों ने अपनी-अपनी दृष्टि से इस प्रसंग को चित्रित किया है।

प्रस्तुत शोध पत्र में मैं दो आधुनिक चित्रकारों (राजा रवि वर्मा एवं एस.एम.पंडित) के शकुंतला - दुष्यंत प्रणय पर आधारित चित्रों का उल्लेख कर रहा हूँ जिसके माध्यम से महाकवि कालिदास के सौंदर्य दृष्टि एवं उनके प्रेमछंद को उद्घाटित करना मेरा अभीष्ट है। इन चित्रकारों ने अ.शा. के अन्य प्रसंगों पर भी उत्कृष्ट चित्र निर्मित किए हैं जो अत्यंत लोकप्रिय हुए।

दुष्यंत एवं शकुंतला के मिलन की मुख्य कथा अ.शा. के तृतीय अंक (श्लोक सं.18-21) में वर्णित है जो इस प्रकार है - प्रेम निमग्ना शकुंतला के संताप को दूर करने के लिए उसकी सखियों प्रियंवदा एवं अनुसूइया के सुझाव पर जब शकुंतला अपने मनोभाव को कमल पत्र पर अंकित करने हेतु संलग्न होती है, ठीक उसी समय वहां पेड़ों की झुरमुट के बीच से राजा दुष्यंत का प्रवेश होता है। इस अचानक उपस्थित से शकुंतला एवं उनकी सखियों का दुष्यंत के प्रति प्रेमपत्र लिखते हुए पकड़े जाना और उस परिस्थिति से भयभीत शकुंतला को आश्वस्त करते हुए दुष्यंत का यह कहना कि - हे प्रिय! तुम्हारा सेवक उपस्थित है इसलिए निरर्थक ही घबराना उचित नहीं है। शकुंतला के मनोभाव को समझते हुए (अ.शा. 3/18) दुष्यंत कहते हैं कि - हे करभोरु! क्या मैं शीतल तथा थकावट दूर करने वाले कमल के पत्तों के पंखे से ठंडी हवा करूं या कमल के समान लाल तुम्हारे दोनों चरणों को गोद में रखकर उसी प्रकार दबाऊँ जिससे तुम्हें सुख मिले। मनोवांछित वातावरण और दुष्यंत के अनुरोध के बाद भी लज्जावश शकुंतला वहां से जाना चाहती है इस प्रकार दुष्यंत उन्हें रोकते हुए सप्रेम कहते हैं कि - कमलिनी के पत्तों से जिसके स्तनों का आवरण बनाया गया है ऐसी पुष्प शैया को त्यागकर पीड़ा को सहते हुए कोमल अंगों के साथ धूप में कैसे जाओगी। शकुंतला स्वयं एवं दुष्यंत की मनःस्थिति समझते हुए आगे कहती है कि हे पौरव! अपने शील की रक्षा करो, काम से पीड़ित होने पर मेरा भी अधिकार अपने ऊपर नहीं रह गया। इस पर राजा दुष्यंत उसे लोक भय से आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि - गुरुजनों का भय व्यर्थ है, तुम्हें देखकर धर्म को जानने वाले पूज्य कुलपति इस विषय में दोष नहीं मानेंगे। आश्वासन और प्रेरणा पाने के बाद भी शकुंतला दुष्यंत से कहती है अभी जाने की अनुमति दीजिए मैं अपनी सखियों के साथ फिर आऊँगी। दुष्यंत कहते हैं ठीक है मैं अनुमति दे

दूंगा। शकुंतला पूछती है कब...दुष्यंत जवाब देते हुए (अ.शा. 3/19) कहते हैं कि -

हे सुंदरी! जब तक भ्रमर के द्वारा नवीन पुष्प रस की भांति प्यासे, मुझ दुष्यंत से स्पर्श न किए, तुम्हारे कोमल अधरों का रस दयापूर्वक ग्रहण किया जा रहा है। यह कहकर दुष्यंत शकुंतला का मुख ऊपर उठाना चाहते हैं, शकुंतला इसे नाटकीयता के साथ रोकती है। इस प्रकार दुष्यंत और शकुंतला की कथा बड़े ही जीवंत एवं लालित्यपूर्ण रूप में वर्णित है जिस पर आधारित चित्रों का वर्णन निम्नलिखित है-

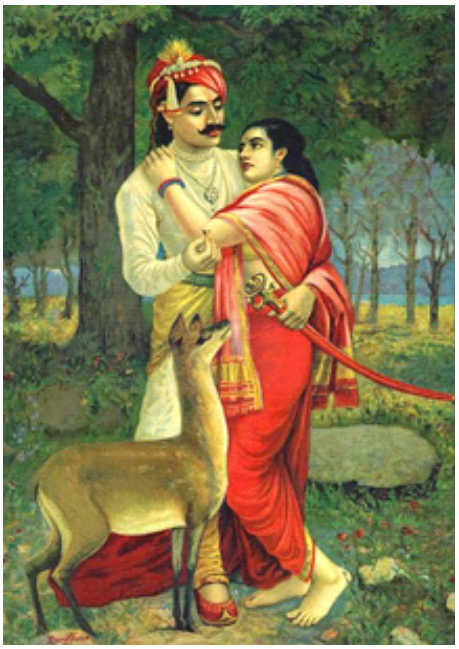

चित्र-1

प्रस्तुत चित्र राजा रवि वर्मा द्वारा निर्मित है जिसमें दुष्यंत एवं शकुंतला के प्रणय मिलन एवं विछोह के मध्य की कथा को बड़े ही सुंदर एवं भावनात्मक रूप में सृजित किया गया है। यह प्रसंग दुष्यंत एवं शकुंतला के धगंर्व विवाह के पश्चात का है जिसमें दुष्यंत शकुंतला से अपने नगर हस्तिनापुर वापस जाने हेतु विदा ले रहे हैं एवम अपने मिलन की स्मारिका हेतु दुष्यंत शकुंतला को अपने नाम एवं राज्यचिन्ह अंकित अंगूठी प्रदान करते हुए चित्रित हैं। इस क्रम में शकुंतला को आश्वस्त करते हुए दुष्यंत कहते हैं कि - इस अंगूठी पर जितने अक्षर खुदे हैं उतने ही दिनों में मैं तुम्हें अपने महल दूत भेजकर बुला लूंगा।इस चित्र में शकुंतला का दुष्यंत से बिछड़ने का दुख स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है। यही कारण है कि दुष्यंत शकुंतला को अपने अंकपाश में लेकर धीरज बंधा रहे हैं। चित्रकार ने बड़ी ही कुशलता से दुष्यंत के मुखमंडल पर शकुन्तला के प्रति अपार स्नेह के भाव को दर्शाया है। दुष्यंत को राजसी वस्त्रभूषण में एवं शकुंतला को भी मांगलिक लाल रंग की साड़ी में चित्रित किया गया है। हालांकि इस प्रसंग में कालिदास ने वल्कल वस्त्रों एवं पुष्पों के आभूषणों का वर्णन किया है जबकि चित्रकार ने शकुंतला के वस्त्राभूषण को अपनी कल्पना व शैली के आधार पर चित्रित किया है जो उनके अन्य नारी चित्रण में भी दिखलाई पड़ता है। इसी प्रकार चित्रकार ने स्वकल्पना से दुष्यंत के हाथ में खड्ग दिखलाया है जबकि अभिज्ञानशाकुंतलम् में दुष्यंत के आयुध के रूप में धनुष बाण का उल्लेख मिलता है। धनुष बाण के स्थान पर खड्ग का अंकन चित्रकार की रचनाधर्मिता पर आधुनिक प्रभाव को दर्शाता है। चित्रकार ने स्वकल्पना से मिलन और विछोह के मध्य उत्पन्न वातावरण को अत्यधिक प्रसांगिक बनाने

चित्र-2

के लिए चित्र में मृगी को भी चित्रित किया है जो बड़े ध्यान से शकुंतला को देख रही है एवं अपनी

सखी के दुखी होने से वह भी दुखी दिखलाई पड़ रही है। परिप्रेक्ष्य में वन-प्रान्त का सुंदर चित्रण है जो महर्षि कण्व के पवित्र एवं सुरम्य आश्रम को प्रदर्शित कर रहा है। विषय के अनुरूप ही मनोहारी व संतुलित रंगों का प्रयोग किया गया है जिससे चित्र और भी अधिक महत्वपूर्ण बन गया है।

प्रसिद्ध चित्रकार एस.एम. पंडित द्वारा चित्रित यह चित्र अ.शा. (3/18) में वर्णित दुष्यंत एवं शकुंतला के प्रणय प्रसंग पर आधारित है। इस कथा का उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है। प्रस्तुत चित्र में दुष्यंत एवं शकुंतला के प्रथम मिलन के उस मनःस्थिति को दर्शाया गया है जिसमें शकुंतला के प्रणयए समर्पण और लोकलाज तथा दुष्यंत के आश्वासन एवं मनुहार को कलाकार ने एक साथ इस चित्र में प्रस्तुत किया है। इस चित्र में दुष्यंत के अंकपाश में शकुंतला को अर्धलेटी अवस्था में दिखलाया गया है। शकुंतला के चेहरे पर लोक लाज का संकोच एवं आशंका का अद्‌भुत स्वरूप चित्रित है जिसमें प्रियतम से प्रथम मिलन का सुख भी परिलक्षित हो रहा है और साथ ही नारियोचित गुण भी विद्यमान हैं। इस भाव को और अधिक जीवंत बनाने हेतु चित्रकार ने शकुंतला को एक हाथ से दुष्यंत के हाथ का सहारा लेते हुए और साथ ही दुष्यंत को पुष्प से आच्छादित डाली से हवा करने के क्रम में उन्हें रोकते हुए दिखाकर संपूर्ण भाव को जीवंतता प्रदान की है। दुष्यंत के मुखमंडल पर अपनी प्रियतमा को पा लेने का सुख एवं उसकी रक्षा का भाव चित्रित है। दुष्यंत ने एक हाथ से पेड़ों से लटकती हुई लताओं को पकड़ रखा है और दूसरा शकुंतला के कंधे पर है जिससे उसकी घबराहट कम हो सके। शकुंतला को आश्रम के अनुरूप वस्त्राभूषण से सुसज्जित किया गया है। शकुंतला के गले में पुष्प एवं रुद्राक्ष की माला एवं हाथों में पुष्प कंकण व रुद्राक्ष का रक्षा सूत्र बंधा हुआ है। बालों में फूलों का गजरा एवं माथे पर कुमकुम बिंदी चित्रित है जो शकुंतला के नैसर्गिक सौंदर्य में और वृद्धि कर रही है। चित्र में शकुंतला के पास ही फल के रूप में सेब चित्रित है जिसे चित्रकार ने एक ओर जहां अतिथि स्वागत के प्रतीक के रूप में दिखलाया है तो दूसरी ओर प्रेम प्रतीक यपाश्चात्य परंपरा के अनुरूपद्ध के रूप में भी प्रदर्शित किया है। चित्रकार ने इस अनुपम विषय को घने वन - प्रान्तर की पृष्ठभूमि में चित्रित किया है। सांझ की वह बेला जिसमें धूप की छाया निरंतर कम होने की ओर अग्रसरित है जिसे चित्रकार ने बड़ी दक्षता से उकेरा है। पीछे पेड़ों के झुरमुट के बीच मालिनी नदी का प्रवाह कथा प्रसंग के अनुरूप है जो इस चित्र को अलौकिकता प्रदान कर रहा है। विषय के अनुरूप सामंजस्यपूर्ण रंगों का प्रयोग है जो चित्र को और भी अधिक सौंदर्य प्रदान कर रहा है। चित्रकार एस.एम. पंडित कालिदास की दृष्टि से अत्यंत प्रभावित थे जो उनके चित्रों में परिलक्षित हो रहा है।

चित्र-3

प्रस्तुत चित्र भी एस.एम. पंडित द्वारा निर्मित किया गया हैए जो अ.शा. के तृतीय अंक (3/21) में वर्णित कथा के अनुरूप चित्रित है जिसका उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है। इस चित्र में शकुंतला कोमल घास एवं कमल के पत्तों के बिछौने पर लेटी हुई है। पास में ही दुष्यंत को शकुंतला के बालों को सहलाते हुए चित्रित किया गया है। शकुंतला के चेहरे पर संकोच व लज्जा के भाव इस चित्र में पहले वर्णित चित्र की अपेक्षा कम दिखलाई पड़ रहे हैं अर्थात शकुंतला ने पूर्णरूप से दुष्यंत के समक्ष प्रेम में समर्पण कर दिया है। दुष्यंत के मुख पर शकुंतला

के अप्रतिम सौंदय को चित्रकार ने बड़ी कुशलता से चित्रित किया है। दुष्यंत को स्वर्ण एवं मोतियों के आभूषणों से एक राजा के रूप में चित्रित किया गया है जिनके सिर पर स्वर्ण मुकुट शोभायमान है। चारों तरफ से घिरे वन प्रांतर में दुष्यंत और शकुंतला के मिलन को गोधूलि बेला में बड़ी ही कुशलतापूर्वक चित्रित किया गया है। दुष्यंत - शकुंतला के प्रणय पर आधारित एस.एम. पंडित का यह सबसे सटीक व प्रमुख चित्र है जो चित्रकार की कुशलता एवं इस विषय के प्रति उनके गहरे लगाव को दर्शाता है।

इस प्रकार राजा रवि वर्मा एवं एस. एम. पंडित ने अभिज्ञानशाकुंतलम् में वर्णित इस विशेष प्रसंग को आम जनमानस में अपने चित्रों के माध्यम से पहुंचाया एवं जन जन में लोकप्रिय भी बनाया। जब भी दुष्यंत और शकुंतला के प्रणय व मिलन की कथा का स्मरण होता है उस समय यह चित्र भी दृश्यमान हो जाते हैं जो इसकी महत्ता को प्रदर्शित करते हैं।

संदर्भ -

1. उपाध्याय भगवतशरण (2016) कालिदास का भारत, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ - 114, 279, 315, 458।
2. गुप्त शिवशंकर (2016) महाकवि कालिदास प्रणितम अभिज्ञान शाकुंतलम्, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी। पृष्ठ 41, 87-102।
3. तिवारी रमाशंकर (2018) महाकवि कालिदास, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी।
4. भारद्वाज विनोद (2009) बृहद आधुनिक कला कोश, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
5. अग्रवाल वासुदेव शरण, कला और संस्कृति, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. उपाध्याय रामजी, संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, चौखंबा विद्याभवन।
7. शुक्ल आचार्य रामचंद्र (2012) हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

सुरजापुरी लोकगीत : सीमांचल क्षेत्र की एक अमूल्य धरोहर

डा. सुनील कुमार तिवारी
विभागाध्यक्ष
तिलकामांझी विश्वविद्यालय, भागलपुर

मौसमी सिन्हा
शोधार्थी, संगीत विभाग
तिलकामांझी विश्वविद्यालय, भागलपुर

सार-संक्षेप

संगीत सम्पूर्ण ब्रह्मांड में प्राणवायु की तरह परिव्याप्त हैं। भारत की लोक भूमि स्वय में अपनी संस्कृति एंव गीत से परिपूर्णा है। बिहार राज्य के सीमांचल क्षेत्र में एक बहुत ही मिठासयुक्त भाषा है सुरजापुरी। इसकी संस्कृति; लोकगीत आदि बहुत ही अनन्य है। इसमें संस्कार गीत जैसे जन्म, अन्नप्राशन, विवाहादि के अवसर पर गाए जातें हैं; जो कि बहुत ही मधुर होते हैं। पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से यह धीरे - धीरे उपेक्षित होती जा रही है। अतः इस मनोरम परम्परा, इसकी लोकगीत आदि को सजीवता दान करना और युगों-युगों तक इसे संरक्षण प्रदान करना ही मेरे शोध का परम लक्ष्य एंव उद्देश्य हैं।

बीज शब्द

लोकगीत, सुरजापुरी, संस्कृति, संस्कार, स्त्रियाँ

सुन्दर वसुधा की अन्यतम सृष्टि है संगीत। सम्पूर्ण ब्रहमाण्ड ही संगीतमय है। प्रकृति के कण-कण में प्राणवायु की तरह संगीत परिव्याप्त है। प्रकृति में बसनेवाली जीवों पशु-पक्षी आदि के कण्ठस्वर से संगीत के सातों स्वरों का उद्भव बताया गया है। प्रत्येक जीवधारी के शरीर के स्पन्दन की तुलना संगीत के लय से की गयी है और एक समान हृदय गति की क्रिया को मापक रुपी ताल कहा गया है। अन्तर्मन की भावना को सुर में अभिव्यक्त करना ही संगीत है चाहे वो ऐश्वरीक पद हो, चाहे श्रृंगारिक पद हो या हो कोई लोक अभिव्यंजना, जिस पद को परिवेशित कर कलाकुशली (कलाकार गायक/गायिका) दर्शकों को, श्रोताओं मन्त्रमुग्ध कर रस की चरम सीमा तक पहुँचाने में सक्षम होते हैं। दरअसल यही एक कलाकार के जीवन की, उनकी कला की सार्थकता है। भारतीय संगीत चाहे वो लोक संगीत हो या शास्त्रीय अपने आप में एक सूक्ष्मतम्, सम्पूर्ण एवं समृद्ध कला है और जब बात लोक संगीत की हो तो मन में अंजाने ही माटी की सोंधी सोंधी खुशबू से भरी एक मीठी सी अनुभूति जागृत हो जाती है और आँखों के सामने विभिन्न देसी परिधान पहने लोक बालाएँ थिड़कती हुई या कृाक समुदाय में आबाल बृद्ध-बनिताएँ गाती बजाती थिड़कती हुई प्रत्यक्ष परिलक्षित होने लगती हैं। हमारे भारतवर्ष में लोक

की भूमि अत्यन्त विस्तृत है। सभी राज्यों की तरह बिहार राज्य की लोकगीत, लोककला, लोकवादन, लोक भाषा, लोक नृत्य आदि अत्यन्त प्रसिद्ध है। चतुर्पुंज जिले लेकर बिहार का सीमांचल क्षेत्र बना है जिनके नाम हैं पूर्णिया, कटिहार, किशनगंज एवं अररिया। पूर्णिया की भौगोलिक स्थिति कुछ इस प्रकार है। यह एक प्रमण्डल है जिसका क्षेत्र 3202. 31 वर्ग कि.मी. है। पूर्णिया के उत्तर में अररिया जिला, दक्षिण में कटिहार और भागलपुर जिले, पूरब में किशनगंज जिला और पश्चिम में पश्चिम बंगाल के पश्चिम दिनाजपुर जिले की सीमा पर स्थित है। यह जिला 25 डिग्री 13 मनट 80 सेकेंड और 27 डिग्री 7 मिनट 59 सेकेंड उत्तर अक्षांश और 86 डिग्री 59 मनट 6 सेकेंड और 87 डिग्री 52 मिनट 35 सेकेंड पूर्वी देशांतर रेखाके बीच अवस्थित है। पूर्णिया में कृषि में मुख्य फसल हैं - धान, गेहूँ, मक्का, मसूर, तेलहन में सरसों, सब्जी में आलू, इत्यादि। इसके अतिरिक्त यहाँ पर फलों में, नारियल, केला, अमरूद, नींबू, कटहल, अनानास आदि के साथ-साथ जूट एवं तंबाकु की भी खेती होती है। यहाँ के प्रसिद्ध व्यक्तित्व में राजनेता भोला पासवान शास्त्री, अजीत सरकार, साहित्यकारों में सतीनाथ भादूरी जिनकी प्रसिद्ध रचना ढोढ़ाय चरित मानस' और जागरी है, सुविख्यात कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु (वर्तमान में अररिया जिला) जिनकी असंख्य रचनायें प्रसिद्ध हैं जिनमें मैला आँचल ''मारे गये गुलफाम'' चलचित्र बना तीसरी कसम के नाम से आदि अभिनेता गुरमीत एवं लोकप्रिय अभिनेता स्वद्ग सुशान्त सिंह राजपुत आदि। पूर्णिया सौरा नदी के किनारे में बसा हुआ है। पूर्णिया में मैथिली, अंगिका, हिन्दी, उर्दू, कुल्हैया और बंगला भाषायें बोली जाती है और एक स्थानीय भाषा है जो कि बहुत ही मिठास से भरी हुई है नाम है सुरजापुरी। यह निम्न क्षेत्रों में बोली जाती है यथा - अनगढ़ हाट, सोनापुर, कंजिया, अमौर, बैसी, रौटा, आदि। सुरजापुरी के अलावे संततिवादी भाषा भी यहाँ बोली जाती है। मिथिलांचल के पूर्व भाग में स्थित पूर्णिया के नाम के संबंध में हमें कई किंवदन्तियाँ प्राप्त होती है- यथा- ''पूर्णिया शब्द का उल्लेख सबसे पहले अबूल फ़जल ने आइने अकबरी में किया जिसमें इसे 'सरकार पुरैनियाँ' कहा गया, इससे स्पष्ट होता है कि 16 वीं शती से पहले ही परिसर का स्वरुप स्पष्ट हो गया था। इसे यह नाम क्यों दिया गया, इस पर अनेक तर्क दिये जाते हैं। एक वर्ग की धारणा है कि यह भूखण्ड नदी एवं पोखरों से भरा हुआ था जिसमें पूरैन (कमल) बहुत होता था इसलिए इसे पूरेनिया कहा गया। विद्वानों का दूसरा वर्ग इसे अरण्यपूर्ण होने के कारण पूर्णिया नाम पड़ा होगा, ऐसा मानते हैं, तीसरा वर्ग इस नाम का सम्बन्ध 'पूण्डू' अथवा 'पौण्डू' देश से जोड़ते हैं। अन्य वर्ग यहाँ के नगरदेवी 'पूर्णदेवी' अथवा 'पूरेन देवी' नाम के साथ जोड़ते हैं।''[1] खोज के दौरान पूर्णिया के नामकरण के संबंध पूर्णिया जिला के कंजिया गांव के निवासी वकील श्री गणेश रंजन घोष जी के द्वारा पता चला कि पुरण देवी नाम की महिला को अंग्रेज गर्वनर ने सती होने से बचाया। उस महिला के परिवारवालों ने उसे अपने घर में रखने से मना करने पर गवर्नर उसे अपने घर ले आए और उनसे विवाह कर अपनी पत्नी का स्थान दिया। उनकी संतानें हुई। गवर्नर अपनी पत्नी को इंगलैंड लेकर गये और पुरण देवी के आग्रह पर ही वह पुनः सपजीक भारत वापस आए और पूर्णिया में ही उनकी पत्नी की मृत्यु हुई और उन्हीं पुरन देवी के नाम पर पूर्णिया नाम पड़ा। भगवान नरसिंह अवतार की भूमि पूर्णिया जहाँ भगवान नरसिंह अवतार लेकर भक्त प्रहलाद को हिरण्यकश्यप के हाथ से बचाया था। पूर्णिया अंचल– कहा जाता है कि पूर्णिया में मच्छर का प्रकोप बहुत ज्यादा था इसलिए इस स्थान को काला पानी कहा जाता था। पूर्णिया के संबंध में यह लोकोक्ति प्रचलित थी - ''जहर खो न महुर खो, मरे के हो तो पूर्णिया जो।'' यही लोकोक्ति सुरजापुरी क्षेत्र अनगढ़ आदि गांव में भी कहा जाता है - ''जहर खइस न महुर खइस, मोरूआर हॉय ते पूर्णिया जइस।'' अर्थात न जहर खाओ न महुर खाओ मरना है तो पूर्णिया जाओ। सीमांचल के सुरजापुरी भाषा-भाषी बहुत ही सरल प्रकृति के शांतिप्रिय लोग हैं। कृषि इनकी मुख्य

जीविका है। राजवंशी, हिन्दू, मुस्लिम के अलावे विभिन्न जाति के लोग भी जो यहाँ पर निवास करते हैं वे भी सुरजापुरी भाषा बोलते हैं, विशेषकर व्यवसायी वर्ग। इसके सिवाय पशुपालन में गाय, बकरी, मुर्गी, भैंस आदि पालना भी इनका काम है। पूर्णिया क्षेत्र के सुरजापुरी भाषियों की भाषा में हिन्दी शब्दों का मिश्रण पाया जाता है। इस भाषा का मेल बंगला, मैथिली आदि भाषाओं से भी है। उदाहरणस्वरूप मैं घर जा रहा हूँ- हिन्दी, मुइ घॉर जाछि-सुरजापुरी, आमि बाड़ि जाच्छि-बांग्ला। आज बहुत बारिस हो रही है - हिन्दी, आज बहुते या खोबे वरसा हौछे-सुरजापुरी, आज खुबि बृष्टि होच्छे बांग्ला आदि। सीमांचल क्षेत्र पूर्णिया में शादी-विवाह अन्य सामाजिक आयोजनों में सुरजापुरी गीत गाये जाते हैं। सुरजापुरी एक बहुत ही मीठी भाषा है एवं सीमांचल की धरोहर है। लोग ब्याह शादी में इस भाषा में लोग गीत गाते हैं। संस्कार गीतों में बच्चे के जन्म, अन्नप्राशन, मुंडन तथा विवाह अनुष्ठान में समूह गीत गाते हैं। शादी में शहनाई ढोल आदि बाजे बजाने वाले को बुलाया जाता है। उनकी शहनाई की करुण धुन से अनायास ही आंखों में आंसू भर आते हैं, उनके ढोल को गांव की भाषा में तरतरिया बाजा भी बोला जाता है। ये लोग हाँड़ी जाति के होते हैं जिसके कारण इनके वाद्य को हाँड़ी बाजा भी बोला जाता है। पूर्णिया प्रमंडल में विवाह आदि समारोह में स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार के मांगलीक गीत गाती हैं। विवाह संस्कार में हल्दी कुटाई की गीत, पगड़ी गीत फिर बहु आने वधुवरण के समय छेड़छाड़, झूमर आदि गीत गाये जाते हैं। उसी तरह वधु के घर में हल्दी कसई कुटाई गीत, मरूआ गीत, बाराती आने पर छेड़छाड़ वाले गीत जिसमें गाली का भी प्रयोग किया जाता है आदि। सीमांचल क्षेत्र में हिन्दू मुस्लिम दोनों सम्प्रदाय में गांवों में शादी ब्याह में लोकगीत गाने का प्रचलन है। शादी ब्याह में गाये जाने वाली ताना उलाहना, छेड़छाड़ आदि गीत का तो अलग ही मिठास है। शादी के समय बाराती आने पर स्त्रियाँ दलबद्ध होकर झुमझुम कर काफी उलहाने भरे गीत गाती हैं जिससे कुछ तुनक मिजाजी बाराती लोगों को चूभ जाती है और वे गुस्सा हो जाते हैं तो लड़की वाले उन्हें शांत करने में लग जाते हैं और स्त्रियां आव देखती है ना ताव और वे उन्हीं को कटाक्ष करके चाहे वे जो भी हों दुल्हे के मामा, चाचा, पीसा (फूफा) उन्हीं का नाम लेकर और झूमझूम कर गाने लगती हैं- दुल्हार मामा टा हुल्लुक मुहा ताके छे इधॉर रे और फुसफुसाहट में बोलती हैं देखनि हुल्लुक मुहा टा किरॉन बेटेछुआनीलार बीती घॉलटाय घॉलटाय देख छे जिसका अर्थ है दूल्हे का मामा हुल्लुक मुहा (बंदर की तरह मुंह वाला) देखो कैसे इधर देख रहा है और आपस में फुसफुसाहट से जो बोलती हैं उसका अर्थ है देखो सिर्फ बेटेछुआनीलार बीती घॉलटाय औरतों की तरफ आंखे घुमा-घुमा कर देखे जा रहा है। एक ओर जहाँ कुछ बाराती तुनक मिजाजी होते हैं तो कुछ लोग रसिक भी होते हैं। उन्हें ये छेड़छाड़ वाले गीत बहुत अच्छे लगते हैं वे मुसकुराकर इसका आनंद लेते हैं जिससे विवाह का माहौल दुगुना खुशनुमा हो जाता है। अब शादी के कुछ गीत-शादी में विभिन्न प्रकार के जो दान दिये जाते हैं जैसे पीतल के बर्तन, अच्छे कपड़े आदि तो इसी आधार पर लड़के को ताना देते हुए स्त्रियाँ गाती हैं - "थाली नी छिलकुन, सोते गॉते थाली पालो सॉसरालते! थाली नी छिलकुन, सोते गॉते थाली पालो एहिठिनते! केलार पातॉत खाछिलो भात कानेछिलो रे बुढ़ा, आव खाबो खालित भात हाँसिबोरे बुढ़हा फट्टा चिट्ठा पिन्हेछिलो कानोछिलो रे बुढ़ा, अब पिनबो नया कपड़ा हाँसिबोरे बुढ़हा! कपड़ा नी छिलकुन, सोते गॉते कपड़ा पालो सॉसरालते! कपड़ा नी छिलकुलन, सोते गॉते कपड़ा पालो एहिठिनते! अर्थात् थाली नहीं था तुम्हारे पास थाली मिली ससुराल में। केला के पत्ते में भात खाते थे रोते थे, बुढ़हा संबोधन दूल्हे को चिढ़ाने के लिए किया जाता है। अब खाओगे थाली में भात हंसोगे रे बुढ़हा। फट्टा चिट्ठा कपड़ा पहनते थे रोते थे रे बुढ़हा, अब पहनोगे नया कपड़ा हंसोगे रे बुढ़हा। शादी होकर लड़की जब ससुराल में जाती है तो उसे गरीब बोलकर ताना दिया जाता है- अते दूर से ओलो बुढ़ही तुइ काँनिते मुनिते गे, सॉसरालेर बगलॉत ओसिये बुढ़ही तुइ बाफेर नाम बिसरालो गे उसी

तरह मामा, चाचा, चाची, दादा, दानी, नाना, नानी आदि लोगों का नाम लेकर ये गीत गाये जाते हैं जिसका अर्थ है इतनी दूर से आई बुढ़ही (दुल्हन) तुम रोते-रोते और ससुराल के नजदीक आकर तुम पिताजी का नाम भूल गई। इस गीत का अभिप्राय यह है कि ससुराल का घर-बार अमीरी थाट देखकर दुल्हन अपनी मायके को भूल गई। उसके बाद विभिन्न आचार अनुष्ठान होते हैं और उसी दौरान दुल्हन को उसकी ननदें उलहाना देती हैं इस गीत के माध्यम से - खॉर कूटॉ दे रानेहछिलो भात कानेछिलो गे बुढ़ही आब रानबो लकड़ीत भात हाँसिबो गे बुढ़हि अर्थात स्त्रियां लड़की को कहती है कि वो घास फुस से चावल पकाती थी मायके में और रोती थी और अब दुल्हन से चावल पकाएगी और हंसेगी। अभी तक के शोध के दौरान मुझे विवाह संस्कार के गीत की खोज मिली है। अपने शोध में मैं क्षेत्र भ्रमण, साक्षात्कार, ऑडियो विडियो रिकॉर्डिंग, सर्वेक्षण एवं लोक पर आधारित गुणीजनों की पुस्तकें आदि प्रविधि को व्यवहार में ला रही हूँ और आगे भी इसी प्रविधि को कार्य में लाकर मैं शोध कार्य को सम्पूर्णताः देने का प्रयास करूँगी। पूर्वजों की इस अमूल्य विरासत को बचाकर, इसे देश एवं दुनिया के सामने लाना ही मेरे शोध का लक्ष्य एवं उद्देश्य है। सीमांचल के इस अनन्य धरोहर सुरजापुरी लोकगीत में कार्य रुप में फलीभूत कर जन-जन तक लोकभाषा एवं लोकगीत को सजीवता प्रदान करने का अथक प्रयास करूँगी जो भावी संतति के लिए उपहारस्वरुप होगा।

संदर्भ सूची

1. लेखिका डा. गांगुली अंजना :- पूर्णिया अंचल के लोकगीतों का संगीत शास्त्रीय, अध्ययन अध्यक्षा; संगीत स्नातकोत्तर विभाग। पृ. सं. 15, जे.डी. वीमेन्स कॉलेज ऋतुगन्ध प्रकाशन मुजफ्फरपुर (मगध वि. वि.) पटना (बिहार)
2. लेखिका डा. गांगुली अंजना :- पूर्णिया अंचल के लोकगीतों का संगीत शास्त्रीय, अध्ययन, अध्यक्षा; संगीत स्नातकोत्तर विभाग। पृ.सं. 15, जे. डी. वीमेन्स कॉलेज, ऋतुगन्ध प्रकाशन मुजफ्फरपुर, (मगध वि. वि.) पटना (बिहार)
3. पूर्णिया प्रमंडल के विभिन्न गांवों के निवासीगण।

लोक संगीत मे भाव पक्ष का विस्तृत अध्ययन

प्रियंका ठाकुर

शोधार्थी

हिमालय प्रदेश विश्वविद्यालय, समरहील

सार-संक्षेप

लोक संगीत किसी भी देश, प्रान्त, क्षेत्र अथवा स्थान की सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थिति का दर्पण होता है। लोक संगीत का तात्पर्य जन-मानस की साधारण अभिव्यक्ति से है। कोई व्यक्ति अपनी दिनचर्या में कार्य करते समय अपनी मूल भाषा में कुछ गुनगुना लेता है तो विद्वानों ने उसे लोक संगीत की संज्ञा प्रदान कर दी। लोक संगीत का जन्म किसी व्यक्ति के नैतिक मूल्यों, त्यौहारों, रीति रिवाजों, सामाजिक उत्सवों तथा सामूहिक कार्यों द्वारा हुआ। लोक संगीत विषय भी उतना ही व्यापक है, जितना लोक जीवन। भिन्न भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न लोक गीत गाए-बजाए जाते हैं। लोक-संगीत के संस्कारयुक्त संस्करण को ही 'शास्त्रीय संगीत' की संज्ञा दी गई है। विद्वानों का मानना है कि मार्ग संगीत में विभिन्न परिवर्तनों का परिणाम ही लोक संगीत है। संगीत कोई भी, किसी भी प्रकार का हो, अपने अन्दर निश्चित भाव, रस, कला समाए चलता है। लोक संगीत से भी विशिष्ट भावो का संचार होता है। कलाओं का उद्देश्य ही भावनाओं के उत्कर्ष द्वारा रसानुभूति कराना है।

बीज शब्द

लोक संगीत, भाव, भावनात्मक विश्लेषण, रिति रिवाज, त्योहार

लोक संगीत

लोक संगीत में लोक मानस के भावों की अभिव्यक्ति सरल तथा सहज रूप में होती है। लोक संगीत में किसी भी प्रान्त, देश, समाज की प्राचीन संस्कृति की झलक मिलती है। लोक संगीत में किसी स्वर को विशेष महत्व प्रदान नहीं किया जाता, अर्थात् स्वरों को विशेष रूप प्रदान करके प्रयोग में लाया जाता है। स्वर, ताल तथा लय, मन और मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ते है। यही कारण है कि 64 कलाओं में संगीत को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। शास्त्रीय संगीत में जटिलता तथा तकनीकी विशेषताएं होने के कारण आम जन को उतना आकर्षित नहीं कर पाता। वहीं लोक संगीत आकर्षित परिपेक्ष में पूर्ण रूप से समर्थ है। लोक संगीत सहज ग्राह्य होने के कारण, किसी भी उम्र के इन्सान को आकर्षित कर लेता है। भारतीय विद्वानों ने लोक संगीत को उतना प्राचीन माना है, जितना मानव का उद्भव और विकास है।

लोक संगीत भाव

लोक संगीत में मानव के भावों की अभिव्यक्ति सहज रूप से सहज व सरल होती है। लोक संगीत में हमारी प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति की झलक दिखती है। साधारणतः दैनिक जीवन के कार्य में मनुष्य के भाव निहित होते है। उदाहरण के लिए-प्रेम,

पर्व, वेदना, मेले, शादि, फसल कटाई, ऋतु परिवर्तन, बुआई आदि। इन दैनिक कार्य में संगीत सहज रूप से विद्यमान रहता है तथा भाव में गति प्रदान करता है। लोक संगीत में बिना खटका, मुर्की तथा सुक्ष्म नादो का स्वयं प्रयोग हो जाता है। इसका कारण हमारी लोक भाषा का प्रभाव हो सकता है। लोक भाषा, लोक संगीत का प्रमुख अंग है। सरल तथा सहज स्वरात्मक, लयात्मक प्रयोगों से सुसज्जित लोकभाषा का प्रयोग भावों की अभिव्यक्ति में अधिक सहायक होता है। जटिल तथा अत्याधिक आलंकारिक भाषा, प्राकृतिक भावों में समस्या उत्पन्न करती है। लोक संगीत का छन्द संक्षिप्त होता है, परन्तु भाव के अनुकूल होने में वह हृदय तथा मस्तिष्क पर पूरा प्रभाव डालता है। भावों की सनातनता के कारण लोक संगीत कभी भी पुराना नहीं होता अर्थात सदाबहार रहता है। भाव सम्प्रेषण की क्रिया द्वारा गायक तथा श्रोता के बीच जुडाव का कारण बनता है। सशक्त भाव पक्ष के कारण ही लोक-संगीत अन्य सभी शैलियों में अग्रणी है। लोक संगीत से प्रभावित होकर ही तो रविन्द्रनाथ टैगोर ने शास्त्रीय संगीत की धरातल पर कदम रखा तथा हृदय मस्तिष्क को छूने वाले, शब्द-स्वरों से विभूषित करके नई गान पद्धति की रचना की थी, जो कि रविन्द संगीत के नाम से जानी जाती है।

लोक संगीत में भाव भाषा तथा स्वर से विभूषित होकर उत्पन्न होते है। भावों में जड़ तथा चेतन के मध्य एक व्यवस्था स्थापित होती है। भरत ने अपने ग्रंथ में कहा है कि जो "रस का भावन करे, वही भाव है।" अर्थात भाव से उनका अभिप्राय रस-व्यंजक सामग्री से है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रान्त के लोक गीत, भिन्न-भिन्न भाव-रसो की निष्पति करते है।

उदाहरण के लिए-माँ की ममता, मृत्यु का विशाद, दीन की करूणा, ईष्या, राग दोष, उल्लास, कामना, क्रोध, अहम, लोभा, निराशा, मद, आशा सभी का दग्दर्शन लोग संगीत में सहजता से होता है। इन सभी तत्वों में भाव की प्रधानता रहती है। अपने भाव पक्ष की प्रधानता के कारण ही, लोक संगीत पूरे विश्व में प्रचिलित तथा लोकप्रिय है।

भाव विश्लेषणः-

किसी भी संगीत विद्या में भाव पक्ष परिपूर्ण रहता है। यदि लोक संगीत में भाव पक्ष का विश्लेषण किया जाए तो कुछ तथ्य सामने आते है। जो कि इस प्रकार हैः-

(क) सांस्कृतिक प्रेम-

लोक गायक एंव कलाकारों के हृदय में अपनी लोक संस्कृति के प्रति प्रेम-भावना तथा आदर छिपा रहता है। ये कलाकार अपने हृदय में अहम् को आने नहीं देते अर्थात इनका मुख्य उद्देश्य होता है अपनी लोक संस्कृति को जीवित रखना तथा इसका प्रचार करना। लोक कलाकार पूर्ण हृदय तथा परिपाटी के अनुसार अपनी लोक कला का प्रदर्शन करते है। इसी कारण प्रत्येक लोक संगीत में विविधता नज़र आती है तथा भिन्न-भिन्न भावों और रसों की निष्पत्ति होती है।

(ख) प्रेरणा शक्ति-

लोक संगीतकार अपने भावों को उत्साह से प्रकट करते है। वे किसी भी जाति, धर्म, पर्व और राष्ट्रीय चेतना को कायम रखते हुए अपनी कला का प्रदर्शन करते है। लोक संगीत की यही प्रेरक शक्ति सामाजिक उत्थान में सहायक सिद्ध होती है। यही प्रेरणा हमें निरत्तर जीवित रखनी चाहिए।

(ग) सृजनात्मक शक्ति-

लोक संगीत के किसी भी प्रकार के बौद्धिक विश्लेषण या बौद्धिक सम्प्रेषण की अपेक्षा नहीं रखता है, बल्कि कलाकार अपने पूर्ण तथ सहज मन से प्रेरित होकर शीघ्रता से सम्वेदनशील हो उठता है। लोक सांगीतिक कलाकार भौतिक सुख भूलकर, एक अद्वितीय आनंद से पूरित हो जाता है। उस कलाकार की मानसिक धरातल, सृजनात्मक शक्ति से ओत-प्रोत होकर नव स्फूर्ति एवं नव-रस का संचार करने में समर्थ हो जाता है। वैसे भी लोक सांगीतिक कलाकार के लिए, उसकी सांस्कृति की झलक को पेश करना,

उसे बहुत गर्व प्रदान करती है।

(घ) स्वर, ताल, लय

लोक कलाकार नीचे के स्वरों से ऊपर के स्वर तथा ऊपर के स्वरों से नीचे के स्वरों में पूर्ण रूप से इतने लीन होते हैं कि उन्हें मुख्य रूप से प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती। उनकी समस्त भावनाएँ बंधी-बधाई लोक-धुन में घनीभूत होकर, रसों का स्वयं संचार और संचालन करती है।

(ड) दिव्यता

लोक संगीतकारों के हृदय में आत्मा समर्पण की भावना, कला प्रदर्शन के पूर्व से ही विद्यमान रहती है। सभी कलाकारों का मानसिक धरातल लोक-धुनों पर तैरता हुआ एकत्व की अनुभूति कराने में सफल सिद्ध होता है। लोक धुने हमारे मस्तिष्क में स्वय ही समाहित रहती है। इसका कारण हमारा आस-पास का सांस्कृतिक वातावरण तथा लोक संस्कृति होती है। इसी प्रकार लोक कलाकारों का भौतिक अस्तित्व उन दिव्य क्षणों में तिरोहित हो जाता है तथा उनका यही एकत्व, दिव्यत्व की कसौटी सिद्ध होता है।

लोक संगीत किसी स्थान की धरोहर न होकर आज खुले प्रांगण में गाया बजाता है। बहुरंगी जातियों, अनेक धर्मों के लोग, बहुरंगी संस्कृति, अनेक भाषाएँ, भारत के अनेकता में एकता के सुत्र में बांधती है। इनसे उत्पन्न भाव, रस, सौन्दर्य एक सांस्कृति से लेकर दूसरी सांस्कृति तक सराहा जाता है। यही संगीत की विशेषता है जो विश्व में एकता को प्रदर्शित करती है। संगीत एकमात्र ऐसी विद्या है जहाँ कलाओं में कोई बंटवारा नीहं, जहां किसी की ना जाति देखी जाती है और न ही रंग। लोक संगीत को भी एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में पहुँचने का कार्य रेडियो, दूरदर्शन ने किया है। आज जगह-जगह लोकोत्सवों का आयोजन होता है जहाँ हर कोने से लोक आकर अपनी संस्कृति तथा अपने लोक गीतों-नृत्यों को प्रस्तुत करते है। इस प्रकार सांस्कृतिक भावों का आदान-प्रदान किया जाता है। लोक संगीत जन-जीवन में पूर्णतः व्याप्त है। किसी भी देश प्रदेश का संगीत उसके लोक जीवन की सभ्यता, संस्कृति का दर्पण भाव है। लोक संगीत अथवा लोक संस्कृति का भाव से इसी प्रकार गहरा सम्बंध है। अर्थात् लोकसंगीत से भाव पक्ष को अलग नहीं किया जा सकता।

सार

लोक संगीत की उत्पत्ति, सामान्य लोक, सांस्कृति, लोक मानस, समाज, से हुई है। भारत के विभिन्न प्रान्तों की प्रादेशिक संस्कृति भोगौलिक स्थिति, बोल-चाल रहन-सहन, रीति-रिवाज तथा स्थानीय भाषा से जुड़े सभी रस व भावों की संगीत पूर्ण अभिव्यक्ति ही लोक संगीत कहलाई। देशी संगीत की पुष्टि तथा पृष्ठ भूमि ही लोक संगीत है, अर्थात् देशी संगीत को ही लोक संगीत कहा गया है। सांस्कृतिक भावों का सुखद सन्देश ले जाने वाली रचना अथवा कला, लोक संगीत है। लोक मानस व समाज, संस्कृति का मनारंजन करना ही लोकगीत का उद्देश्य रहा है। वर्तमान में भारत के विभिन्न क्षेत्रें की संस्कृति को उजागर करना ही लोकसंगीत का उद्देश्य है। कोई भी कला हो, उसमें सबसे जरूरी तत्व होते है-रस, भाव। हमारे देश का लोक-संगीत भी भावपूर्ण है। लोक समाज की संस्कृति, परम्परा, रीति-रिवाज, स्थानीय भाषा के संरक्षण हेतु लोक संगीत का संरक्षण अनिवार्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि

1. कुमार अशोक, संगीत रतनावली, अभिषेक पब्लिकेशन चण्डीगढ, (2008)
2. शर्मा भीमसेन, स्वर संवाद, राजीव बिहार मनीमाजरा पब्लिकेशन, चण्डीगढ़।
3. बसन्त, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय हाथरस 101-204, 2017
4. स्नेही शिखा, संगीत अरिहन्त, अरिहन्त पब्लिकेशन लिमिटिड, 2018

मराठी नाट्य संगीत मे पं. जितेन्द्र अभिषेकी जी का योगदान

दीपक सिंह

शोधार्थी

संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सार-संक्षेप

नाट्य संगीत के क्षेत्र में पं. जितेन्द्र अभिषेकी जी का अमूल्य योगदान है। उन्होंने अपनी नवीन सोच, रचनात्मक वृत्ति व ज्ञान से मराठी थिएटर में एक नई ऊर्जा का संचार किया था और यही कारण के उनके काल को नाट्य संगीत जगत में 'अभिषेकी युग' के नाम से जाना जाता है। उन्होंने लगभग 20 मराठी नाटकों के लिए गीतों की रचनाएँ की अर्थात लगभग 150 गीत। महान नाटककार पुरुषोत्तम दरवेकर द्वारा रचित सुप्रसिद्ध नाटक 'कट्यार कालेजात घुसली' का संगीत निर्देशन भी पं. जितेन्द्र अभिषेकी जी ने ही किया। जो कि विशेष रूप से दो सांगीकिक घरानों की सांगीतिक प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित था। पं. जी ने भारतीय संगीत की विविध शैलियों का प्रयोग भी नाट्य संगीत में बखूबी किया। जेसे 'गुंतता हृदया' में दादरा शैली के तत्वों का प्रयोग किया। जो मूल रूप से बृज भाषा में था। इसके अतिरिक्त पंडित जी का नाटक 'लेकूरे उद्दंड झाली' एक नवीन प्रायोगिक कृति है जिसमें उन्होंने यूरोपियन ओपेरा के तत्वों का इस्तेमाल किया। पं. जितेन्द्र अभिषेकी ने 60 के दशक में पाँच से दस मिनट के छोटे सांगीतिक रचनाएँ नाट्य संगीत में की जो कि एक नया तथा एक आवश्यक कदम था नाट्य संगीत में उस समय। क्योंकि उस समय की रचनाएँ लम्बी अवधि की हुआ करती थी। जिसकी वजह से बहुत से लोग समय के अभाव के कारण उनसे वंचित रह जाते थे। उन्होंने मराठी नाटक में स्पष्ट उच्चारण पर बहुत जोर दिया। इसके अतिरिक्त वह विविध ताल विशिष्टताओं ऑफ-बीट, आटर बीट इत्यादि के साथ लय व ताल का प्रयोग करते थे। जो राग नाट्य संगीत में प्रयुक्त नहीं हुए थे उनमें से कुछ रागों को वे बड़े ही सुंदर ढंग से प्रयोग में लाए। जिसका एक सबसे बड़ा उदाहरण राग बिहागड़ा का है। जिसे नाट्यसंगीत में उनसे पहले किसी ने भी प्रयुक्त नहीं किया। किन्तु अभिषेकी जी ने बड़ी ही सुंदरता से इस राग के रूप को नाट्यसंगीत में प्रयोग किया।

बीज शब्द

आकाशवाणी, नाट्य संगीत, नाटक, संगीत निर्देशक, कार्यक्रम

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन हेतु विविध पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तकों के माध्यम से तथ्य सामग्री एकत्रित करने का प्रयास किया गया है। यह शोध पत्र पूर्ण अथवा आंशिक रूप से न तो कहीं प्रकाशित किया गया है और न ही प्रकाशन हेतु प्रेषित किया गया है।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन का मुख्य उद्देश्य मराठी नाट्य संगीत में पंडित जितेन्द्र अभिषेकी जी के योगदान का विवेचन एवं गहन चिंतन करना है।

भूमिका

पं. जितेन्द्र अभिषेकी हिन्दुस्तानी संगीत जगत के एक विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न संगीतज्ञ थे जिन्होंने संगीत में अपनी एक नवीन दृष्टि को संचरित कर संगीत जगत में अपना अमूल्य योगदान दिया है। संगीत के हर क्षेत्र चाहे वह शास्त्रीय संगीत हो, उपशास्त्रीय संगीत या फिर नाट्य संगीत सभी में उन्होंने अपनी एक अमिट छाप छोड़ी है। सुर को देखने का उनका जो नज़रिया था वह बहुत ही अद्‌भुत था। जो कि भाव को अत्यंत उद्‌भासित करता था। शब्द की गहनता को वे समझते थे। लय की लोच को वह बहुत ही खूबसूरती के साथ देखते व उसकी निर्मिति कर उसका उपयोग अपनी गायकी व रचनाओं में वे भली प्रकार से करते थे। तथा साथ ही आवाज़ पर जो उनका अधिकार था उसको शब्दों में व्यक्त करना असंभव है। पं. जी का जीवन बहुत ही संघर्षमय रहा है फिर भी वह जीवन में आगे बढ़ते रहे तथा संगीत के क्षेत्र में उन्होंने अपना एक उच्च स्थान प्राप्त किया है। उन्होंने विविध घरानों से सांगीतिक ज्ञानार्जन कर व स्वयं की कल्पना से अपनी गायकी में एक नया आयाम प्राप्त कर उसे समृद्ध किया है। वह जिस भी कार्य को करते थे उसमें पूर्ण रूप से रम जाते थे तथा उसमें अनेकों संभावनाएँ खोजते थे। जैसे कि जब वह आकाशवाणी में एक समाचार वक्ता के पद पर कार्यरत थे उस दौरान उन्होंने विविध गीतों की रचनाएँ की। तथा इसके अतिरिक्त विविध भाषाओं का ज्ञान भी प्राप्त किया तथा अनुवाद कार्य भी किया।

यदि हम पं. जी के कार्यों का अवलोकन करते हैं तो उसमें नाट्य संगीत जगत में जो उन्होंने कार्य किया वह अपने आप में एक बहुत ही विशेष पक्ष रहा है। वास्तव में नाट्य संगीत का संबंध शास्त्रीय संगीत तथा शास्त्रीय संगीतकारों से बहुत ही पुराना व अटूट है। पं. जी से पूर्व भी बहुत से ऐसे दिग्गज कलाकार हुए हैं जिन्होंने नाट्य संगीत में निर्देशन, गायन तो किया है। जिनमें प्रमुख नाम है पं. बाल गंधर्व जी का। अपने शुरुआती दिनों में बालगंधर्व इसके प्रमुख गायकों में से एक थे। अजीत कड़कड़े तक उनके बाद आने वालों ने इस शैली को बहुत समृद्ध किया। लेकिन फिर एंटीक्लैमेक्स का दौर आया और इसका अंत निकट लग रहा था। यही वह समय था जब पं. अभिषेकी ने इसे एक नया मोड़ दिया। उन्होंने शास्त्रीय गायन के लिए मराठी नाटक के स्पष्ट उच्चारण पर जोर दिया। और इस तरह अपने बोल आलाप, सरगम इत्यादि को समायुक्त किया। इसके अतिरिक्त वह भिन्न-भिन्न टैम्पो और विविध ताल विशिष्टताओं ऑफ-बीट, आटर बीट इत्यादि के साथ लय व ताल का प्रयोग करते थे। नाट्य संगीत में सभी रागों का रूप गायन में प्रयुक्त नहीं हो सकता लेकिन पं. जी ने जो राग नाट्य संगीत में प्रयुक्त नहीं हुए थे उनमें से कुछ रागों को वे बड़े ही सुंदर ढंग से प्रयोग में लाए। जिसका एक सबसे बड़ा उदाहरण राग बिहागड़ा का है। जिसे नाट्यसंगीत में उनसे पहले किसी ने भी प्रयुक्त नहीं किया। किन्तु अभिषेकी जी ने बड़ी ही सुंदरता से इस राग के रूप को नाट्यसंगीत में प्रयोग किया।

1956 में पंडित जी ने मुम्बई में 'ऑल इण्डिया रेडियो' कोंकणी डिवीज़न में तकरीबन दस वर्ष तक नौकरी की और वहीं से ही वे नाट्य संगीत में काम करने के लिए सर्वप्रथम प्रेरित भी हुए थे जिसका कारण यह था कि वहाँ कई लेखकों, कवियों, नाटककारों के साथ वे संपर्क में आए थे। दामू केंकरे बताते हैं कि जिस समय अभिषेकी जी नाट्य संगीत में आए उस समय पर प्रचलित नाट्य मराठी नाटक की विभिन्न शैलिया हुआ करती थी। एक बालगंधर्व की दूसरी मास्टर दीनानाथ मंगेश्कर की और तीसरी एक केशवराम भोसले की थी। पं. जी उनके बाद आए और उन्होंने अपनी शैली विकसित की।

पं. जी को विविध भाषाओं का ज्ञान था जैसे कोंकणी, पुर्तगाली, हिन्दी, उर्दू और संस्कृत साहित्य, जिनमें वह सक्षम थे। उन्होंने लगभग 20 मराठी नाटकों के लिए संगीत दिया जिसका तात्पर्य है तकरीबन 150 गीत। उन्होंने अपनी रचनात्मक वृत्ति व ज्ञान से मराठी थिएटर में एक नई ऊर्जा का संचार किया था। पं. जितेन्द्र अभिषेकी ने 60 के दशक में पाँच से दस मिनट के छोटे सांगीतिक

रचनाएँ नाट्य संगीत में की जो कि एक नया तथा एक आवश्यक कदम था नाट्य संगीत में। क्योंकि उस समय रचनाएं थोड़ी लम्बी अवधि की हुआ करती थी। तो ऐसा करने से सबसे बड़ा प्रभाव यह पड़ा कि अधिक समयावधि की रचनाओं से कभी-कभी जो दर्शक जिनके पास समय की कमी थी वो थोड़े व्याकुल से हो जाते थे तो अब वह भी उसका आनंद बहुत ही अच्छी तरह से उठा सकते थे।

महान नाटककार पुरुषोत्तम दरवेकर ने 'कट्यार कालेजात घुसली' लिखा जो कि अत्यंत प्रसिद्ध नाटक था। जिसका संगीत निर्देशन भी पं. अभिषेकी ने ही किया। यह पूरा नाटक दो घरानों की सांगीतिक प्रतिस्पर्धा पर ही आधारित था। इस नाटक में पंडित जी ने राग-ताल-माला 'सुरत पिया की ना छिन्न बसराये' जिसमें विविध रागों- सोहनी, मालकौंस, जौनपुरी सारंग, केदार का प्रयोग किया। तथा तीन प्रकार की तालों- त्रिताल, झपताल और एकताल का प्रयोग किया है। दूसरे गीत 'घेही छंद मकरंद' में एक सालगवराली राग रचना झपताल में। इस नाटक में एक और विशेष बात यह थी कि इसमें ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध गायक पं. विद्याधर व्यास जी ने अभिनय भी किया है जिसके विषय में पं.विद्याधर व्यास जी ने स्वयं एक व्याख्यान देते हुए बताया था। उन्होंने संगीत नाटक के इतिहास के विषय में बताया कि 'नाट्य संगीत प्रारम्भ में मराठी लोक संगीत की विविध विधाओं जैसे लावणी, पोवाणा, अभंग, एवं लोक विधाओं साकी, डिन्डी इत्यादि से प्रभावित था। मराठी संगीत नाटक और नाट्य संगीत का प्रारम्भ 1843 में हुआ जब विष्णु दास भावे ने 18 नवंबर 1843 में 'सीता स्वयंवर' नाटक की प्रस्तुति की। परन्तु इस प्रस्तुति में विभिन्न कटपुतलियों का प्रयोग किया गया था। ये वो समय था जब नये सामाजिक परिवेश में एक नवीन मध्यम वर्ग उभर रहा था। जो पढ़ा लिखा था और इस मध्यम वर्ग के द्वारा संगीत नाटक को तुरन्त प्रश्रय प्राप्त हुआ। धीरे-धीरे संगीत नाटक की ये विधा लोकप्रिय होने लगी। और किलॉस्कर, देवल, खाडिलकर एवं ऐसे ही अनेको लेखकों ने नाटक लिखना प्रारम्भ किया। जिनके विषय पौराणिक और ऐतिहासिक थे तथा जिनकी भाषा मराठी थी। प्रारम्भ में इन मराठी नाटकों के लेखक व संगीत निर्देशक एक ही होते थे। इन नाटकों में संगीत की सभी प्रचलित विधाओं को सम्मिलित किया गया था। लगभग बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में शास्त्रीय संगीत को संगीत नाटकों में सम्मिलित किया गया। और सर्वप्रथम गोविंदराव टेम्बे को मानापमान नाटक का संगीत निर्देशक नियुक्त किया गया। इस प्रकार से संगीत नाटक में शास्त्रीय संगीत का पूर्ण रूप से आधिपत्य हो गया। महान संगीतज्ञों जैसे उस्ताद अल्लादिया खाँ, उस्ताद अब्दुल करीम खाँ, पं. भास्कर बुआ बखले, पं.रामकृष्ण बुआ बझे, मास्टर कृष्णराव आदि दिग्गज शास्त्रीय गायक नाटकों के लिए संगीत देने लगे। और इस प्रकार संगीत नाटक में ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी,टप्पा, तराना, भावगीत इन सभी विधाओं को सम्मिलित कर लिया गया। बड़े-बड़े सास्त्रीय संगीतज्ञों ने संगीत नाटकों में गायन व अभिनय में ख्याति प्राप्त की। जिनमें बालगंधर्व का नाम सर्वोपरि है। मास्टर दीनानाथ, पं. केशवराव भोंसले, पं. वाडराव कोल्हाटकर व पं. सवाई गंधर्व के अतिरिक्त पं. विनायक राव पटवर्द्धन, विदुषी हीराबाई वड़ौदेकर, पं.मल्लिकार्जुन मंसूर, पं. भीमसेन जोशी ने भी इस विधा से अपने सांगीतिक करियर की शुरुआत की।'

पं. जी ने भारतीय संगीत की विविध शैलियों का प्रयोग भी नाट्य संगीत में बखूबी तो किया ही था साथ ही विविध क्षेत्रें के संगीत तत्व का समायोजन भी उन्होंने बहुत ही सुंदरता से किया। जेसे कि 'गुंतता हृदया' में दादरा शैली के तत्वों का प्रयोग किया। जो मूल रूप से ब्रज में प्राचीन वृंदावन की भाषा में या लावनी से एक मराठी लोकगीत प्रकार जैसे कि 'गर्दा सभोती राणा सजनी' में इस्तेमाल किया था। अन्य रचनाओं में उन्होंने विविध राज्यों के संगीत तत्वों का उपयोग किया, जैसे गोवा से संगीत, कोंकणी संगीत, राजस्थान से लोक संगीत, पहाड़ी संगीत, पंजाब से, दक्षिण से कर्नाटक संगीत। इसके अतिरिक्त पंडित जी का नाटक 'लेकूरे उद्दंड झाली' एक नवीन प्रायोगिक कृति है जिसमें उन्होंने यूरोपियन ओपेरा के तत्वों का इस्तेमाल किया।

तो उनके संगीत रचनाओं में न केवल भारत के विविध प्रांतों, सांगीतिक शैलियों के दर्शन होते हैं बल्कि समस्त विश्व का दर्शन भी हम पाते हैं। जिससे यह स्पष्ट होता है कि उनकी सोच बहुत ही नवीन व व्यापक थी, और जिसने नाट्य संगीत को एक नयी दिशा दी।

'मत्स्यगंधा' और 'महानंदा' के मध्य का समय पं. जी के जीवन का एक महत्वपूर्ण समय है जब पं. अभिषेकी जी शिखर पर थे। रंगमंच इसे 'अभिषेकी युग' कहता है। एक ऐसा युग जिसने न केवल एक अस्त होती हुई कला को जीवंत किया। बल्कि मंचीय संगीत के लिए एक शानदार पुनर्जागरण की शुरुआत की है। मत्स्यगंधा गोवा हिन्दू एसोसिएशन द्वारा प्रस्तुत, श्री वसंत काटेनकर द्वारा लिखित नाटक था जो कि महाभारत कथा पर आधारित था जिसकी संगीत रचना पं. जी ने की थी। इसकी प्रथम प्रस्तुति मंच पर 1 मई 1964 को हुई थी। और यह भारतीय इतिहास का एक बहुत ही महत्वपूर्ण क्षण था क्योंकि सर्वप्रथम महाभारत महाकाव्य का सर्वप्रथम मंच पर प्रस्तुतिकरण इसी नाटक के साथ हुआ था। मराठी नाटक के क्षेत्र में पंडितजी की रचनाएँ उच्चतम गुणवत्ता की थीं और न केवल मंच पर सफल रही बल्कि भारतीय सिनेमा द्वारा प्रसारित भी की गई। 1984-85 में उन्हें रेडियो और टेलीविजन पर कई प्रसिद्ध टेलीविजन कार्यक्रम के लिए आमंत्रित किया गया। नाटक के अतिरिक्त कुछ फिल्मों में भी उन्होंने संगीत निर्देशन किया है।

उपसंहार

पं. जी ने नाट्य संगीत में या फिर सम्पूर्ण संगीत जगत में अपना जो अमूल्य योगदान दिया है उसके लिए संगीत जगत उनका सदैव ऋणी रहेगा। उनकी गायकी में जिस प्रकार की भाव अभिव्यक्ति दृष्टिगत होती थी वह अत्यंत ही हृदयस्पशद्ध थी। पं. जी ने न केवल संगीत जगत में अपना स्थान ही प्राप्त किया है अपितु उनके द्वारा दिए गए संगीत शिक्षण से बहुत से शिष्य लाभान्वित हुए हैं और उन्हें एक उज्जवल भविष्य की प्राप्ति भी हुई है। पं. जी की शिष्य परंपरा में बहुत से वर्तमान समय के सफल कलाकार दिग्दर्शित होते हैं। जिन्होंने पं. जी द्वारा रचित नाट्य संगीत की रचनाओं की प्रस्तुतियाँ भी दी हैं। जिनमें क्रमशः उनके पुत्र पं.शौनक अभिषेकी, तथा विदुषी आशा खड़ीकर, विदुषी देवकी पंडित, विदुषी शुभा मुद्गल, पं. राजा काले, पं. हेमंत पेंडसे, डॉ. मोहन कुमार दारेकर, पं. प्रभाकर कारेकर, पं. विजय कोपिरकर, पं. महेश काले, पं. अजीत कड़कड़े और पं. मकरंद हिंगने इत्यादि शामिल हैं। पं. जी द्वारा संगीत जगत में किए गए उनके बहुमूल्य योगदान के लिए उन्हें भारत सरकार द्वारा पद्मश्री प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त संगीत नाटक अकादेमी पुरस्कार, बालगंधर्व पुरस्कार, लता मंगेशकर पुरस्कार, मास्टर दीनानाथ स्मृति पुरस्कार इत्यादि हैं। पं. जितेन्द्र अभिषेकी जी ने दिनांक 7 नवंबर 1998 में अपने जीवन की अंतिम श्वास ली और इस लोक से अलविदा कह गए। किन्तु अपने पीछे अपनी कला, गायकी, रचनाओं की इतनी बड़ी सम्पत्ति विरासत में संगीत जगत में सुपुर्द कर गए जिसके लिए हम सदैव उनके आभारी व ऋणी रहेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Translated from Marathi by Mohan Kumar Darekar, Pt. Jitendra Abhiskeki - A Life Dedicated to music, sofia and hans Rix, year 2004.
2. पं. हेमंत पेंडसे जी से साक्षात्कार वार्ता, पूना, 16 दिसंबर 2017, सुबह 11 बजे।
3. संपादक - श्री प्रयाग शुक्ल, लेखिका प्रो.सुनीरा कासलीवाल व्यास, संगीत नाटक अकादेमी, संगना अंक 19,जुलाई सितंबर 2015
4. मोहन कुमार दारेकर के साथ साक्षात्कार वार्ता, 26 दिसंबर 2018, शाम 5 बजे।
5. लक्ष्मीनारायण गर्ग, भारत के संगीतकार, संगीत कार्यालय हाथरस, वर्ष 2013

Cross Cultural Adjustment of School Students: A Study

Nidhi Sharma

Research Scholar,
Department of Education, LN Mithila University, Darbhanga

ABSTRACT

Education is said to be the most powerful equalizer of people's endowments, with which they expand the horizon of life choices, grasp economic opportunities, gain higher living standards, pursue happiness, and enjoy a life of wellbeing. In today's multi-cultural world, education necessitates adjustment. Adjustment is the component part of human life. Adjustment is the interaction between the person and his environment. When the external and internal forces work in opposite directions adjustment process became complicated. In such a case mental and physical balanced is missed and the individual suffers from frustration. In all countries there are some deprived sections of the society have to struggle hard for survival and development. The individual may be socially economically and educationally disadvantaged. The education inputs are expected to facilitate the educational process and attract disadvantaged children to school, college. It is fact of experience that large majority of socially disadvantaged children are enrolled in regular class rooms with normal children. Children with different abilities, different skills, different backgrounds, and different cultures get educated together, providing them an opportunity to hone their adjustment skills thus acting as a training ground for the rest of their lives. During school life, a child has to learn to co-exist and co-operate with students and teachers of different religions, different cultures, different opinions and a different outlook towards life. There is a need to explore the adjustment problems of school going adolescents and the influence of various demographic factors on their adjustment abilities. The present study was aimed at exploring the adjustment problems of secondary school students in a cross-cultural perspective.

Keywords

Adjustment, Cross cultural adjustment, Cross-cultural, Secondary school students.

1. INTRODUCTION

THEORITICAL BACKGROUND

In psychology, adjustment refers to the behavioral process of balancing conflicting needs, or needs against obstacles inn the environment. Adjustment disorder occurs when there is an inability to make a normal adjustment to some need or stress in the environment. In general, the adjustment process involves four parts i.e.,

- a need or motive in the form of a strong persistent stimulus
- the thwarting or non-fulfilment of this need
- varied activity, or exploratory behaviour accompanied by problem solving
- some response that removes or at least reduces the initiating stimulus and completes the adjustment.

It seems, over the years, very limited amount of research has been done on adjustment problems of adolescents. Most of the problems centring adolescents are physical appearance, health and physical development, marks scored, relationship with members of their families, their teachers, and peer of both sexes and home adjustment. Socially disadvantaged children possess the certain characteristics. Firstly, socially disadvantaged children seem to be unhappy, lifeless, discontented and emotionally disturbed over the conditions of life. Secondly social children hate their parent, teachers, headmasters, police personnel and other in authority. Thirdly because of poverty of their family some children always depend on public aid and approach people for financial and other kind of help for their education. Fourthly some disadvantage children associate with peer group which are attempting to defy authority. Fifthly they like to remain isolated and do not participate in academic discussions.

IMPORTANCE OF THE STUDY IN PRESENT CONTEXT

Adjustment is a dynamic and interactive process that takes place between the person and the environment (Lischinski, Farbman, Uyttendaele, & Szeliski 2006). Adjusting to a new culture can be a challenging and stressful experience. Rigorous academic demands along with the challenges to adjust to a new culture may put international students at a greater risk than students in general. Generally, cross-cultural adjustment is conceptualized as the degree of psychological comfort with various aspects of a host country (Black, 1988; Oberg, 1960; Nicholson, 1984). Many qualitative and quantitative studies on adjustment experiences of international students have identified the following socio-cultural adjustment factors commonly encountered by international students across the globe in their respective foreign institutions of higher learning language barrier (Searle & Ward 1990), mismatch of cultural values (Mehdizadeh & Scott 2005), discomfort with the new physical environment (Searle & Ward 1990), difficulty and frustration in establishing friendships and relationships (Searle & Ward 1990, Wang & Shan 2006; Lewthwaite 1996), low participation in social events and leisure activities (Mehdizadeh & Scott

2005), discrimination and stereotyping , lack of practical social support (Mehdizadeh & Scott 2005) accommodation difficulties ,dietary restrictions , and financial stress (Burns 1991). The predominant academic factors of adjustment experiences identified thus far amongst international students are the different teaching and learning approaches/methods (Stoynoff 1997; Major 2005; Zhang 2002; Lewthwaite 1996; Mehdizadeh & Scott 2005), different relationship between faculty and students (Wang & Shan 2007; Major 2005; Zhang 2002), different expectations set by the faculty (Major 2005; Zhang 2002), difficulty following academic conventions, difficulty utilizing learning resources (Stoynoff 1997; Wang & Shan 2007), inadequate language proficiency levels (Lewthwaite 1996). Thus, adjustment is an on-going process demanded by one situation and then another. It does not happen overnight.

There has been little study conducted on adjustment with reference of cross-cultural perspective and thus the researcher is willing to study in this particular area.

2. REVIEWS OF LITERATURE

With a view to put the present investigation in proper perspective, a review of literature is attempted in the following pages.

The review of literature is presented in the sequence of objectives of the research. But some of the objectives are not covered as no researches in those areas are reported. Only those areas covering the objectives wherein earlier researches are reported have been included in the research review:

Nehra, (2014), in the study **"Relationship between Adjustment and Emotional Maturity of IX Class Students"** aimed to study and know the relationship between adjustment and emotional maturity at secondary stage. In the present study, a descriptive survey method was used. The sample comprised of 100 students (50 boys and 50 girls) of Class IX from 4 Government schools. The study will be helpful for teachers, students, parents and all the stakeholders in the process of education. For the present study Singh and Bhargav's Emotional Maturity Scale & Adjustment inventory by AKP Sinha and R.P Singh was used to assess the emotional maturity and adjustment of the students studying in IX class. The procedure adopted for administration of the test questionnaire was distributed to the students and they were given some time limit. There was one correct answer for each option which was cross marked in the box given in front of the sentences. Scoring was done according to the norms and instruction given in the manual and final analysis was completed by calculating mean, standard deviation, correlation and t-value etc. Result revealed that: (i) there is no significant difference between the adjustment of boys and girls studying in class IX (ii) there is no significant difference between the emotional maturity of boys and girls studying in class IX (iii) there is no significant relationship between Adjustment and emotional maturity. The findings of the present study may be helpful to the students, teachers, principals, administrators and educational

planners.

Agnihotri. (2013), in the study **"Academic Adjustment and Problems of Socially Disadvantaged Senior Secondary School Students"** conducted to achieve the following objectives: 1. To study the academic adjustment and problems of male and female socially disadvantaged senior secondary school students. 2. To study the academic adjustment and problems of the urban and rural area socially disadvantaged senior secondary school students. Investigator conducted the study to find the academic adjustment and problems of socially disadvantaged senior secondary school students. So the sampling frame of this study was the socially disadvantage senior secondary school students. A total sample of 200 socially disadvantage senior secondary school students from different Government senior secondary schools were taken. In the study the investigator used the following tools for the collection of data. i) Adjustment Inventory for school students (AISS) by A.K.P. Sinha and R.P. Singh. ii) Self-made Questionnaire for the problems of socially Disadvantaged senior secondary school students. Data were computed with the help of various statistical techniques i.e. average, SD., correlation and t-test was used to find out the difference among the means scores of different variables. It is concluded that the Average scores of academic adjustment are higher in the case of rural socially disadvantaged senior secondary school students than urban socially disadvantaged senior secondary school students. It means academic adjustment of urban socially disadvantaged senior secondary school students is more than rural socially disadvantaged senior secondary school students.

Basu, (2012), in the study **"Adjustment of Secondary School Students"** aimed at investigating the adjustment abilities of secondary school students. The Adjustment Inventory for School Students (AISS) developed by Sinha & Singh was employed to assess the adjustment level of the students. The study was carried out on a sample of 120 secondary school students, keeping in mind various demographic factors. The survey method of research was employed to collect the requisite data. The data so collected was analyzed using statistical measures of Mean, Standard deviation and t-test. The findings of the present study reveal that there exist highly significant differences between the adjustment of secondary school students when compared on the basis of gender, type of family structure and medium of instruction in school.

Rahamtulla and Raju, (2007), in their study **"Adjustment Problems among School Students"** intended to examine the adjustment problems of school students from urban and rural schools of Visakhapatnam district. Adjustment is a process by which a living organism maintains a balance between the needs and the circumstances. The variables included for the study apart from adjustment (family, social, academic. financial and emotional) are age, gender, class, type of school etc. The study was conducted on a sample of 461 students (197 boys, 264 girls) randomly selected from the various government and private schools from urban and rural areas of

Visakhapatnam district, Andhra Pradesh. A standardized questionnaire developed by Jain (1972) was adopted for this study. The data was analyzed to examine the influence of individual factors on adjustment variables. The major findings of the study have shown that adjustment of school children is primarily dependent on the school variables like the class in which they are studying, the medium of instruction present in the school and the type of management of the school. Parental education and occupation of the school children also significantly influenced adjustment.

Basantia and Mukhopadhya, (2000), studied **"the psychological factors and achievement on tribal students"** and found that boys and girls did not differ in terms of psychological constraints. The degree of psychological constraints differed between high achievers and low achievers. High achievers had low levels of psychological constraints. It was revealed that psychological constraints and academic achievement are negatively correlated with each other.

Tilak, (1995), undertook a study on **"academic alienation among tribal High School students of Himachal Pradesh in relation to their home and school environment."** The study revealed that, male and female tribal High School students did not seem to differ significantly with regard to their level of academic alienation. Tribal High School students belonging to high and low levels of home environment, however, appeared to have exhibit significant difference in their academic alienation. There was no significant interaction between sex of tribal High Schools students and permissiveness factor, nurturance factor, reward factor, control factor, conformity factor, rejection factor, punishment factor, protectiveness factor, social isolation factor and deprivation of privileges factor. Tribal High School students belonging to high and low levels of schools environment seemed to show significant difference in their Academic alienation. Tribal High Schools students receiving high and low levels of creative stimulation in their school environment appeared to have significant difference in their academic alienation. Tribal High School students receiving high and low levels of cognitive encouragement in their schools environment seemed to differ significantly with each other with regard to their academic alienation. Tribal High Schools students having high and low levels of permissiveness, and control in school environments did not seem to differ significantly with regard to their academic alienation but high and low level acceptance and rejection in their school environment seem to differ. There was no significant interaction between sex of tribal High Schools students and total (overall) school environment with regard to academic alienation.

Annaraja and Ponnambala, (1993), attempted to know **the affect of psycho-social factors the academic achievement of the Scheduled tribe (ST) adolescence.** The findings of the study were as follows: (1) regarding personality factors. ST adolescence were better in self- concept, temperament, independence and adjustment than non-scheduled tribes. (ii) STs showed higher occupational aspiration than non- scheduled tribes. (iii)

Regarding intelligence non-ST adolescence were better than STS. (iv) Most of the non-ST adolescence belonged to the higher socio-economic status group while most of the ST adolescent girls belong to the higher socio- economic status group than non-ST girls. (V) ST adolescence showed favourable attitude towards culture and religion but they were showing unfavourable attitude towards caste and country. (vi) With regard to academic achievement, non-STs were better than ST.

Agrawal, (1992), in his study **"A Social, Psychological and Educational study of Schedule Caste students studying in High School of Lucknow City"** revealed that (i) the socio-economic status of a Schedule Caste student was found to be lower as compared to that of a Non-Schedule Caste student. (m) Schedule Caste and Non-schedule Caste did not differ in terms of their level of intelligence, but the Schedule Tribe student aspired to low level occupation and the level Academic Achievement was to be lower as compared to that of the Non- schedule Caste students.

Sudharma, (1988), in the study found the incidence of wastage and stagnation among the Secondary School students was maximum in standard X, among boys, in rural areas as compared to urban, and, in Scheduled Cates and Scheduled Tribes as compared to other caste pupils. Of the eight measures adopted by the government for preventing wastage and stagnation, only four were found to be effective, namely lump sum grants for SC/ST students, meritorious scholarship for SC/ST students, Secondary Scholarship and Coaching Classes for SC/ST students.

MAJOR FINDINGS OF THE STUDY

(i) The socio-economic status of a Schedule Caste student was found to be lower as compared to that of a Non-Schedule Caste student.

(ii) Schedule Caste and Non-schedule Caste did not differ in terms of their level of intelligence, but the Schedule Tribe student aspired to low level occupation and the level Academic Achievement was to be lower as compared to that of the Non – schedule Caste students.

(iii) Regarding personality factors, STs adolescence were better in self-concept, temperament, independence and adjustment than non-scheduled tribes.

(iv) STs showed higher occupational aspiration than non-scheduled tribes.

(v) Regarding intelligence, non-STs adolescence were better than STs.

(vi) Most of the non-ST adolescence belonged to the higher socio-economic status group while most of the ST adolescent girls belong to the higher socio-economic status group than non-ST girls.

(vii) ST adolescence showed favourable attitude towards culture and religion but they were showing unfavourable attitude towards caste and country.

(viii) With regard to academic achievement, non-STs were better than ST.

RATIONALE OF THE STUDY

Education plays very important role in making the man well-adjusted in the society. Education, in real sense, is to humanize humanity, and to make life progressive, cultured and civilized. It is through education that man develops his thinking and reasoning, positive sentiments and skills, good values and attitudes. There are the provisions in the constitution for the education of socially disadvantaged groups. The Education commission 1964-66 in chapter VI entitled "Equalization of Educational Opportunity and Social change very aptly observed". This study will provide the knowledge about the relationship between the academic adjustment and the problems of socially disadvantaged students. The knowledge of academic adjustment of students will be helpful for the teacher to overcome different related problems. The teachers will be able in making good adjustment by adopting some measures.

The society that we live in has become a close-knit environment, with every aspect of culture and traditions being blurred with every culture residing as a unit. The study of cross-culture is a not an unknown phenomenon and would be expected to have a significant contribution to understand the adjustment of the secondary school students in the context of cross-culture. The investigator will try and understand the difficulties that arise due to the fact of cross-culture. With the help of this study the investigator will make an attempt to understand the psychological behaviour and attitudes of certain cultures which either helps or hinders the students to adjust properly in a society. The support that the secondary school students receive at school or their homes may also improve or diminish their ability to adjust in their society.

STATEMENT OF THE PROBLEM

The problem is therefore stated as **"Cross cultural adjustment of school students: A study".**

OBJECTIVES

1. To study the adjustment of students in their community.
2. To study the degree of adjustment of students in relation to social, educational and emotional areas in school.
3. To study the extent or adjustment of students in the cross-cultural perspective.

OPERATIONAL DEFINITIONS OF THE TERMS USED

- **Cross culture**: "Culture is to society what memory is to individuals" (Kluckhohn 1954). It includes what has worked in the experience of a society, so that it was worth transmitting to future generations.
- **Adjustment:** The relationship between students and their environment especially social environment of school like adjustment with peer group, teachers. Arkoff (1968) quoted in Abdullah et al. (2009) defines school adjustment as a person s interaction with his or her environment and covers academic achievement, personal growth and accomplishments outside the classroom such as in art, music, creativity and leadership.

- **Cross cultural Adjustment:** Cross-cultural adjustment can be defined as the degree of psychological adjustment experienced by the individual within a new society or the degree of psychological comfort and familiarity perceived within a new environment (Black, 1988; Black and Mendenhall 1991; Selmer, 2002)
- **Secondary school students:** Secondary school students refer to students in grades 9-12 from the schools of Siliguri, Darjeeling district, West Bengal.

SCOPE AND DELIMITATIONS OF THE STUDY

The scope of the study is to assess the effect or adjustment at secondary level. The researcher delimited her current study to 120 secondary scho0l students selected from Schools in Siliguri of Darjeeling district, West Bengal. 1he secondary level pupils or the study were taken from class IX.

3. RESEARCH METHODOLOGY

The study was conducted in accordance with following procedures:

DESIGN OF THE STUDY

The present study was Studied by using descriptive normative survey method.

SAMPLE

A sample of 120 Class IX students studying in various schools of Siliguri, West Bengal was chosen through random sampling technique for the present study. Out of the 120 students, 60 male and 60 female students were taken. For the study four schools were taken considering private and government schools.

TOOL USED

For the present study the researcher was used self-developed tools pertaining to areas of Emotional Adjustment, Social Adjustment and Educational Adjustment along with the cultural perspective of Language, Community, Cast, Type of Family and Parental Occupation.

TECHNIQUE OF DATA ANALYSIS

In the present study the researcher used self-developed tools pertaining to areas of Emotional Adjustment, Social Adjustment and Educational Adjustment along with the Cultural perspective of Language, Community, Cast, Type of Family, Parental Occupation and the data were collected from the schools directly by the investigator personally.

4. RESULT AND DISCUSSION

Results were corroborated with earlier studies and discussions were made depending upon the analysis or the collected data.

FINDINGS

The major findings that were obtained alter conducting the study were:

1) In the **Emotional Aspect** it has found that:

- Girls have high Adjustment in comparison to Boys.
- Overall Emotional Adjustment of Boys of different community shows that Bengali and Marwari Boys have higher percentage.
- Overall Emotional Adjustment of Girls of different community shows

that Bihari, Nepali and Marwari Girls have high percentage.

2) In the **Social Aspect** it has found that:

- Girls were more Socially Adjusted in comparison of Boys.
- Overall Social Adjustment of Boys of different community shows that
- Bihari Boys had higher percentage.
- Overall Social Adjustment of Girls of different community shows that Bihari Girls have higher percentage.

3) In the **Educational Aspect** it has found that:

- Girls have higher Educational Adjustment in comparison to Boys.
- Overall Educational Adjustment of Boys of different community shows that Bihari Boys have higher percentage.
- Overall Educational Adjustment of Girls of different community shows that Bihari Girls have higher percentage.

4) In the **Language Aspect,** Hindi was spoken by most students.

5) In **Caste,** there were higher number of students who belonged to the General Category.

6) In the **Types of Family,** Marwari students had more belief in Joint Family and Bengali student had more belief on Nuclear Family.

7) In the **Parental Occupation,** Marwari students had highest number in Private Jobs and Bihari students had highest number in Government Jobs.

5. CONCLUSIONS AND RECOMMENDATIONS

From the study the findings or the present indicate that there are differences between degrees of adjustment of students in relation to social, educational and emotional area school when compared on the basis of gender, type of family structure, language and community. Since these differences were found between degrees of adjustment of students in all the areas of adjustment under study i.e., emotional, social as well as educational, there seems to be an urgent need to improve the situation. This calls for priority-based action on the part of academicians, policy makers, families and all the concerned stakeholders to devise measures to facilitate better adjustment skills among the secondary school students, The secondary school students are at a very precarious stage of their lives wherein they are still in the process of exploring their place and role in society. It is at this stage of their lives that they are most in need of their adjustment abilities. All the concerned stakeholders ought to chalk out a plan of action whereby the adjustment skills are honed and differences arising due to various demographic factors are minimized.

FURTHER WORK

Further work is needed in several areas, such as:

- The study can also be conducted on college students.
- More demographic 1actors can be introduced to assess the adjustment among students.
- The study can be conducted on working areas by introducing more communities.
- The study can be conducted on international exchange students with

the Indian scenario as a base for study.

- The study can be conducted on Indian students who have gone abroad for their further studies.

REFERENCES

Agrawal. A. (1992). "A Social, Psychological and Educational study of Schedule Caste students studying in High School of Lucknow City". Ph.D. Education University of Lucknow. R.J. 1992.

Bhaskar-Shrinivas, P., Harrison, D. A., Shaffer, M. A. & Luck, D. M. (2005). Input-based and time based models of international adjustment: Meta- analytic evidence and theoretical extensions. *Academy of Management Journal*, 48(2), 257-281.

Black, J. S. (1988). Work role transition: A study of American expatriate mangers. *Journal of International Business Studies*, 19(2), 277-295.

Black, J.S. (1988). Work role transitions: A study of American expatriate managers in Japan. *Journal of International Business Studies*, 19(2), 277-294.

Black, J.S. (1990). The relationship of personal characteristics with adjustment of Japanese expatriate managers. *Management International Review*, 30, 119-134.

Black, J.S., Gregersen, H.B. (1991). The other half of the picture: Antecedents of spouse cross-cultural adjustment. *Journal of International Business Studies*, 22(3), 461-477.

Black. J. S. & Mendenhall, M. (1991). The U-curve adjustment hypothesis revisited: A review and theoretical framework. *Journal of International Business Studies*, 22(2), 225-247.

Church, A. (1982). Sojourner adjustment. *Psychological Bulletin*, 91, 540-572.

Fiske, A. P., Kitayama, S., Markus, H. R., & Nisbett, R. E. (1998). *The cultural matrix of social psychology*. In D. T. Gilbert, S. T. Fiske, & G. Lindzey (Eds.), The handbook of social psychology (4th ed., Vol. 2, pp. 915-981) Boston: MeGraw-Hill.

Fong, S. and Peskin, H. (2012). Sex-role strain and personality adjustment of China-born students in America: A pilot study. *Journal of Abnormal of Psychology*. 1909, 74: 563-568.

Gullahorn, J.R., & Gullahorn, J.E. (1962). An extension of the u-curve hypothesis. *Journal of social 1ssues*, 3,33-47.

Hartel. C. E. (2010). "From the editors: International students, representation of global management issues, and educating from a paradigm of human well- being. *Academy of Management Learning & Education* 9(4): 585-590.

Horng-Jyh, C. (2013). *A Study on International Student Adjustment from Academic, Social and Cultural Viewpoints in Taiwan*. International Conference on Business Management and Information Technology Application Intercultural Communication Studies AXII: 1 (2013) University Utara Malaysia, Malaysia.

Lewthwaite, M. (1996). "A study of international students' perspectives on cross-cultural adaptation. International Journal for the Advancement of Counseling 19(2): 167-185.

Lischinski, D, Farbman, Z., Uyttendaele, M., and Szeliski, R. (2006). "Interactive local adjustment of tonal values. *ACM Transactions on Graphics (TOG)* 25(3): 646-653.

Louis, M. R. (1980). Surprise and sense making: what newcomers experience in entering unfamiliar organizational settings. *Administrative Science Quarterly* 25, 226-251.

Markus, H. R., & Kitayama, S. (1991). Culture and the self: Implications for Cognition, emotion, and motivation. *Psychological Review*, 98, 224-253

Mehdizadeh, N. and Scott, G. (2005). "Adjustment Problems of Iranian International Students in Scotland." *International Education Journal* 6(4): 484-493.

Mesquita, B., & Frijda, N. H. (1992). Cultural variations in emotions: A review. *Psychological Bulletin*. 112, 197- 204.

Mesquita, B., Frijda, N. H., & Scherer, K. R. (1997). *Culture and emotion*. Handbook of cross-cultural psychology: Vol. 2. (pp. 255-297). Needham Heights, MA: Allyn & Bacon.

Misra. R., Crist. M. and Burant. C. J. (2003). Relationship among life stress, social academic stressors, and reactions to stressors of international students in the United States. *International Journal of Stress Management*. 2003, 10: 137-157.

Mustaffa. C. & Ilias. M. (2013). *Relationship between Students Adjustment Factors and Cross Cultural Adjustment: A Survey at the Northern University of Malaysia*.

Nicholson, N. (1984). A theory of work role transitions. *Administrative Science Quarterly*, 29, 172-191.

Oberg, K. (1960). *Culture shock: Adjustment to new cultural environment*. Practical Anthropologist, 7, 177-182.

Pratham. (2005). Pratham.org | Pratham-A Network of Societal Missions to Achieve Universal Primary Education in India

Rajapaksa. S. and Dundes. L. (2002). *It's a long way home: International student adjustment to living in the United States*. College Student Retention. 2002, 41: 15-28.

Reirchers, A. E. (1985). A review and reconceptualization of organizational commitment. *Academy of Management Review*, 10, 465-476.

Scherer, K. R., & Wallbott, H. G. (1994). Evidence for universality and cultural variation of differential emotion response patterning, *Journal of Personality and Social Psychology*. 66, 310-328

Searle. W. and Ward. C. (1990). "The prediction of psychological and socio cultural adjustment during cross-cultural transitions". *International Journal intercultural Relations*. 14(4)449-4.

Selmer. J. (2002). Coping strategies applied by Western vs. overseas Chinese business expatriates in China. *International Journal of Human Resource Management*, 13(1), 19-34.

Stening. G. W. (1979). Problems of Cross-Cultural contact: A literature review. *International Journal of intercultural Relations*, 3, 269-313.

Stoynoff, S. (1997). "Factors associated with international students' academic achievement." *Journal of Instructional Psychology*.

Sudharma. A. (2009). "A Study of the Efficiency of Certain Measures Adopted for Preventing Wastage and Stagnation in the Schools of Kerala". *Ph.D. Thesis*. Department of Education. University of Kerala. April, 2009,

Sumer. S., Poyrazli. S. and Grahame. K. (2008). Predictors of depression and anxiety among international students. *Journal of Counselling and Development*. 2008, 86 (4): 429-437.

Swami. V., Arteche. A., Chamorro-Premuzic. T. and Furnham. A. (2008). Sociocultural adjustment among sojourning Malaysian students in Britain: A replication and path analytic extension. *Social Psychiatry and Psychiatrie Epidemiology*.

Wanous, J.P., & Lawler, E.E. (1972). Measurement and meaning of job Satisfaction. *Journal of Applied Psychology*, 36, 95-105.

Ward. C., and Kennedy, A. (1993). "Where's the culture in cross-cultural transition? Comparative studies of sojourner adjustment." *Journal of Cross- Cultural Psychology* 24(2): 221-249.

Zaka. F., Zafar. A. and Inayat. H. (2014). The Social and Cultural Adjustment of Napalese Students in Pakistan, University of the Punjab, Lahore, Pakistan, *Europian Academic Research*, Vol. II, Issue l/April/ 2014, ISSN 2286-4822.

हिमाचल प्रदेश की लोक गायन शैलियों के संरक्षण में सुरेन्द्र नेगी का योगदान

यशवन्त

शोधार्थी

लवली प्रोफेशनल युनिवर्सिटी, जालंधर पंजाब

सार-संक्षेप

हिमाचल प्रदेश के लोग अपने मनोरंजन के साधनों में लोकनाट्य एवम् हिमाचली लोक संगीत को प्राथमिकता देते हैं। हिमाचल का लोकसंगीत यहाँ के लोगों के जीवन से विशेष रूप से जुड़ा है। संगीतकार संगीत की कला को जीवित रखने में अहम भूमिका निभाता है। हमारा कर्तव्य बनता है कि हम प्रत्येक कलाकार की सांगीतिक कृतियों का संग्रहण करें, ताकि संगीत के क्षेत्र में उनका योगदान संरक्षित रह सके। सुरेन्द्र नेगी जी का एक मात्र लक्ष्य हिमाचली लोकसंगीत का विकास व उसे प्रतिष्ठा दिलवाने का रहा है ताकि हमारा वास्तविक लोक संगीत पीढ़ी दर पीढ़ी अग्रसर होता रहे। किसी भी कला एवम् संस्कृति को सुरक्षित व प्रचारित रखने के लिए शोधकार्य एक सरल माध्यम है।

बीज-शब्द

हिमाचल प्रदेश, संस्कृति, लोक-संगीत, वाद्य, संगीतकार

परिचय

हिमाचल प्रदेश जहाँ एक ओर अपनी संस्कृति, लोक कला, त्यौहारों के लिए प्रसिद्ध है, वहीं दूसरी ओर प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए भी विश्व भर में प्रसिद्ध है। हिमाचल प्रदेश के लोग अपने मनोरंजन के साधनों में मुख्यतः लोकनाट्य एवम् हिमाचली लोक संगीत को प्राथमिकता देते हैं। देवभूमि हिमाचल का लोकसंगीत यहाँ के लोगों के जीवन से विशेष रूप से जुड़ा है। हिमाचल प्रदेश की सभी लोक कलाएँ सदियों से चली आ रही है। संगीत का इतिहास अति प्राचीन है संगीत की उत्पत्ति कैसे हुई कुछ कहा नहीं जा सकता। लोकसंगीत का इतिहास भी प्राचीन है। साधारण शब्दों में हम कह सकते हैं, लोकसंगीत का सम्बंध लोकल क्षेत्र में गाए जाने वाले लोकगीतों, लोकनृत्य और लोकनाट्य से है। ग्रामीण क्षेत्र के लोग अपने मनोरंजन के लिए गायन, वादन, नृत्य किया करते थे। लोकसंगीत, या लोकगीतों से वहां के लोगों की संस्कृति, पहनावा, रहन-सहन इत्यादि झलकता है। सभी क्षेत्रों की तरह हिमाचल प्रदेश के लोकगीत, लोकसंगीत विविधता लिए हुए है। लोकसंगीत पर समय का प्रभाव पड़ता है, जैसे-जैसे सामान्य जनभाषा में परिवर्तन होता है वैसे ही हमारे लोकसंगीत की भाषा भी बदलती रहती है। भाषा चाहे कोई भी क्यों न हो परन्तु लोकसंगीत के भाव वही रहते हैं। लोकसंगीत में मुख्यतः लोकगीत, लोकवाद्य व लोकनृत्य आता है। लोक शास्त्रियों ने संस्कृति, सामाजिक मान्यताओं परम्पराओं धारणाओं तथा विशेषताओं को मुख्य रखते हुए लोकगीतों का

वर्गीकरण अलग-अलग ढंग से किया है। लोकगीत लोक के गीत है। सामान्यतः लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवम् लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहा जा सकता है। आधुनिक संगीत वाद्यों के प्रकार तत्, अबनद्ध, घन, सुषिर।

तत् वाद्य - वाद्यों की इस श्रेणी में वे सभी वाद्य आते हैं जो तार वाले होते हैं। उदाहरण के लिए एकतारा, सितार तानपुरा इत्यादि।

अवनद्ध वाद्य - इस श्रेणी के वाद्यों में वे वाद्य आते हैं जो पीटकर बजाए जाते हैं। उदाहरण के लिए लोक वाद्य ढोलक, ढोल, नगाड़ा इत्यादि।

घन वाद्य - वाद्यों की इस श्रेणी में वे वाद्य आते हैं जो किसी धातु के बने होते हैं। थाल, कांसी।

सुषिर वाद्य - वाद्यों की इस श्रेणी में वे वाद्य आते हैं जो हवा के प्रवेश से बजते है, शहनाई, रणसिंघा, करनाल, बांसुरी इत्यादि।

लोकनृत्य - यह लोक कला का विशिष्ट रूप है। लोक नृत्य में लोक कलाओं के अनेक रूप समाहित रहते हैं। लोक नृत्य को दो भागों में बांटा जाता है। व्यक्तिगत लोकनृत्य व सामूहिक लोकनृत्य। व्यक्तिगत नृत्य में तुरिण, मुंजरा आता है तथा सामूहिक में गिद्दा इत्यादि आता है।

हिमाचल प्रदेश को देव भूमि के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि हिमाचल की इस पवित्र धरती पर कई देवी-देवता निवास करते हैं। हिमाचल प्रदेश की सभी लोक कलाएँ सदियों से चल आ रही है। सभी लोक कलाएँ विशेष रूप से एक कलाकार के माध्यम से ही प्रसारित एवम् प्रवाहित होती हैं। संगीतकार संगीत की कला को जीवित रखने में अहम भूमिका निभाता है। संगीतकार गानों में, गानों के आधार पर संगीत देकर उस गीत को मधुर, रस एवं भाव से परिपूर्ण बनाता है। इतिहास साक्षी हैं कि संगीत के क्षेत्र में ऐसे बहुत कम व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन संगीत की साधना व संगीत की सेवा में बिताया है। संगीतकार सुरेन्द्र नेगी जी संगीत जगत् की एक ऐसी विभूति है जो कि अपने सांगीतिक कार्यो के माध्यम से अपनी आभा को बिखरते हुए अग्रसर हो रहे है। वर्तमान में अपनी प्रतिभा की क्षमता के आधार पर हिमाचली लोक संगीत के क्षेत्र में अपनी एक अलग पहचान बनाए हुए है। हिमाचली लोक संगीत के विकास में संगीतकार सुरेन्द्र नेगी जी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। जिला किन्नौर अपनी प्राकृतिक सुन्दरता के लिए काफी प्रसिद्ध है, साथ ही यह क्षेत्र अपने खान-पान, रीति-रिवाज, पहनावा, संस्कृति के लिए भी पूरे हिमाचल प्रदेश में अपनी अलग पहचान बनाए हुए है। हिमाचल प्रदेश का कल्पा गांव जो कि जिला किन्नौर के अन्तर्गत आता है। सुरेन्द्र नेगी जी इसी कल्पा गांव से सम्बंध रखते हैं। इस जिले ने हिमाचल को कई लोक गायक, गायिकाएँ व संगीत निर्देशक दिए हैं। जिन्होंने इस क्षेत्र की लोक संस्कृति को जीवित रखने में अपनी अपार भूमिका अदा की है। इन सभी व्यक्तियों में सुरेन्द्र नेगी का नाम सर्वप्रथम आता है, जिन्होंने न केवल अपने क्षेत्र के लोकसंगीत के विकास में भूमिका अदा की अपितु पूरे हिमाचल के लोकसंगीत व लोक गायन के संरक्षण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सुरेन्द्र नेगी का जन्म स्वर्गीय श्री ज्ञान चन्द नेगी के घर 13 अगस्त 1971 को कल्पा गांव में हुआ। नेगी जी की माता का नाम श्रीमती शीला देवी नेगी सुरेन्द्र नेगी जी का शिमला के शोघी में अपना रिकॉर्डिंग स्टूडियो है। जब भी हिमाचल प्रदेश के लोकसंगीत के विकास, लोक गायन के संरक्षण की बात की जाती है तो एक कुशल संगीतकार के रूप में इन्हीं का ही नाम आता है। इनका लोक गायन के संरक्षण में सर्वश्रेष्ठ योगदान रहा है। संगीत के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनाने वाले सुरेन्द्र नेगी जी वर्तमान में एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने लोक गायन के वास्तविक रूप को कायम रखा तथा उसे शुद्ध रूप में लोगों तक पहुंचाया। नेगी जी ने अपने ध्वन्याकंन व प्रस्तुतिकरण के कार्य द्वारा लोक गायन का संरक्षण किया। सुरेन्द्र नेगी जी के कार्य की विशेषता यह है कि इन्होंने जिस भी जिले के लोकगीतों में कार्य किया, उस जिले के लोकगीत की मौलिकता को हमेशा बनाए रखा। जिसके लिए इन्हें अन्य व्यक्तियों से ज्यादा पसंद

किया जाता है। सुरेन्द्र नेगी जी ध्वन्याकंन व प्रस्तुतिकरण के कार्य के लिए हिमाचल में ही नहीं बल्कि हिमाचल प्रदेश से बाहर भी प्रसिद्ध है। सुरेन्द्र नेगी जी हिमाचल प्रदेश के कुशल संगीतकार हैं। सुरेन्द्र नेगी जी पिछले कई वर्षों से संगीत से जुड़े हैं। इन्होंने संगीत को सीखा है। वर्ष 1991 से वर्तमान समय तक लगभग 16 हजार से अधिक गानों में नेगी जी संगीत दे चुके हैं। हिमाचली लोकसंगीत में बहुत से ऐसे गाने है जिन्हें इन्होनें स्वयं स्वरबद्ध किया है। पुराने समय में लोकगीतों को प्रत्यक्ष रूप से (सीधा) सुना जाता था। लोकगीतों का निर्देशन नहीं किया जाता था। परन्तु आधुनिक समय में कोई भी गीत बिना निर्देशन के नहीं गाया जाता। नेगी जी के कार्य की विशेषता है कि ये अपने ध्वन्याकंन व प्रस्तुतिकरण के कार्य से लोकगीत की मौलिकता को बनाए रखते हैं, उसके शुद्ध व वास्तविक रूप को कायम रखते हैं। सुरेन्द्र नेगी के द्वारा पारम्परिक लोकगीतों को एक नया रूप दिया गया। वर्तमान में हम पारम्परिक लोकगीत का जो पुराना रूप देखते हैं वो इनके द्वारा किए गए प्रयासों का ही फल है। नेगी जी अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने साक्षरता अभियान के लिए भी गीतों को बनाया है। इनके द्वारा तैयार किए गए गाने को राष्ट्रीय स्तर पर भी बजाया गया है, जो कि हम सभी के लिए गर्व की बात है।

हिमाचल की पौराणिक गायन शैलियाँ

हिमाचल प्रदेश अपनी प्राकृतिक सुंदरता के लिए जितना प्रसिद्ध है उतना ही यह अपनी लोक संस्कृति, लोकगीतों, लोक नृत्यों के लिए भी जाना जाता है। लोकगीत किसी समाज विशेष की लोक संस्कृति के गवाह होते हैं। इनके द्वारा ही लोक संस्कृति अपनी विशेषताएं अभिव्यक्त करती हैं। जिनमें संस्कार गीत, प्रेम गीत, विवाह गीत, श्रम गीत आदि पारम्परिक रचनाएँ चली आ रही है। हिमाचल में गायन की कई शैलियाँ हैं जो प्राचीन समय से ही गाई जाती हैं। हिमाचल की पौराणिक गायन शैलियों में नाटी, भौंरू, स गीथङग, ब्रह्मखाड़ा इत्यादि हैं। ये सभी पौराणिक गायन की शैलियाँ हैं। जो कि आज भी प्रचार में है। इन पौराणिक गायन शैलियों के साथ पौराणिक, पारम्परिक लोक वाद्यों जैसे ढोलक, ढोल, शहनाई, नगाड़ा, रणसिंघा इत्यादि लोक वाद्यों का वादन किया जाता है। महासू, सोलन, लाहौल-स्पिति की गायन शैलियाँ, बिलासपुर, काँगड़ा की गिद्दा गायन शैलीए सिरमौर व अन्य जिलों की पौराणिक गायन शैली उस जिले की संस्कृति, रीति-रिवाज तथा पहनावे इत्यादि को दर्शाती है।

नाटी गायन शैली

नाटी शब्द का सम्बंध नाट्य से होता है। हिमाचल प्रदेश के ऊँचाई वाले क्षेत्रों में नाटी शैली का प्रचलन रहा है। नाटी हिमाचल प्रदेश की पौराणिक गायन शैलियों में से एक है। नाटी पर्वतीय लोगों की अमूल्य संस्कृति है। नाटी गीतों में पर्वतीय लोगों के रहन-सहन व दैनिक जीवन का वर्णन होता है। नाटी गायन शैली के साथ पारम्परिक लोक वाद्यों का वादन किया जाता है। इसमें ढोल, नगाड़ा, रणसिंघा, करनाल, शहनाई, खंजरी इत्यादि प्रमुख हैं। नाटी ज्यादातर शिमला, कुल्लू, सिरमौर इत्यादि क्षेत्रों में गाई जाती है। नाटी गायन शैली को द्रुत, मध्य व बिलबिंत लय में गाया जाता है। नाटी गायन शैली में झुरी का गीत, चैंखी का गीत, भागीरथी का गीत काफी प्रसिद्ध है। इनका गायन बारह, आठ मात्र की ताल में किया जाता है।

भौंरू गायन शैली

इस शैली का गायन हिमाचल के मांहूनाग क्षेत्र, कुल्लू क्षेत्र इत्यादि में किया जाता है। भौंरू अनिबद्ध गायन शैली है। इस गायन शैली में सवाल-जवाब का क्रम होता है। भौंरू का गायन महिला व पुरुष दोनों के द्वारा एकल व सामूहिक तौर पर किया जाता है। खेतों में कार्य, जंगलो में कार्य करते हुए इसका गायन किया जाता है। पौराणिक समय से ही इस शैली का गायन किया जाता चला आ रहा है। वर्तमान में भी प्राचीन समय की ही तरह इसका गायन किया जाता है। हिमाचल की प्रसिद्ध अनिबद्ध

शैलियों में भौंरू गायन शैली अपनी अलग पहचान रखती है। गायक ऊंचे स्वरों में भौंरू का गायन करता है, इस शैली का गायन सुनने वालों के चित्त को आन्नदित करता है।

स. गीथङग् गायन शैली

स. गीथङग् गायन शैली जिला किन्नौर की पौराणिक गायन शैली है। हिमाचल में इस शैली की एक अलग पहचान है। इस शैली के गीत देवताओं के कार्यक्रमों में गाए जाते है। इस लोकप्रिय शैली की महत्वपूर्ण बात यह है, कि केवल प्रातः काल चार बजे ही इसका गायन किया जाता है। वर्तमान समय में देवताओं के कार्यक्रमों के अतिरिक्त अन्य खुशी के अवसरों पर भी मनोरंजन के लिए स गीथङग् का गायन किया जाता है। स गीथङग् की रचनाएँ बहुत लम्बी होती है, जिनका गायन लगातार दो, तीन घण्टों तक चलता है।

गिद्दा गायन शैली

गिद्दा गायन शैली हिमाचल की प्राचीन गायन शैली है। यह शैली जिला सोलन, बिलासपुर, कांगड़ा इत्यादि में काफी लोकप्रिय है। विवाहोत्सव के समय मध्यरात्रि में औरतों द्वारा इसका गायन किया जाता है। इस शैली के गीत द्रुत लय में होते हैं। प्राचीन समय से यह शैली हिमाचल के कई क्षेत्रों में लोकप्रिय है। इस शैली के गायन के समय लय देने के लिए ढोलक वाद्य का प्रयोग किया जाता है। खुशी के अवसरों पर इस शैली का गायन मनोरजंन के लिए किया जाता था।

हारूल गायन शैली

हारूल गायन शैली हिमाचल प्रदेश की लोकप्रिय गायन शैली है। हिमाचल प्रदेश के जिला सिरमौर, शिमला इत्यादि क्षेत्रों में हारूल गायन शैली काफी प्रसिद्ध है। हारूल गायन शैली के गीत सत्य घटना पर आधारित रहते हैं। हारूल के गीतों का गायन सामूहिक एवम् एकल दोनों प्रकार से किया जाता है। पारम्परिक लोक वाद्यों का वादन हारूल के साथ किया जाता है। तावली नाटी, मुंजरा नाटी इत्यादि तालों में इस शैली के गीतों का गायन किया जाता है। विवाहों, उत्सवों त्यौहारों प्रत्येक अवसरों पर इस शैली का गायन किया जाता है जिला सिरमौर में यह शैली सबसे ज्यादा लोकप्रिय है।

गीथङग् गायन शैली

यह शैली जिला किन्नौर की संस्कृति में विशेष महत्व रखती है आज भी पौराणिक ढंग से ही इसका गायन किया जाता है। इस शैली की विशेषता यह है कि इसके प्रत्येक गीत किसी कहानी पर आधारित होते हैं। गीथङग् गायन शैली किन्नौर की पौराणिक गायन शैली है। पौराणिक लोक वाद्यों के साथ ही इसका गायन किया जाता है। गीथङग् शैली के गीतों का गायन प्रत्येक खुशी के अवसरों पर किया जाता है। पुरुष एवम् महिलाएं दोनों ही वर्ग इसका गायन करते हैं।

ब्रह्मखाड़ा गायन शैली

ब्रह्मखाड़ा शैली के गीत शिव की अराधना से जुड़े रहते है। ब्रह्मखाड़ा शैली गायन की पौराणिक शैली है। इस शैली के अन्तर्गत गीतों का गायन मुख्यतः शिवरात्रिए धार्मिक उत्सवों इत्यादि पर किया जाता है। इस शैली के गीत इतने लम्बे होते हैं जिन्हे लगातार दो-तीन रातों तक भी गाया जा सकता है। शिवरात्रि के अवसर पर सांयकाल की पूजन के उपरांत ही उपवास खोला जाता है। सभी पकवानों का भोग लगाया जाता है इसी समय शिव की अराधना में ब्रह्मखाड़ा गीत गाया जाता है। ब्रह्मखाड़ा गायन शैली के साथ घरों में लोक वाद्य खंजरी, डफ इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। जिला शिमला के कोटखाई, जुब्बल, इत्यादि क्षेत्रों में ब्रह्मखाड़े का प्रचलन ज्यादा रहा है।

निष्कर्ष

हिमाचल प्रदेश अपने अपार प्राकृतिक सौन्द्रर्य व समृद्धशाली लोक संस्कृति के कारण विश्वभर में

अपना विशिष्ट स्थान बनाए हुए है। लोकसंगीत जनसाधारण का संगीत है जो कि इतिहास के प्रारम्भ से ही मानव को सामाजिक, धार्मिक एवम् सांस्कृतिक एकता की ओर उन्मुख करने का अत्यन्त प्रभावशाली माध्यम है। विषय के गहन अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष सामने आता है कि सुरेन्द्र नेगी ने संगीत की गायन, वादन विधाओं की शिक्षा प्राप्त कर हिमाचली लोकसंगीत के क्षेत्र में प्रमुख स्थान अर्जित किया। हिमाचली लोक गायन की मौलिकता, शुद्धता व वास्तविकता केवल मात्र इनके कार्यों में ही देखने को मिलती हैं। नेगी जी का हर प्रयास अपने लोक गायन के संरक्षण व उसको विकसित करने का रहा ध्वन्याकंन एवं प्रस्तुतिकरण के कार्य द्वारा अगर किसी ने लोक गायन के वास्तविक रूप को बनाए रखा है तो वो केवल मात्र नेगी जी ने रखा है। जिसके प्रमाण प्रत्यक्ष रूप में इनके द्वारा किए गए कार्यों में मिलते हैं। नेगी जी ने हमेशा से ही वास्तविक लोकसंगीत को जीवित रखा। रिकॉर्डिंग के कार्य द्वारा इन्होंने लोकसंगीत के शुद्ध रूप को लोगों के मध्य प्रस्तुत किया और हिमाचली लोक गायन की शौलियों को आने वाले समय के लिए उनके शुद्ध रूप में संरक्षित किया।

सन्दर्भ सूची

- सुरेन्द्र नेगी, शिमला, साक्षात्कार, 03/04/2018
- संजना सूद, भौगोलिक परिस्थितियों का हिमाचली लोकसंगीत पर प्रभाव, पृ॰ सं॰ 4
- हिमाचली तथा हरियाणवी नृत्य गीतों का तुलनात्मक अध्ययन : एक सांगीतिक अध्ययन रचना, पृ॰ सं॰ 36
- डॉ. वशिराम शर्मा, किन्नर लोक साहित्य, पृ॰ सं॰ 56

आठवाँ दशक और सफल संगीत निर्देशक : एक अध्ययन

प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'
संकायाध्यक्ष
ललित कला संकाय
ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा

अनुज कुमार
शोधार्थी
विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग,
ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सार-संक्षेप

चित्रपट संगीत ने आठवें दशक तक अपनी पचास वर्षों की यात्रा पूरी कर ली थी और यह फिल्मों के लिए स्वर्ण जयंती दशक था। वर्ष 1931 ई. में आरंभ हुआ और 1980 में इसका पचासवाँ वर्ष था। इन पचास वर्षों की अपनी गौरवमयी यात्रा के दौरान कतिपय प्रतिभासम्पन्न हस्तियों ने संगीतकार के रूप में तथा गायक के रूप में अपनी-अपनी प्रतिभा का अद्‌भुत प्रदर्शन कर फिल्म जगत के गुलशन को आकर्षक रूप से सजाया, सँवारा। इस प्रकार, इनके योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। इन पचास वर्षों के कालखंड में हिन्दी फिल्म संगीत के वैसे स्वर्णिम वर्ष भी शामिल हैं, जिसके गीत-संगीत आद्‌यपर्यंत अपना सर्वोपरि स्थान बनाये हुए हैं, अपने अक्षुण्ण महत्त्व को बरकरार रखे हुए हैं।

यद्यपि आठवें दशक के आरंभ से ही फिल्म संगीत में प्यार की नाजुक भावनाएँ मानवीय संवेदना की सौंदर्यमयता, साहित्यिक उद्‌बोधन, मर्मस्पर्शिता, शुचिता जैसी चीजें समाप्त होने लगी थी। क्रोध, आक्रोश, प्रतिशोध, हिंसा, मारधाड़ आदि का प्रचलन फिल्मों में बढ़ने लगा था। फिल्मों के गीतों से संवेदनात्मक अनुभूति और कर्णप्रियता प्रायः समाप्त होने लगी थी ऐसा लगता जैसे फिल्मी गीत एवं संगीत से सुर, धुन, गीत की कलात्मक ध्वनि विदा हो रही थी यहाँ तक कि गीत एवं संगीत का यथेष्ट स्थान भी फिल्मों में नहीं रहा पुनरपि, इस दशक के कुछ संगीतकारों ने अभूतपूर्व संगीत दिया।

बीज शब्द

दशक, संगीत, संगीतकार, गीत, लोकप्रिय, संगीत निर्देशक।

हम चित्रपट संगीत की गौरवशाली परंपरा की ओर ध्यान देते हैं, तो फिल्म संगीत में क्रमिक रूप से गिरवट का सूत्रपात साठ के दशक से ही आना प्रारंभ हुआ। फिल्मों में प्रयोगधर्मिता की बाढ़-सी आने लगी और इसमें चमत्कारी प्रवृतियों का समावेश होने लगा परन्तु इन चमत्कारों में भी अनुभव का समन्वय तो था ही। सत्तर का दशक आत-आते ध्वन्यांकन की शैली एवं तकनीक के बल पर गीतों को लोकप्रिय बनाने की प्रवृति विकसित होने लगी। अस्सी का दशक प्रारंभ होते-होते हमारा भारतीय समाज अन्याय, शोषण, अत्याचार का शिकार होने लगा। इस दशक में समाज की मूल-बोधकता, स्थिरता का अभाव आदि व्यापक रूप में हमें दिशाहीनता की ओर धकेल दिया।

हिन्दी चलचित्र जगत का सातवाँ दशक वह था जब फिल्म संगीत में भी उन्मुक्तता का वातावरण बनने लगा था, नयी ताजगी दिखने लगी थी, फिल्मों में देवानन्द साहब, शम्मी कूर साहब का प्रतिनिधित्व

दिखाई पड़ने लगा था। पाश्चात्य शैली की नई धाराएँ खूब अच्छी तरह उभरने लगी थीं ं सभी प्रचलित सांगीतिक शैलियों का भरपूर प्रयोग सातवें दशक में हुआ, रिकार्डिंग तकनीक भी विकसित होने लगी। नौशाद, जयदेव, कल्याण जी-आनन्द जी, उषा खन्ना, लक्ष्मीकान्त-प्यारे लाल, राहुल देव बर्मन, रवीन्द्र जैन, बप्पी लाहिड़ी, शिव-हरि आदि का संगीत आठवें दशक में भी छाया रहा। आठवें दशक में पूरे देश में सामाजिक-राजनीतिक परिवर्त्तनों के कारण सभी स्थापित संरचनाएँ बदलने लगी थीं। अनेक प्रकार की पाश्चात्य संस्कृतियाँ हावी होने लगी थीं जिससे हमारा युवा वर्ग खूब प्रभावित हआ। संगीत में पॉप, रॉक, डिस्को, जैज का खूब प्रयोग हुआ। लैटिनी बीट्स, फ्यज़न तेजी से भारतीय संगीत में सम्मिलित होने लगे। हिप्पी संस्कृति का प्रभाव रहा। संगीत निर्देशकों में राहुल देव बर्मन पर इसका प्रभाव इनके संगीत में स्पष्ट दिखाइ दिया जिसने युवाओं को खूब प्रभावित किया। लक्ष्मीकान्त-प्यारेलाल जिसने मेलॉडी को तरजीह दी, उन्हें भी इस ओर कमतर ही सही, रूख करना पड़ा।

आठवाँ दशक, गौर करें तो मुख्यतः तीन संगीत निर्देशकों के नाम रहा- कल्याण जी आनन्द जी, लक्ष्मीकान्त प्यारेलाल और राहुल देव बर्मन। और भी संगीत निर्देशक थे परन्तु वे मुखर नहीं सके। कल्याण जी आनन्द जी को किशोर कुमार का भरपूर साथ मिला। किशोर कुमार की आवाज की विविधता इस दशक में प्रखर हो गई और उन्हें इसका भरपूर लाभ भी मिला। यद्यपि कल्याणजी-आनन्द जी से पहले आर.डी. बर्मन ने उन्हें समाने लाने का काम किया। याद कर सकते हैं फिल्म 'कहानी किस्मत की' का गीत 'रफ्ता रफ्ता देखो आँख मेरी लड़ी है।' 'मर्यादा' फिल्म में लता जी के साथ 'चुपके से दिल दे दे नई ते'। किशोर कुमार की शरारतपूर्ण आवाज लोगों को आकर्षित करने लगी। किशोर कुमार इस दशक में नंबर वन गायक थे। कल्याणजी आनन्द जी उनके गले के अनुरूप रचनाएँ करते रहे। 'मर्यादा' फिल्म का ही एक गीत 'मुहब्बत के सुहाने दिन' रफी साहब ने गाया था जो राग चारूकेशी पर आधारित था, बहुत सुन्दर बन पड़ा था। यहाँ यह भी उल्लेख करना आवश्यक है कि कल्याण जी आनन्द जी ने राग चारूकेशी आधारित अनेक सुन्दर रचनाएँ की- 'सरस्वती चन्द्र' में 'छोड़ दे सारी दुनिया किसी' के लिए', 'मेरे हमसफर' में 'किसी राह में किसी मोड़ पर', 'राज' में 'अकेले हैं चले जाओ', 'हिमालय की गोद में' में 'एक तू ना मिला' आदि। उनकी शैली में भावनाओं के अनुरूप संगीत था। उन्होंने अनेक नए गायक-गायिकाओं को अवसर दिया तो अनेक विस्मृत गायिकाओं से भी गीत गवाए। मुबारक बेगम, साधना सरगम, के साथ-साथ शमशाद बेगम (जौहर महमूद इन हॉगकांग-1975), सुमन कल्याणपुर ('गीत' 1970 तथा 'पारस' 1971) से भी गवाया। नई गायिकाओं में कमल बारोट, उषा तिमोथी, हेमलता, कृष्णा कल्लै आदि से भी गवाया। आठवें दशक में कल्याण जी-आनन्द जी के गीतों की लम्बी श्रृंखला है-

'कंगन'-झुके जो तेरा नैना तो चूड़ी तेरी खनके (1972-महेन्द्र कपूर, उषा खन्ना)

ललकार- कभी हमने नहीं सोचा था। (लता मंगेशकर-1972)

मालिक-कन्हैया तूझे आना पड़ेगा (महेन्द्र कपूर एवं साथी-1972)

अनोखी पहचान- तेरे बाबा परदेश गए (लता मंगेशकर- 1971)

प्रीत की डोरी- प्रीत की डोरी मैया तुझ संग बाँधी (लता मंगेशकर- 1971)

बनारसी बाबू- यह जो पीने की आदत आज हो गई (लता मंगेशकर- 1973)

अलबेली- बार-बार मेरा प्यार (मुकेश- 1974)

फाइव राइफल्स- जब से सरकार ने नशाबंदी तोड़ दी (किशोर कुमार- 1974)

जंजीर- सभी गीत

हिमालय से ऊँचा- प्यार जिसको कहते हैं (लता मंगेशकर- 1975)

एक-से-बढ़कर-एक- शीर्षक गीत (रूना लैला-1976)

तृष्णा- दिन-ब-दिन वो मेरे दिल में क्यों (लता

मंगेशकर- 1978)

कलाबाज- अरे रूठे हैं तो मान जाएँगे (किशेर कुमार- 1977)

अतिथि- गाके जिओ तो (किशोर कुमार, अनुराधा, कंचन- 1978)

कशिश- किसी आसमां पे तो साहिल मिलेगा (मो. रफी- 1980)

ऐसे अनेक गीत हैं जो खूब लोकप्रिय हुए। ये रचनात्मकता की दृष्टि से भी उत्कृष्ट थे परन्तु यह जोड़ी आठवें दशक में लक्ष्मीकान्त प्यारेलाल और आर डी बर्मन से पीछे ही रही। यद्यपि जंजीर (1974), डॉन (1978), मुकद्दर का सिकन्दर (1978) आदि के गीत खूब चले।

लक्ष्मीकान्त-प्यारेलाल आठवें दशक का दूसरा प्रमुख नाम है जिसने संगीत की मेलॉडी को प्रमुखता दी और व्यावसायिक रूप से भी बहुत सफल हुए। इतना ही नहीं, इनकी पहली ही फिल्म को अभूतपूर्व सफलता मिली थी, फिल्म थी- पारसमणि (1963)। इसका हर गीत शिखर तक पहुँचा। इनकी धुनों में ताजगी थी। शास्त्रीय संगीत पर पकड़ के कारण सुरों को सुगमता में ढालने का इनका कार्य अत्यन्त सराहनीय था। सातवें दशक के आरंभ से ही यह जोड़ी छाई रही। लाजबाब धुनों और सुन्दर आर्केस्ट्रा के कारण पहली बार किसी जोड़ी के गीत बिनाका गीतमाला की चोटी पर लगातार चार वर्षों तक जमे रहे। शंकर-जयकिशन जैसे दिग्गज संगीत-निर्देशक को भी पीछे छोड़ दिए। एलपी का ऐसा प्रभाव कि मशहूर राज कपूर ने भी अपनी फिल्मों के लिए इनकी ओर रूख किया। यहाँ तक कि फिल्म के पोस्टर पर इनकी तस्वीर छपी, इतनी धूम थी इनके संगीत की। आठवें दशक में लक्ष्मीकान्त-प्यारेलाल का दिग्गज और शिखर के संगीत-निर्देशक के रूप में प्रवेश हुआ। इस दशक में ऑर्केस्ट्रा का जोर बहुत बढ़ गया था- और ऑर्केस्ट्रा के प्रवीण थे प्यारेलाल। लेकिन मधुर धुनों की भी प्राथमिकता थी इस दशक में तो लक्ष्मीकान्त मेलॉडी के मालिक थे। ऐसे अनेक उदाहरण हैं-

वनफूल- मैं जहाँ चला जाऊँ बहार चली आए (किशोर कुमार- 1971)

बुनियाद- पुकारो मुझे पुकारो (किशोर कुमार- 1972)

अनहोनी- बलमा हमार मोटरकार लेके आयो रे (आशा भोंसले- 1973)

दुल्हन- आएगी जरूरी चिट्ठी मेरे नाम की (लता मंगेशकर-1974)

प्रतिज्ञा- मैं जट यमला पगला दीवाना (मो. रफी- 1975)

दस नंबरी- प्रेम का रोग बड़ा बुरा (लता मंगेशकर- 1976)

अमर, अकबर, एंथनी- शबाब पे मैं जरा-सी शराब फेंकूँगा (मो. रफी एवं साथी-1977)

मैं तुलसी तेरे आँगन की- नथनिया जो डाली (अनुराधा, हेमलता- 1978)

सत्यं शिवं सुन्दरम्- ईश्वर सत्य है (लता मंगेशकर-1978)

जानी दुश्मन- सारे रिश्ते नाते मैं तोड़ के आ गई (लता मंगेशकर- 1979)

आशा- शीशा हो या दिल हो, आखिर टूट जाता है (लता मंगेशकर-1980)

लक्ष्मीकांत प्यारेलाल के संबंध में अशोक दा रानाडे की उक्ति स्पष्टतया देखी जा सकती है। "A City square in number is named after laxmikant, indicating theirèhis popularity ! The reportelly have composed for more than 400 movies during a clarable career of about 35 years (1563-1998).[1]

लक्ष्मीकान्त-प्यारेलाल की लगभग 400 फिल्मों में गीतों की लम्बी फेहरिस्त है। उनके गीतों को सुनकर उनकी कलात्मकता का अनुमान सभी लगाते हैं। वे मेलॉडी और लयात्मकता को आधार बनाकर संगीत का महल खड़ा करते रहे। इनके पास आम जनता की पकड़ थी जिसके कारण इनका संगीत तुरन्त असर करता था और यही वजह रही कि अन्त तक कल्याण जी-आनन्द जी और आर डी बर्मन की तुलना में लक्ष्मीकान्त प्यारेलाल अधिक लोकप्रिय बने रहे। इनकी मात्रा कुछ ही फिल्मों की सूची

देखते ही सभी गीत मन-मस्तिष्क पर छा जाते हैं, यथा- आप आए बहार आई (1971), हाथी मेरे साथी (1971), जल बिन मछली नृत्य बिन बिजली (1971), महबूब की मेंहदी (1971), मेरा गाँव मेरा देश (1971), मोम की गुड़िया (1972), राजा जानी (1972), अनोखी अदा (1973), बॉबी (1973), दाग (1973), अमीर-गरीब (1974), दुल्हन (1974), पैसे की गुड़िया (1974), रोटी (1974), रोटी, कपड़ा और मकान (1974), पोंगा पंडित (1975), चरस (1976), दस नम्बरी (1976), आधा दिन आधी रात (1977), अमर अकबर एंथनी (1977), छोटा बाप (1977), धरमवीर (1977), ड्रीम गर्ल (1977), मैं तुलसी तेरे आंगन की (1978), सत्यं शिवं सुन्दरम् (1978), जानी दुश्मन (1979), सरगम (1979), आशा (1980), जुदाई (1980), राम बलराम (1980) आदि। इस सूची को देखते ही सहज ध्यान आकर्षित होता है संगीत की ओर। ये गीत आज तक धूम मचा रहे हैं। उनके संगीत में कशिश-भरी धुनें भी हैं तो लोक-शैली का भी भण्डार है। लगातार चार वर्षों तक फिल्म फेयर पुरस्कार इस जोड़ी ने जीती। आठवें दशक की धूम-धड़ाके के बीच सुन्दर सुगम रचनात्मकता की मेलॉडी की श्रवणीयता भी इनके संगीत में बनी रही।[2]

राहुल देव बर्मन की पाश्चात्य सांगीतिक छवि इस आठवें दशक में ही खूब उभरी। इनके गीतों में रचनात्मकता भी अव्वल दर्जे की थी। आधुनिकता की लहर के बादशाह थे आर डी बर्मन अर्थात् पंचम दा। लक्ष्मीकान्त प्यारेलाल की फिल्म 'दोस्ती' में माउथऑर्गन इन्होंने ही बजाया था।3 आर डी बर्मन आरंभ से ही फिल्म संगीत जगत की प्रचलित शैली से कुछ अलग करने की मानसिकता लेकर ही आए थे। 1961 में 'छोटे नबाब' इनकी पहली फिल्म थी। इनकी आधुनिकता भी क्रान्तिकारी थी। इनके संगीत ने सभी मान्यताओं को तोड़ दिया। इन्होंने आठवें दशक के परिदृश्य को बखूबी उभारा। इनके गीतों में स्पष्ट झलक दिखती है-

कारवाँ- पिया तू अब तो आजा (आशा भोंसले- 1971)

अपना देश- दुनिया में लोगों को धोखा कभी हो जाता है (आशा भोंसले, आर डी बर्मन- 1972)

राजा रानी- अब अंधेरा होता है आधी रात के बाद (आशा भोंसले, भूपेन्द्र- 1973)

अनजबी- भींगी भींगी रातों में (लता मंगेशकर, किशोर कुमार-1974)

मजाक- टकरा गए दो बादल (आशा भोंसले, विनोद मेहरा- 1975)

बंडल बाज- नगमा हमारा गाएगा ये जमाना (लता मंगेशकर, मो. रफी- 1977)

मुक्ति- सुहानी चाँदनी रातें हमें सोने नहीं देती (मुकेश-1977)

चाँदी सोना- उलझन हजार कोई डाले (किशोर कुमार, आशा भोंसले, मन्नाडे, साथी-1977)

कस्मे वादे- आती रहेगी बहारें (किशोर कुमार, अमित कुमार- 1978)

शालीमार- आईना वही रहता है चेहरे बदल जाते हैं (लता मंगेशकर- 1978)

झूठा कहीं का- झूठा कहीं का मुझे ऐसा मिला (आशा भोंसले-1979)

रेड रोज- किसकी सदाएँ मुझको बुलाएँ (आशा भोंसले, किशोर कुमार- 1980)

हम कह सके हैं कि अत्याधुनिक संगीत से सजी धुनों के बावजूद राहुल देव बर्मन आठवें दशक के अग्रणी संगीत निर्देशकों में से एक थे। युवाओं की धड़कन थे जो परम्परागत संरचना से उबरना चाहते थे। उनकी जुबान पर ये धुनें बरबस चढ़ी हुई थीं। ये गीत संभ्रान्त और आधुनिक मध्य वर्ग की पसन्द थे जिसमें अंग्रेजी धुनों की नकल भी थी। ऐसी कई और फिल्में हैं जिनके गीत अमर हुए- हंगामा (सूरज से फिर किरण का नाता- 1971), बुड्ढ़ा मिल गया (रात कली एक ख्वाब में आई- 1971), अपना देश (सुन चम्पा सुन तारा- 1972), फिर कब मिलोगी (कहीं करती होगी वो मेरा इन्तजार- 1972), यादों की बारात (चुरा लिया है तूने जो दिल को- 1973), जोशीला (किसका रस्ता देखे से दिल ऐ सौदार्ह- 1973), आ गले लग जा (तेरा मुझसे है पहले का नाता कोई- 1973), खोटे सिक्के (जीवन

में तो डरना नहीं- 1974), धरम करम (इक दिन बिक जाएगा- 1976), ढोंगी (हाय, हाय रे मेरा घूँघटा- 1976), शालीमार (हम बेवफा हरगिज न थे- 1978), कस्मे वादे (कस्मे वादे- 1978), जलमहल (मैं हूँ दिया सूनी रात का- 1980)।

आठवें दशक में मुख्यतया ये तीन संगीत निर्देशक ही छाए रहे। इनके अतिरिक्त यद्यपि कई संगीत निर्देशकों ने फिल्मों में संगीत दिया परन्तु वे अपनी पैठ इस दशक में कम ही बना सके। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इस दशक के संगीतकारों ने गीतों में शास्त्रीयता, लोकसंगीत, सुगम संगीत को भी यथेष्ट स्थान दिया परंतु इनमें 'डिस्को, पॉप तथा पश्चिमी धुनों को भी अपनाने में परहेज नहीं किया। इस दशक में भाषायी गिरावट भी आने लगी। इन्दीवर प्रभृति गीतकार ने भी इस दशक में स्तरहीन गीत लिखे, द्विअर्थी फूहड़ शब्दों का प्रयोग किया।''4 यहाँ डॉ. विमल की सटीक उक्ति को उद्धृत करना प्रासंगिक है- ''अब रिकॉर्डिंग कक्ष में कोई लता मंगेशकर 'मोहे भूल गये साँवरिया' गीत गाते हुए नहीं रोयेंगी। 'नील कमल' फिल्म 'बाबुल की दुआएँ लेती जा' गाते हुए, मोहम्मद रफी जैसा कोई नहीं रो सकेगा। इन गीतों को भावनाओं से जोड़नेवाला आज न कोई गायक है, न संगीतकार है। परंतु वास्तव में जो संगीत प्रेमी हैं, उनके लिए हमारे चित्रपट संगीत परंपरा की धरोहर हैं, एक अमूल्य निधि है, जिसे सुनकर मन और मस्तिष्क दोनों को चैन मिलता है।''5 आठवें दशक के चित्रपट संगीत में सजावट एवं गिरावट दोनों को यथेष्ट स्थान दिया गया। दोनों ही धराओं का मिला-जुला रूप अपनी-अपनी पसंद के स्तर पर मनमोहक रहे।

संदर्भ-

1. Ranade,Ashoka Da, Hindi Film Song, p. 310, Promibla & Co. Publishers, 2006
2. काव्या, लावण्य कीर्ति सिंह, लक्ष्मीकान्त प्यारेलाल, भाग-1 एवं 2, कनिष्क पब्लिकेशन, दिल्ली
3. राग, पंकज, धुनों की यात्रा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ.- 634
4. भार्गव, अनिल, हिन्दी फिल्म संगीत, पृष्ठ- 171, वाङ्मय प्रकाशन, जयपुर, पृ.- 87
5. विमल, डॉ. हिन्दी चित्रपट एवं संगीत का इतिहास, संजय प्रकाशन, दिल्ली, पृ.- 143

नागार्जुन के साहित्य में सामाजिक चेतना

प्रगति शुक्ला

शोधकर्ता

हिंदी विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

सार-संक्षेप

साहित्य और समाज का अन्तःसम्बन्ध ऐसा होता है जैसे शरीर की गतिमानता का संबंध मानव शरीर की असंख्य कोशिकाओं से होता है, अर्थात् जिस प्रकार शरीर की गतिमानता का आधार उसके शरीर के विभिन्न अंग तथा अवयव हैं, इसी प्रकार समाज के विभिन्न अवयव साहित्य का निर्माण करते हैं और इसकी परम्परागत तारम्यता ही साहित्य और समाज के संबंध को परिपक्व करती है। समाज मनुष्य द्वारा निर्मित होता है तो साहित्य मानव जगत की सर्वोतम सृजनात्मक उपलब्धि है। समाज के बेहतर निर्माण में साहित्य की प्रमुख भूमिका होती है, जिससे मनुष्य मानवीयता की पहचान कर सके। साहित्य के माध्यम से ही मनुष्य के अन्तर संवेदनाओं तक पहुंचा जा सकता है। सामाजिक कर्तव्यों उत्तरदायित्यों का बोध हमें साहित्य हीं कराता है, मनुष्य स्वयं के लोभ-लाभ से ऊपर उठकर बृहतर सामाजिक संबंधों में संवेदनशील होता है। सच्चा साहित्य जातीय संस्कृति की पहचान कर जीवन के संघर्ष, आशा-अभिलाषा, हर्ष-विषाद को वाणी प्रदान करता है, अस्तित्व के लिए अनिवार्य शाश्वत मूल्यों का सृजन एवं संरक्षण कर पीढ़ियों का मार्गदर्शन भी कराता है।

कोई भी रचनाकार अपने सृजनकर्म के लिए समाज से विषय लेता है इसीलिए कहा भी गया है कि 'साहित्य समाज का दर्पण' है। समाज में चलने वाले क्रियाकलाप ही उसे रचना के लिए विषय प्रदान करते हैं। रचनाकार सामान्यत किसी विशेष संवेदनात्मक स्थिति से तादात्म्य स्थापित करता है। ऐसा होने पर परिस्थिति विशेष के प्रति वह सघन अनुभूति अनुभव कर उससे जुड़ जाता है। परंतु यदि रचनाकार संपूर्ण समाज को विषय बनाता है अर्थात समाज की छोटी लगने वाली बातों से भी उसी गहराई से जुड़ता है जितना बड़ी लगने वाली बातों से। यानि वह समाज की हर सूक्ष्म स्थिति से भी गहरी संवेदना रखता है तब यही गहराई रचनाकार को प्रासंगिक और महत्वपूर्ण बनाती है। नागार्जुन मूल रूप से प्रगतिवादी साहित्य धारा के अग्रणी रचनाकार हैं। इनकी कृतियाँ समान रूप से संस्कृत, मैथिली और हिन्दी तीनों भाषाओँ में अपनी भावनाओं को रचना का आकार दिया है। हिन्दी साहित्य जगत में नागार्जुन विविध प्रकार की रचनाओं के द्वारा अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाने में सफल हुए है। एक तरफ इनकी कृतियों कालिदास के मेघदूत के सदृश काल्पनिक उड़ान भरती है, तो दूसरे ही क्षण वास्तविकता के खुरदरी जमीन पर आ जाती हैं, और राजनीति और पूंजीपतियों से त्रसित, पीड़ित मानव और समाज की दुर्दशा को दर्शाते हैं। रचनाकार की जीवन अनुभूतियाँ और घटने वाली घटनाएँ ही उसकी रचनाओं में दिखायी देती है। नागार्जुन ने अपने जीवन में जितना अधिक अनुभव किया है, ज्ञानार्जन किया है, तरह-तरह के लोगों से सम्पर्क किया है, शायद ही

किसी रचनाकार ने किया हो। इसलिए नागार्जुन के पास सोचने, विचारने और अभिव्यक्त करने के लिए बहुत सारी बातें थी, जिसे एक कवि हृदय कविता का रूप देकर जनमानस तक पहुंचाता है।

इसके अलावा नागार्जुन ने जब लिखना शुरू किया तब देश पराधीन था। अंग्रेजों की कूटनीति से सम्पूर्ण देश प्रभावित हो रहा था। किसानों के जमीन का मालिक जमींदार बन गए थे। बेचारे किसान आंदोलन की राह पर जाने को मजबूर थे। नागार्जुन ने इस बात को समझा और इस पर कई कविताएँ लिखी। 1935 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के साथ ही नागार्जुन मार्क्सवादी विचारधारा की ओर झुके। किन्तु देश को उन्होंने हमेशा याद रखा। यह दौर मजदूरों-किसानों के झगड़ों और हड़तालों का था, जिसे नागार्जुन की कविताओं में देखा जा सकता है।

नागार्जुन एक ऐसे रचनाकार है जो जनमानस की आतंरिक गहराइयों में निहित भाव को समझते हैं। ये जनसाधारण से आत्मीय रूप से जुड़े हुए हैं। आमजन की हर छोटी बड़ी परेशानियां, विचार, अनुभूतियां, भावनाएं इन्होंने अपने हृदय में आत्मसात की है।

''खून-पसीना किया बाप ने एक जुटाई फीस, आँख निकल आई पढ़-पढ़के नम्बर पाए तीस
शिक्षा मंत्री ने सिनेट से कहा- ''अजी शाबाश, सोना हो जाता हराम यदि ज्यादा होते पास''
फेल पुत्र का पिता दुखी हैं सिर धुनती है माता, जन गण मन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता''

बीज शब्द

समाज, साहित्य, सृजन, कर्तव्य, संवेदना,

आधुनिक काल में, छायावाद के बाद अत्यंत सशक्त साहित्यादोलन प्रगतिवाद है। प्रगतिवाद का मूल आधार सामाजिक यथार्थवाद रहा है। प्रगतिवाद काव्य वह है जो अतीत की संपूर्ण व्यवस्थाओं के प्रति रोष व्यक्त करता है और उसके बदलाव की आवाज को बुलंद करता है। नागार्जुन के काव्य में प्रगति के स्वर सर्वप्रमुख है। सही अर्थों में नागार्जुन जनता के कवि है। वे एक मार्क्सवादी कवि माने गए क्योंकि नागार्जुन ने मार्क्सवाद को नहीं अपनाया बल्कि वे उनकी युगीन और आंतरिक जरूरत थी इस आंतरिक अनिवार्यता की जड़े उनके परिवारिक परिवेश में है इसलिए अपनी कविता के माध्यम से उन्होंने मार्क्सवादी, सिद्धांतों का प्रचार भी किया है। नागार्जुन एक सामाजिक चेतना से संपन्न रचनाकार हैं इसलिए समाज में निरंतर गिर रहे मूल्यों के प्रति वे चिंतित हैं। विसंगतियों के खिलाफ नागार्जुन में आक्रोश है। नागार्जुन हमेशा निम्न वर्ग के अभाव को झेलते आये हैं। ''**विशंभर मानव** :- नयी कवितारू नये कवि'' में लिखते हैं- ''व्यक्तिगत दुरूख पर ना रुक कर वे बार-बार व्यापक दुःख पर प्रकाश डालते हैं, और यही ईमानदारी कविता की सही दृष्टि है। अतः धरती जनता और श्रम के गीत गाने वाले इस युग के संवेदनशील कवियों में नागार्जुन का नाम सदैव अमर रहा है।[1] उनकी कविता में अमीर-गरीब, मालिक-मजदूर, जमींदार-कृषक, उच्चवर्ग-निम्नवर्ग के बीच द्वन्द दिखाई देता है। गरीबी, भुखमरी, बीमारी, अकाल, बाढ़ जैसे सामाजिक यथार्थ का सुक्ष्म चित्रण कवि ने किया है।

प्रगतिशील हिंदी कविता में सबसे अधिक संवेदनशील और लोकोन्मुख जनकवि नागार्जुन की विशिष्टता इसी बात में रही है कि उनकी रचनाओं और उनके वास्तविक जीवन में गहरा सामंजस्य है। नागार्जुन बुनियादी तौर पर देहाती जीवन के कवि है। उनके कविता संसार का बड़ा भाग गांव के अनुभवों से निर्मित हुआ है। उनकी कविताएँ सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक पक्षों में एक बड़ा चिन्ह हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। कवि नागार्जुन ने अपने युगीन यथार्थ और समसामयिक चेतना को

अपनी कविता से मुखरित किया है, जिसमें एक ओर तो गरीब किसान, मजदूर शोषण के अनवरत चक्र में पिसते हुए दाने-दाने को मोहताज हैं तो दूसरी ओर नकाबधारी जो भोग-विलास में लुप्त हैं-

''जमींदार है, साहकार हैं, बनिया है, व्यापारी हैं। अन्दर अन्दर विकट कसाई, बाहर खद्दरधारी हैं।''

खादी ने मलमल से अपनी साठ-गांठ कर डाली है! बिरला टाटा डालमियां की तीसो दिन दीवाली है!![2]

जनकवि नागार्जुन हिंदी साहित्य में प्रगतिशील कविता से जुड़े हुए हैं नागार्जुन का रचनाकाल मुख्य तौर पर राजनितिक, आर्थिक और सामाजिक स्तर पर काफी उथल-पुथल वाला रहा है। जो आज भी प्रासंगिक है। नागार्जुन की कविताओं में समाज में पनपने वाली विकृतियों के प्रति गहरा आक्रोश है। उनके अनुसार समाज में आडंबर दिखावा और भ्रष्टाचार राष्ट्र की उन्नति में बाधक है, और इनसे भावी पीढ़ी में गलत आचरण की शुरुआत होती है। आदमी की अभिव्यक्ति से विशुद्धता का लोप होता है और दूसरों पर निर्भरता बनी रहती है। इन सब विसंगतियों से मानव मूल्यों का ह्रास होता है। नागार्जुन अपनी रचनाओं में इन विषम स्थितियों पर करारा व्यंग्य करते हैं। उनको आभास होता है कि आज के समाज में श्रेष्ठजनों की जगह चापलूसों की कद्र बढ़ती जा रही है, जिससे पूरी व्यवस्था ही दूषित होती जा रही है।

''सपने में भी सच न बोलना, वरना पकडे जाओगे! भइया लखनऊ दिल्ली पहुंचो, मेवा-मिसरी पाओगे!!

माल मिलेगा-रेत सको यदि गला मजूर किसानों का! हम मरभुखों से क्या होगा चरण गहो श्रीमानों का!!''

अपने कथ्य में कवि नागार्जुन सामाजिक विषमता को अभिव्यक्ति के केंद्र में रखते हैं। अमीर-गरीब के बीच बढ़ता फासला न केवल आदमी में तनाव पैदा करता है बल्कि इससे पूजीवादी शोषण का नया रूप सामने आता है, जो कि चिरकाल तक अपना आभास देता रहता है। भारत में व्याप्त गरीबी इसी आभास का परिचायक है। आजादी के तुरंत बाद नागार्जुन भारतीय राजनीति की असलियत को पहचान जाते है।

जिस अधिकारों और मूल्यों को लेकर आजादी का संघर्ष जारी था, वही मूल्य आजादी के बाद काफूर हो गये। धर्म की परिधि में मानव बाहर हो गया और उसे अस्पृश्य माना गया। आदमी की इसी सोच ने समाज को पतनोन्मुख कर दिया। समाज की प्रत्येक व्यवस्था के स्तर पर धर्म के शाश्वत अर्थ-कर्तव्य को ही भुला दिया गया, जिससे राष्ट्र का विकास और प्रगति प्रभावित होते हैं। नागार्जुन की कविताओं में धार्मिक आस्था का नया रूप नये स्वर में दिखाई देता है। उनके अनुसार आदमी को उसके यथार्थ रूप में देखने में यदि धर्म आडे आता है, तो वह धर्म एक पाखंड है। कवि मानवीय संवेदनाओं को मुख्य अनुभूति मानते हैं, और इसकी सही अभिव्यक्ति हीं असली धर्म है, वे तिकडम वाले धर्म को एकदम नकार देते हैं।

''और पाँच पैसे दस पैसे,
जैसी श्रद्धा सिक्के वैसे,
निकल रहे हैं जैसे-तैसे,
श्रद्धा का तिकड़म से नाता,
जय हे भिक्षुक जय हे दाता,
पियो सन्त हुगली का पानी।''

''नागार्जुन का गद्य साहित्य में भी महत्वपूर्ण योगदान है उन्होंने उपन्यास, नाटक, कहानियाँ, निबन्ध, व्यंग्य, यात्रा वृतान्त, संस्मरण, रिपोर्ताज, बाल साहित्य, पत्र, डायरी, आदि लिखे। इन्होंने पत्रकारिता भी की। ''नागार्जुन के अब तक कुल 12 उपन्यासों का प्रकाशन हुआ है। जिन्होंने नागार्जुन को मूर्धन्य कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इन सभी उपन्यासों का पुनः प्रकाशन राजकमल प्रकाशन में शोभाकान्त जी के सम्पादन में 'नागार्जुन रचनावली' के नाम से किया है। नागार्जुन जी ने हिन्दी एवं मैथिली दोनों भाषाओं में उपन्यासों की रचना की है। सन् 1939 में पंडित श्राहुल सांकृत्यायन' के साथ

किसान आन्दोलन का नेतृत्व करने के कारण इनको छपरा जेल में रखा गया। कारावास के दौरान राहुल सांस्कृत्यायन जी ने अपना उपन्यास ष्जीने के लिएष् डिक्टेशन देकर लिखाया था, इससे नागार्जुन जी को लगा कि ऐसा उपन्यास मैं भी लिख सकता हूँ। शोभाकान्त के अनुसार श्सम्भवतरू उपन्यास लिखने की पहली प्रेरणा नागार्जुन को इस डिक्टेशन से ही मिली थी।''[3] नागार्जुन के उपन्यासों में उपन्यास कला कथा-गठन तथा औपन्यासिक सर्जनात्मकता प्रभावी रूप से प्रकट हुई है। ''डॉ. सुषमा धवन ने इस संदर्भ में लिखा है- ''नागार्जुन के उपन्यासों में वर्णित जीवन भारतीय कृषक का प्रतिनिधित्व नहीं करता है, वरन एक क्षेत्र विशेष पर आधारित होने के कारण आपकी रचनाएं आंचलिक उपन्यास की कोटी में परिगठित की जाती हैं। इन उपन्यासों का परिवेश विस्तृत होने की अपेक्षा अधिक गहन होता है। निम्न तथा मध्यम वर्ग के जीवन खंडों के अलग-अलग चित्र भिन्न-भिन्न उपन्यासों में मिलता है।''[4]

नागार्जुन के उपन्यासों की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने अपने उपन्यासों में मात्र बौद्धिकता या सैद्धांतिकता का समावेश ना करके अपनी लेखनी द्वारा समाज के यथार्थ जीवन को प्रमाणित अनुभूतियों द्वारा प्रतिष्ठित किया है। अतः नागार्जुन के उपन्यासों कृतियों में सबसे पहला उपन्यास 'प्रतिनाथ की चाची' है, जो सन 1948 ईस्वी में प्रकाशित हुआ था। उसमें लेखक स्वयं भी कहीं शामिल हैं, इसलिए अधिक विश्वसनीय और यथार्थ प्रतीत होता है। इस उपन्यास में मैथिली समाज का यथार्थ का चित्रण हुआ है। नागार्जुन का पहला आंचलिक उपन्यास श्रतिनाथ की चाचीष् है ष्गणपति चंद्रगुप्त के अनुसार'- 'आंचलिक संज्ञा का आविष्कार रेणु द्वारा उनके मैला आंचल की भूमिका में हुआ था किंतु इस परंपरा का सूत्रपात इससे पूर्व नागार्जुन द्वारा हो चुका था।''[5] तो 'शंभू सिंह का कथन है' कि- हैं।'' ''नागार्जुन का प्रथम उपन्यास रतिनाथ की चाची और हिंदी का प्रथम आंचलिक उपन्यास और नागार्जुन हिंदी के प्रथम आंचलिक उपन्यासकार हैं।''[6]

निष्कर्ष-

हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रगतिवाद या प्रगतिशील धारा एवं स्वाधीन भारत के प्रतिनिधि जनकवि के रूप में बाबा नागार्जुन पहचाने जाते हैं। आज तकनीकी युग में हमने बहूतेरे सुख-सुविधा के लिए साधन अपना लिये, परन्तु मूल्यों का ह्रास हुआ इसका मुख्य कारण है, जन-जन की संवेदना से कट जाना। अनेक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं अन्य कारणों से तनाव, घुटन, कुंठा असंतोष आदि फैलने से महानगरीय जीवन और ज्यादा कष्टमय होता जा रहा है। इससे भारतीय समाज विखंडित हुआ है। हमारे जन-मन के चितेरे नागार्जुन समाज का शोषित-दलित वंचित वर्ग के प्रति संवेदना के कारण इनकी रचना में सामाजिक चेतना की भावुकतापूर्ण विह्वलता दिखाई पड़ती है साथ ही विषम दशा में जनता के पक्ष में एक तरह मोर्चाबंदी के लिए जागरूक करते हैं। कबीर जैसा सामाजिक, सोद्धेष्य व्यंग्य के तेवर रखने के कारण उन्हें ष्आधुनिक कबीर' भी कहा जाता है। उनका सम्पूर्ण साहित्य जिसमें 1971 में दलितों पर हुए शोषण के विरुद्ध श्हरिजन गाथा' नामक लम्बी कविता, श्बलचनमा' सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। श्वरुण के बेटें' में गरीब मछुआरों का जीवन संघर्ष है। श्जमनिया के बाबाष् तथा 'नयी पौध' में जमींदारों द्वारा जनसाधारण गरीबों के शोषण का चित्रण है और श्गरीबदास' में सभी को ऊँच-नीच के भेदभाव मिटाने की बात की गई हैं। 'शासन की बंदूक' कविता में कवि व्यवस्था को चुनौती है। व्यवस्था बंदूक के बल पर जनता पर शासन नहीं कर सकती हैं। जनता के प्रतिरोध के सामने बंदूक की ताकत नगण्य हो जाती है जैसे-

''खड़ी हो गई चांपकर कंकालों की हुक,
नभ में विपुल विराट-सी शासन की बंदूक,
जली ढूँठ परन बैठकर गई कोकिल कूक,
बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक''

साहित्यिक परिपेक्ष में सामाजिक राजनीतिक धार्मिक विकास के क्षेत्र में नागार्जुन के रचनाओं में सामाजिक चेतना पर विचार विमर्श करने का प्रयास किया है। जो आज भी प्रसांगिक है और आज के सामाजिक परिवेश में उनके काव्य कहानियां जनमानस को प्रभावित करती है। नागार्जुन नें जो जीवन जिया है उनका गहरा संबंध उनके कृतित्व से है। नागार्जुन का जीवन एक विद्रोही का जीवन है। वह परिवार समेत समाज की तमाम शोषणकारी संस्थाओं के विरुद्ध विद्रोह करते हैं, संस्थाओं के दमनकारी अनुशासन को अस्वीकार करते हुए वे एक यायावर क्रांतिकारी की तरह अपनी जीवन यात्र पूरी करते हैं। इस यात्र में विभिन्न विचारों से उनका संपर्क होता है। बौद्ध धर्म से लेकर मार्क्सवाद तक अध्ययन करते हैं और अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं। एक विद्रोही यायावर जीवन का यह बिपुल अनुभव हीं उनकी कविता में रूपांतरित होती है। नागार्जुन के काव्य में सामाजिक चेतना सम्पूर्ण रूप से दिखायी देती है। नागार्जुन एक सामाजिक चेतना से संपन्न रचनाकार हैं इसलिए समाज में निरंतर गिर रहे मानव मूल्यों के प्रति चिंतित हैं। नागार्जुन समाजवादी यथार्थ वादी रचनाकार हैं। इसलिए उनके काव्य में सामाजिक विभीषिका विद्रोहों पर अत्यंत कड़वे व्यंग किए हैं।

''वह माओ कहां है,
वह माओ मर गया,
वह माओ कौन है,
बेगाना है, वह माओ,
आओ इसको नफरत की
मुको से नहलाओ''[7]

नागार्जुन के उपन्यासों, कहानियों तथा अन्य गद्य विधाओं में सामाजिक चेतना को बताने का प्रयास किया है। हिंदी उपन्यास और कहानी में समाज के यथार्थ रूप का चित्रण प्रेमचंद् युग से प्रारंभ हुआ, प्रेमचंद की इसी परंपरा को आगे बढ़ाने का कार्य नागार्जुन ने किया। निम्न वर्गीय समाज की वेदना और उनकी समस्याओं के चितेरे नागार्जुन ने अपने उपन्यासों और कहानियों तथा गद्य विधाओं द्वारा साहित्य को समृद्ध किया है। सामाजिक चेतना की दृष्टि से नागार्जुन की उपन्यास कहानियां तथा अन्य विधाओं जो आज के समाज को प्रभावित करती है। नागार्जुन ने संवेदना और नारी के चित्रण की भी विवेचना की है। किसी भी वस्तु भाव या स्थिति का हृदय पर जो प्रभाव पड़ता है, उसकी जो प्रतिक्रिया होती है, उसे ही संवेदना कहते हैं। नागार्जुन एक अत्यंत संवेदनशील कवि हैं समाज में हो रही अधिक से अधिक वस्तुओं, प्रसंगों का उनपर प्रभाव पड़ता है, वह उन पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। जो कवि जितना बड़ा होगा वह उतना ही संवेदनशील होगा। नागार्जुन ने अपनी एक कविता -

''प्रतिबद्ध हूं सबद्ध हूँ,
सचर अचार सृष्टि से, शीत से,
ताप से, धूप से, हिमपात से''[8]

नागार्जुन अपनी रचनाओं में नारी शोषण की समस्या को गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है और उसका अपने ढंग से समाधान भी प्रस्तुत किया है। शोषित पात्र के रूप में भारतीय नारी को नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। समाजवादी चेतना ही उनके नारी पात्रें की विशेषता है, नारी पात्रों में गौरी (रतिनाथ की चाची), विसेसरी (नई पौध), माधुरी (वरुण के बेटे), माया (दुख मोचन), निर्मला (कुंभीपाक) और उगनी (उग्रतारा) प्रमुख है। नागार्जुन की रचनाओं का शिल्पगत विवेचना करने का प्रयास किया गया है। नागार्जुन पर यह आरोप अक्सर लगाया जाता रहा है कि अपनी कविताओं में वे छंद और शिल्प के प्रति उदासीन है। सबसे पहले हमें यह देखना चाहिए कि यह उदासीनता भाषा और शिल्प की अज्ञानता के कारण है या जानबूझकर अपनाई गई है। नागार्जुन हिंदी के अलावा संस्कृत, पाली, प्राकृत, बांग्ला, मैथिली आदि भाषाओं की भी जानकार थे। उन्होंने संस्कृत में काव्य रचना भी की है, और हिंदी में छंद बद्ध कविताएं भी लिखी है। इसलिए यह कहना गलत है कि उन्हें भाषा-शिल्प का ज्ञान नहीं था। उन्होंने अपनी रचनाओं को छंद

और शिल्प में बंधने नहीं दिया। नागार्जुन की रचनाओं में शिल्प बनावटी या गढ़ा हुआ नहीं बल्कि सहज और उदार है। उनकी काव्य में कबीर के भाषाई अखड़पन और निराला के व्यंग-वैविध्य का अनूठा संगम है। इस प्रस्तुत शोध आलेख में अनेकानेक विशिष्ट तथ्यों, समस्याओं तथा संभावित समाधान और निष्कर्षों को खोजने का अल्प प्रयास किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

(1) नयी कविता : नये कवि,1973, संकल्प प्रकाशन, बिहार पृष्ठ- 57

(2) हंस, रामराज्य कविता, मई 1949, पृष्ठ-492

(3) नागार्जुन रचनावली भाग-6, आइने के सामने' सम्पादक-शोभाकान्त, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं.- 240.

(4) नागार्जुन एक अध्ययन, डॉ ललित अरोड़ा,1998 भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली पृष्ठ- 47

(5) हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डॉ गणपति चंद्रगुप्त, 1995, न्यू भारत भवन प्रकाशन, चंडीगढ़, पृष्ठ- 935

(6) रांघेय राघव और आंचलिक उपन्यास, डॉ शंभू सिंह, 1969, सुशील प्रकाशन, अजमेर, पृष्ठ संख्या- 27

(7) धर्मयुग, नागार्जुन, 1963, 27 जून

(8) खिचड़ी विपल्व देखा हमने, नागार्जुन, 1980, संभावना प्रकाशन, हापुड़ पृष्ठ संख्या- 57

हिंदुस्तानी एवं कर्नाटक संगीत में स्वरलिपि पद्धति का अध्ययन

प्रो.सुनीरा कासलीवाल व्यास

प्रो.दीप्ति ओमचेरी भल्ला

शोध निर्देशिका
संगीत एवं ललित कला संकाय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वंशिका रस्तौगी

शोधार्थी
संगीत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सार-संक्षेप

संगीत के क्रियात्मक पक्ष को शास्त्र रूप में दर्शाने के लिए जिन चिन्हों, रेखाओं व अंकों इत्यादि का प्रयोग किया जाता है, उसे 'स्वरलिपि' कहते हैं। संगीत का अधिक से अधिक प्रचार-प्रसार कदरने के लिए तथा संगीत की सांस्तिक परम्परा के अनन्त वैभव को सामान्य जन के समक्ष उपस्थित करने एवं प्राचीन धूमिल होती हुई सांगीतिक रचनाओं व परम्पराओं की रक्षा के उद्देश्य से स्वरलिपि पद्धति का जन्म हुआ। अमुक राग अमुक काल में किस प्रकार गाया-बजाया जाता था इसका बोध अगली पीढ़ी को कराने के लिए 'स्वरलिपि' जैसा अन्य साधन नहीं है।

बीज शब्द

स्वरलिपि, हिंदुस्तानी स्वरलिपि पद्धति, कर्नाटक स्वरलिपि पद्धति, स्वर काल, स्थायी

हिन्दुस्तानी स्वरलिपि पद्धति

हिंदुस्तानी संगीत में दो ऐसी महान विभूतियाँ हुई हैं जिन्होंने अपने-अपने ढंग से स्वरलिपि पद्धति दी। जिनमें एक विभूति 'पं. विष्णु नारायण भातखंडे' और दूसरी विभूति 'पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर' हैं। दोनों ही व्यक्ति चाहते थे कि संगीत का अधिक से अधिक प्रचार-प्रसार हो। अतः सुने हुये संगीत को लिखने की आवश्यकता हुई और यह कहा भी गया है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। अतः 'स्वरलिपि' पद्धतियों की रचना हुई तथा स्वरलिपियों का नामकरण उनके रचयिताओं के नाम पर हुआ जिसमें एक का नाम 'विष्णु नारायण भातखंडे स्वरलिपि पद्धति' और दूसरी का नाम 'विष्णु दिगम्बर पलुस्कर स्वरलिपि पद्धति' है। संक्षेप में इन दोनों स्वरलिपि पद्धतियों को 'भातखंडे' और 'पलुस्कर' स्वरलिपि कहते हैं। भातखंडे स्वरलिपि का प्रचलन पलुस्कर लिपि की तुलना में अधिक है क्योंकि यह अधिक सरल है। पलुस्कर लिपि थोड़ी क्लिष्ट अवश्य है, परंतु यह अधिक वैज्ञानिक है।

नीचे दोनों स्वरलिपि पद्धतियों का तुलनात्मक विवरण दिया जा रहा है -

भातखंडे स्वरलिपि पद्धति	पलुस्कर स्वरलिपि पद्धति
स्वर चिन्ह[3]	
शुद्ध स्वर - रे, ग म (कोई चिन्ह नहीं)	रे, ग, म (कोई चिन्ह नहीं)
कोमल स्वर - रे, ग (नीचे बेड़ी रेखा)	रे़, ग़ (स्वर में हलंत)
तीव्र स्व - मं (ऊपर खड़ी रेखा)	म्र (अथवा उल्टा हलंत)
सप्तक चिन्ह	
मध्य सप्तक - ग, म, प (कोई चिन्ह नहीं)	ग म प (कोई चिन्ह नहीं)
मन्द्र सप्तक - नि़, ध़, प़ (नीचे बिंदु)	निं धं पं (ऊपर बिंदु)
तार सप्तक - गं मं पं (ऊपर बिंदु)	गं मं पं (ऊपर खड़ी रेखा)
स्वर मान	
एक मात्रा - रे ग	रे ग (नीचे बेड़ी रेखा)
1½ मात्रा सा -रे अर्थात् सा = 1½ मात्रा और रे = ½ मात्रा	सा व रे (जिस स्वर के दाहिनी ओर एक बिंदु रख देते है उसकी मात्रा 1½ गुनी एवं जिस स्वर के नीचे बिंदु रख देते है उसकी मात्रा आधी रह जाती है।)
दो मात्रा - रे - ग -	रे ग
आधी मात्रा सारे गम (प्रत्येक स्वर 1½ मात्रा)	सा रे ग म
चौथाई मात्रा रेगमप (प्रत्येक स्वर (¼ मात्रा)	रे ग म प ग
अर्ध विराम - सा,रेग अर्थात् सा = 1½ और रे, ग क्रमश ¼ मात्रा	सा रे ग
तललिपि	⏟⏟⏟⏟⏟
सम ×	1
खाली 0	+
विभाग 1	विभाग चिन्ह नहीं होता आवर्तन होने पर एक खड़ी रेखा लगाते हैं।
ताली-ताली संख्या जैसे 2, 3, 4	मात्रा-संख्या जैसे 1, 5, 11

स्वर सौंदर्य	
मींड पग	प्ग
कण ध्प	ध्प
खटका (प) = पधमप	(प)
गीत या स्वर उच्चारण श्याऽऽम	श्याववम

कर्नाटक स्वरलिपि पद्धति

कर्नाटक स्वरलिपि जानने हेतु चार महत्वपूर्ण बिंदुओं पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

1. स्वर काल
2. स्थायी या सप्तक स्थान (जिससे स्वर संबंधित हो)
3. स्वरों की शुद्धा एवं विकृतावस्था (note variety)
4. गमक (स्वर का सीधा प्रयोग है या कुछ आंदोलित है।)

१. स्वर काल - कर्नाटक संगीत में ह्रस्व स्वर की कालावधि एक अक्षर काल होती है। जैसे-सरि ग म प ध नि सं आदि। यह स्वर एक-एक अक्षर काल के स्वर हैं। तथा दीर्घ स्वर को दर्शाने के लिए सा, री, गा, मा, पा, धा, नी, सां स्वर लिखे जाते हैं। अर्थात् ह्रस्व स्वर को दिखाने के लिए ह्रस्व स्वर तथा दीर्घ स्वर दिखाने के लिए दीर्घ स्वर लिखा जाता है।

किसी भी स्वर के आगे एक अर्धविराम लगाने से उसका काल एक मात्रा बढ़ जाता है -

स , = 2 मात्रा काल

स , , = 3 मात्रा काल

किसी भी स्वर के आगे एक सेमी कॉलन (semi colon) लगाने से उसका काल 2 मात्रा बढ़ जाता है।

स ; = 3 मात्रा काल

सा ; , = 5 मात्रा काल

सा ; ; = 6 मात्रा काल

किसी भी स्वर या स्वर समुदाय के नीचे एक क्षैतिज (horizontal) रेखा खीचने से उस स्वर या स्वर समुदाय की मात्रा आधी, दो मात्राएँ खीचने पर मात्रा एक चौथाई तथा इसी प्रकार तीन मात्राएँ खीचने पर मात्रा 1/8 गुनी रह जाती है।

प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ काल, गायन की गति अवधि को बताता है।

प्रथम काल में - एक मात्र में एक स्वर गाया जाता है।

द्वितीय काल में- एक मात्र दो स्वर गाये जाते हैं।

तृतीय काल में - एक मात्र चार स्वर गाये जाते हैं।

चतुर्थ काल में - एक मात्रा में आठ स्वर गाये जाते हैं।

लेकिन यदि प्रथम काल में एक मात्र में दो स्वर गाये गए हो तब द्वितीय काल में चार, तृतीय में आठ, चतुर्थ काल में सोलह स्वर गाये जायेंगे।

2. स्थायी या सप्तक चिन्ह -

मन्द्र स्थायी स्वर - सा़ रे़ ग़ म़ (स्वर के नीचे बिंदु)

मध्य स्थायी स्वर - सा रे ग म (कोई चिन्ह नहीं)

तार स्थायी स्वर - सां रें गं मं (स्वर के ऊपर बिंदु)

३. स्वरों की शुद्धा एवं विऔतावस्था - किसी भी राग के अंतर्गत राग नाम व मेल के नाम व संख्या से ही राग में लगने वाले कोमल व तीव्र स्वरों के विषय में पता चल जाता है। लेकिन व्यवहार में कभी-कभी सुविधा हेतु 1 और 2 का उपयोग क्रमशः कोमल और तीव्र स्वरों को दर्शाने के लिए किया जाता है।

इस प्रकार स्थायी के 12 स्वरों को निम्न प्रकार लिखा जाता है -

S	स	G_2	तीव्र ग	D_1	कोमल ध
R_1	कोमल रि	M_1	कोमल म	D_2	तीव्र ध
R_2	तीव्र रि	M_2	तीव्र म	N_1	कोमल नि
G_1	कोमल ग	P	प	N_2	तीव्र नि

स्वरों की विविधता (variety) को निम्न प्रकार भी लिखा जाता है।

रिषभ के तीन रूप = Ra, Ri, Ru

यहाँ Ra, Ri, Ru क्रमशः शुद्ध रिषभ, चतुःश्रुति रि और षट्श्रुति रि तथा गांधार के भी तीन रूपों शुद्ध गांधार, साधारण गांधार और अंतर गांधार को क्रमशः Ga, Gi, Gu से सम्बोधित किया जाता है। इसी प्रकार धैवत और निषाद के भी तीन रूप Da शुद्ध धैवत, Dhi (चतुःश्रुति ध), Dhu (षट् श्रुति ध) और Na (शुद्ध नि), Ni (कैशिकी नि) Nu (काकली नि) हैं।

४. गमक चिन्ह - जब किसी स्वर के ऊपर या नीचे एक लहरदार रेखा लगी होती है तब उस स्वर को हिलाते हुए गाया जाता है। जैसे 'पसंनि' में 'नि' स्वर के नीचे है।

यहाँ निषाद को षड्ज व निषाद के बीच झूलता सा गाना है।

कर्नाटक संगीत में प्रायः दस प्रकार की गमकों का प्रयोग देखने को मिलता है। जो निम्नवत् हैं -

सं.	गमक का नाम	विवरण	उदाहरण
1.	आरोहणम्	स्वरों का क्रम से ऊपर चढ़ना	स रि ग म प ध नि सं
2.	अवरोहणम्	स्वरों का क्रम से नीचे आना	सं नि ध प म ग रि स
3.	घालु	एक स्वर से दूसरे स्वर को लांघना	सा ग, स म, स प
4.	स्फुरितम्	द्रुत लय में प्रत्येक स्वर को दो-दो बार गाना	सस, रिरि, गग
5.	त्रिपुच्छम	द्रुत लय में प्रत्येक स्वर को तीन बार गाना	ससस, रिरिरि,
6.	आहतम्	एक स्वर से उसके अगले स्वर पर स्वर को आहत करके बढ़ना	सरि, रिग, गम
7.	प्रत्याहतम्	दो स्वरों को अवरोह क्रम में आहत करके बढ़ना	संनि निध, धप, पम

8.कम्पित म	स्वर को कम्पित करके गाना	प प प प
9. आन्दोलितम्	स्वरों को ऊपर तथा नीचे झुलाकर गाना	सारि सा पप, सारिसामम
10. मूर्च्छना	किसी भी एक स्वर को षड्ज मानकर सात स्वरों का क्रम से आरोह-अवरोह ही मूर्च्छना है।	स रि ग म प ध नि सं सं नि ध प म ग रे सा।

स्वरलिपि में प्रयुक्त अन्य चिन्ह -

1. (अ) डबल बार Double Bar (II) . किसी ताल की समाप्ति पर किसी ताल के एक डबल बार (II) लगाया जाता है। इसी प्रकार किसी कृति के प्रारंभ व खंड की समाप्ति पर 'डबल बार' लगाया जाता है।

(ब) सिंगल बार या 'अरूदी' (Arudi) - यह ताल को दो भाग पूर्वांग - और उत्तरांग में बांटता है। 'अरूदी' से पूर्व के ताल को पूर्वांग व पश्चात् के ताल को उत्तरांग कहते है। यह ताल के मध्य में लगाया जाता है, इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि यह ताल की सम्पूर्ण मात्राओं को दो बराबर भागों में बांटता है, यह ताल की सम्पूर्ण मात्राओं के मध्य में हो भी सकता है और नहीं भी। यह पूर्वांग का उत्तरांग संबंध दर्शाता है।

जैसे-'आदि तालम्' में एक ताली के बाद तीन उंगली गणना तथा पुनः ताली फिर विसलजतम् उसके बाद फिर ताली।

1. इस प्रकार 'आदि तालम्' में प्रथम ताली व तीन उंगली गणना के पश्चात् 'अरूदी' (single bar) लगता है तथा झम्प ताल में 'अरूदी' के पूर्व 5 मात्रा तथा इसके पश्चात् 3 मात्रा आती है।
2. लहर-दार रेखा Wavy Line (~) - यह रेखा जिस स्वर के ऊपर लगी होती है (S) वह स्वर हिलता हुआ प्रयोग किया जाता है।
3. विश्रान्ति Visranti or Rest - स्वरों पर ठहराव को ही विश्रान्ति कहते हैं। इसे कोमा (,) या सेमी कोलान (अर्ध विराम (,) द्वारा दिखाया जाता है। एक मात्रा विराम के लिए अल्प विराम (,) तथा दो मात्रा विराम के लिए अर्ध विराम (;) लगाया जाता है।
4. तिरिपा या नोक्कु या बल (Stress) - किसी भी स्वर के ऊपर 'W' लगा होने से वह स्वर अतिरिक्त बल देकर गाया जाता है।
5. मींड का चिन्ह - जिन स्वरों के मध्य मींड लेनी हो (चाहे वह अनुलोम हो या विलोम) उनके मध्य में ' è ' चिन्ह लगा देते हैं। जैसे 'प ⁄ सां' या 'सां ⁄ प'
6. अंक Numerals - रॉमन अंक I II III IV V VI VI को सात तालों के लिए प्रयोग किया जाता है तथा अरेबिक अंक 3 4 5 7 9 को लघु जाति के लिए प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार 'IV7' का अर्थ मिश्र जाति के झम्प ताल से है।

   72 मेलकर्त्ता पद्धति में रॉमन अंकों द्वारा 12 चक्रों को तथा अरेबिक अंकों द्वारा मेलकर्त्ता की संख्या को प्रदलशत किया जाता है। इस प्रकार 'III3' का अर्थ है तीसरे चक्र का तीसरा मेल अर्थात् मायामालवगौल।
7. सम्प्रदाय स्वर - किसी विशिष्ट राग में किसी स्वर का प्रयोग जो अपनी नियत श्रुति से कुछ ऊपर या नीचे प्रयोग हो वह सम्प्रदाय स्वर कहलाता है। उदाहरण राग दरबारी में दरबारी 'M R G G R S' यह गंधार थोड़ा सा sharpened प्रयोग हुआ है।

संदर्भ

(1) यमन, अशोक कुमार. (2021). संगीत रत्नावली. नई दिल्लीः अभिषेक पब्लिकेशन्स

(2) भातखण्डे, विष्णुनारायण (जून 2017). क्रमिक पुस्तक मालिका भाग (६). हाथरस : संगीत कार्यालय

(3) भातखण्डे, विष्णुनारख्यण (जून 2019) क्रमिक पुस्तक

मालिका भाग-5. हाथरस : संगीत कार्यालय
(4) ठाकुर, ओमकारनाथ (जनवरी 1959). संगीतांजाली भाग प्रथम. वाराणसी : प्रणव स्मृति न्यास
(5) साम्बामूलत, पी. (2002). साउथ इण्डियन म्यूज़िक बुक भाग-1. चेन्नई : इण्डियन म्यूजिक पब्लिशिंग हाउस

शोध सार

प्रस्तुत शोध पत्र हिंदुस्तानी एवं कर्नाटक संगीत पद्धति में प्रयोग की जाने स्वरलिपि पद्धतियों पर आधारित है। इस विषय पर शोध पत्र लिखने का उद्देश्य यह था कि प्रायः हिंदुस्तानी संगीत का विद्यार्थी हिंदुस्तानी स्वरलिपि पद्धति को सहजता से समझ जाता है तथा जब वह कर्नाटक संगीत में अपनी रूचि दिखाते हुए उसे समझने की कोशिश करता है तो उसे वहाँ की स्वलिपियाँ समझ नहीं आती इसी प्रकार की समस्या से कर्नाटक संगीत का विद्यार्थी भी जूझता है। अतः इस समस्या के निराकरण हेतु इस विषय को चुना गया है। इस शोध पत्र मे हिंदुस्तानी संगीत में भातखण्डे स्वरालिपि पद्धति व विष्णु दिगम्बर पलुस्कर स्वरलिपि पद्धति तथा कर्नाटक स्वरलिपि पद्धति पर प्रकाश डाला गया है।

बागेश्री अंग के किंचित अप्रचलित रागों का शास्त्रीय स्वरूप

प्रो. शर्मिला टेलर
संगीत विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

पूनम रानी
शोधर्थी संगीत विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

सार-संक्षेप

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। संसार की प्रत्येक वस्तु प्रतिक्षण उन्नति के पथ पर गतिशील है। भारतीय संगीत भी इसी भाँति निरंतर परिवर्तनशील रहा है, जिसके फलस्वरूप ही अर्वाचीन संगीत का स्वरूप प्राचीन संगीत से सर्वथा भिन्न दृष्टिगोचर होता है।

मस्तिष्क सदैव नित-नवीन सर्जना करने में रूचिरत और प्रयासरत रहा है। नवसर्जना की इसी श्रृंखला में भारतीय संगीत के विभिन्न विद्वानों ने अनेकानेक रागों की रचना की है। इनमें से कुछ राग आज प्रचलित हैं तो कुछ अप्रचलित है। इसी प्रकार से प्रत्येक रागांग एवं थाट के कुछ राग ऐसे हैं जो प्रचलित हैं तथा कुछ ऐसे हैं जो अप्रचलित होते जा रहे हैं। प्रस्तुत प्रपत्र में किंचित ऐसे ही अप्रचलित रागों की चर्चा की गई हैं, जो बागेश्री अंग के अंतर्गत आते हैं। यथा- कोमल बागेश्री, औड़व बागेश्री, बागेश्री कान्हड़ा, बागेश्री बहार, कौंसी कान्हड़ा इत्यादि।

वर्तमान में अप्रचलित रागों के अध्ययन हेतु कुछ एक गिने-चुने ग्रंथ ही रह गए है। इन रागों में बंदिशें भी बड़ी कठिनाई से उपलब्ध होती है। अस्तु आने वाली नई पीढ़ी के लिए रागों को व्यवहार में लाना और संरक्षित रखना नितांत आवश्यक है।

बीज शब्द

बागेश्री अंग, राग, रागांग, अप्रचलित राग, षास्त्रीय परिचय

प्राचीन काल से लेकर अब तक विद्वानों ने कुल कितने रागों की रचना की, उनकी निश्चित संख्या ज्ञात करना असंभव तो नहीं है, परंतु दुरूह कार्य अवश्य है। इन असंख्य रागों में कुछ राग ऐसे हैं जो किन्हीं विशेष घरानों में प्रचलित है, तो कुछ ऐसे हैं जो अप्रचलित हो गये हैं। इसी समस्या से शुरूआत होती है प्रचलित तथा अप्रचलित रागों की। प्रचलित राग तो फिर भी संगीत के विभिन्न कार्यक्रम एवं मंच प्रदर्शन में सुनने को मिल जाते हैं, परंतु ऐसे क्लिष्ट राग जो अप्रचलित रागों की श्रेणी में आ गए हैं, सुनाई भी कठिनाई से ही पड़ते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में शोधार्थी द्वारा 'बागेश्री' अंग के कुछ ऐसे ही अप्रचलित रागों की जानकारी प्रस्तुत की गई है, जिनको लोग कम गाते-बजाते हैं तथा जिनके बारे में प्रमाणिक सामग्री बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती है।

'रागांग' की दृष्टि से प्रस्तुत 'बागेश्री' अंग के संदर्भ में गुणीजन भिन्न-भिन्न मत रखते हैं। कुछ विद्वान 'बागेश्री' को काफी अंग के अंतर्गत मानते हैं, तो कुछ कान्हड़ा अंग के अंतर्गत मानते हैं और कुछ विद्वानों ने 'बागेश्री' को एक स्वतंत्रा रागांग के रूप में स्वीकार किया है। राग- वर्गीकरण' की इस पद्धति को सुव्यवस्थित ढंग से प्रचार में लाने का

श्रेय पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर जी के शिष्य पं. 'नारायण मोरेश्वर खरे' जी को जाता है। खरे जी द्वारा कथित 30 रागांगों में से ही एक है - 'बागेश्री' अंग। अतः शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत 'बागेश्री' अंग को एक स्वतंत्रा अंग मानते हुए बागेश्री अंग के अंतर्गत आने वाले किंचित अप्रचलित रागों का शास्त्राीय परिचय देने का प्रयास किया गया है जो कि निम्नवत् है :-

(१) **राग** - औडव बागेश्री (पुराना चंद्रकोंस)

प्रस्तुत राग 'औड़व बागेश्री' बागेश्री अंग का एक अप्रचलित राग है। यह राग बागेश्री का औड़व रूप है। संभवतया इसीलिए इसका नाम औड़व बागेश्री रखा गया हो। शास्त्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसी राग को पहले चंद्रकंस कहा जाता था। यह राग दो प्रकार से गाया जाता है। पहले प्रकार में गंधार, निषाद कोमल तथा धैवत शुद्ध है और दूसरे प्रकार में गंधार, धैवत कोमल तथा निषाद शुद्ध है। इसके दोनों ही प्रकारों में ऋषभ-पंचम वर्जित है।

यहाँ काफी थाट से उत्पन्न औड़व बागेश्री अथवा प्राचीन चंद्रकोंस का वर्णन किया जा रहा है। इसमें गंधार, निषाद कोमल और शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। इसका वादी स्वर मध्यम और संवादी स्वर शड्ज है। इस राग में ऋषभ-पंचम पूर्ण रूप से वर्जित है। अतः इसकी जाति औड़व-औड़व है एवं गायन समय मध्यरात्रि माना जाता है। इसका आरोह व अवरोह इस प्रकार है -

आरोह :- सा ग म ध नि सां।

अवरोह : - सां नि ध म ग म ग सा।

राग का मुख्य अंग :-"म ग सा, ध़ नि़ सा म, ग^{m} ग^{m} म ग सा।"[1]

पूर्वांग में मालकंस और उत्तरांग में बागेश्री के मेल से इस राग का स्वरूप स्पष्ट होता है।यथा-"सा, नि़ ध़, ध़ नि़ सा म ग म ग सा। सा ग म ग म ग नि़ सा। सा ग म ध, ध म ग, ग म ग सा। ग म ध नि ध म ध नि ध म ग म ग सा। सा ग म ध नि सां। सां नि ध नि सां, सां नि ध म ध नि ध, म ग म ग सा। म ध नि सां, ध नि सां गं सां, सां गं मं गं मं गं सां, सां नि ध, म ध नि ध, म ग म ग सा।"[2]

(२) **राग - बागेश्री बहार**–प्रस्तुत राग 'बागेश्री बहार' काफी थाट के अंतर्गत आता है। जैसा कि नाम से ही विदित होता है कि इस राग की उत्पत्ति राग 'बहार' में 'बागेश्री' का मिश्रण करने से हुई है। इसमें गंधार कोमल, दोनों निषाद (नि, नि) व शेश सभी स्वर शुद्ध लगते हैं। इसका वादी स्वर मध्यम तथा संवादी स्वर षड्ज है। इस राग की जाति औड़व-संपूर्ण (वक्ररूप से) और गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है।

राग का मुख्य अंग :- "ध नि ध म, प म ग म, रे सा।

आरोह :- सा ग म, ध नि ध सां।

अवरोह :- सां नि ध म, प ग^{m} म रे सा।"[3]

इसमें मध्यम व पंचम दोनों स्वरों पर न्यास रहता है। इन्हीं दोनों स्वरों से प्रस्तुत राग में बागेश्री से बहार तथा बहार से बागेश्री का सुंदर मिश्रण किया जाता है। यथा-'म नि ध म, प प म ग म, सां नि ध म' इस प्रकार मध्यम पर न्यास होता है तथा 'म नि ध नि सां नि प, सां नि प, रें सां नि ध नि प' की भाँति पंचम पर न्यास होता है। प्रस्तुत राग का चलन कुछ इस प्रकार रहता है - सा रे सा, नि़ ध़ सा, सा म, म प ग म, म नि ध म, म नि ध नि सां, सां नि ध म, म प ^{m}ग म रे सा, नि ध नि प, म ग म, म नि ध म ^{m}ग, म ग रे सा।

(३) **राग-मोदकी (कोमल बागेश्री)**–यह भैरवी थाट का राग है। इसमें ऋषभ, गंधार, निषाद कोमल, दोनों धैवत (ध़, ध) व शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। इसकी जाति संपूर्ण-संपूर्ण है। इसके आरोह में ऋषभ और अवरोह में धैवत दुर्बल है। इसमें दोनों धैवतों का प्रयोग होता है। कुछ लोग इसे 'मोदकी' भी कहते है। इसका वादी स्वर मध्यम और संवादी स्वर षड्ज है। इसके उत्तरांग में कहीं-कहीं बागेश्री अंग दिखाई पड़ता है, जो कि भला प्रतीत होता है। इसे बहुत कम लोग जानते हैं, इसलिए इसके स्वरूप के विषय में गायकों में मतभेद है। अतः यह एक अप्रचलित राग है। प्रस्तुत राग के एक लक्षणगीत में

बागेश्री अंग का मिश्रण इस प्रकार बताया गया है -

स्थाई - "गावत सो मोदकी, करे मिश्रमेल सों भैरवी हरप्रिया

नि सा ग म प ध नि प ध ग रे सा रे प ग।

अंतरा - बागेश्री अंग आसावरी संग, अनुलोम अवरूद्ध मध्यम करत अंश।"[4]

उपर्युक्त संदर्भ के अनुसार ही इस राग का आरोह-अवरोह इस प्रकार है -

आरोह :- नि़ सा ग़ म प ध़ नि़ सां।

अवरोह :- सां ध़ नि़ ध प म ग़ रे़ सा।

(४) **राग-बागेश्री कान्हड़ा**–राग 'बागेश्री कान्हड़ा' काफी थाट से उत्पन्न राग है। यह राग 'बागेश्री' और 'कान्हड़ा' के मेल से बना है। इसमें गंधार-निषाद कोमल तथा अन्य सभी स्वर शुद्ध लगते हैं। इसका वादी स्वर मध्यम और संवादी स्वर शड्ज है। इसकी जाति संपूर्ण-संपूर्ण है तथा गायन समय मध्यरात्रि है। इस राग का आरोह-अवरोह व पकड़श्री जयसुखलाल त्रि. शाह द्वारा रचित 'कान्हड़ा के प्रकार' पुस्तक में पृष्ठ संख्या 110 पर इस प्रकार दिया गया है -

आरोह :- सा, रे ग़, सा रे प, म प, ग़, म, ध, नि़ सां।

अवरोह :-सां, नि़ ध नि़ प, म प ध ग़, म रे, सा।

पकड़ :- रे रे ग़, सा रे, प, म प, ग़, म रे सा, म ध नि़ ध, नि़ प, म प ध ग़, म रे, सा।

प्रस्तुत राग में 'बागेश्री' के 'ध़ नि़ सा म' व 'म ध नि़ ध म' और कान्हड़ा के 'नि़ प' व 'ग़ म रे सा' स्वर-समुदाय का सुंदर मिश्रण किया गया है। इसमें गंधार स्वर का प्रयोग अवरोह में बागेश्री अंग दिखाते समय 'ध, ग़, म प ध ग़, म ग़ रे सा' इस प्रकार सरलता से और कान्हड़ा अंग दिखाते समय 'नि़ ध नि़ प, ग़ म रे सा' की भांति वक्रता से किया जाता है।

'ग़^{म} म ध-नि़^{ध} ध नि़^{ध}प' यह स्वरावलि राग 'शहाना' में भी ली जाती है। अतः इससे बचने के लिए बागेश्री कान्हड़ा में 'म ध नि़ ध म' स्वर संगति का अधिक प्रयोग करना चाहिए। "किंतु तार सप्तक में ऋषभ से ' रे$^{नि}$ सां नि़ सं$^{नि}$ नि़ ध नि़ प ग़^{म}-म ध नि़ ध ग़^{म}-म रे सा' इस प्रकार उतरना चाहिए। कुछ अंशों में यह राग कौशिक कान्हड़ा के सदृश ही चलता है, फिर भी स्वर संगति भेद व चलन भेद से दोनों रागों में अंतर स्पष्ट दिखाई देता है।

प्रस्तुत राग 'बागेश्री कान्हड़ा' का चलन कुछ इस प्रकार है - "सा नि़ ध़ नि़ सा, ग़ रे सा। सा ग़ म ग़ म रे सा। म ध नि़ प म प ग़ म रे सा। ग़ म ध नि़ सां, सां नि़ प म प ग़ म रे सा, सां नि़ प म प ध नि़ सां सां नि़ प म ध नि़ प म प ग़ म रे सा। म ध नि़ सां सां रें नि़ सां गं मं रें सां सां नि़ प म प ग़ म रे सा।"[5]

(५) **राग कौंसी कान्हड़ा (बागेश्री अंग)**–प्रस्तुत राग 'कौंसी कान्हड़ा' काफी थाट से उत्पन्न बागेश्री अंग का एक अप्रचलित राग है। इस राग के अनेक नाम प्रचार में हैं, जैसे - 'कौशिक' या 'कौशिकी' व 'कौंसी' तथा 'कौशिक कान्हड़ा' व 'कौंसी कान्हड़ा' आदि। अनेक नाम से हैं। यह दो प्रकार से गाया जाता है। एक मालकौंस अंग से और दूसरा बागेश्री अंग से। इसके दोनों ही प्रकार रंजक है। नाम से साम्य होते हुए भी दोनों ही प्रकार स्वर और थाट भेद की दृष्टि से भिन्न-भिन्न है।

वर्तमान में मालकोंस अंग का कौंसी कान्हड़ा ही अधिक प्रचार में है, परंतु मान्यता दोनों प्रकारों को है। मालकोंस अंग के कौंसी कान्हड़ा में भी पूर्वांग में कभी-कभी बागेश्री की छाया आती है, किंतु मंद्र सप्तक में कोमल धैवत लगते ही इसकी छाया दूर हो जाती है। जहाँ तक बागेश्री अंग के कौंसी कान्हड़ा का प्रश्न है, यह प्रकार अब प्रचार में नही के बराबर है। इसमें गंधार, निषाद कोमल तथा अन्य सभी स्वर शुद्ध लगते हैं। कहीं-कहीं इसके आरोह में शुद्ध निषाद का प्रयोग भी किया जाता है। इसका वादी स्वर मध्यम तथा संवादी स्वर शड्ज है। इसकी जाति वक्र-संपूर्ण है एवं गायन समय मध्यरात्रि है। यह राग 'बागेश्री' तथा 'कान्हड़ा' के मिश्रण से बना है। इस राग का आरोह-अवरोह व पकड़ 'अभिनव गीतांजलि', भाग-3, में पृष्ठ संख्या 252 पर इस

प्रकार मिलता है -

आरोह :- "सा, म, म प, ग, म, ध, प ध, नि प, ध नि रें सां, नि सां।

अवरोह :- सां, ध, नि प, म प, ध नि ध प, ध म, प ध ग, म, रे सा।

पकड़ :- प म, प ध, ग, म रे, सा, रे नि सा, ध, ध, नि प, म प, ध, ग, म रे, सा।

मुख्य रूप से इस राग का चलन इस प्रकार रहता है -

"नि प, म प, नि म प ग, म, रे सा' अथवा 'प म, प ध ग, म प, ग म, रे सा, ग म ध, नि प, म, प ध, म, प ग, रे ग, म ग, रे सा' ।"[66] झां, रामाश्रय. (2000).

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1] पटवर्धन, विनायक नारायण. (1964). राग विज्ञान, भाग-7, पुनेः संगीत गौरव ग्रंथ माला. पृ.सं. 146

[2] मिश्र, शंकरलाल. (1998). नवीन ख्याल रचनावली. चण्डीगढ़: अभिषेक पब्लिकेशन्स. पृ. सं. 367

[3] पटवर्धन, विनायक नारायण. (1964), राग विज्ञान. भाग-7, पुनेः संगीत गौरव ग्रंथ माला. पृ. सं. 167

[4] अली, राजा नवाब. (1974), मारिफुन्नग़मात, प्रथम भाग. उत्तर प्रदेशः संगीत कार्यालय हाथरस. पृ. सं. 225

[5] मिश्र, शंकरलाल. (1998), नवीन ख्याल रचनावली. चण्डीगढ़: अभिषेक पब्लिकेशन्स. पृ. सं. 421

20वीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में कृषक परिदृश्य

डॉ. विनोद कुमार
एसो. प्रोफेसर, हिंदी विभाग
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा(पंजाब)

सत्यवान
शोधार्थी, हिंदी विभाग
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा(पंजाब)

सार-संक्षेप

उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द से लेकर भगवानदास मोरवाल तक विभिन्न उपन्यासकारों ने ग्रामीण संस्कृति और यथार्थ को अपने उपन्यासों में उकेरा है। 20वीं सदी के उपन्यासकारों ने कृषकों की दयनीय स्थिति का बखूबी चित्रण किया है। अन्नदाता होने के बाद भी बहुत से कृषकों को भरपेट भोजन भी नसीब नहीं होता था। ज्यादातर कृषक साहूकारों और जमींदारों के कर्ज में फसे रहते थे, जिसके बदले साहूकार कृषकों का शोषण करते रहते थे। आजादी के बाद सरकारों ने कृषकों की स्थिति सुधारने के लिए अनेक कदम उठाए। कृषि सुधार के लिए जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार कानून द्वारा जमींदारी प्रथा को समाप्त किया गया। हरित क्रांति से कृषि में उन्नत बीजों, रासायनिक खादों, नए कृषि संयंत्रों का प्रयोग किया गया लेकिन उसके बाद भी कृषकों स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं हुआ। धीरे-धीरे कृषक खेती को छोड़कर मजदूर में तब्दील होते गए और शहरों की तरफ पलायन करने लगे।

बीज शब्द

उपन्यास, ग्रामीण, कृषक, जमींदार, साहूकार, शोषण, संघर्ष

पृष्ठभूमिः-

महात्मा गाँधी का कथन था कि भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है, यह बिल्कुल सत्य है क्योंकि भारत की लगभग 70 प्रतिशत आबादी गाँवों में निवास करती है। ग्रामीण लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। पूरा का पूरा ग्रामीण ढाँचा कृषकों और मजदूरों पर टिका हुआ है। हिन्दी साहित्य के विभिन्न साहित्यकारों ने ग्रामीण जीवन को नजदीक से देखा, परखा और अनुभव किया है, क्योंकि बहुत से साहित्यकार गाँव में जन्में, पढ़े-लिखे और बड़े हुए हैं। इसलिए उन्होंने ग्रामीण जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पक्षों को अपने साहित्य में उकेरा है। लेकिन 20वीं शताब्दी में अंग्रेजी सरकार की दमनकारी नीतियों के भय के कारण बहुत से साहित्यकार निम्नवर्ग की पीड़ा को अपने साहित्य में जगह देने से डरते थे। रीतिकाल के कवियों की तरह अपने राजाओं का गुणगान करने में ही अपनी भलाई समझते थे। इस संबंध में गोपाल राय लिखते हैं कि-

> जमींदारों द्वारा किसानों के शोषण और दमन, पुलिस विभाग की रिश्वतखोरी और अत्याचार, सरकारी अमलों में फैले भ्रष्टाचार आदि का चित्रण और यत्किंचित् आलोचना तो वे करते थे पर शासन का विरोध करने का साहस उनमें न था।(हिन्दी उपन्यास का इतिहास 132)

जब हम 20वीं शताब्दी में गाँवों के संदर्भ में राजनीतिक पृष्ठभूमि जानने की कोशिश करते हैं तो पता चलता है कि गाँवों में जमींदारों और महाजनों का ही बोलबाला था। बड़े-बड़े जमींदार अंग्रेजी सरकार के साथ मिलकर ग्रामीण कृषकों और मजदूरों का शोषण करते रहे। कृषकों पर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ स्वामी सहजानन्द सरस्वती और बाबा रामचन्द्र के नेतृत्व में कृषकों ने अंग्रेजी सरकार और जमींदारों तथा महाजनों के खिलाफ आंदोलन किए। कृषकों के संघर्षों में सरदार पटेल और महात्मा गाँधी जी ने भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में सहयोग किया। गोपाल राय लिखते हैं कि-

> भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी इस तथ्य से अवगत है कि लगानबन्दी-आन्दोलन स्वाधीनता संग्राम का महत्वपूर्ण अंग था। यद्यपि गाँधी जी ने जमींदारों, महाजनों और सरकार के खिलाफ किसान-आन्दोलन को उग्र रूप नहीं धारण करने दिया फिर भी किसानों और किसान मजदूरों ने अपने शोषकों के खिलाफ आन्दोलन किया। स्वामी सहजानन्द सरस्वती और बाबा रामचन्द्र के नेतृत्व में बिहार और उत्तर प्रदेश में होने वाले किसान आन्दोलन इसके प्रमाण हैं।(हिन्दी उपन्यास का इतिहास 133)

स्वामी सहजानंन सरस्वती ने कृषकों को संगठित करके जमींदारों द्वारा किया जा रहा शोषण का विरोध किया और कृषकों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया। उन्होंने सन् 1936 में अखिल भारतीय किसान सभा नामक संगठन की स्थापना की।

हिन्दी उपन्यास और कृषक जीवनः-

19वीं शताब्दी के 8वें दशक से ही हिन्दी साहित्य में उपन्यास विधा का उद्भव माना जाता है। उपन्यास विधा के उद्भव से लेकर 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक तक के उपन्यासों में सामाजिक-यथार्थ के बहुत कम दर्शन होते हैं। ज्यादातर उपन्यासों में रोमांस, तिलिस्मी, ऐयारी, जासूसी और भूतप्रेत का वर्णन मिलता है। बहुत कम उपन्यासकार ही ऐसे थे, जो ग्रामीण पृष्ठभूमि को खासकर जमींदारों द्वारा कृषक और मजदूर वर्ग पर हो रहे अत्याचारों को अपने उपन्यास का विषय बना सके। सबसे पहले मुंशी प्रेमचन्द ने ही कृषक और मजदूर वर्ग की चीख को अपने कथा साहित्य में उकेरा। गोपाल राय लिखते हैं कि-

> प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती और समकालीन (1901-20) उपन्यासकारों में देश की पराधीनता के यथार्थ का सही और तीखा बोध नहीं था। अधिकतर पूर्ववर्ती उपन्यासकार तो ब्रिटिश शासन का गुणगान ही कर रहे थे, और जिन्हें ब्रिटिश शासन की वास्तविकता का बोध हो चुका था, वे भी उसके आतंक और दमन से त्रस्त थे।(हिन्दी उपन्यास का इतिहास 132)

20वीं शताब्दी में उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द ने सबसे पहले ग्रामीण समस्याओं को नजदीक से परखा और महसूस किया। प्रेमचन्द ने प्रेमाश्रम (1922) नामक उपन्यास में जमींदारों द्वारा कृषकों पर किए जा रहे शोषण का चित्रण किया। प्रेमचन्द द्वारा लिखा गया गोदान उपन्यास कृषक जीवन की त्रासदी का चिट्ठा है। गोदान का केन्द्रीय पात्र होरी जमींदारी और महाजनी व्यवस्था पर करारा व्यंग्य करते हुए कहता है कि "दादा- अनाज तो सब का सब खलिहान में ही तुल गया। जमींदार ने अपना लिया, महाजन ने अपना लिया। मेरे लिए पाँच सेर अनाज बच रहा है"(गोदान 23) इस प्रकार उस समय में गरीब कृषकों का शोषण किया जाता था। बेचारा कृषक के पास साल भर खाने के लिए भी अनाज नहीं बचता था। प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यासकार जगदीश झा विमल के उपन्यास खरा सोना (1921) और गरीब (1941) में गाँवों के जमींदारों द्वारा कृषकों पर किए जा रहे अत्याचार, समकालीन समय में निम्न वर्ग की पारिवारिक समस्याएँ आदि का बखूबी चित्रण किया है। विश्वनाथ सिंह शर्मा का कसौटी (1929) नामक उपन्यास में कृषकों पर हो रहे अत्याचार और गाँव के युवाओं द्वारा अत्याचारों

के खिलाफ आंदोलन का चित्रण मिलता है। सन् 1933 ई. में सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला द्वारा रचित अलका नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। उन्होंने अपने उपन्यास अलका में अवध के कृषकों की दयनीय और अभावग्रस्त जिन्दगी को उकेरा है। उन्होंने अपने उपन्यास में कृषकों द्वारा जमींदारों के विरुद्ध बगावत का भी सफल चित्रण किया है। हिन्दी उपन्यासकार गोविन्द वल्लभ पन्त ने अपने जूनिया (1940) नामक उपन्यास में कूर्मांचल क्षेत्र के एक दलित कृषक की कहानी का सफल चित्रण किया है। रामचन्द्र तिवारी ने कमला (1943) नामक उपन्यास में उतरी भारत के एक गाँव के निर्धन, अशिक्षित, साधनहीन और अभाव ग्रस्त कृषकों के जीवन को केन्द्र में रखकर सफल अंकन किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में ग्रामीण लोगों का रहन-सहन, आचार-व्यवहार, आशाओं और आकांक्षाओं का सफल चित्रण किया है। भैरवप्रसाद गुप्त ने भी निम्नवर्ग और शोषित वर्ग को ही अपने उपन्यासों का केंद्रिय विषय बनाया है। मुंशी प्रेमचन्द की परम्परा में मुंशी प्रेमचन्द के बाद नागार्जुन सबसे सफल उपन्यासकार हुए हैं जिन्होंने इस परम्परा को आगे बढाया है। नागार्जुन ने मिथिलांचल के गाँवों के कृषकों की दयनीय स्थिति को अपने उपन्यासों का केंद्रिय विषय बनाया है। उन्होंने रतिनाथ की चाची, बलचनामा (1952), बाबा बटेसरनाथ (1954) और वरुण के बेटे (1957) में ग्रामीण कृषकों की जमीन से बेदखली, जमींदारों द्वारा कृषकों का शोषण तथा कृषकों का शोषण के विरुद्ध संघर्ष आदि को प्रस्तुत किया है। फणीश्वरनाथ रेणु का प्रथम उपन्यास मैला आँचल 1954 ई. में प्रकाशित हुआ। उन्होंने मैला आँचल उपन्यास में मेरीगंज गाँव की कहानी का चित्रण किया है। जहाँ की सारी धरती दो-तीन आदमियों के अधिकार में है। शेष ग्रामीण या तो खेतिहर मजदूर हैं या बटाईदारी पर खेती करते हैं। उन्हें भरपेट भोजन और तन ढँकने को कपड़ा नहीं मिलता और आवास के नाम पर फूस की झोंपड़ी में उनकी सारी जिन्दगी कट जाती है। रेणु मैला आँचल में लिखते हैं कि-

> अनाज के ऊँचे दर से गाँव के तीन ही व्यक्तियों ने फायदा उठाया है-तहसीलदार साहब ने, सिंघ जी ने और खेलावनसिंह यादव ने। छोटे-छोटे किसानों की जमीनें कौड़ी के मोल बिक रही हैं। मजदूरों को सवा रुपए रोज मजदूरी मिलती है, लेकिन एक आदमी का भी पेट नहीं भरता। पाँच साल पहले सिर्फ पाँच आने रोज मजदूरी मिलती थी और उसी में घर-भर के लोग खाते थे।(मैला आँचल 131)

रेणु का दूसरा उपन्यास परती परिकथा 1957 ई. में प्रकाशित हुआ। परती परिकथा के अपढ़ किसान, कुसंस्कारग्रस्त पिछड़ी मानसिकता के ग्रामवासी, मिश्र परिवार के प्रति द्वेष और प्रतिहिंसा से ग्रस्त युवा नेता आदि जितेन्द्र का गाँव लौटना पसन्द नहीं करते और हरदम उसका विरोध करते हैं। रेणु के बाद राही मासूम रजा प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढाते हैं। राही मासूम रजा का पहला उपन्यास आधा गाँव 1966 ई में प्रकाशित हुआ। आधा गाँव उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल के गाँवों में रहने वाले मुसलमान जमींदारों और मध्यवर्गीय कृषकों की जिन्दगी का सफल अंकन करता है। राही मासूम रजा अपने उपन्यास में जमींदारों द्वारा शोषण का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि-

> जब वह सलीमपुर पहुँचे तो अशरफुल्लाह खाँ किसी आसामी को गालियाँ दे रहे थे। फुन्नन मियाँ को देखते ही उन्होंने गालियाँ देना बंद कर दिया और बोले, 'साले, अगर परसों तक लगान और कर्ज मय सूद के न आ गया तो ढोर-डंगर सब नीलाम करवा दूँगा और अपने इन लाट साहब को भी ले जा और इन्हें बतला कि जमींदारों से कैसे बातचीत की जाती है! (आधा गाँव 147)

गिरिराज किशोर ने अपने उपन्यास इन्द्र सुनें (1978) में निम्न वर्ग और उच्च वर्ग के रहन-सहन और आहार-व्यवहार की सफल तुलना की है। एक तरफ गरीब कृषक और मजदूर भूखे मर-मर कर अपना जीवन गुजार रहे हैं तो दूसरी तरफ पूँजीपति सब सुख-सुविधाओं में जीवनयापन कर रहे हैं।

कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यास मित्रो मरजानी (1967) और जिन्दगीनामा (1979) में पंजाब के किसानों-ग्रामीणों के जीवन का चित्रण है। जगदीश चन्द्र ने मुट्ठी भर काँकर (1976) और घास गोदाम (1985) में दिल्ली के आसपास के कृषकों के अपनी जड़ों से कटने और बरबाद होने की ही कथा प्रस्तुत की है। द्रोणवीर कोहली ने भी पंजाब के ग्रामीणों की जिन्दगी को अपने उपन्यासों में उकेरा है। वीरेन्द्र जैन का डूब (1991) और पार (1994) नामक उपन्यासों में स्वतंत्र भारत में विभिन्न बिजली और बाँध परियोजनाओं का लाभ उठाकर पहाड़ी क्षेत्र में ठाकुरों और साहूकारों द्वारा गरीब कृषकों का शोषण का चित्रण किया गया है। उनके उपन्यास डूब के पात्र मोती साव जब कृषकों को आसान शर्तों पर सूद की रकम देने का ऐलान करता है तो कृषक खुश हो जाते हैं।

एक रुपया सैंकड़ा तिमाही की जगह पंद्रह आना चौमासा सैंकड़ा सूद और खलिहान के बजाय घर से नाज नपवाने का मोती साव का नया विधान रंग लाया। किसान के लिए इससे ज्यादा खुशी की बात क्या हो सकती थी कि खलिहान से वह अपनी पूरी फसल अपने घर तक ला सके। यह तो सदियों से किसी ने सपने में भी नहीं सोचा था।(डूब 24)

यह भोला कृषक जल्दी ही साहूकारों के चंगुल में फंस जाता है। वो इनकी चाल नहीं समझ पाता है और ये लोग इस भोले कृषक को नये-नये तरीके से लूटते रहते हैं। कमलाकान्त त्रिपाठी ने पाहीघर (1991) और बेदखल (1997) नामक उपन्यासों में 1857 ई. से लेकर 1920 ई. तक के काल में अंग्रेजों के साथ मिलकर तालुकेदारों और जमींदारों द्वारा गरीब कृषकों का शोषण तथा कृषकों द्वारा शोषण के विरुद्ध संगठित होकर लड़ाई लड़ने को अपना विषय बनाया है। कमला कान्त त्रिपाठी के उपन्यास बेदखल में पात्र झिंगुरी सिंह कहता है कि-

सून अठारह सौ अड़सठ में अवध लगान कानून लागू हुआ था तब से किसानों की दुर्दशा लगातार बढ़ती रही थी। बहुत शोर-शराबे के बाद सून छियासी में कानून में तब्दीली हुई और किसानों को सात साला हक मिला। अब कानूनन सात साल तक लगान में बढ़ोतरी नहीं हो सकती थी और उसके बाद भी फी रुपया एक आना ही लगान बढाया जा सकता था। कुछ दिन राहत रही। लेकिन फिर वही ढाक के तीन पात। शेर के सामने बकरी बैठी हो तो उसकी क्या दशा होगी। तालुकेदारों के पास हजारों हथकंडे। लगान अदा नहीं हुआ, इस बिना पर बेदखली। काश्तकार मर गया, इस बिना पर बेदखली। बेदखली से बचना है तो नजराने का इन्तजाम करो।(बेदखल 41)

20वीं सदी के अंत में भगवानदास मोरवाल का उपन्यास काला पहाड़ का प्रकाशन हुआ। यह उपन्यास रोटी की तलाश में ग्रामीण लोगों का शहरों की तरफ पलायन को रेखांकित करता है, क्योंकि खेती करने में कृषक अपना परिवार का गुजारा भी नहीं कर पाता है। वह अपने बच्चों को मूलभूत सुविधा देने में असमर्थ है। आज कृषि घाटे का सौदा होने के कारण कृषक अपना पारंपरिक धन्धा को छोड़कर मजदूरी करने के लिए शहर की तरफ निकल पड़ा है। यह एक विचारणीय विषय है कि आखिर कब तक ग्रामीण लोगों का शहरों की तरफ पलायन होता रहेगा।

संदर्भः-

जैन, वीरेन्द्र. डूब. वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2014.

प्रेमचन्द. गोदान. राजपाल प्रकाशन, संस्करण, 2018.

राय, गोपाल. हिन्दी उपन्यास का इतिहास. राजकमल प्रकाशन, छठा संस्करण, 2016.

रेणु, फणीश्वरनाथ. मैला आँचल. राजकमल प्रकाशन, बयालीसवाँ संस्करण, 2019.

रजा, राही मासूम. आधा गाँव. राजकमल प्रकाशन, इक्कीसवाँ संस्करण, 2019.

त्रिपाठी, कमला कान्त. बेदखल. वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 2000.

संगीत सम्मेलनों एवं समारोह के प्रभाव का मूल्यांकन एवं सुझाव

प्रो. हुकम चंद्र
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय
रोहतक (हरियाणा)

इंद्रेश मिश्र
संगीत विभाग (गायन)
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय रोहतक (हरियाणा)

सार-संक्षेप

आज के अति गतिशील युग में यह आवश्यक है कि कलाकार श्रोताओं की रूचि और समय को ध्यान में रखते हुए अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करें। जब तक लोगों को अनुराग हो तभी तक राग गाना चाहिए फिर उसके बाद बहुत सारी चीजें हैं गाने के लिए ख्याल है ठुमरी, दादरा है टप्पा है चौती, गजल है भजन है इत्यादि आज से 50 वर्ष पूर्व स्थिति कुछ अच्छी नहीं थे सुविधाओं के नाम पर कुछ नही था। पश्चिमी संगीत और फिल्मी संगीत का दुष्प्रभाव भी नहीं था और वैज्ञानिक उपकरण का भी अभाव था आज के भौतिकवादी युग में प्रत्येक श्रोता कम समय में अधिक आनंद की प्राप्ति करना चाहता है इसलिए हमारे कलाकारों को चाहिए कि वह भारतीय शास्त्रीय संगीत के सिद्धांतों को कुछ लचीला बनाए और श्रोताओं की रूचि समय व वातावरण का ध्यान रखते हुए ही प्रस्तुतीकरण करें संस्थाओं के प्रबंधकों का यह कर्तव्य है कि वह नामी कलाकारों के साथ-साथ नवयुवक उभरते हुए कलाकारों को भी अपनी प्रतिभा को दिखाने के अवसर प्रदान करें क्योंकि इन नवयुवकों पर ही भारतीय शास्त्रीय संगीत की आशाएं केंद्रित हैं इन संस्थाओं को यह भी चाहिए कि युवक कलाकारों को इतनी सम्मानजनक राशि अवश्य दें जिससे उनका कुछ हौसला बड़े और वह इस क्षेत्र को अपनाकर प्रयत्नशील रहें!

बीज शब्द

ख्याल, ठुमरी, तानसेन संगीत समारोह, आईटीसी, सप्तक, स्पीक मैके

आज संगीत सम्मेलनों वा समारोह के द्वारा जहां संगीत के क्रियात्मक पक्ष का प्रचार प्रसार अत्याधिक हुआ है वह साथ.साथ विचार गोष्ठियों के द्वारा संगीत के सैद्धांतिक पक्ष को भी बढ़ावा मिला है इन विचार गोष्ठियों में किसी एक विषय को लेकर विद्वानों द्वारा चर्चा की जाती है जिस में भाग लेकर विद्यार्थी भी बहुत कुछ ज्ञान के रूप में अर्जित कर सकते हैं इन विचार गोष्ठियों से विद्यार्थियों को नई बातों का ज्ञान तो होता ही हैं साथ कई समस्याओं का भी निवारण होता है संगीत को लोकप्रिय बनाने में संगीत सम्मेलनों का भी विशेष महत्व है संगीत सम्मेलन या समारोह आज प्रत्येक बड़े या छोटे शहरों में आयोजित किए जाते हैं कुछ संगीत सम्मेलन किसी संगीतज्ञ के नाम से होते हैं जैसे तानसेन संगीत समारोह, स्वामी हरिदास संगीत समारोह, हरीवल्लभ संगीत सम्मेलन, बैजू बावरा संगीत सम्मेलन,

दुर्गालाल फेस्टिवल, कुमार गंधर्व सम्मलेन, बाबा अलाउद्दीन संगीत समारोह आदि।

किसी कलाकार की पुण्यतिथि पर जैसे पंडित विष्णु दिगंबर पुलस्कर, पंडित ओमकारनाथ ठाकुर संगीत सम्मेलन, पंडित भीमसेन जोशी संगीत सम्मलेन, शंकरलाल फेस्टिवल इत्यादि आयोजित किए जाते हैं इन कार्यक्रमों में देश के उच्च कोटि के कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं इसके अतिरिक्त कई नवोदित कलाकारों को भी अपनी कला प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है आज ऐसी अनेक संस्थाएं आईटीसी, संकल्प, सप्तक ,अपना उत्सव इत्यादि जो युवा कलाकारों को भी प्रोत्साहित करने में अपनी भूमिका निभा रही है वार्षिक सम्मेलन या संकट मोचन संगीत सम्मेलन ,सप्तक संगीत सम्मेलन में उच्च कोटि के कलाकारों प्रदर्शन के लिए आमंत्रित किया जाता है कार्यक्रम से पूर्व विद्यार्थियों के लिए प्रतियोगिता का भी आयोजन किया जाता है जिससे विद्यार्थी वर्ग के मन में भी एक अच्छा कलाकार बनने की जिज्ञासा को बढ़ावा मिलता है स्पीक मैके जैसी इंटरनेशनल संस्था भी संगीत के क्षेत्र में अपने सार्थक प्रयास कर रही है संगीत सम्मेलनों के आयोजनों से जनता में संगीत का प्रचार प्रसार अधिक हुआ है लोगों की रुचि भी शास्त्रीय संगीत की ओर बढ़ रही है कुछ कलाकार मंच पर आते ही समय श्रोताओं का ध्यान खींच लेते हैं अपनी कला, साधना, रूप तथा व्यक्तित्व द्वारा तथा कुछ कलाकार मंच पर आकर समय एवं श्रोताओं का ध्यान नहीं खींच पाते निरंतर लंबी अवधि तक राग विस्तार में तल्लीन रहकर श्रोताओं को बोर भी कर देते हैं कुछ आयोजनों की दूसरी समस्या कि आयोजक द्वारा अपने सगे संबंधियों को ही अधिक अवसर प्रदान करना जो संस्था शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम आयोजित करती है उन संस्थाओं के प्रबंधकों का यही प्रयास रहता है कि वह अपनी पहचान वाले कलाकार कोई अधिक से अधिक प्रदान करें ।इस कारण कई कलाकारों को आगे आने का अवसर नहीं मिल पाता और कलाकार अधिक ख्याति अर्जित नही कर पाते हैं कलाकारो को कार्यक्रम देने के लिए न्यू कलाकारों से रिश्वत के तौर पर भी कुछ पैसे रुपए खा लिया जाता है अधिकतर ऐसे आयोजन होने लगे हैं अब विशेष वर्ग के लोग ही कार्यक्रम देते हैं फल स्वरुप कुछ विशेष व्यक्ति जिनकी पहुंच या नाम सम्मान होता वे ही हर जगह बुलाए जाते हैं आज टिकट सिस्टम होने के कारण नासमझ लोग पहुंच जाते हैं महंगे संगीत कार्यक्रम में संगीत की समझ भी नहीं होती। जबकि संगीत को सुनने समझने वाले व्यक्ति की पहचान या नाम सम्मान न होने के कारण उनका प्रवेश नहीं हो पाता । शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों का आयोजन शाम और सुबह और रात्रि में भी किया जाता था जो अब बहुत ही कम होगया है समय का ज्यादा ध्यान नहीं रखा जाता। आज के इस वातावरण में महिलाओं या कॉलेज लड़कियों का पहुंचना कठिन होता है एक कलाकार के लिए कुछ भी निश्चित नही होता। आजकल का आयोजन का कोई मापदंड नहीं होता। गाए जाने वाले रागों का समय सिद्धांत भी खत्म होता जा रहा हैं ज्यादातर उन राग को गाया जा रहा हैं जो श्रोताओं को पसंद आती हैं कलाकार अपनी चेतना को भूलता जा रहा हैं सस्ती लोकप्रियता का प्रयोग संगीत में आता जा रहा हैं प्रातः कालीन की बेला में एवं दोपहर को गाए जाने वाले रागों का गायन कम ही होता जा रहा है स्वाभिमानी कलाकार अपने प्रस्तुतिकरण को आकाशवाणी तथा अन्य माध्यमों से समय के साथ गाते हैं या ये कहे की रेडियो एवं दूरदर्शन पर अब भी समय के साथ ही गायन किया जाता हैंराग नियम का ध्यान आज सिर्फ रेडियो पर सुनने को मिलता हैं श्रोताओं की ऐसी संख्या भी हैं जो कि किन्हीं कारणों से संगीत समारोह में उपस्थित नहीं हो पाती उन कलाकारों के प्रस्तुतीकरण का लाभ नहीं उठा पाते उनके लिए अब ऑनलाइन मीडिया का जमाना आगया हैं लगभग सभी चीजे मीडिया द्वारा सरल हो गए हैं बड़े बड़े संगीत सम्मलेन, कॉन्फ्रेंस सब ऑनलाइन द्वारा सुन लिए जारहे हैं कुछ गायक अथवा वादक मंच पर आने के बाद अक्सर तबला वादक को नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं आपस में प्रतियोगिता उनकी इस प्रकार की भावना से उनका प्रदर्शन सफल भी

नहीं हो पाता और श्रोताओं पर इसका प्रभाव भी अच्छा नहीं पड़ता कई कलाकारों में आपसी मतभेद हो जाता हैं आज कई कलाकार मॅच प्रदर्शन के समय कुछ नशीली वस्तुओं का सेवन करते हैं या शराब पी कर उन कलाकारों के प्रस्तुतीकरण के समय यह बात बिल्कुल ही स्पष्ट दिखाई पड़ने लगती है जिससे श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता अनेक बार प्रबंधकों द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति को मुख्य अतिथि बना कर बैठा दिया जाता जैसे ना तो संगीत के विषय में कुछ जानकारी होती है ना रुचि।

प्रबंधक भी उनके स्वागत में लगे रहते हैं जिससे वे कलाकार की ओर ध्यान नहीं दे पाते कुछ अवसरों पर मुख्य अतिथि कार्यक्रम के बीच में ही उठ कर चले जाते हैं अथवा चाय और नाश्ता जैसी व्यवस्थाओं में उलझ जाते हैं जिसे कलाकार की एकाग्रता भंग हो जाती है और उसके प्रदर्शन में भी कमी आती हैं आज अधिकतर कार्यक्रम एक बंद हॉल में आयोजित किए जाते हैं कईश्रोता बीच.बीच में बातें करते हैं कुछ उठ कर चले जाते हैं जिससे सामने बैठे कलाकार का ध्यान भी भंग हो जाता हैं कभी साउंड की समस्या आ जाती है मन मुताबिक साउंड न होने के कारण भी संगीत कार्यक्रम सफल नहीं हो पाता। ऐसे में उस कलाकार से उच्च कोटि के प्रदर्शन की आशा रखना कहां तक सार्थक है वीडियो कैमरे के तेज प्रकाशन से भी कलाकार की एकाग्रता भंग होती है और तब कलाकार यह भी ध्यान रखता है कि उसे कैमरे के सामने किस प्रकार से बैठना चाहिए वह आकर्षक लगना चाहिए। ऐसे वातावरण में संगीत से भाव की उत्पत्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती है आज जितने भी शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं उनका विज्ञापन भी बहुत कम होता है जिससे कई संगीत प्रेमियों कार्यक्रमों को सुनने से वंचित रह जाते हैं शास्त्रीय संगीत को आज भी उस दृष्टि से नही देखा जाता जिससे उपस्थिति भी बहुत कम रहती है और इन आयोजनों में कलाकारों को प्रदान की जाने वाली धनराशि में भी बहुत अंतर आ जाता है नवयुवक कलाकारों को मिलने वाली धनराशि बड़े कलाकारों के साथ अन्याय को दृष्टिगोचर करता है आज के अति गतिशील युग के वर्तमान को देखते हुए संगीत सम्मेलन में अनेक सुधार अपेक्षित है आज के श्रोता कम समय में ही प्रदर्शन का पूरा रसास्वादन प्राप्त करना चाहता है वह एक लंबे समय तक एक ही राग को सुनना पसंद नहीं करता कलाकारों को युग की मांग के अनुसार अपने आप को परिवर्तित अवश्य करना चाहिए यह स्वभाविक हो जाती हैं की बदलते समय के साथ आयोजन करने वाले संस्था एटीम अपने सोच में परिवर्तन लाना चाहिए।

सुझाव

आज के अति गतिशील युग में यह आवश्यक है कि कलाकार श्रोताओं की रूचि और समय को ध्यान में रखते हुए अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करें। जब तक लोगों को अनुराग हो तभी तक राग गाना चाहिए फिर उसके बाद बहुत सारी चीजें हैं गाने के लिए ख्याल है ठुमरी, दादरा है टप्पा है चौती, गजल है भजन है इत्यादि आज से 50 वर्ष पूर्व स्थिति कुछ अच्छी नहीं थे सुविधाओं के नाम पर कुछ नही था। पश्चिमी संगीत और फिल्मी संगीत का दुष्प्रभाव भी नहीं था और वैज्ञानिक उपकरण का भी अभाव था आज के भौतिकवादी युग में प्रत्येक श्रोता कम समय में अधिक आनंद की प्राप्ति करना चाहता है इसलिए हमारे कलाकारों को चाहिए कि वह भारतीय शास्त्रीय संगीत के सिद्धांतों को कुछ लचीला बनाए और श्रोताओं की रूचि समय व वातावरण का ध्यान रखते हुए ही प्रस्तुतीकरण करें संस्थाओं के प्रबंधकों का यह कर्तव्य है कि वह नामी कलाकारों के साथ. साथ नवयुवक उभरते हुए कलाकारों को भी अपनी प्रतिभा को दिखाने के अवसर प्रदान करें क्योंकि इन नवयुवकों पर ही भारतीय शास्त्रीय संगीत की आशाएं केंद्रित हैं इन संस्थाओं को यह भी चाहिए कि युवक कलाकारों को इतनी सम्मानजनक राशि अवश्य दें जिससे उनका कुछ हौसला बड़े और वह इस क्षेत्र को अपनाकर प्रयत्नशील रहें अन्यथा उनको जीविकोपार्जन के अन्य साधन जुटाने पर समय देना

पड़ेगा। अधिकतर संगीत के कार्यक्रमों का आयोजन रात्रि में ही होता है संभव हो तो दिन के समय भी अधिक से अधिक कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए इससे प्रत्येक संगीत प्रेमी को समय के राग की चीज पहुंचाना सुलभ हो जाएगा साथ ही साथ हमारे प्रातः काल के समय के रागों को भी संगीत सम्मेलनों के द्वारा प्रचार प्रसार में बढ़ावा मिलेगा इन कार्यक्रमों में ऑडियो वीडियो कैसेट भी तैयार किए जाएं क्योंकि जो शास्त्रीय संगीत में रुचि लेने वाले कार्यक्रमों को सुनने और देखने के लिए साधन नहीं जुटा पाते और वह लाभान्वित भी नहीं हो पाते कुछ ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जो कि कार्यक्रमों के ऑडियो वीडियो कैसेट शिक्षण संस्थाओं को उपलब्ध कराएं। कलाकारों का यह कर्तव्य है कि वह अपनी आकांक्षाओं को थोड़ा विचार करे इसका प्रभाव आयोजन के प्रवेश हेतु बिकने वाले टिकटों की दरों पर भी पड़ता है अधिक होने से प्रत्येक व्यक्ति के लिए धन जुटा पाना असम्भव हो जाता है जिससे वह कार्यक्रम सुनने से वंचित रह जाते हैं इन आयोजनों में कुछ विशेष व्यक्तियों को पास द्वारा प्रवेश का भी प्रावधान रखा जाता है जिसे साधारण व्यक्ति उसकी संगीत में रुचि होने के कारण भी नहीं जा सकता इसलिए ऐसे कार्यक्रम का आयोजन किया जाए जहां सब के लिय सुलभ हो और बिना टिकट के इच्छुक व्यक्ति को कार्यक्रम सुनने की अनुमति दी जाए।

ऐसे व्यक्ति का चुनाव मुख्य अतिथि के रुप में होना चाहिए जो रुचि लेने वाला हो और भारतीय संगीत के महत्व को समझता हो कई बार कलाकार प्रदर्शन के लिए तैयार बैठा होता है किंतु इतना लंबा भाषण एवं मुख्य अतिथियो द्वारा हो जाता है की कलाकार की क्रिया शीलता खण्त्म होजाती हैं आवश्यकता हो तो मुख्य अतिथि का भाषण कार्यक्रम के अंत में हो। आने जाने वालों का समय भी निश्चित किया जाए ताकि संगीत के बीच में कोई व्यवधान न हो कलाकार बड़ी मुश्किल से अपने आप को एकाग्र चित्तकर पाता है संगति करने वाले कलाकारों को भी यह चाहिए कि वह गायक वादक के प्रदर्शन में बाधा उत्पन्न ना करके कार्यक्रम को अधिक से अधिक आकर्षक एवं सहयोग पूर्ण बनाएं आज प्रत्येक कलाकार चाहे गायक हो या वादक हो या संगतकार प्रत्येक कलाकार का संगीत जगत में अपना अपना महत्व होता है इसलिए प्रबंधकों को चाहिए कि वह प्रत्येक कलाकार के लिए एक धनराशि निश्चित करें प्रत्येक आयोजित किए जाने वाले कार्यक्रमों का अच्छी प्रकार से अधिक से अधिक विज्ञापन किया जाना चाहिए कलाकारो की बायोग्राफी बनाई जाय। साथ ही सरकार द्वारा एक सहयोग राशि प्रतिमहिना दिया जाए जिससे कलाकारो की आर्थिक स्थिति ठीक हो सके।

आदिवासी कला और आदिवासी साहित्य का महत्व

प्रो. श्रीप्रकाश शुक्ल
शोध निर्देशक

निलेश शिवाजी देशमुख
शोधार्थी

सार-संक्षेप

लोकजीवन में कला और साहित्य को प्राचीन समय से महत्व प्राप्त है। आदिवासी कला, साहित्य और संस्कृति की परंपरा अतिशय प्राचीन रही है। जिनके प्रमाण हमें हड़पा, मोहनजोदड़ो की शिलालेखों एवं धातुओं में मिलते हैं। आदिवासी जीवन में कला साहित्य सहित मनोरंजन के साधनों का प्रयोग मौखिक रूप में सदियों से होता आ रहा है। भारत के भिन्न भिन्न अंचलों में बसे आदिवासी समाज की अपनी अपनी कलाएं हैं, साहित्य हैं। यह पारम्परिक कलाएं कभी जीविकोपार्जन का माध्यम बनी तो कभी जनमनोरंज का साधन। आदिवासी समाज में कलाओं के भिन्न-भिन्न प्रकार देखने को मिलते हैं, जिनमे हस्तकला, शिल्पकला, चित्रकला प्रमुख है। चित्रकला में झारखंड की जादोपेटियन चित्रकला, महाराष्ट्र की वार्ली चित्रकला, राजस्थान की मांडणा चित्रकला, सोनभद्र की पिथौड़ा चित्रकला काफी प्रसिद्ध रही है। लेकिन वर्तमान में बाजारवादी संस्कृति एवं कृत्रिमता ने इन कला, साहित्य पर प्रहार करना शुरू किया है। इस कारण आदिवासी लोककला एवं लोकसाहित्य को सुरक्षित रखना होगा। तब जाकर आदिवासी संस्कृति को सुरक्षित रख पाएंगे।

बीज शब्द

आदिवासी, लोककला, साहित्य, संस्कृति

आदिवासी संस्कृति अन्य से पृथक है जिनकी अपनी स्वतंत्र भाषा है, कलाएं है, साहित्य है। इन कला और साहित्य से ही आदिवासी संस्कृति को सुरक्षित रखा जायेगा। इस दृष्टि से आदिवासी कलाएं और साहित्य को लिपिबद्ध करना होगा नहीं तो सिर्फ नाम के लिए सुनने को मिलेगी। आदिवासी लोककला से जनजीवन में घटित विविध पक्षों की अभिव्यक्त होती है। इसलिए लोककला को विशेष महत्व दिया जाता है। हर कला और कलाकार भी महत्वपूर्ण होता है जो अपनी कला के सृजनात्मकता से पर्यावरण पूरक संदेश देता है। इस कारण लोककलाएं ओर भी मूल्यवान हो जाती है। लोककला का महत्व स्पष्ट करते हुए विनय मोहन शर्मा लिखते है ''आदिवासी कला सिर्फ अमूल्य धरोहर ही नहीं कही जा सकती वरन समृद्ध परंपरा संपन्न सभ्यता एवं जीवन संस्कृति के इतिवृत है। ये कलाएं वस्तुतरू किसी भी समाज के जनमानस का आइना होती है।''[1] आदिवासी कला में लय, ताल, सुर, संगीत का मिलाप होता है। आदिवासी लोकसंस्कृति की झलक इन कलाओं के माध्यम से दिखाई देती है। आदिवासी कलाओं में लोकमानस के हर्ष-उल्लास, सुख-दुख, आशा-निराशा, लाभ-हानि आदि मनोभावों की कल्पनायुक्त सरस

अभिव्यक्ति मिलती है। आज भी आदिवासी गांवों की दीवारों पर मिट्टी और प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता है। शिष्ट समाज आदिवासी को पिछड़ा समजता है लेकिन उनकी कलाओं में, साहित्य में, सृजनात्मकता में कही भी इसका आभास नहीं होगा। उनमें बड़ी मात्रा में गरीबी जैसी समस्याएं है, लेकिन वह उनकी कला की गति को नहीं रोक सकती। आदिवासी चित्रकलाओं में पशु पक्षियों तथा मनुष्य जीवन के विविध पक्षों का जो चित्रण हो रहा है, वह मनुष्य और प्रकृति के रिश्ते के बारे में बहुत कुछ कहता है। इससे पता चलता है की आदिवासी समाज की संस्कृति और प्रकृति का कितना घनिष्ठ संबंध है। कला आदिवासी जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है। आदिवासी संस्कृति प्रकृति पूरक संस्कृति है। प्राकृतिक जीवन में प्रतिदिन घटने वाली घटनाओं से उनके आचार विचार, प्रथा परम्परा, पर्व त्यौहार आदि से उनकी संस्कृति को परिलक्षित किया जा सकता है।

आदिवासी समाज सदियों से वन क्षेत्रों के सानिध्य में रहने से अधिकांश साधनोपयोगी सामग्री इन जंगलों से मिल जाती है। आदिवासी गांवों में देवी देवताओं की मूर्तियां, पूर्वजों की मूर्तियां इन लकड़ियों से ही बनाई जाती है। धार्मिक उत्सवों में तथा ग्राम देवता के पूजन में विविध राज्यों में इन लकड़ीयों से मूर्तियां, मुखौटे, काष्ठशिल्प बनाए जाते हैं। बस्तर, छतिसगढ़ में मुरिया, माडिया आदिवासी द्वारा लकड़ी से सुंदर नक्षिदार दरवाजे, स्मृति स्तंभ बनाए जाते हैं। तो मध्यप्रदेश के आदिवासी द्वारा लकड़ी से नक्काशीदार मुखौटे बनाए जाते हैं। वैसे ही महाराष्ट्र के नासिक जिले के कोकणा आदिवासियों द्वारा देवी पूजन हेतु मनाए जाने वाला वार्षिक उत्सव बोहाडा में लकड़ी एवं लुगदी के मुखौटे बनाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त सभी राज्यों के आदिवासियों द्वारा कम अधिक मात्रा मे लकड़ी, पत्थर एवं धातुओं की मूर्तियां बनाई जाती है।

लकड़ी और पत्थर की मूर्तियों की तरह ही आदिवासी चित्रकला का भी भिन्न-भिन्न रूप देखने को मिलते हैं। उड़ीसा के सौरा आदिवासियों द्वारा पूर्वजों एवं देव आत्माओं के शमन हेतु दीवारों पर इडतल चित्र बनाए जाते हैं। राजस्थान के सवाई माधोपुर क्षेत्र में आदिवासियों द्वारा विवाह-त्यौहारों पर मांडणा चित्र बनाए जाते हैं। तो महाराष्ट्र के ठाणे, नासिक जिले के कोकणा, वारली आदिवासियों द्वारा दीवार एवं भूमि पर बनाए जाने वार्ली चित्रकला पारंपरिक रूप से विवाह, अनुष्ठानों पर निकाली जाती है। मध्यप्रदेश के झाबुआ, धार जिलों में रहनेवाले भील एवं भिलाला आदिवासियों द्वारा पिठौरा चित्र, टाटलू चितारा भीति चित्र मुख्यतरू स्त्रियों द्वारा निकाले जाते हैं। झारखंड के ही हजारी बाग जिले में सोहराई कला ने भी अपना अलग स्थान बनाया है। जो गुफाओं से निकलकर दीवारों पर चित्र निकाले जाते हैं। संथाली चित्रकला जो संथाल आदिवासी अपने दीवारों पर भित्तिचित बनाते है। उनका मानना है कि सिंधु घाटी सभ्यता इनकी पूर्वजों की देन है। उसी तरह से छोटानागपुर में कोहबर और सोहराई कलाएं अब भी जिंदा है। प्राकृतिक परिवेश और स्त्री-पुरुष संबंधों की विविध पक्षों का चित्रण उस पर होता है। इस प्रकार अलग अलग प्रदेशों में चित्रकला, शिल्पकला, मूर्तिकला, काष्ठशिल्प के रूप दिखाई देते है। यह पारम्परिक कलाएं सदियों से संघर्षरत रहीं है, दरअसल लोक परम्परा में लोककला का महत्वपूर्ण स्थान है, इसलिए आदिवासी लोककला का संरक्षण तथा संवर्धन होना जरूर है।

बहरहाल आदिवासी कलाओं की तरह आदिवासी साहित्य भी प्रमुख विमर्श बन गया है। जिसकी चर्चा साहित्य-सम्मेलन में तो होती है, साथ में विभिन्न विश्वविद्यालयों में भी आदिवासी साहित्य पर शोध हो रहे हैं। आदिवासी साहित्य से ही आदिवासी संस्कृति को जान सकते हैं। वर्तमान में लोगों की आदिवासी संस्कृति और साहित्य को जानने के प्रति गहरी रुचि दिखाई देती है। यही कारण है की आदिवासी साहित्यकारों के अलावा गैर आदिवासी साहित्यकारों ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। उसके बाद साहित्य की विधाओं सहित पत्र-पत्रिकाओं में उनके द्वारा लिखे लेखन को प्रकाशित करने की रुचि दिखाई है। दरअसल आदिवासी समाज में साहित्य

सहित विविध कला-माध्यमों का विकास बहुत पहले हो चुका था। लेकिन यह मौखिक परम्परा रहने से उन्हें लिपि बद्ध नहीं किया गया। यही कारण है की उनकी विकास की गति धीमी हो गई है। आदिवासी भाषाओं में साहित्य की अलग अलग विधा में साहित्य रचा जा रहा है। लेकिन वर्तमान में अधिकांश मौखिक साहित्य से हमारा परिचय शेष है। आदिवासी साहित्यकारों का ध्यान उस तरफ भी जाना चाहिए और जिसकी चर्चा साहित्य में होनी चाहिए। महाराष्ट्र के कोकणा, कातकरी, वारली आदिवासियों का बड़ी मात्रा में साहित्य मौजूद है लेकिन उस पर किसी रचनाकार का ध्यान गया नहीं है। पहले तो मूल भाषा में ही इसका लेखन होना चाहिए। तब जाकर उसका परिचय अन्य साहित्यकारों से होगा।

आदिवासी साहित्यकारों ने सबसे ज्यादा हिंदी भाषा के माध्यम से साहित्य में अपना योगदान दिया है। साहित्य के माध्यम से अस्तित्व, अस्मिता, भाषा, संस्कृति कला, साहित्य जैसे मुद्दों को उठाया। इन रचनाकारों में प्रमुख महादेव टोप्पो, वाहरू सोनवने, एलिस एक्का, प्यारा केरकेट्टा, सुशीला सामद, रामदयाल मुंडा, रोज केरकेट्टा, पीटर पाल एक्का, वाल्टर भेंगरा तरुण, हरिराम मीणा, ग्रेस कुजूर, निर्मला पुतुल, वंदना टेटे, जंसिता केरकेट्टा, अनुज लुगुन, गंगा सहाय मीणा, विनायक तुमराम, उषा किरण आत्राम, लक्ष्मण गायकवाड़ आदि ने अपने कविता, कहानी, उपन्यास के माध्यम से आदिवासी जनजीवन के साथ जल-जंगल-जमीन को बचाने की बात की है। यही आदिवासी की पहचान है, बिना जंगल के आदिवासी कला, साहित्य, संगीत की गूंज नहीं गूंजेगी। प्रकृति उनकी आलंबन भी है और उद्दीपन भी। आदिवासी रचनाकारों ने लोकजीवन और समाज को अभिव्यक्त किया है। आज आदिवासी समाज पर अस्तित्व का संकट गहरा रहा है। जंगल से विस्थापन किया जा रहा है उन जंगलों से खनिज संसाधन निकाल कर उन्हे जर्जर बनाकर खदेड़ दिया जा रहा है। इन ज्वलंत प्रश्नों पर साहित्यकारों ने साहित्य के माध्यम से अपनी बात पहुचाई है। अभिजात साहित्य के बाहर भी एक संसार खड़ा है। आदिवासी या वंचित भटके, विस्थापित, बंजारे या प्रकृति मित्रों का, जिसे नजर अंदाज करता रहा है। सदियों से यह समाज लय-ताल से समृद्ध, सुरों का धनी और पूर्ण मानवतावादी होते हुए भी -अक्षर से दूर रखा गया है। इनके नाम गीतकार, कवियों, लोकगीतों में इनकी संस्कृति का इतिहास है पर वह सब श्रुति-आधारित था।''[2] मूलरूप से साहित्य जगत में आदिवासी मुद्दो को उठाने और उनसे जुड़े सृजनात्मक साहित्य को प्रोत्साहन देने में कुछ पत्रिकाओं ने विशेष योगदान दिया है। जिनमे प्रमुख रूप से युद्धरत आम आदमी -रमणिका गुप्ता, अरावली उद्घोष- वी.पी.शर्मा पथिक, झारखंडी भाषा साहित्य, संस्कृति अखड़ा- वंदना टेटे, आदिवासी सत्ता- के. आर. शाह आदि पत्र पत्रिकाओं ने लगातार जल-जंगल-जमीन के सवाल को उठाया है। आदिवासी साहित्य विविधताओं से भरा हुआ है जिस में मौखिक साहित्य की समृद्ध परंपरा है। जिसका लाभ आदिवासी रचनाकारों को मिला है। प्रकृति के सानिध्य में रहने से उनके केंद्र में जल-जंगल-जमीन मुख्य है। आदिवासी साहित्य बड़ी मात्रा में मौखिक ही है जिसे आज लिपिबद्ध करने की जरूरत है। लोकसाहित्य की परंपरा आदिवासी समाज में पुरखो से चली आ रही है। उत्सव, त्योहारों में उनके हर्ष-उल्लास, आशा-निराशा, सुख-दुख की मौखिक अभिव्यक्ति होती रही है। कभी कला के माध्यम से तो कभी नृत्यों के माध्यम से। आदिवासी साहित्य में वैक्तिकता के बजाय सामूहिकता पर जोर दिया जाता है। उनके पर्व त्यौहार, विवाह प्रसंग, धार्मिक उत्सव सभी सामूहिक पद्धति से किए जाते हैं। मौखिक साहित्य सहित प्रकृति के लय ताल संगीत के साथ पूर्वजों के ज्ञान विज्ञान, कला कौशल्य का पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरण हुआ है। इनमें भी सामूहिकता का विश्वदृष्टिकोण प्रमुखतः अभिव्यक्त हुआ है। साहित्य को लिखने की अलग-अलग पृष्ठभूमि रही है। आदिवासी साहित्य को लिखने की प्रेरणा प्राकृतिक संसाधनों, विभिन्न कलाओं और ऐतिहासिक घटनाओं से मिली है। आदिवासी साहित्य में समता, सामूहिकता, सहजीविता, सहभागिता और सामंजस्य को अपना दार्शनिक आधार माना जाता है। जिसमें

सहानुभूति और स्वानुभूति की बजाए सामूहिक अनुभूति को प्रमुख मानते हैं।

आदिवासी लोककला, लोकसाहित्य, लोकसंगीत, लोकनृत्य लोकगीत आदिवासी संस्कृति के अभिन्न अंग है जिनमे रूढ़ी परंपरा, रहन-सहन, आचार विचार लोकविश्वास जैसे तत्व समाहित होते हैं। आदिवासी समाज में विवाह प्रसंग पर साहित्य और कला की एक साथ अभिव्यक्ति होती है। धार्मिक उत्सव जीवन के महत्वपूर्ण अंग है इसके लिए वह देवी देवता को पूजता है, उत्सव मनाता है, बकरे की, मुर्गे की बलि दी जाती है। कोकणा, भील, कातकरी, वारली आदिवासियों की लोककलाएं और मौखिक साहित्य बड़ी मात्रा में मौजूद होता है।

संदर्भ सूची -

1. आदिवासी समाज एवं संस्कृति - विनय कुमार शर्मा, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली पृ. 62
2. आदिवासी स्वर और नई शताब्दी - रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृ.05

This document was created with the Win2PDF “Print to PDF” printer available at

https://www.win2pdf.com

This version of Win2PDF 10 is for evaluation and non-commercial use only.
Visit https://www.win2pdf.com/trial/ for a 30 day trial license.

This page will not be added after purchasing Win2PDF.

https://www.win2pdf.com/purchase/